# कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन

**विद्यावारिधि (पीएच.- डी.) उपाधि हेतु प्रस्तुत**

**शोध-प्रबंध**

2021


**शोध निर्देशक**
डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री
सहायक प्राध्यापक, योग
(योग एवं आयुर्वेद विभाग)

**शोधार्थी**
उमाशंकर कौशिक
पीएच.-डी.योग
नामांकन क्र. En-16-00021



**साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, (म.प्र.)**

# कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन

विद्यावारिधि (पीएच.-डी.) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

2020-21


**शोध निर्देशक**

डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री

सहायक प्राध्यापक, योग

(योग एवं आयुर्वेद विभाग)

**शोधार्थी**

उमाशंकर कौशिक

पीएच.- ड़ी. योग

नामांकन क्र. En16-00021



साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, (म.प्र.), 464551.

# COPY RIGHT

I, Umashankar Kaushik, hereby declare that the Sanchi University of Buddhist -Indic Studies, Academic Campus, Barla Raisen (M.P.) shall have the right to preserve, use and disseminate this Thesis entitled ' कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन' in print or electronic format for academic /research purpose.

Note: However, the research scholar may reproduce or authorism other to reproduce material extracted verbatim from the Thesis or derivation of the thesis for author's personal use provided that the source and the University's copyright notice are indicated.

Date

Place

Signature of the candidate

# घोषणा -पत्र

मैं यह घोषणा करता हूँ कि विद्यावारिधि (पीएच.-डी.) योग विषय का यह शोध-प्रबंध जिसका शीर्षक **'कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन'** है, यह मेरे ज्ञान एंव परिश्रम की परिणति है। इस शोध कार्य में मैंने जिन संदर्भ ग्रंथों की सहायता प्राप्त की है उन्हें यथा संभव उद्धृत किया है।

यह शोध-प्रबंध कार्य किसी भी पुस्तक या शोध का आंशिक या पूर्ण अनुकरण नहीं है।

स्थान :-

दिनांक :-

शोधार्थी

उमाशंकर कौशिक

## ANTI PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certificate that the submitted Ph.D. thesis entitled 'कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन' has been examined with the following -plagiarism tools. I undertake the follow :

a. Thesis has significant new work/ knowledge as compared to already published or under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation diagram, table paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism)no ideas, processes result or words of other have been presented as author's own work.
c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.
d. There is no falsification by manipulating research materials equipment or processes or changing or omitting data or result such that the research is not accurately represented in the research record.
e. The thesis has been checked using ……as per UGC (promotion of academic integrity and plagiarism in higher educational institutes) regulation 2018.

Signature of candidate

# प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री उमाशंकर कौशिक शोध-छात्र, योग विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन, म.प्र. ने योग विषय में विद्यावारिधि (पीएच.-डी.) उपाधि के मन्तव्य से मेरे निर्देशन में **कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास एवं सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन** शीर्षक से अपना शोधकार्य परिश्रम, लगनशीलता एवं सम्यक दृष्टिकोण से पूरा किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध पूर्णतः मौलिक, अप्रकाशित एवं शोधार्थी के द्वारा स्वयं संकलित तथ्यों पर आधारित है।

अतः शोध-छात्र को बधाई देते हुए मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ। इस शोध-प्रबंध को उक्त उपाधि की सम्परीक्षा के निमित्त अपनी संबल संस्तुति प्रेषित करता हूँ।

पर्यवेक्षक

डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री

# आभारोक्ति

विद्यावारिधि (पीएच.-डी.) योग के इस शोध-प्रबंध को प्रस्तुत करते हुए मैं वेदमाता गायत्री, परमपूज्य गुरूदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य एवं वंदनीय माता श्री भगवती देवी शर्मा, संरक्षक मेरे माता-पिता के प्रति विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिनके आशीर्वाद से इस कार्य में सफलता प्राप्त हुई।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के निर्देशक डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री, सहायक प्राध्यापक योग विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन, म.प्र. के प्रति अभारी हूँ जिनके कुशल निर्देशन व सतत मार्ग दर्शन से यह कार्य पूर्ण हुआ।

मैं तंत्र एवं हठयोग विषय के विद्वान, डॉ. यतीन्द्र अमोली महोदय, योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रति विशेष आभारी हूँ। जिनका इस शोध कार्य को पूरा करने में सबसे ज्यादा सहयोग एवं कुशल मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ जिनके सहयोग से देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, जंगमबाड़ी मठ, वाराणसी आदि प्रतिष्ठित संस्थानों में उपलब्ध विभिन्न महत्वपूर्ण ग्रंथों को जानने का अवसर एवं शोध-प्रबंध को पूरा करने में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।

मैं, डॉ. सुरेश लाल वर्णवाल, विभागाध्यक्ष योगविभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुँज, हरिद्वार के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने विषय की गहराईयों को स्पष्ट करते हुए अपने व्यस्ततम समयों में भी कुशल मार्ग दर्शन किया। मैं, डॉ. अखिलेश सिंह, डॉ. श्याम गणपत तीखे, योग एवं आयुर्वेद विभाग, डॉ. संतोष प्रियदर्शी, बौद्ध अध्ययन विभाग, डॉ. राहुल सिद्धार्थ, हिंदी विभाग एवं डॉ. प्रभाकर पाण्डेय, वैकल्पिक शिक्षा विभाग के प्रति आभारी हूँ। उपरोक्त सभी विद्वतजन साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन, म.प्र. के सहायक प्राध्यापक हैं। गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर उ.प्र. के प्रति आभारी हूँ। जिनके सहयोगी सन्यासियों एवम् उपलब्ध ग्रंथों की सहायता से शोध-प्रबंध के लेखन में विशेष सहायता प्राप्त हुई।

बौद्ध अध्ययन विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों के प्रति आभारी हूँ। जिन्होंने सहजयानी सम्प्रदाय से सम्बंधित ग्रंथों के विषय में सूचना प्रदान की। केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ के शोध अधिकारी डॉ. ठाकुर सिंह नेगी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। जिनके सहयोग से इस शोध कार्य में सहायता प्राप्त हुई।

मैं, श्री हरीश कुमार असाटी एवं प्रकाश जी, सहायक ग्रंथपाल, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय के प्रति साधुवाद प्रकट करता हूँ। जिन्होंने शोधकार्य के दौरान विशेष सहयोग प्रदान किया।

मैं, अपनी धर्मपत्नी श्रीमति राजेश्वरी कौशिक के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग से शोध कार्य को पूरा करने में विशेष सहयोग प्राप्त हुई। मैं, अपने सहयोगी एव शोधार्थी मित्रों, नीलू विश्वकर्मा, लोकेश चौधरी, दीपक तिवारी, शरद सोनवाने, अनीश कुमार आदि के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। जिनके सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हुआ ।

अंत में मेरे इस शोध-प्रबंध को पूरा करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान करने वाले उन शिक्षकों, विश्वविद्यालयों, सरकारी एवं निजी संस्थानों आदि के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके सहयोग से मूल एवं सहायक ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं, चित्रों आदि की उपलब्धता संभव हो पाया जो इस शोध-प्रबंध को पूरा करने में सहायता प्राप्त हुई ।

उमाशंकर कौशिक

# विषयानुक्रमणिका


| अध्याय | विषय सूची | पृ. स. |
|---|---|---|
| | शोध समस्या की पृष्ठभूमि | i-ii |
| | भूमिका | ii- xiii |
| | अध्ययन की उपादेयता | Xiii |
| | समस्या कथन | Xiii |
| | शोध का उद्देश | Xiii |
| | शोध प्रविधि | Xiv |
| | शोध की सीमाएँ | Xiv |
| प्रथम अध्याय | **नाथ साहित्यों का अवलोकन** | 1-109 |
| | प्रस्तावना | 1-3 |
| 1.1 | नाथ साहित्यों में नाथ शब्द | 3-7 |
| 1.2 | नाथ साहित्यों का कालक्रम | 7-11 |
| 1.3 | विभिन्न ग्रंथों में नाथ साहित्यों की चर्चा | 12-21 |
| 1.4 | कतिपय नाथ साहित्यों का परिचय | 21-22 |
| 1.4.1 | कौलज्ञाननिर्णय | 22-26 |
| 1.4.2 | सिद्धसिद्धांतपद्धति | 27-44 |
| 1.4.3 | गोरक्षशतकम् | 44-49 |
| 1.4.4 | वसिष्ठ संहिता | 49-59 |
| 1.4.5 | हठप्रदीपिका | 59-63 |
| 1.4.6 | गोरखबानी | 63-65 |
| 1.4.7 | शिवसंहिता | 65-79 |
| 1.4.8 | घेरण्ड संहिता | 79-86 |
| 1.4.9 | हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना | 87-109 |

| | | |
|---|---|---|
| द्वितीय अध्याय | **नाथ साहित्यों में हठयोग का विकास** | 110-203 |
| | प्रस्तावना | 110-111 |
| 2.1 | हठयोग | 111-114 |
| 2.2 | हठयोग की पुरातन परम्परा | 115-119 |
| 2.3 | कतिपय नाथ साहित्यों में हठयोग का विकास | 119-121 |
| 2.3.1 | नाथ सिद्ध परम्परा | 121-130 |
| 2.4 | नाथ सिद्ध | 130-151 |
| 2.5 | नाथ सिद्धों की साधनाएँ | 151-189 |
| 2.6 | हठयौगिक साधनाओं का उद्देश | 189-193 |
| 2.7 | नाथ साहित्यों में हठयोग का दर्शन | 193-200 |
| 2.8 | हठयोग पर विभिन्न विद्वानों के मत | 200-203 |
| तृतीय अध्याय | **सहजयान** | 204-294 |
| | प्रस्तावना | 204-206 |
| 3.1 | सहजयान | 206-211 |
| 3.2 | सहजयान, उत्पत्ति एवं विकास | 211-214 |
| 3.3 | सहजयानी सिद्ध | 214-225 |
| 3.4 | सहजयानी साहित्य | 226-236 |
| 3.5 | सहजयानी सिद्धों की साधनाएँ | 236-279 |
| 3.6 | सहजयानी सिद्धों की दार्शनिकता | 280-289 |
| 3.7 | सहजयान पर विभिन्न विद्वानों के मत एवं कार्य | 289-294 |
| चतुर्थ अध्याय | **हठयोग का सहजयान पर प्रभाव** | 295- |
| | प्रस्तावना | 295-296 |
| 4.1 | हठयोग एवं सहजयान | 297-302 |
| 4.2 | सिद्धों की परम्परा के आधार पर | 302-317 |

| | | |
|---|---|---|
| 4.3 | सिद्धों के साधनात्मक विधियों के आधार पर | 318-357 |
| 4.4 | सिद्धों के साहित्यों के आधार पर | 357-360 |
| 4.5 | सिद्धों के दर्शन के आधार पर | 360-374 |
| 4.6 | विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर | 374-378 |
| | निष्कर्ष | 379-385 |
| | सिद्धों की साधनात्मक चित्रावली | 386-387 |
| | संदर्भ ग्रंथ सूची | 388-394 |

## शोध समस्या की  पृष्ठभूमि :-

योग विद्या, भारत की प्राचीन आध्यात्म विद्या मानी जाती है, जो सृष्टि के आरंभ से लेकर, वैदिक काल के पूर्व एवम् पश्चात, उपनिषदिक्, पौराणिक आदि कालों में भी इनके प्रवाहमानता को देख सकते हैं। जिनमें विभिन्न योगियों, सिद्धों, संतों आदि के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। योगविद्या के प्रचार-प्रसार के आरंभिक काल में यह ऋषियों, योगियों आदि के मध्य ही पुष्पित एवं पल्लवित होती चली आ रही थी, किन्तु कालांतर में इस विद्या का प्रचलन विभिन्न जन-मानस के मध्य होने लगा इन कारणों से इस क्षेत्र में स्वार्थी तत्वों के प्रवेश से इन यौगिक साधनाओं में विकृतियां आरंभ होने लगी, क्योंकि उन तत्वों ने अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए इन सिद्धियों का अनुचित प्रयोग करने लगे जिससे इस मार्ग में भ्रांतियां उत्पन्न होने लगी थी। व्यभिचार आरंभ हो गया था, तब हठयोग का अभ्यास क्रम असंतुलित होने लगा।

हठयोग के आदिप्रवर्तक आदिनाथ माने जाते हैं, इन्हे ही नामांतर भेद से नाथ योगियों ने विभिन्न स्थानों पर हठयौगिक ग्रंथों में शिव कहकर संबोधित किया है। शिव ही तांत्रिक ग्रंथों, मंत्रों एवं तंत्रों के अधिपति माने जाते हैं। नाथ सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि अनेक नाथ सिद्ध विभिन्न साम्प्रदायिक, तांत्रिक, यौगिक आदि ग्रंथों की सूचियों में देखे जा सकते हैं। लौकिक रुप से मत्स्येन्द्रनाथ प्रवर्तित इन विद्या का प्रसार भारत के विभिन्न सम्प्रदायों एवं सुदूर नेपाल, तिब्बत आदि स्थानों पर भी होता रहा, जिनमें तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय सहजयान की प्रतिष्ठा हो गयी। परशुराम चतुर्वेदी ने ऐतिहासिक, तांत्रिक, यौगिक, साम्प्रदायिक आदि तीस ग्रंथों में नौ नाथों में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ, कृष्णनाथ, चौरंगीनाथ, चर्पटनाथ आदि सिद्ध योगियों को क्रमशः प्रमुख माना है।

हठविद्या का तांत्रिक साधनाओं से गहरा संबंध रहा है। मत्स्येन्द्रनाथ स्वयं चतुर्थ अद्वैत शाखा कौलयोगिनी मार्ग के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं। कलांतर में इस हठयौगिक साधना मार्ग में शामिल हो चुकी विकृतियों को महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ, कानिफानाथ, चौरंगीनाथ आदिनाथ सिद्धों ने उपरोक्त विकृतियों का शोधन कर प्राचीन तांत्रिक एवं यौगिक साधनाओं को समाविष्ट कर हठयोग साधना की पुनः प्रतिष्ठा की नाथ सिद्धों योगियों ने आसनों में विशिष्ट सिद्धासन मुद्रा-बंध को तांत्रिक साधनाओं से, शारीरिक शोधन के लिए षट्कर्म एवं पथ्याहारों को आयुर्वेद ग्रंथों से अभ्यास तांत्रिक साधनाओं से प्राणायाम एवं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि की साधनाएँ प्रस्तुत की, उपरोक्त दोनों साधना मार्गों के विभिन्न सिद्धों एवं योगियों में प्राचीन सिद्धों सूर्यपादान, लंबोदरपादन, ऋषि याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, दत्तात्रेय आदि तांत्रिक एवं यौगिक सिद्ध योगियों का नामोल्लेख नाथ साहित्यों में देखे जा सकते हैं।

इन नाथ सिद्धों ने उपरोक्त साधनाओं पर विविध प्रयोग करते हुए हठविद्या से देहस्थ कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर विभिन्न तत्वों पर विजय प्राप्त करते हुए सहजानंद में प्रतिष्ठित होने का मार्ग प्रशस्त किया। शोधार्थी के द्वारा किये गये शोधकार्य के विविध प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि इस प्रकार हठयोग विद्या का विकास हुआ होगा।

उपरोक्त समस्या को सुलझाने हेतु शोधकर्ता, **कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन** की ओर अग्रसर हुआ।

## भूमिका :-

योग प्राचीन भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है, जो कभी ऋषियों, योगियों, संतों, मुनियों आदि की गुप्त विद्याएँ हुआ करती थी। ये विद्याएँ कभी कंदराओं, गुफाओं, कुटियों, गुप्त ग्रंथों आदी तक सीमित थी किन्तु कालांतर में आज

विश्व के सुदूर क्षेत्रों में पहुँच चूका है। योग, प्राचीन काल से ही भारत की समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन का विज्ञान रहा है। जिसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक स्वास्थ्य के साथ-साथ अन्ततः स्व में प्रतिष्ठित होने का साधन भी है।

वर्तमान में योग के प्रति बढ़ते रूझानों और उनसे होने वाले विविध लाभों को विभिन्न क्षेत्रों में स्पष्टतः अवलोकन किया जा सकता है। अद्यतन विश्व में बहुप्रचलित यौगिक अभ्यास भारत के मध्यकालीन इतिहास में हठयोग साधना के रूप में बहुप्रसिद्ध रही है, ये अभ्यास नाथयोग साधना के नाम से भी जानी जाती है जो नाथ सिद्धों (योगियों) की परमतत्त्व से एकाकार कराने वाली साधनाएँ थी। नाथ योगियों ने अपनी इन यौगिक साधनाओं को गुरू-शिष्य परम्परा के माध्यम से प्राप्त कर, लम्बे अभ्यासों के उपरान्त प्राप्त गहरी अनुभूतियों को सिद्ध कर सिद्धांतों के रूप में संग्रहित किया जाने लगा। कालान्तर में हठयौगिक परम्परा में दीक्षित अनेक नाथ सिद्धों और अनुयायिओं के द्वारा इस ज्ञान का प्रचार-प्रसार होता रहा इस प्रकार उपदेशित सिद्धान्तों एवं विभिन्न अनुभवों को नाथ साहित्य के रुप में संरक्षित किया जाने लगा।

नाथ शब्द, हठयोगियों के नामों के अन्त में लगने वाली उपाधि है। नाथ योग अर्थात् हठयोग साधना में दीक्षित होकर गुरू उपदिष्ट सिद्ध सिद्धान्तों का अनुपालन करता हुआ जीवन मुक्ती को प्राप्त कर लेता है। नाथ का अर्थ अनामा ब्रह्म से है, जो अजन्मा है और इस संसार की उत्पत्ति का कारण हैं किन्तु उसका कोई कारण नहीं है। नाथ योगियों ने उस ब्रह्म को ही आदिनाथ की संज्ञा दी है। नाथ शब्द की उत्पत्ति, नाथृ धातु में 'अ' प्रत्यय के जुड़ने से बना है, जो अधिपति, विभुः, नायक, प्रभुः, भर्ता, स्वामी आदि के पर्याय माने गये हैं।

हठयोग के इस गूढ़ एवं अनुभवजन्य ज्ञान को अक्षुण्ण बनाए रखने के उद्देश्य से कालान्तर में इन नाथ योगियों (सिद्धों) तथा उनके अनुयायिओं के द्वारा हठयोग से राजयोग की प्राप्ति के लिए सिद्धान्तों को ग्रन्थों के रूप में संग्रहीत किया जाने लगा। जिससे नाथ योगियों के हठयोग की विभिन्न साधनाएँ प्रकाश में आने लगी।

इन्होंने यौगिक अभ्यासों को एकांत स्थलों, गुफाओं अथवा गुरू निर्दिष्ट स्थानों पर करते हुए, सम्पूर्ण भारत,पाकिस्तान, नेपाल, तिब्बत आदि क्षेत्रों तक रमण करते थे। अतः इन योगियों की साधनाओं एवं इनकी रचनाओं आदि की सूचना किसी भी एक स्थान से प्राप्त करना संभव नहीं है।

भिन्न-भिन्न समय पर इन नाथ सिद्धों (योगियों) की रचनाओं पर विभिन्न विद्धानों ने कार्य किया है, जिनमें तन्त्र, योग, संस्कृत, इतिहास एवं हिन्दी साहित्य तथा नाथ सम्प्रदाय से जुड़े हुए साम्प्रदायिक संस्थान आदि सम्मिलित हैं। इनमें आगम शास्त्रों के प्रतिष्ठित विद्वान गोपीनाथ कविराज, हिन्दी साहित्य से जुड़े मिश्रबन्धुविनोद, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय आदि। अंग्रेजी भाषा में जी डब्ल्यू ब्रिग्स, जी., मोहन सिंह, कल्याणी मल्लिक, एस. घुर्रे, फर्कुहर आदि प्रमुख रहे हैं।

गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर से नाथ सिद्धों की रचनाओं पर अतिमहत्त्वपूर्ण कार्य अवेद्यनाथ के काल में हुए। जिसके अन्तर्गत नाथ सिद्धों की रचनाओं एवं उनके साधना पद्धतियों पर भारत के विभिन्न विद्वानों एवं जानकारों को आमन्त्रित कर इन योगियों के ग्रन्थों का सम्पादन कर प्रकाशित किया गया। अल्प विद्वानों को छोड़कर अधिकांशों ने नाथसिद्धों के ऐतिहासिकता, किवदन्तियों, सिद्ध योगियों के चमत्कारों उनकी जीवनियों, भक्तिकालीन कवियों पर नाथ योगियों के प्रभावों आदि पर अधिक प्रकाश ड़ाला हैं। जिनमें हिन्दी साहित्य के विद्वानों की संख्या अधिक दिख पड़ती हैं। इनके साहित्यों पर कार्य करने वाले बाद के अधिकतर विद्वानों में उन योगियों की रचनाओं का उल्लेख किया किन्तु कालांतर में इन साहित्यों पर वैज्ञानिक रीति से कार्य होने लगे।

आरम्भिक काल में इनके रचनाओं के हस्तलिपियों एवं उनकी आलोचनात्मक संस्करणों की उपलब्धता अल्प थी किन्तु इन पर अनुसंधान कार्य होने से उन योगियों की रचनाएँ प्रकाश में आने लगी। नाथसाहित्यों की जानकारी सर्वप्रथम मिश्रबन्धुओं की रचना मिश्रबन्धुविनोद से ज्ञात होता है जिसमें गोरक्षनाथ की नौ

रचनाओं का उल्लेख हैं। उपरान्त पं. तारादत्त गौरेला के द्वारा गोरक्षनाथ की माने जाने वाली सत्रह रचनाओं को प्रस्तुत किया गया जिसमें से कुछ रचनाएँ अन्य योगियों की भी सम्मिलित थी।

इन साहित्यों पर वैज्ञानिक रीति से कार्य करने वालों में डॉ. प्रबोध चन्द्र बागची, डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, जी.डब्ल्यू ब्रिग्स, डॉ. कल्याणी मल्लिक, हजारी प्रसाद द्विवेदी, गोपीनाथ कविराज, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय आदि विद्वानों ने इन रचनाओं पर विशेष कार्य किया है। अभी तक ज्ञात नाथ सिद्धों (योगियों) की रचनाओं पर महत्वपूर्ण कार्य कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावला, पुणे के द्वारा किया गया। जिन्होंने इन रचनाओं की विभिन्न हस्तलिपियों का संकलन कर उनके विषय वस्तुओं की समीक्षा कर आलोचनात्मक संस्करणों तथा नाथ साहित्यों में प्रयुक्त विभिन्न साधनात्मक, दार्शनिक आदि शब्दावलियों के लिए शब्द कोशों का प्रकाशन किया।

अतः नाथ साहित्य का अवलोकन नामक इस प्रथम अध्याय में विभिन्न ग्रन्थों से प्राप्त नाथ योगियों के रचनाओं में से हठयोग के साधनात्मक, दार्शनिक, एतिहासिक आदि विषयों का उल्लेख करने वाले कतिपय साहित्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिनमें कौलज्ञाननिर्णय, गोरक्षशतकम्, सिद्धसिद्धांतपद्धति,वसिष्ठसंहिता,हठप्रदीपिका,घेरण्डसंहिता,हठप्रदीपिकाज्योत्स्नाशिवसंहिता, गोरखबनी (सबदी) सम्मिलित है। जिनका कालक्रम नौवीं शताब्दी के पूर्व से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक रहा है। उपरोक्त साहित्यों से कालांतर में संकलित एवं विकसित हठयोग के विभिन्न योगांगों के विकास को देखा जा सकता है।

हठ शब्द, ह + ठ नामक दो वर्णों से मिलकर बना है। 'ह' से तात्पर्य 'हकार' एवं 'ठ' से तात्पर्य 'ठकार' है। सिद्धसिद्धांतपद्धति हठयोग की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए हकार को सूर्य एवं ठकार को चंद्र स्वीकार करता है। यौगिक साधनाओं के द्वारा सूर्य-चंद्र (प्राण-अपान) का योग ही हठयोग है। नाथसिद्धों के अनुसार देह में विद्यमान प्राण शक्ति और चित्त शक्ति ही शक्ति की दो विपरीत धाराएँ है। इसे ही

नामांतर भेद से प्राण-अपान, सूर्य-चंद्र, इड़ा और पिंगला भी संबोधित किया गया है, ये दोनों क्रमश: बायीं और दाहिनी नासिका की प्रतिनिधि भी हैं। सामान्यावस्था में इन दोनों में से किसी एक के सक्रिय होने पर दूसरा निष्क्रिय हो जाता है।

इन दोनों विपरीत धाराओं को आसन, षट्कर्म, नाड़ी शोधन, प्राणायाम एवं मुद्रा साधना से संयुक्त किया जाता है। तब दोनों मिलन की प्रगाढ़ता में एक हो मध्यपथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। जिससे इस मार्ग में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगमन करती हुई इस निरालंब मार्ग में शक्ति के केन्द्रों को जागृत करती हुई नाद के साथ परम शिव से एक हो जाती है। तब योगी पूर्णानंद सहजानंद में निमग्न हो जाता है। यही परम पद है। जिससे इसी देह में ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड की अभेदता का ज्ञान होता है। इसे ही योगियों ने स्वसंवेद्य कहा है जो संसार और मुक्ति से परे अव्यक्त है।

उपरोक्त साधनाओं के सूत्र हमें वैदिक काल से ही प्राप्त होने लगते हैं एवं विभिन्न उपनिषद्, तंत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण, स्मृति, सूत्र आदि ग्रंथों में भी देखें जा सकते हैं किन्तु मध्यकाल में नाथ सिद्धों (योगियों) के द्वारा इस योग पर विभिन्न प्रयोग किये गये एवं कालांतर में इस मार्ग में सम्मिलित विभिन्न विकृतियों को दूर कर हठयोग की पुरातन एवं नवीन साधनाओं को मिलाकर इस विद्या की पुनः प्रतिष्ठा की गयी। नाथ सिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, काणेरीनाथ, चर्पटनाथ, कंथडिनाथ, गोपीचंद, भर्तृहरि, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या कहीं चौरासी तो कहीं सैकड़ों से भी ज्यादा प्राप्त होती है।

इन नाथ सिद्धों ने हठयोग की साधना में अपने पुरातन सिद्धों की सूची प्रस्तुत करते हुए आसन, षट्कर्म, योग के लिए आवश्यक एवं निषिद्ध आहार, सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला आदि नाड़ियों, कुम्भक (प्राणायाम), मुद्रा, कुण्डलिनी, देहस्थ चक्र, नादानुसंधान, सिद्धदेह, सहजानंद के साथ-साथ यम, नियम, प्रत्याहार, धारणा आदि को भी कुछ नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए पिण्डब्रह्माण्डवाद, जीवनमुक्ति एवं

परामुक्ति, द्वैताद्वैतविवर्जित, स्वसंवेद्य आदि दर्शनों को प्रस्तुत किया। उपरोक्त नाथ सिद्धों एवं उनकी साधना, साहित्य एवं दर्शन का प्रभाव समकालीन विभिन्न सम्प्रदायों पर अवलोकनीय है।

उपरोक्त नाथसिद्धों की साधना, साहित्य एवं दर्शन को तांत्रिक बौद्ध परम्परा के रूप में प्रसिद्ध वज्रयान के समकालीन सहजयान पर देखने को मिलता है। जहाँ नाथ सिद्धों की भाँति बौद्ध सिद्ध प्रसिद्ध हैं ।

सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' से तात्पर्य उत्पन्न होना है। शब्दकोश में, सहज शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ प्राकृतिक रूप से, साथ-साथ अथवा एक ही काल में उत्पन्न होना है। नामांतर भेद से इसे ही जन्मजात अथवा स्वभाव भी कहा गया है। तिब्बती भाषा में सहज शब्द सह= ह्लन चिग्, ज= क्येपा से मिलकर बना है। जिसका अर्थ साथ-साथ पैदा होना या उत्पन्न होना है। सहजयान तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत आने वाला एक सम्प्रदाय है। जिसका विकास वज्रयानी सम्प्रदाय के उपरांत अथवा साथ साथ माना जाता है।

सहजयान सम्प्रदाय में सहज, प्रज्ञा-उपाय, वज्र-वाराही शून्यता-करूणा, सूर्य-चंद्र, पद्म-वज्र आदि का मिलित रूप है। जो परमलक्ष्य के परिचायक है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में जिन साधनाओं, अभ्यासों को माध्यम लिया जाता है, वे सभी यान (साधन) के रूप माने गये हैं। बौद्ध सिद्धों के अनुसार, सहज अव्यक्त है। जिसे बताया या समझाया नहीं जा सकता। यह भावाभाव से परे संसार (भव) और निर्वाण के पार है। अनेक स्थानों में इन सहजीया सिद्धों ने इसे ही महामुद्रा साक्षात्कार, निर्वाण, परमपद आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में चौरासी सिद्धों की सूची में सहजयानी सिद्धों को देखा जा सकता है। इन सिद्धों में लूअिपा (लुईपाद), लीलापा, विरूपा, शबरपा, सरहपा, कण्डालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, कण्हपा, चौरंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तिलोपा, नरोपा, डोम्भीपा आदि प्रमुख सिद्धों के नामों का उल्लेख हैं। इनकी संख्या चौरासी कही गयी है।इन

सिद्धों की रचनाएँ - संस्कृत, मिश्रसंस्कृत, अपभ्रंष आदि भाषाओं में प्राप्त होती है। इनमें चर्यापद, दोहाकोशगीति, चर्यागीति और संस्कृत में हेवज्रतंत्र, हेवज्रपंजिकायोगरत्नमाला, हेवज्रपंजिका मुक्तावली, कालचक्रतंत्र आदि ग्रंथ प्रमुख माने जाते हैं।

नाथ सिद्धों एवं सहजयानी सिद्धों की साधना, साहित्य, दर्शन एवं विभिन्न विद्वानों के विचारों आदि की समीक्षा करने पर यह पता चलता है कि हठयोग दो वर्णों, ह + ठ से मिलकर बना है। जिसमें शक्ति की दो धाराओं से है, जो सामान्यावस्था में एक दूसरे के विपरीत कार्य व्यापार को सम्पादित करती हैं, किन्तु गुरू के द्वारा उपदिष्ट साधना मार्ग का अनुसरण करने से इन दोनों धाराओं क्रमश: एक्यता आने लगती है। इन धाराओं को ही नामांतर भेद से इड़ा-पिंगला, सूर्य-चंद्र, गंगा-यमुना, स्त्री-पुरुष आदि नामों से संबोधित किया जाता है।उपरोक्त दोनों शक्ति धाराओं का योग ही हठयोग है। जिससे, भेदाभेद आदि मिट जाते हैं और योगी सहज में रमण करने लगता है, जो मुक्ति का ही नामांतर है। ये साधनाएँ नाथ योगियों अथवा नाथसिद्धों के मध्य प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है। नाथ योगियों के मत को योगमार्ग, अवधूतमार्ग, सिद्धमार्ग, कौलमार्ग आदि नामों से भी जाना जाता है।

नाथ योगियों की हठ साधना के समान ही सहजयानी सिद्धों की सहज साधना, सह + ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' का अर्थ उत्पन्न होना है। वस्तु और उसके गुण का एक साथ होना ही सहज है। सहजयानी सिद्धों ने इसे ही नामांतर भेद से प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, सूर्य-चंद्र, स्त्री-पुरूष आदि कहकर भी संबोधित किया है। उपरोक्त दोनों की मिलन की प्रगाढ़ता में भेद समाप्त हो जाते हैं और साधक सहज में रमण करने लगता है, जो निर्वाण का ही नामांतर है। नाथ और सहजयानी दोनों सम्प्रदायी, सिद्धों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मध्यकालीन, भारतीय एवं तिब्बती स्रोतों से प्राप्त सिद्धों की सूचियाँ प्रस्तुत करने वाले वर्णरत्नाकर, सस्कय  बौद्ध विहार, हठप्रदीपिका आदि में दोनों सम्प्रदायी

मिश्रित रूप में शामिल हैं किन्तु इनमें प्रथम नाम, नाथ महासिद्ध मत्स्येन्द्र का ही प्राप्त होता है, इन्हीं का तिब्बती संस्करण लूअिपा (लुहिपा) है। जो सहजयानी सिद्धों में आदि सिद्ध के रुप में प्रतिष्ठित हैं।

नेपाली बौद्धों के मध्य भी मत्स्येन्द्र अवलोकितेश्वर के रूप में पूजित हैं एवं नेपाली जनमानस में श्रद्धा के केंद्र बिंदु हैं। काश्मीर शैव परम्परा के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार मत्स्येन्द्र ने ही स्वउपार्जित ज्ञान को अपने छः राज पुत्रों आनंद, अवलि, योगी, प्रभु, बोधि, पाद में बाँट दिया था। सहजयानी सिद्धों की नामावली में 'पाद' नामक सम्बोधन शब्द की बहुलता है। मत्स्येन्द्र कृत कौलज्ञाननिर्णय में मत्स्येन्द्र पूर्व सिद्धों की परम्पराओं का नामावलियों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। जिनके नामों के अंत में पादान नामक विशेषण प्राप्त होता है। नवनाथों की नामावली प्रस्तुत करने वाली विभिन्न सूचियों में सहजयानी सिद्ध जालंधर एवं उनके प्रमुख शिष्य, कानिफा शामिल हैं। इन सूचियों में भी मत्स्येन्द्र का स्थान प्रथम और गोरक्षनाथ दूसरे स्थान पर प्रतिष्ठित हैं।

ब्रह्मानंदकृत हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में बंगाल के प्रसिद्ध नाथ सिद्ध और सहजयानी सिद्ध गोपीचंद के साथ-साथ सोलहवीं शताब्दी में तिब्बत में प्रसिद्ध लेखक और सहजयानी साधक तारानाथ भी नाथों की सूची में शामिल हैं। साथ ही दोनों सम्प्रदायों में उनके साधनात्मक विधियाँ भी समान है, नाथ साधना में जहाँ आसन, प्राणायाम, कापालिक साधना, मुद्रा, कुण्डलिनी जागरण, देहस्थ चक्र, सहजानंद आदि शामिल हैं, वहीं सहजयान में नामांतर भेद से बुद्धासन, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रासाधना, चाण्डाली जागरण, देहस्थ चक्र एवं सहजानंद आदि साधनाएँ समानता रखती हैं। इन सिद्धों के दर्शन भी आपस में मिलते हैं। वहीं सहजयान के पूर्व सम्प्रदायों एवं परम्पराओं की समीक्षा करने पर उपरोक्त साधनाएँ मेल नहीं रखती।

सहजयान सम्प्रदाय की उत्पत्ति की अस्पष्टता एवं इनकी अपने पूर्व की परम्पराओं से मेल न रखना, विभिन्न सहजयानी ग्रंथ दोहाकोष, चर्यापद, हेवज्रतंत्र एवं उनकी संस्कृत टीकाओं का काल, उनमें वर्णित साधना, नाथ सिद्धों के बाद ठहरती है एवं इनका नाथ साधना से गहरा संबंध दिख पड़ता है। इस प्रकार सहजयानी सिद्धों ने नाथ साधनाओं का ही अनुसरण कर बौद्ध शब्दावलियों के रुप में परिभाषित करने लगे थे। विभिन्न विद्वानों ने भी साधना, दर्शन एवं भिन्न-भिन्न संदर्भों आदि के आधार पर नाथ सिद्धों का सहजयान पर प्रभाव स्वीकार किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक **कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन** है। जिसके अंतर्गत हठयौगिक ग्रंथों में हठयोग के विकास को जानना एवं इस हठयोग साधना का प्रभाव तांत्रिक बौद्ध परम्परा की एक शाखा सहजयान पर देखा गया है। यह हठयोग एवं सहजयान के मूल एवं सहायक ग्रंथों के आधार पर समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए उपरोक्त शोध शीर्षक को अध्ययन की सुविधा हेतु चार अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है।

शोध प्रबंध का **प्रथम अध्याय : नाथ साहित्यों का अवलोकन** है। जिसके अंतर्गत नाथ साहित्यों में नाथ शब्द का अर्थ परिभाषा एवं उनके समानान्तर विभिन्न नामों का उल्लेख किया गया है। नाथ सिद्धों के साहित्यों का विभिन्न विद्वानों के द्वारा समय-समय में प्रस्तुत किये गये विभिन्न नाथ साहित्यों की सूची विभिन्न ग्रंथों में उल्लेखित उनके हस्तलिपियों एवं उनके कालों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। जिनमें मुख्य रूप से डॉ. प्रबोधचंद बागची, डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डॉ. कल्याणी मल्लिक, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों एवं कैवल्यधाम लोनावला, पुणे के द्वारा नाथ साहित्यों पर वैज्ञानिक रीति से कार्य कर विभिन्न हस्तलिपियों के आधार पर नाथ साहित्यों (हठयौगिक ग्रंथ) को प्रस्तुत किया गया है।

उपरोक्त् विभिन्न सूचियों में से कतिपय नाथ साहित्यों का चयन किया गया है। जिनमें हठयोग के अंगों आसन, षट्कर्म, प्राणायाम, मुद्रा, कुण्डलिनी, षट्चक्र नादानुसंधान आदि विषय वस्तुओं वाले ग्रंथ, बहुउपलब्ध हस्तलिपियों को आधार लेकर संपादित संस्करण, नाथ सिद्धों में प्रथम लौकिक सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ कृत, नाथ योगियों के परम्पराओं तथा उनकी साधनाओं का विवरण प्रस्तुत करने वाले, नाथ सिद्धों के सिद्धांत एवं दर्शन का उल्लेख करने वाले, नाथ साहित्यों की सूचियों में प्रसिद्ध, प्रथमतः हठयोग में प्रसिद्ध शोधन क्रियाओं (षट्कर्म) का उल्लेख करने वाले, लोक भाषाओं में रचित बहुप्रसिद्ध नाथयोगियों के साधना, उपदेश एवं दर्शन आदि आवश्यक सामग्रियों के आधार पर कौलज्ञाननिर्णय, सिद्धसिद्धांतपद्धति, गोरक्षशतकम्, वसिष्ठसंहिता, हठप्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरण्ड संहिता, गोरखबानी, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना का चयन कर इनमें वर्णित हठयोग के विषय वस्तुओं को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शोधप्रबंध का **द्वितीय अध्याय : नाथ साहित्यों में हठयोग के विकास** का अध्ययन करना है। जिसमें हठयोग को नाथ साहित्यों के अनुसार परिभाषित करते हुए उन ग्रंथों में वर्णित हठयोग के साधनात्मक अंगों को क्रमिक रुप से प्रस्तुत किया गया है। अथर्ववेद, उपनिषद्, तंत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, स्मृति, सूत्र आदि शास्त्रों में वर्णित हठयोग के सूत्रों को प्रस्तुत करते हुए मध्यकाल में नाथ सिद्धों (योगियों) के द्वारा इस योग पर विभिन्न प्रयोग किये गये एवं कालांतर में इस मार्ग में सम्मिलित विभिन्न विकृतियों को दूर कर हठयोग की पुरातन एवं नवीन साधनाओं को संयुक्त कर इस विद्या की पुनः प्रतिष्ठा की गयी जिसके अंतर्गत पुरातन काल से चली आ रही सिद्धों की वंशावली, देहस्थ त्रिदोषों को संतुलन करने एवं प्राणायाम की सिद्धि के लिए षट्कर्म, यम, नियम, आसन, मिताहार एवं निषिद्ध आहार, कुम्भक, मुद्रा, कुण्डलिनी, देहस्थ चक्र, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, नादानुसंधान सिद्धदेह, सहजानंद आदि को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। नाथ सिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, काणेरीनाथ, चर्पटनाथ, कंथड़िनाथ, गोपीचंद, भर्तृहरि, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। प्रत्याहार, धारणा

आदि को भी कुछ नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए पिण्डब्रह्माण्डवाद, जीवनमुक्ति एवं परामुक्ति, द्वैताद्वैतविवर्जित, स्वसंवेद्य आदि दर्शनों को प्रस्तुत किया गया है। इन नाथ सिद्धों की साधना, साहित्य एवं दर्शन पर विभिन्न विद्वानों के मतों को भी प्रस्तुत किया गया है।

शोधप्रबंध का **तृतीय अध्याय : सहजयान** पर आधारित है। जिसके अंतर्गत सहजयान को परिभाषित करते हुए, सहज के मिलित रूप ललना-रसना, सूर्य-चंद्र, शून्यता-करूणा आदि समानार्थी शब्दों को प्रस्तुत करते हुए इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति, वज्रयानी सम्प्रदाय से अंतर एवं इन सिद्धों की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। सहजयानी सिद्धों के अंतर्गत लुईपाद (लुहिपा), लीलापा, विरूपा, शबरपा, सरहपा, कण्डालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, जालंधरपाद, कण्हपा, चौरंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तिलोपा, नरोपा, डोम्भीपा आदि प्रमुख माने जाते हैं। इन सिद्धों के जन्म स्थान, साधना, रचना, दर्शन समकालीन सिद्ध एवं इनकी प्रसिद्धियों को प्रस्तुत किया गया है। इन सिद्धों की रचनाओं के अंतर्गत चर्यापद, दोहाकोशगीति, चर्यागीति, लुईपाद रचित चर्यापद, चर्याचर्यविनिश्चय, हेवज्रतंत्र, शांतिपा रचित हेवज्रपंजिकामुक्तावली, कृष्णपाद रचित, हेवज्रपंजिकायोगरत्नमाला, नरोपाकृत वज्रयानी अनुत्तरयोग तंत्र, कालचक्रतंत्र आदि ग्रंथों से इनकी साधना एवं दर्शन को प्रस्तुत किया गया है।

इन सिद्धों की साधनाओं के अंतर्गत वज्रासन, देहस्थ विभिन्न नाड़ियों का उल्लेख, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रा साधना, प्रज्ञोपाय, बिन्दु साधना, चाण्डाली योग, देहस्थ चक्र, सहजानंद एवं निर्वाण एवं इनके वज्रदेह, जगत विचार, चित्त, प्रमाणवाद एवं अद्वय दर्शन आदि का उल्लेख किया गया है। इस सम्प्रदाय के रचनाओं पर वैज्ञानिक रीति से कार्य करने वाले एवं सिद्धों की सूची प्रस्तुत करने वाले, तंत्र, योग एवं इतिहास के विद्वानों के मतों को भी प्रस्तुत किया गया है।

शोधप्रबंध का **चतुर्थ अध्याय: हठयोग का सहजयान पर प्रभाव** का अध्ययन करना है। जिसके अंतर्गत हठयोग का सहजयान पर उनकी परिभाषा, उत्पत्ति, नाथ

सिद्धों एवं सहजयानी सिद्धों की परम्परा, नामावलियों के आधार पर, नाथसिद्धों का सहजीया सिद्धों के साधनात्मक एवं सैद्धांतिक विधियों एवं उनके दर्शन के आधार पर, नाथ सिद्धों का सहजयानी ग्रंथों के विषय वस्तुओं एवं उनके कालनिर्णय के आधार पर एवं विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर हठयोग का सहजयान पर प्रभाव की समीक्षा को प्रस्तुत किया गया है।

## अध्ययन की उपादेयता :-

प्रस्तुत शोधप्रबंध कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन से नाथ सिद्धों (योगियों) के साहित्यों एवं उनमें से वैज्ञानिक रीति से संपादित रचनाओं, इन साहित्यों के आधार पर विकसित एवं प्रतिष्ठित हठयोग साधना एवं उनमें कालांतर में शामिल अन्य साधनाओं का पता चलेगा। प्रसिद्ध नाथ सिद्धों के विषय में प्रकाश ड़ालने में सहायक होगा। नाथ सिद्धों की साधना, साहित्य, दर्शन के प्रभाव को तांत्रिक बौद्ध परम्परा में विकसित सहजयानी सम्प्रदाय में जानने एवं दोनों सम्प्रदायों में नामांतर भेद से शामिल सिद्धों पर विस्तृत अध्ययन की ओर यह शोध कार्य प्रकाश ड़ालने में सहायक सिद्ध होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

## समस्या कथन :-

प्रस्तुत शोधप्रबंध का समस्या कथन, **कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव : एक समीक्षात्मक अध्ययन** करना है।

## शोधप्रबंध का उद्देश्य :-

1.कतिपय नाथ साहित्यों में हठयोग के विकास का अध्ययन करना।

2.हठयोग का सहजयान पर प्रभाव का अध्ययन व समीक्षा करना ।

## शोधप्रविधि :-

प्रस्तुत शोधप्रबंध में ग्रंथ विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग किया गया है। जिसके अंतर्गत हठयोग एवं सहजयान के मूल एवं सहायक ग्रंथों, प्रकाशित पत्र- पत्रिकाओं आदि के माध्यम से हठयोग के विकास और उसका सहजयान पर प्रभाव की समीक्षा की गयी है।

## शोध की सीमाएँ :-

प्रस्तुत शोध प्रबंध कतिपय नाथ साहित्य में हठयोग का विकास और सहजयान पर उसका प्रभाव: एक समीक्षात्मक अध्ययन है। इस शोध कार्य के अंतर्गत नाथ सिद्धों के विभिन्न ग्रंथों में से कौलज्ञाननिर्णय, सिद्धसिद्धांतपद्धति, गोरक्षशतकम्, वसिष्ठ संहिता, हठप्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरण्डसंहिता, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना एवं गोरखबानी के अंतर्गत 'सबदी' को लिया गया है। इस प्रकार नौ ग्रंथों को कतिपय नाथ साहित्यों के अंतर्गत चयन कर इनमें वर्णित हठयोग की साधना का विकास एवं उनका सहजयान पर प्रभाव की समीक्षा की गयी है।

# अध्याय 1.

# नाथ साहित्यों का अवलोकन

प्रस्तावना

1.1 नाथ साहित्यों में नाथ शब्द

1.2 नाथ साहित्यों का कालक्रम

1.3 विभिन्न ग्रंथों में नाथ साहित्यों की चर्चा

1.4 कतिपय नाथ साहित्यों का परिचय

1.4.1 कौलज्ञाननिर्णय

1.4.2 सिद्धसिद्धांतपद्धति

1.4.3 गोरक्षशतकम्

1.4.4 वसिष्ठ संहिता

1.4.5 हठप्रदीपिका

1.4.6 शिवसंहिता

1.4.7 घेरण्ड संहिता

1.4.8 गोरखबानी

1.4.9 हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना

# अध्याय 1.

# नाथ साहित्यों का अवलोकन

## प्रस्तावना :-

वर्तमान समय में योग के प्रति बढ़ते रूझानों और उनसे होने वाले शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक आदि लाभों को विविध क्षेत्रों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। अद्यतन बहुप्रचलित यौगिक अभ्यास भारत के मध्यकालीन इतिहास में हठयोग साधना के रूप में प्रसिद्ध रहा है, यह अभ्यास नाथयोग साधना के नाम से भी जानी जाती रही है, जो नाथ सिद्धों अथवा योगियों की परमतत्त्व से एकाकार कराने वाली साधनाएँ थी। इन योगियों ने अपनी साधनाओं को गुरू-शिष्य परम्पर के माध्यम से लम्बे अभ्यासों के उपरान्त प्राप्त गहरी अनुभूतियों को सिद्ध सिद्धांतों के रूप में प्रस्तुत किया था। उपरोक्त साधनाएँ नाथ सिद्धों (योगियों) के मध्य ही प्रचलित थी। कालान्तर में हठयौगिक परम्परा में दीक्षित अनेक नाथ सिद्धों और अनुयायिओं के द्वारा इस ज्ञान परम्परा का प्रचार-प्रसार होता रहा एवं उपदेशित सिद्धान्तों को संरक्षित किया जाने लगा।

नाथ शब्द हठयोगियों के नामों के अन्त में लगने वाली उपाधि है। नाथ योग अर्थात् हठयोग साधना में दीक्षित होकर गुरू उपदिष्ट सिद्ध सिद्धान्तों का अनुपालन करता हुआ जीवन मुक्त हो जाता है। नाथ का अर्थ उस अनामा ब्रह्म से है, जो अजन्मा है और इस संसार की उत्पत्ति का कारण है किन्तु जिनका कोई कारण नहीं है। नाथ योगियों ने उस ब्रह्म को ही आदिनाथ की संज्ञा दी है। नाथ शब्द की उत्पत्ति, नाथृ धातु में 'अ' प्रत्यय के जुड़ने से बना है, जो अधिपति, विभु, नायक, प्रभु, भर्ता, स्वामी आदि के पर्याय माने है।

हठयोग के इस गूढ़ एवं अनुभवजन्य ज्ञान को अक्षुण्ण बनाए रखने के उद्देश्य से कालान्तर में इन नाथ योगियों (सिद्धों) तथा अनुयायियों के द्वारा

हठयोग से राजयोग की प्राप्ति के लिए सिद्धान्तों को ग्रन्थों के रूप में संग्रहीत किया जाने लगा। जिससे नाथ योगियों के हठयोग की विभिन्न साधनाएँ प्रकाश में आने लगी। ये योगी अभ्यासों को एकांत स्थलों, गुफाओं अथवा गुरू निर्दिष्ट स्थानों पर करते हुए, सम्पूर्ण भारत, नेपाल, तिब्बत आदि क्षेत्रों तक रमण करते थे अतः इन योगियों की साधनाओं एवं रचनाओं आदि की सूचना किसी भी एक स्थान से प्राप्त करना संभव नहीं है।

भिन्न-भिन्न समय पर इन नाथ सिद्धों (योगियों) की रचनाओं पर विभिन्न विद्वानों ने कार्य किया है, जिनमें तन्त्र, योग, संस्कृत, इतिहास एवं हिन्दी साहित्य तथा नाथ सम्प्रदाय से जुड़े हुए साम्प्रदायिक संस्थान आदि सम्मिलित हैं। इनमें आगम शास्त्रों के प्रतिष्ठित विद्वान गोपीनाथ कविराज, हिन्दी साहित्य से जुड़े मिश्रबन्धु विनोद, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय आदि। अंग्रेजी भाषा में जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स, मोहन सिंह, कल्याणी मल्लिक, एस. घुर्रे, फर्कुहर आदि प्रमुख माने जाते हैं।

गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर से नाथ सिद्धों की रचनाओं पर अतिमहत्त्वपूर्ण कार्य महंत अवेद्यनाथ के काल में हुए। जिसके अन्तर्गत नाथ सिद्धों की रचनाओं एवं उनके साधना पद्धतियों पर भारत के विभिन्न विद्वानों एवं जानकारों को आमन्त्रित कर इन योगियों के ग्रन्थों का सम्पादन कर प्रकाशित किया गया। अल्प विद्वानों को छोड़कर अधिकांश ने नाथसिद्धों के ऐतिहासिकता, किवदन्तियों, सिद्ध योगियों के चमत्कारों, उनकी जीवनियों, भक्तिकालीन कवियों पर नाथ योगियों के प्रभावों आदि पर अधिक प्रकाश ड़ाला है। जिनमें हिन्दी साहित्य के विद्वानों की संख्या अधिक दिखायी पड़ती है। नाथ साहित्यों पर कार्य करने वाले बाद के अधिकतर विद्वानों ने उन योगियों की रचनाओं का उल्लेख तो किया था किन्तु कालांतर में इन साहित्यों पर वैज्ञानिक रीति से कार्य होने लगे।

आरम्भिक काल में इनके रचनाओं के हस्तलिपियों एवं उनकी आलोचनात्मक संस्करणों की उपलब्धता अल्प थी। किन्तु इन पर अनुसंधान कार्य होने से उन योगियों की रचनाएँ प्रकाश में आने लगी। नाथसाहित्यों की जानकारी सर्वप्रथम मिश्रबन्धुओं की रचना मिश्रबन्धुविनोद से ज्ञात होती है,

जिसमें गोरक्षनाथ की मानी जाने वाली नौ रचनाओं का उल्लेख है। उपरान्त पं. तारादत्त गौरेला के द्वारा गोरक्षनाथ की मानी जाने वाली सत्रह रचनाओं को प्रस्तुत किया गया जिसमें से कुछ रचनाएँ अन्य योगियों की भी शामिल थी।

इन साहित्यों पर वैज्ञानिक रीति से कार्य करने वालों में डॉ. प्रबोध चन्द्र बागची, डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स, डॉ.कल्याणी मल्लिक, हजारी प्रसाद द्विवेदी, गोपीनाथ कविराज, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय आदि विद्वानों ने इन रचनाओं पर विशेष रुप से कार्य किया है। अभी तक ज्ञात नाथ सिद्धों (योगियों) की रचनाओं पर महत्वपूर्ण कार्य कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावला, पुणे के द्वारा किया गया, जिन्होंने हठयोग की विभिन्न रचनाओं की हस्तलिपियों का संकलन कर उनके विषय वस्तुओं की समीक्षा कर आलोचनात्मक संस्करणों तथा नाथ साहित्यों में प्रयुक्त विभिन्न साधनात्मक, दार्शनिक आदि शब्दावलियों के लिए शब्दकोशों आदि का प्रकाशन किया।

अतः नाथ साहित्यों का अवलोकन नामक इस प्रथम अध्याय में विभिन्न ग्रन्थों से प्राप्त नाथ योगियों के रचनाओं में से हठयोग के साधनात्मक, दार्शनिक, ऐतिहासिक आदि विषयों का उल्लेख करने वाले कतिपय नाथ साहित्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिनमें कौलज्ञाननिर्णय, गोरक्षशतकम्, सिद्धसिद्धांतपद्धति, वसिष्ठसंहिता, हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, शिवसंहिता, गोरखबानी (सबदी) सम्मिलित हैं। उपरोक्त ग्रन्थों का कालक्रम ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक मानी गयी है। उपरोक्त साहित्यों से कालांतर में संकलित एवं विकसित हठयोग साधना के विकास को जाना जा सकेगा।

## 1.1 नाथ साहित्यों में नाथ शब्द :-

नाथ शब्द, नाथ सिद्धों (योगियों) के नामों के अन्त में प्राप्त होने वाली उपाधि है। जिनका विस्तार नाथ साहित्यों में प्राप्त होता है। इन साहित्यों को हठयौगिक साहित्य के नाम से भी जाना जाता है। इनमें नाथ शब्द की बहुलता है। जिनके शाब्दिक एवं दार्शनिक दोनों रूपों में अर्थ प्राप्त होते हैं। इन योगियों ने

गुरू से लेकर मुक्तिदाता तक को नाथ नामक उपाधि से संबोधित किया है। नाथ शब्द में 'ना' से तात्पर्य अनादि रूप अर्थात् ब्रह्म से है जो अजन्मा है और 'थ' से तात्पर्य अज्ञानता को दूर करने वाला है।[1] अतः नाथ वह है जो अजन्मा है और तीनों भुवनों के कारण स्वरूप है अर्थात् नाथ परम तत्त्व है। नाथ मुक्तिदाता है। इस सृष्टि का सृजन करने वाली शक्ति का भी मूलकारण नाथ ही है जिसे कई स्थानों पर शिव की संज्ञा दी गयी है। नाथ (शिव) को ही मुक्तिदाता कहा गया है। इस प्रकार नाथ साहित्यों में नाथ शब्द मुख्य रूप से गुरू व परम तत्त्व के रूप में स्वीकृत है। नाथ ही नाद और बिन्दु के मूल है।[2]

नाथ साहित्य, नाथ योगियों के द्वारा रचित साधनात्मक ग्रंथ हैं। जो हठयौगिक साधनाओं के माध्यम से साधनात्मक जीवन के दिशा निर्देशों को स्पष्ट करने, विभिन्न भ्रान्तियों को दूर कर अंततः मुक्ति की प्राप्ति के लिए रचा गया है। इन्होंने अपने साधना मार्ग को सिद्धमार्ग, योगमार्ग, अवधूत मार्ग, अवधूत सम्प्रदाय, जोगेश्वर मत[3] कौलमार्ग आदि नामों से पुकारा है। हिंदी शब्दकोश के अनुसार नाथ शब्द पुरूष लिंग के अंतर्गत आता है, जिसका अर्थ- प्रभु, स्वामी, पति, अधीश्वर, गोरखपंथी साधुओं को दी जाने वाली एक उपाधि है।[4] नाथ साहित्यों में नाथ शब्द की अनेक स्थानों पर पुनरावृत्ति प्राप्त होती है जिनके भिन्न-भिन्न प्रसंगों में इस शब्द के अर्थों को स्पष्ट किया गया हैं ये ग्रन्थ निम्नवत् हैं-

महासिद्ध गोरक्षनाथ ने सिद्धसिद्धांतपद्धति के प्रथम उपदेश के प्रथम श्लोक में ही आदिनाथ को शक्ति से संयुक्त इस संसार के गुरू के रूप में संबोधित कर नमस्कार किया है।[5] हठप्रदीपिका के चार उपदेशों मे विभिन्न स्थानों पर नाथ

---

[1] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 01.

[2] कुकरेती, विष्णुदत्त. नाथपंथ : गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में. गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर, सं. 2034. (1986ई.)
पृ. 24-25.

[3] वही, पृ. 28.

[4] दीक्षित, कृष्णकान्त. उपाध्याय, सूर्यनारायण. (संकलनकर्ता). अमर वृहत् शिक्षार्थी हिंदी-हिंदी शब्दकोश. नई दिल्ली : कमल प्रकाशन, 2012. पृ. 580.

[5] शास्त्री, द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.

शब्द की बहुलता है। इस ग्रन्थ के प्रथम उपदेश के प्रथम श्लोक में आदिनाथ को नाथ सिद्धों के परम उपास्य (परमतत्त्व) के रूप में व्यक्त किया गया है। जिन्होंने राजयोग की प्राप्ति के लिए हठयोग का उपदेश किया है एवम् दूसरे श्लोक में नाथ को श्रीगुरू[6] की उपाधि दी गयी है, जिन्होंने राजयोग की प्राप्ति के लिए हठविद्या को जगत में प्रचारित किया है। नाथ सिद्ध मत्स्येन्द्र के नाम के प्रसिद्ध आसन मत्स्येन्द्रासन का उपदेश करते हुए उनके नाम के अन्त में नाथ उपाधि जुड़े होने के कारण उन्हें मत्स्येन्द्रनाथ[7] कहा गया है।

महासिद्धों के नामों के अंत में भी नाथ शब्द की उपाधि दिखायी पड़ती है जैसे- नित्यनाथ, बिन्दुनाथ आदि। नाथ को श्रीगुरू, स्वामी आदि संबोधित करते हुए साक्षात ईश्वर कहा है। हठप्रदीपिका के चौंथे उपदेश के पैसठवें श्लोक में गोरक्ष के नाम के अन्त में नाथ उपाधि के जुड़ने से उन्हें गोरक्षनाथ कहा गया है, जो हठयोग में परम्पराओं से आ रही मुद्राओं के ज्ञाता हैं एवं उनके उपदेशक भी हैं। नाथ शब्द का प्रयोग क्रमशः इन्द्रिय, मन, प्राण, लय आदि पर शासन करने वाले के लिए किया गया है।[8] चौंथे उपदेश में ही गोरक्ष के द्वारा नादानुसंधान नामक उच्च ज्ञानानुभव को सामान्यजनों के लिए सरलतम रूप में प्रस्तुत करने वाले नाथ हैं। नाथ योगियों के आदिगुरू, आदिनाथ सभी प्रकार के लय समाधियों में श्रेष्ठ, नादानुसंधान नामक राजयोग के उपदेशक है। अव्यक्त आनंद की अनुभूति करने वाले, परमतत्त्व को जानने वाले श्रेष्ठ, अनुभव सिद्धपुरूष[9] को ही श्रीगुरूनाथ कहा गया है।

---

पृ. 01.

[6] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 02.

[7] वही, पृ. 13.

[8] वही, पृ.140.

[9] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 163.

हठप्रदीपिका की टीका हठप्रदीपिकाज्योत्स्नाकार ब्रह्मानंद के अनुसार आदिनाथ इश्वरों के ईश्वर, सर्वेश्वर शिव है एवं वैकल्पिक रुप में वही विष्णु है।[10]

गोरखबानी के अनुसार जो हँसते, खेलते, गाते, सांसारिक दायित्त्वों का निर्वहन करते हुए भी अपने चित्त को सजग रखते हैं, और काम-क्रोध से प्रभावित नहीं होते। अपने मन को दृढ़ रखते हुए, ब्रह्म में रमते हैं, वही नाथ हैं।[11] वास्तविक ज्ञान के स्वरूप को व्यक्त करने वाले नाथ उपदेशक हैं, जो शब्द, नाम, रूप आदि से परे है। बालपन एवं युवावस्था में जिन्होंने अपने इन्द्रियों पर नियंत्रण पा लिया है, जो आहार, स्वाद के लिए नहीं करते और हल्का भोजन करते हैं। उन सभी का शरीर नाथ योगियों के शरीर के समान ही है। नाथ भ्रमणशील योगियों एवं अवधूतों को साधना का सार समझाते हुए कह रहे हैं कि जो निरन्तर साधना में लगे हुए हैं एवं वैराग्य भाव से स्वयं को जानने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान में रमते हैं, उनका उद्देश्य अपने चित्त को दृढ़कर, काम और क्रोध पर विजय पाना है, अन्यथा सभी दिशाओं में भ्रमण करते हुए भी काम, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त न कर पाने वालों के लिए भ्रमण केवल व्यर्थ कार्य है।[12]

जो मन को, प्रकृति के विपरीत, स्वयं की ओर उन्मुख करता है। योगाग्नि से जिसने रक्त और मांसपेशियों को शुद्ध कर लिया है। इड़ा या पिंगला को जिसने संतुलित कर लिया है। ऐसे साधकों को नाथ अपने पास बुलाते हैं।[13] नाथ दीपक और बाती की उपमा देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार दीपक में तेल रहने से दीपक नहीं बुझता, उसी प्रकार प्राणायाम के माध्यम से आवागमन कर रहे, श्वास-प्रश्वास को नियन्त्रित करने पर ही जीवन रूपी दीपक को सुरक्षित रखा जा सकता है। नाथ शब्द के मर्म को जानना चाहिए, उसके तत्त्व को समझना चाहिए

---

[10] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. (संपादित). ब्रह्मानंदकृत, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2004. पृ. 03.

[11] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, षष्ठसंस्करण. 2004.पृ. 24.

[12] वही,पृ. 31.

[13] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी. षष्ठसंस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ. 81.

केवल नाम अथवा शब्द बोलने या जपने से उसे जाना नहीं जा सकता। वह इन्द्रियादि से परे स्वकीय अनुभव से ही जाना जा सकता है।

वह इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से समझा या समझाया नहीं जा सकता। अवधूत गोरखनाथ योग के उपदेशक हैं जो मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र और आदिनाथ के नाती के रुप में स्वयं को सम्बोधित किया है।[14] जिसने परम सत्य रूप नाथ को साक्षी मानकर अपने कुण्डलिनी जागरण के अनुभव को व्यक्त करते हुए, देह को दुर्गम दुर्ग की उपमा दी है और कहा है कि इसी शरीर के अंदर ही चौरासी लाख योनियों के संस्कारों को नष्ट कर, नव द्वारों को पार करते हुए ब्रह्मरन्ध्र के बंधन को कुण्डलिनी के ऊर्ध्वगमन से सिद्धियों को प्राप्त करते हुए आवागमन से मुक्त हो चुके हैं। जिसे कोई बिरला ही जान पाता है, वही इस संसार से पार हो सकता है। गोरक्ष ने इसे प्राप्त कर नाथ की उपाधि धारण की है।[15]

## 1.2 नाथ साहित्यों का कालक्रम :-

नाथ योगियों के साहित्यावलोकन से यह ज्ञात होता है कि इनमें में वर्णित हठयौगिक साधनाएँ प्राचीन काल से चली आ रही है। जिनके प्रमाण अथर्ववेद, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, शैव, शाक्त सम्प्रदायों, पतंजलि योग सूत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति, श्रीमार्कण्डेयमहापुराण आदि में अवलोकन किया जा सकता है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में आदिनाथ से योग ज्ञान प्राप्त करने वाले मानवों में प्रथम महासिद्ध, मत्स्येन्द्रनाथ प्रसिद्ध हैं। जिनकी प्रसिद्ध कृति कौलज्ञाननिर्णय नामक ग्रन्थ, हठयौगिक साधना के व्यवस्थित एवं मूल नाथ साहित्यों में से एक है। इनके प्रसिद्ध शिष्य गोरक्षनाथ और उनके शिष्य परम्परा में नाथ योगियों (सिद्धों) अथवा उनके अनुयायियों के द्वारा विभिन्न ग्रन्थों के रचनाओं का क्रम चलता रहा है। उपरोक्त वर्णित कतिपय हठयौगिक ग्रन्थों के कालों का वर्णन उन ग्रन्थों के उपलब्ध हस्तलिपियों में उल्लेखित एवं विषयवस्तुओं की समीक्षा कर प्रस्तुत किया जा रहा है। जो निम्नवत हैं-

---

[14] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी. षष्ठसंस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004.पृ.107.

[15] वही,135.

## 1.2.1 कौलज्ञाननिर्णय :-

मत्स्येन्द्रनाथ कृत इस ग्रन्थ में चार अन्य ग्रन्थों का संकलन है जिसमें कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीरतन्त्रम् ए, अकुलवीरतन्त्रम् बी, कुलानंदतन्त्रम् एवं ज्ञानकारिका सम्मिलित हैं। इसका सम्पादन आठ हस्तलिपियों के आधार पर इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रबोधचंद्र बागची के द्वारा किया गया । संपादक के अनुसार उपरोक्त ग्रन्थ का काल ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व स्वीकार किया गया।[16] डॉ. बागची के पूर्व भी बैंडले ने इस ग्रंथ के दो हस्तलिपियों का काल क्रमशः 9 वीं एवं 859 ई. का माना है।[17]

## 1.2.2 सिद्धसिद्धांतपद्धति :-

डॉ. कल्याणी मल्लिक द्वारा जोधपुर, तंजौर और हरिद्वार से प्राप्त इस ग्रंथ की हस्तलिपियों के अनुसार इसके रचनाकार गोरक्षनाथ माने जाते है। डॉ. मल्लिक ने इस ग्रंथ की रचना काल चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य स्वीकार किया है।[18] द्वारिका दास शास्त्री के द्वारा भी इस ग्रंथ की हस्तलिपी उपरोक्त स्थानों के अलावा जयपुर एवं पूना में भी उपलब्धता व्यक्त करते हुए गोरक्षनाथ का काल संत ज्ञानेश्वर एवं बंगाल के राजा गोपीचंद आदि के संदर्भों के आधार पर दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी मानते है।[19] हठप्रदीपिकाकार स्वात्माराम ने मत्स्येन्द्र और गोरक्ष को हठयोग के विशेषज्ञों के रूप में मान्यता दी है। हठप्रदीपिका का काल चौदहवीं शताब्दी मानी जाती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सिद्धसिद्धांत पद्धति के रचनाकार गोरक्षनाथ इनके पूर्व रहे है। योगियों के मध्य यह स्मृति में रही होगी एवं इसे कालांतर में यह ग्रंथ के रूप में आया होगा।

---

[16] बागची, प्रबोधचंद्र. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णयः . कलकत्ता : मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, 1934.भूमिका पृ.5

[17] वही, भूमिका, पृ.5.

[18] मल्लिक, कल्याणी. (संपादित). सिद्धसिद्धांतपद्धति ऐंड अदर वर्क्स आँव नाथ योगीज. पूना : पूना ओरियंटस बुक हाउस, 1954.पृ.32.

[19] शास्त्री, द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 10.

## 1.2.3 गोरक्षशतकम् :-

गोरक्षशतकम्, नाथ सिद्ध गोरक्षनाथ कृत माने जाने वाला हठयोग का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अभी तक प्राप्त इस ग्रंथ की पैंतीस हस्तलिपियों में से केवल सोलह में ही काल का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनमें से सबसे पुरानी हस्तलिपि, सरस्वती भवन, गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी, वाराणसी में रखी हुई है।[20] जिसका काल 1690 ई. उल्लेखित है। इस ग्रन्थ की उपरोक्त हस्तलिपियों की उपलब्धता इस बात की प्रमाणिकता प्रस्तुत करती है कि नाथ साहित्यों में इसका स्थान महत्वपूर्ण रहा है एवम् कालान्तर में इनकी टीकाएँ भी प्राप्त होती रही है, उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर विद्वानों का यह मत है कि यह ग्रन्थ 11वीं शताब्दी के पूर्व की रचना होगी।[21]

## 1.2.4 वसिष्ठ संहिता :-

वसिष्ठ संहिता एक महत्त्वपूर्ण हठयौगिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के रचनाकार वसिष्ठ की चर्चा प्रसिद्ध हठयौगिक ग्रन्थ, हठप्रदीपिका में स्वात्माराम ने भी किया है।[22] अर्थात् यह ग्रन्थ हठप्रदीपिका के रचनाकाल से पूर्व ही ठहरता है। साथ ही बाद के विभिन्न विद्वानों, मल्लिनाथ (1450 ईस्वी) कुमार संभव व रघुवंश की टीका में वसिष्ठ संहिता का उद्धरण प्राप्त होता है। विज्ञानभिक्षु, भावागणेश(1550 ईस्वी) पातंजल योग सूत्र के भाष्य में इस ग्रन्थ का उल्लेख करते है। नागोजीभट्ट (1700 ईस्वी) आदि ने भी इस ग्रन्थ का उद्धरण अपनी रचनाओं एवं टीकाओं मे प्रस्तुत किया है। उपरोक्त विवरणों के अनुसार वसिष्ठ संहिता ग्यारहवीं शताब्दी का ग्रंथ माना जाता है।[23]

---

[20] दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग. (संपादित). गोरक्षशतकम्. पुणे : कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति लोनावला, 2013.पृ.18.

[21] वही, पृ.24-25.

[22] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.10.

[23] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. (संपादित). वसिष्ठ संहिता. पुणे : कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2009. पृ. 22-27.

## 1.2.5 हठप्रदीपिका :-

हठयौगिक ग्रन्थों में हठप्रदीपिका बहु प्रसिद्ध है। अभी तक ज्ञात नाथ साहित्यों की हस्तलिपियों में इस ग्रंथ के एक सौ एक हस्तलिपियोंकी उपलब्धता इस बात का प्रमाण है कि इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि कितनी रही होगी। भारत में इसकी सबसे ज्यादा हस्तलिपियाँ, भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पुणे के द्वारा संग्रहित किया गया है, जिनकी संख्या अट्ठारह है। जिनमें सबसे पुरानी हस्तलिपि नेशनल लायब्रेरी, कलकत्ता में रखी हुई है। जिसमें इसका काल 1629 ई. उल्लेखित है परन्तु डॉ. पी. के. गोणे, डॉ. पी.सी. राय आदि विद्वानों की मान्यता के अनुसार हठप्रदीपिका चौदहवीं शताब्दी की मानी जाती है ।[24]

## 1.2.6 गोरखबानी :-

यह दोहों एवं मुक्त में लिखी गयी हठयौगिक साधनाओं का संग्रह ग्रंथ है। जिसका संपादन पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के द्वारा किया गया। इसमें नाथ योगियों की चालीस रचनाओं का संग्रह है। इस ग्रन्थ की भूमिका में संपादक ने प्राप्त हस्तलिपियों के काल का उल्लेख इसकी आठ हस्तलिपियों के आधार पर किया है। जिसमें सबसे पुरानी क्र. 'च' हस्तलिखित प्रति है जिसका काल 1715 ई.[25] एवं सबसे नवीन में क्र. 'ज' का स्थान है। इसका काल 1855 उल्लेखित है। इस प्रकार उपरोक्त हस्तलिपियों के कालों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गोरखबानी सत्रहवीं शताब्दी या उससे पूर्व की रचना है।

## 1.2.7 शिवसंहिता :-

शिवसंहिता एक महत्वपूर्ण हठयौगिक ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ पाँच पटलों में विभाजित है जो शिव एवं पार्वती के मध्य सम्वाद के रुप हठयौगिक साधनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ की 13 हस्तलिपियों एवं 3 प्रकाशित ग्रन्थों

---

[24] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 20-26.

[25] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी.षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ. 14-15.

की समीक्षा कर श्री मन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, पुणे के द्वारा आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया गया है । जिसमें अभी तक ज्ञात इस ग्रन्थ की सबसे पुरानी हस्तलिपि संस्कृत भवन पुस्तकालय, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में उपलब्ध है । जिसका काल 1749 ई. है । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शिवसंहिता 17वीं शताब्दी में अथवा उससे पूर्व लिखी गयी होगी ।[26]

## 1.2.8 घेरण्ड संहिता :-

घेरण्ड संहिता, योगी घेरण्ड और राजा चण्डकपालि के मध्य संवाद के रूप में प्रस्तुत है। जिसमें योगी ने राजा को तत्वज्ञान के लिए घटस्त योग की शिक्षा दी गयी है। इस ग्रंथ की उपलब्ध 14 हस्तलिपियों एवं 5 प्रकाशित ग्रंथों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि यह 17 वीं शताब्दी के अंतिम में अथवा 18 वीं शताब्दी के आरंभ की रचना होगी।[27]

## 1.2.9 हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना :-

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, हठयौगिक ग्रन्थ हठप्रदीपिका की एक अति महत्वपूर्ण टीका है। इसके रचनाकार योगी ब्रह्मानंद है। इस ग्रन्थ में ब्रह्मानंद के साधना मार्ग, साधना स्थल, इस ग्रन्थ की रचना में सहयोगी विद्वान के काल की समीक्षा करते हुए लेखक का काल 18 वीं शताब्दी स्वीकार किया गया है साथ ही उपरोक्त ग्रन्थ के ग्यारह हस्तलिपियों तथा दो प्रकाशित ग्रन्थों के कालों की समीक्षा करने पर यह ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ 18वीं शताब्दी में लिखी गयी होगी।[28]

---

[26] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. (संपादित) शिवसंहिता. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, भूमिका, 2004. पृ. 8-16.

[27] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम.एल. (संपादित). घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. भूमिका, पृ. 28.

[28] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. (संपादित). ब्रह्मानंद कृत, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2004. पृ.03-04.

## 1.3 विभिन्न ग्रन्थों में नाथ साहित्यों की चर्चा :-

नाथ सिद्धों (योगियों) की रचनाओं, विभिन्न यौगिक साधनाओं एवं उनके प्रसिद्धियों की चर्चा भारत के लगभग सभी भाषाओं में प्राप्त होती है। ये रमते योगी वर्तमान समय के बांग्लादेश, पेशावर, अफगानिस्तान, नेपाल, तिब्बत आदि स्थानों में भी बहुप्रसिद्ध हैं। इनकी साधनाओं ने सामान्य एवं विशेष सभी जनों को प्रभावित किया था अतः इनके साधानात्मक सिद्धांतों एवं दर्शनों के संग्रह कार्य कालांतर में विस्तृत होती चली गयी। इन योगियों के रचनाओं पर हिन्दी, बांग्ला, उड़िया, मराठी, कन्नड, आसामी, नेपाली, अंग्रेजी आदि के विद्वानों ने अपनी लेखनी चलायी इनमें हिन्दी, तंत्र, इतिहास, संस्कृत आदि क्षेत्रों के विद्वानों की संख्या अधिक है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में, आदिकाल के अंतर्गत नाथ योगियों (सिद्धों) के प्रभावों, साधनाओं एवं उनके रचनाओं का उल्लेख विशेष रूप से प्राप्त होता है। इनमें नाथ योगियों की रचनाओं के प्रथमतः उल्लेखकर्ता मिश्रबंधुओं को माना जाता है।[29] जिन्होंने नाथों में बहु प्रतिष्ठित मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरक्षनाथ की माने जाने वाली नौ रचनाओं का उल्लेख किया है। उन रचनाओं में- गोरखशतक, चतुरशीत्यासन, ज्ञानामृत, योगचिंतामणि, योगमहिमा, योगमार्तंड़, योगसिद्धांतपद्धति, विवेकमार्तड़, सिद्धसिद्धांतपद्धति सम्मिलित हैं।[30] बीसवीं शताब्दी में कलकत्ता विश्वविद्यालय, इतिहास विभाग के प्रोफेसर डॉ. प्रबोधचंद्र बागची को नेपाल यात्रा के दौरान सिद्धों एवं उनके रचनाओं की हस्तलिपियों के विषय में जानकारी प्राप्त हुई थी। अपने शोधकार्य के दौरान नेपाल व केम्ब्रिज विश्वविद्यालय आदि स्थानों से प्राप्त मत्स्येन्द्रनाथ की मानी जाने वाली कौलज्ञाननिर्णय की आठ हस्तलिपियों का वैज्ञानिक रीति से सम्पादन कर, इसे 1934 में प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ का नाम हस्तलिपि में महाकौलज्ञाननिर्णय प्राप्त होता है। कौलज्ञाननिर्णय मुख्य रूप से पाँच ग्रन्थों का संग्रह है। जिसके

---

[29] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.पृ.103.

[30] वही, पृ. 103.

अंतर्गत- कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीरतन्त्रम् (ए), अकुलवीरतन्त्रम् (बी), कुलानंदतंत्रम्, ज्ञानकारिका शामिलहैं।[31]

जार्ज, वेस्टन ब्रिग्स (जी. डब्ल्यू ब्रिग्स) प्रसिद्ध विद्वानों में से एक हैं। जिन्होंने 1940 के पूर्व भारत का भ्रमण कर नाथ योगियों के साधनाओं एवं उनकी रचनाओं पर प्रकाश ड़ाला था। इन्होंने अपनी रचना 'गोरखनाथ एण्ड कन्फटा योगीज' में नाथ साहित्यों की सूची दी है, जिनमें नाथ सिद्धों के सैतालीस ग्रंथों का नामोल्लेख है।[32] जो निम्नवत हैं- देवी भागवत, सप्त देव स्त्रोत, भगत सागर, सती सागर, दुर्गा पाठ, भैरव पाठ, रामबोध, गोरखबोध, ज्ञान सागर, ब्रह्मानंद सार गीता, हठयोग, हठसंहिता, चर्तुशीत्यासन, योगचिंतामणि, योगमंजरी, योगसंध्या, योगसंग्रह, गोरखसंहिता, गोरक्षकौमुदी, योगमार्तण्ड, विवेकमार्तण्डयोग, गोरक्षगीता, गोरक्षपंचय, शिवगीता, हठसंकेतचन्द्रिका, गोरक्षसहस्त्रनाम, शिवपुराण, निरंजनपुराण, विष्णुसहस्त्रनाम, विश्वानंदतंत्र, शिवरहस्यतंत्र, रूद्रयामलतंत्र, हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता, शिवसंहिता गोरक्षशतक, तनशतक, तनप्रकाश शतक, गोरक्षशतक टीका, गोरक्षशतक, गोरक्षकल्प गोरक्षपद्धति, योगसिद्धांत पद्धति, सिद्धांत पद्धति, सिद्धसिद्धांत पद्धति, योगमहिमा, तनमात्रा।

उपरोक्त नाथ साहित्यों का उल्लेख करते हुए ब्रिग्स ने गोरक्षशतक को महत्वपूर्ण माना है साथ ही ज्ञानशतक व ज्ञानप्रकाश शतक को गोरक्षशतक का ही प्रतिलिपि माना है एवम् गोरक्षकल्प, गोरक्षपद्धति का ही नामान्तर मानते हुए गोरक्षशतक टीका से लेकर सिद्धांत पद्धति तक के ग्रंथ को गोरक्षशतक के श्लोकों का ही विस्तृत रूप कहा है। गोरक्षसहस्त्रनाम, विष्णुसहस्त्रनाम का ही रूपांतरण है। गोरखसंहिता को गोरक्षशास्त्र व योगशास्त्र बतलाते हुए गोरक्षशतक का ही नामान्तर माना है।

---

[31] बागची, प्रबोधचंद. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.पृ.3-5.

[32] डब्लू. जी, ब्रिग्स. गोरखनाथ एण्ड द कन्फटा योगिज. कलकत्ता : वाई.एम.सी.ए. पब्लिशिंग हाऊस, 1938. पृ.251-257.

पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिन्दी साहित्य के बड़े विद्वानों में से एक माने जाते हैं। जिन्होंने हिन्दी में नाथ योगियों के रचनाओं पर वैज्ञानिक रीति से अन्वेषण कर विशेष रूप से गोरखनाथ एवं अन्य नाथ सिद्धों की कही जाने वाली रचनाओं का संकलन कर गोरखबानी का संपादन किया जो चालीस छोटी-बड़ी रचनाओं का संग्रह है।[33] भारत के विभिन्न ग्रन्थालयों व संग्रहालयों से प्राप्त उन रचनाओं की आठ हस्तलिपियों की विस्तृत चर्चा, अपने ग्रंथ गोरखबानी की भूमिका में प्रस्तुत करते हुए उन योगियों की रचनाओं पर हिन्दी में टीका भी प्रस्तुत किया। डॉ. बड़थ्वाल ने हिंदी साहित्य में नाथ साहित्य पर सर्वप्रथम व्याख्यान 1930 में साहित्य परिषद्, नागरिप्रचारिणी सभा से किया था एवं व्यवस्थित रूप से इन साहित्यों को गोरखबानी के रूप में 1942 में प्रकाशित किया। इसमें गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) की हठयौगिक साधना, अनुभतियों एवं नाथयोगियों को दिए गए साधनात्मक निर्देशों एवं नाथ सिद्धों के दर्शन आदि का विस्तृत उल्लेख है।

उपरोक्त ग्रन्थ में चालीस रचनाओं के नाम निम्नवत हैं- सबदी, पद सिष्यादरसन, प्राण संकली, नरवैबोध, आत्मबोध, अभैमात्राजोग, पंद्रह तिथि, सप्तवार मछींद्रगोरखबोध, रोमावली, ग्यांनतिलक, ग्यांनचौतीसा, पंचमात्रा, गोरख गणेशगोष्ठी, गोरख दत्त गोष्ठी (ग्यानदीप बोध), महादेव गोरख गुष्टि, सिष्टपुरान, दयाबोध, जाती भौंरावली (छंद गोरख) नवग्रह, नवरात्र, अष्ट पारछया, रहरास, ग्यान माला, आत्मबोध(2), व्रत, निरंजन पुराण, गोरख वचन, इंद्री देवता, मूल गर्भावली, खाणी बाणी, गोरख सत, अष्ट मुद्रा, चौबीस सिधि, षडक्षरी पंच अग्नि, अष्टचक्र, अवलि सिलूक, काफिर बोध।

गोरखबानी की सभी रचनाओं में 'सबदी' दो सौ पचहत्तर मुक्तक दोहों का संग्रह है जो सबसे बड़ी एवं प्रमुख मानी गयी है। संपादक ने उपरोक्त चालीस रचनाओं में से आरंभ के चौदह रचनाओं को गोरक्षनाथ कृत माना है, क्योंकि इनमें गोरक्षनाथ का नाम विशेष रूप से प्राप्त होता है, जो नाथ अनुयायियों,

[33] बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त. (सम्पादित). गोरखबानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004.पृ.14-15.

योगियों एवं अवधूतों के लिए अपने हठयौगिक अनुभवों एवं साधकों के लिए साधना मार्ग में आने वाले अवरोधों के प्रति सचेत करते हुए उपदेश कर रहे है, साथ ही गोरख दत्त गोष्ठी से लेकर जाती भौंरावली तक की रचनाओं में सेवादास, निरंजनी, नवग्रह में कवि मेघ व रचना अवलि सिलूक व काफिर बोध में रतननाथ के नाम प्राप्त होते है। जो बाद के नाथयोगी अथवा अनुयायी जान पड़ते हैं।[34]

नाथसिद्धों (योगियों) में योगज्ञान गुरू-शिष्य परम्परा (श्रुति परम्परा) से प्रवाहमान रही है अतः इन बानियों के सम्बन्ध में दो तथ्य महत्वपूर्ण हैं, कि नाथ गुरूओं के उपदेशों के प्रति उनके शिष्यों में प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास की भावना होती है, यही भावना उस ज्ञान परम्परा को नष्ट होने से बचाती है । किन्तु लम्बे समय से चली आ रही ज्ञान परम्परा जो स्मृति में संग्रहीत होती है, उनमें समयानुकूल कुछ परिवर्तन की भी सम्भावना प्रबल हो जाती है। जिसके कारण उन परम्परागत उपदेशों में कालांतर में स्वानुभव भी जुड़ने लगते हैं साथ ही साथ समय के प्रवाह में कुछ उपदेशों का लोप भी होने लगता है।

डॉ. बड़थ्वाल के द्वारा गोरखबानी के संपादन के दौरान अज्ञात रही ज्ञानचौतीसा नामक हस्तलिपि को शामिल कर संपादन एवं टीका कर गोरखबाणी का प्रकाशन, गोरखनाथ मन्दिर प्रकाशन, गोरखपुर से राम लाल श्रीवास्तव द्वारा सम्पन्न किया गया।[35]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी रचना 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आदिकाल के अन्तर्गत नाथ साहित्यों के नामों का उल्लेख किया है। जिनमें गोरक्षनाथ एवं नाथ सम्प्रदाय के अन्य योगियों की रचनाएँ शामिल हैं। लेखक ने गोरक्षनाथ की मानी जाने वाली संस्कृत ग्रंथों में, सिद्धसिद्धांत पद्धति, विवेक

---

[34] बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त. (सम्पादित). गोरखबानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ.16-19.

[35] श्रीवास्तव, राम लाल. (संपादक एवं टीकाकार). गोरखबाणी. तृतीय संस्करण. गोरखपुर : महायोगी गुरू गोरक्षनाथ शोध संस्थान, श्री गोरखनाथ मन्दिर, (उ.प्र.).वि.सं. 2071. भूमिका, पृ.1-4.

मार्तंड, शक्ति संगम तंत्र, निरंजन पुराण, वैराट पुराण का नामोल्लेख करते हुए[36], अन्य नाथ योगियों की रचनाओं में, गोरख-गणेश-गोष्ठी, महादेव-गोरख-संवाद, गोरखनाथ जी की सत्रह कला, गोरख बोध, दत्त गोरख संवाद, योगेश्वरी साखी, नरवइ बोध, विराट पुराण, गोरखसार, गोरखनाथ की वाणी शामिल हैं। लेखक के अनुसार गोरक्षनाथ व अन्य नाथ पंथी योगियों की रचनाओं में खड़ी बोली, सधुक्कड़ी, कुछ राजस्थानी आदि मिली-जुली भाषाओं का प्रयोग अधिक प्राप्त होता है। देशी भाषाओं में लिखी गयी योगियों की रचनाएँ गद्य व पद्य दोनों रूपों में प्राप्त होती हैं।

गोपीनाथ कविराज तन्त्र एवं हठयोग साधना के मर्मज्ञ एवं प्रसिद्ध विद्वान तथा जानकार माने जाते हैं । इन्होंने नाथ योगियों के साधनाओं, कुण्डलिनी, चक्र एवं उन साधनाओं का अन्य सम्प्रदायों पर प्रभाव आदि पर महत्वपूर्ण लेखन कार्य किया है। उनके द्वारा नाथ सिद्धों की साधनाओं के संग्रह ग्रन्थ के रूप में गोरक्षसिद्धांत संग्रह व सिद्धसिद्धांत संग्रह का संपादन किया गया है।[37]

हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य के प्रख्यात विद्वान के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं, जो नाथयोगियों की परम्परा, साधना, सम्प्रदाय व साहित्यों की विशेष जानकारी रखते थे। लेखक के द्वारा नाथ सिद्धों (योगियों) पर 'नाथ सम्प्रदाय'और 'नाथसिद्धों की बानियाँ' नामक दो प्रसिद्ध किताबें लिखी गयी। 'नाथ सम्प्रदाय' में गोरखनाथ एवं अन्य नाथ योगियों के विभिन्न रचनाओं की सूची दी हुई है। जहाँ नाथ साहित्यों की संख्या अट्ठाईस हैं।[38]

द्विवेदी जी के अनुसार उपरोक्त सभी रचनाएँ गोरखनाथ की नहीं जान पड़ती। सम्भवतः बाद के नाथपंथियों द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम भी इस सूची में सम्मिलित कर ली गयी है। इन ग्रन्थों में हठयोग की साधना, सिद्धांत और गोरखनाथ का मत संकलित है। अट्ठाईस ग्रन्थों की सूची निम्न है- अमनस्क,

---

[36] शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद : प्रयाग पुस्तक सदन, 2009. पृ.9-11.

[37] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ.44

[38] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1910. पृ. 98-99.

अमरौघशासनम्, अवधूतगीता, गोरक्षकल्प, गोरक्षकौमुदी, गोरक्षगीता, गोरक्षचिकित्सा, गोरक्षपञ्चय, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतक, गोरक्षशास्त्र, गोरक्षसंहिता चतुरशीत्यासन, ज्ञानप्रकाशशतक, ज्ञानशतक, ज्ञानामृतयोग, नाड़ी ज्ञान प्रदीपिका, महार्थमंजरी, योगचिन्तामणि, योगमार्तण्ड, योगबीज, योगशास्त्र, योग सिद्धांतपद्धति, विवेकमार्तण्ड, श्रीनाथसूत्र, सिद्धसिद्धांत पद्धति, हठयोग, हठसंहिता।

उपरोक्त ग्रंथों में से लेखक ने अमनस्क, अमरौघशासनम, गोरक्षपद्धति, गोरक्षसंहिता, सिद्धसिद्धांत पद्धति को गोरक्षकृत माना है। नाथ सिद्धों की रचनाओं का संग्रह ग्रंथ के रूप में संपादित 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' एक महत्वपूर्ण रचना है। जिसमें लेखक ने अपने अनुसंधान कार्य के दौरान, प्राप्त नाथसिद्धों की रचनाओं के विभिन्न हस्तलिपियों की प्राप्ति में सहायक, विद्वानों एवं ग्रंथालयों की चर्चा की है। जिनमें, प्राणसंकलीपिंडी नामक चौरंगीनाथ की रचना जैन भण्डार से, कुछ चमेलीनाथ काद्रिमठाधीश्वर से और दरबार लायब्रेरी, जोधपुर से प्राप्त हुई थी।

इस ग्रन्थ में वर्णित अधिकांश सिद्धों की रचनाओं की हस्तलिपियाँ, नागरिप्रचारिणी सभा, काशी, आर्य पुस्तकालय में उपलब्ध है। इनके तीन हस्तलिपियों- क, ख, ग में क्रमशः बारह, पच्चीस, व पैतालीस नाथसिद्धों की रचनाओं का उल्लेख है। नाथ योगियों की विभिन्न रचनाओं की हस्तलिपियों के विषय वस्तुओं एवं उनके रचना काल की समीक्षा कर नाथ सिद्धों की बानियाँ, में चौबीस सिद्धों की रचनाओं को प्रकाशित किया गया है।[39] इनमें- अजयपाल जी, काणेरी, गरीबजी, गोपीचंदजी, घोडाचोली, चरपटनाथ, चौरंगीनाथ, चौणकनाथ (चुणकर नाथ), जलन्धीपाव, दत्त (दत्तात्रेय), देवलजी, धूंधलीमल जी, नागाअर्जन जी, पार्वती जी, पृथ्वीनाथ जी, बालनाथ जी, बालगुन्दाई जी, भरथरी, मच्छेन्द्रनाथ जी, महादेव जी, रामचन्द्र जी, लशमण जी, सतर्वती जी, सुकुलहंस जी का नाम शामिल हैं।[40]

---

[39] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथसिद्धों की बानियाँ. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, संवत्, 2014. पृ.1-4.

[40] वही, पृ.16-21.

डॉ. कल्याणी मल्लिक द्वारा सम्पादित, सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर्स वर्क आँफ नाथ योगिज को, तन्त्र एवं हठयौगिक साधनाओं का समन्वय ग्रन्थ के रूप में देखा जा सकता है। इनमें नाथ योंगियों की रचनाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

उपरोक्त ग्रन्थ का संपादन लेखिका के द्वारा भारत के विभिन्न स्थानों, वाराणसी, तंजौर, हरिद्वार के ग्रन्थालयों से प्राप्त नाथ योगियों के रचनाओं की हस्तलिपियों के आधार पर किया गया, उपरान्त अंग्रेजी में प्रकाशित किया गया जिसमें- मीननाथ कृत योगविषय, गोरखनाथ कृत सिद्धसिद्धांत पद्धति, अमरौघप्रबोध, योगमार्तण्ड, गोरक्ष उपनिषद्, मत्स्येन्द्र जी का पद, भरथरी जी की सबदी, चर्पटी जी की सबदी, गोपीचंद जी की सबदी, जालंधरी पाव जी की सबदी शामिल हैं।[41]

द्वारिका दास शास्त्री के द्वारा योगी गोरक्षनाथ कृत, 'सिद्धसिद्धांत पद्धति' नामक ग्रन्थ का संपादन एवं अनुवाद कर प्रथमतः हिंदी में प्रकाशित किया गया। लेखक के द्वारा 'सिद्धसिद्धांत पद्धति'की हस्तलिपियाँ भारत के हरिद्वार, जयपुर, जोधपुर, तन्जाउर, पूना आदि ग्रंथालयों से प्राप्त किये गये थे।[42]

'गोरखनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में', एक महत्त्वपर्ण रचना के रचनाकार, हिंदी विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस के पूर्व अध्यक्ष नागेन्द्रनाथ उपाध्याय हैं। जिन्होंने नाथ साहित्यों की चर्चा करने वाले लेखकों, कवियों व विद्वानों आदि के द्वारा संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी आदि में प्रस्तुत नाथ साहित्यों की विस्तार से उल्लेख किया है। लेखक ने इन विभिन्न रचनाओं एवं उनके विषय वस्तुओं की समीक्षा कर सिद्धसिद्धांतपद्धति, गोरक्षशतक (गोरक्षशतकम्) अमरौघशासनम्, महार्थमंजरी को नाथ साहित्यों में महत्वपूर्ण

[41] मल्लिक, कल्याणी. सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर्स वर्क आँफ नाथ योगीज्. पूना : पूना ओरियन्टल बुक हाऊस 1954. भूमिका पृ. 14-25.

[42] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक व अनुवादक) सिद्धसिद्धांत पद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन. 2014.पृ.3.

माना है।[43] कालान्तर में रचित विभिन्न नाथ साहित्यों पर उपरोक्त ग्रन्थों के गहरे प्रभाव दिखायी पड़ते हैं।

विष्णुदत्त कुकरेती ने नाथ साहित्यों पर किये गए शोधकार्य के उपरांत प्रकाशित 'नाथपंथ: गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में' के अंतर्गत मत्स्येन्द्र तथा गोरक्षनाथ आदि नाथ सिद्धों की साधनाओं, साहित्यों एवं गढ़वाल क्षेत्र में उनके प्रभावों की समीक्षा की है। पर्वतीय राज्य गढ़वाल एकान्त एवं शान्त क्षेत्र होने के कारण, नाथ योगियों (सिद्धों) और उनके अनुयायिओं के लिए अनुकूल साधना क्षेत्र रहा है। रचनाकार के अनुसार इन क्षेत्रों में उपलब्ध नाथ साहित्यों के विषय में पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने 'उत्तराखण्ड के मंत्रों में गोरखनाथ' नामक निबंध के अंतर्गत रखवाली, घटस्थापना, छिद्रवाली, नरसिंग्वाली आदि रचनाओं की ओर अन्य विद्वानों का ध्यानाकर्षण किया था। लेखक ने गढ़वाल क्षेत्र से प्राप्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित नाथग्रंथों की सूची दी हैं, जिसमें नाथ सिद्धों की रचनाओं और साधनाओं को सैद्धांतिक व व्यवहारिक दो पक्षों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।[44]

(अ.) सैद्धांतिक कार्यों के अंतर्गत- नाथ योगियों के प्रकाशित व अप्रकाशित ग्रंथों को रखा गया है। प्रकाशित ग्रंथों में ढ़ोल सागर, जोगेश्वरी ढ़ोल-सागर, दमो सागर, बेरी विणास (विनाश), उशेल शामिल हैं। अप्रकाशित ग्रंथों के अंतर्गत लेखक के शोधकार्य के दौरान संवत् 2043 तक अप्रकाशित ग्रंथों में- घटथापना, नादबुंद, मंत्रवाली, चोड़िया वीर मासाण, सौण, छिद्रवाली, इन्द्रजाल, जंत्रविधि, कामरूप जाप, नरसिंग्वाली, महाविद्या, वीरवाली, नेत्रपाली मंत्र, रखवाली, नरसिंह की चैकी, डथहणवंत, चुडेल का मंत्र, भैरपावली, मैमंदा रखवाली, दक्षिण दिसा, चूड़ामंत्र, आपरक्षा, काली की रखवाली, अष्टबली, कूर्माष्टक, कलुवा की रखवाली, डैण की रखवाली, फोड़ी बयाली, ज्वर तोड़ी रखवाली, मंत्रगोरील काई, पंचमुखी हनुमान, भैरवाष्टक, सेलीविधि, सेलीबयाली, हनुमानी उशेल, बाघ

---

[43] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 106.

[44] कुकरेती, विष्णुदत्त. नाथपंथ : गढ़ववाल के परिप्रेक्ष्य में. प्रथम संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ मंदिर. 1986. पृ. 245-48.

माडण्व मंत्र, दड़िया मंत्र, गणित प्रकाश, सर्वजादू उधेल, संक्राचार्ज विधि, शेत्रिपालमंत्र, लोचड़ा का मंत्र, सेट्वाली, दरियाऊ, अंछरवाली, उशेल, ओल्याचार, भउनावीर, गुरूपादुका, गंसाई पादुका, श्रीनाथ का सुकलेश, मंत्र एवं जंत्र, मोचावली, नाथ निघटु के नाम सम्मिलित हैं। (ब.) व्यावहारिक पक्षों के अंतर्गत नाथ सिद्धों (योगियों) के साधनाओं, विचारों, सिद्धियों आदि को गढ़वाल की जनमानस ने जागर गीतों में जो क्षेत्र विशेष में लोकगीतों, लोक कथाओं जनश्रुतियों एवं अन्य रूपों में सुरक्षित रखा है।

दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग, कैवल्यधाम लोनावला, पुणे एवं कैवल्यधाम एस.एम.वाय.एम.समिति, पुणे के द्वारा नाथ योगियों की हठयौगिक ग्रन्थों के भारत एवं भारत के बाहर विभिन्न ग्रन्थालयों एवं संग्रहालयों से प्राप्त हस्तलिपियों का संकलन कर उनके विषय वस्तुओं की वैज्ञानिक रीति से समीक्षा कर उनका सम्पादन व प्रकाशन किया गया। इनके द्वारा दिए गए हठयौगिक ग्रन्थों की सूची में अट्ठाइस ग्रंथों के नाम प्राप्त होते हैं, जो निम्नवत हैं[45] - अमनस्क योग, अमरौघप्रबोध, अमरौघ शासन, बिन्दूयोग, वृहदयोग सोपान, बृहदयोगीयाज्ञवलक्य स्मृति, घेरण्ड संहिता, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतकम , हठप्रदीपिका, हठरत्नावली, हठयोगसंहिता, हठप्रदीपिका ज्योत्स्ना, षट्चक्र निरूपण, षट्कर्म संग्रह, सिद्धसिद्धांतपद्धति, शिवसंहिता, शिवस्वरोदय, वसिष्ठसंहिता, योगबीज, योगमार्ग प्रकाशिका, योगमार्तण्ड, योग रसायन, योगसार संग्रह, योगशास्त्र, योग तारावली, योगविषय, योगयाज्ञवल्क्य।

उपरोक्त अट्ठाईस हठयौगिक ग्रंथों के साथ कैवल्यधाम एस.एम.वाय.एम.समिति, लोनावला ने बीस योगोपनिषदों की सूची दी है, जिसका क्रम निम्नवत हैं[46] अद्वयतारकोपनिषद, अमृतनादोपनिषद्, अमृतबिन्दोपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, तेजोबिन्दोपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, ध्यानबिन्दोपनिषद्, नादबिन्दोपनिषद्, पाशुपतब्राह्मणोपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्,मण्डलब्राह्मणोपनिषद्,महावाक्योपनिषद्,योगकुण्डलयोपनिद्,

[45] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बी.आर. सहाय, जी.एस.बोधे, आर.के. (संपादित). योगा कोनकोडेन्स. भाग प्रथम. पुणे : कैवल्यधामएस.एम.वाय.एम.समिति, लोनावला, 2001. पृ. 6-7.

[46] वही,पृ.8.

योगचूड़ामणियोपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, वाराहोपनिषद्, शाडिल्योपनिषद्, हंसोपनिषद्।

उपरोक्त योगोपनिषदों में हठयौगिक ग्रन्थों के समान ही, आसन, प्राणायाम, यौगिक आहार, मुद्रा, नादानुसंधान आदि का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। साहित्यिक एवं दार्शनिक प्रमाणों के आधार पर हठयौगिक ग्रन्थों का योगोपनिषदों पर प्रभाव रहा हैं।[47]

## 1.4 कतिपय नाथ साहित्यों का परिचय :-

कतिपय नाथ साहित्य से तात्पर्य चयनित हठयौगिक ग्रंथों से हैं, जिनमें मत्स्येन्द्रनाथ कृत- कौलज्ञाननिर्णय, गोरक्षनाथ कृत- सिद्धसिद्धांतपद्धति, गोरक्षशतकम्, गोरखबानी (सबदी), वसिष्ठ कृत- वसिष्ठसंहिता, स्वात्माराम कृत- हठप्रदीपिका, घेरण्ड मुनिकृत- घेरण्ड संहिता, योगी ब्रह्मानंद कृत- हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना तथा शिवसंहिता (लेखक अज्ञात) आदि शामिल हैं।

नाथ साहित्यों की चर्चा करते हुए विभिन्न विद्वानों एवं जानकारों ने लम्बी सूची प्रस्तुत की है। उन सभी को शोध-प्रबंध के लिए शामिल करना संभव नहीं जान पड़ता। इन सूचियों में भी कई ग्रंथ नामांतर भेद से एक ही हैं, जैसे जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स ने गोरक्षशतक के कई नामों में ज्ञानशतक, तनप्रकाश आदि नाम गिनाये हैं। अतः कतिपय नाथ साहित्यों को चयन करने के पीछे उनमें वर्णित हठयोग के अंगों आसन, षट्कर्म, प्राणायाम, मुद्रा, कुण्डलिनी, नादानुसंधान आदि विषय वस्तुओं को प्रस्तुत करने वाले ग्रंथ, उपलब्ध हस्तलिपियों को आधार लेकर संपादित हठयौगिक ग्रंथ, नाथ सिद्धों में प्रथम लौकिक सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ कृत ग्रंथ, नाथ योगियों के परम्पराओं तथा उनकी साधनाओं का विवरण प्रस्तुत करने वाले, नाथ सिद्धों के सिद्धांत एवं दर्शन का उल्लेख, नाथ साहित्यों की सूची में से प्रसिद्ध साहित्य, प्रथमतः हठयोग में प्रसिद्ध शोधन क्रियाओं (षट्कर्म) का उल्लेख करने वाले, लोक भाषाओं में रचित बहुप्रसिद्ध नाथयोगियों के साधनाओं, उपदेश

[47] दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग. (सम्पादक मण्डल). वसिष्ठ संहिता. (योगकाण्ड). पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2009.भूमिका, पृ. 24.

एवं  दर्शन आदि सामग्रियों के आधार पर उपरोक्त कतिपय साहित्यों का चयन किया गया।

### 1.4.1 कौलज्ञाननिर्णय :-

कौलज्ञाननिर्णय हठयोग का एक अतिमहत्वपपूर्ण ग्रन्थ है। इसके रचनाकार प्रसिद्ध नाथ महासिद्ध मत्स्येन्द्र माने जाते हैं। इस ग्रन्थ की कुछ हस्तलिपियों का अवलोकन कर सर्वप्रथम हरप्रसाद शास्त्री ने नाथ योग साधनाओं के प्रति विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया था। कालान्तर में डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची के द्वारा उपरोक्त ग्रन्थ के आठ हस्तलिपियों का संकलन एवं संपादन कर कौलज्ञाननिर्णय के नाम से प्रकाशित किया गया। डॉ. बागची के अनुसार इस ग्रन्थ का नाम हस्तलिपि में महाकौलज्ञाननिर्णय प्राप्त होता है। यह देवी और भैरव के मध्य हुए तन्त्र एवं हठयोग के साधनाओं (कुल) से सर्व अवस्थाओं से मुक्त (अकुल) में प्रतिष्ठित होने का उपदेश है। जिसमें देवी के प्रश्न एवं भैरव के द्वारा दिए गये उत्तर, संवाद के रूप में प्रस्तुत है। देवी के द्वारा सृष्टि, प्राण, काल, खेचरी, नाड़ी, चक्र, ध्यान, सहजानंद, द्वैताद्वैत विवर्जित आदि प्रश्नों का उत्तर भैरव द्वारा दिया गया है। यह ग्रंथ नाथ सिद्धों के परम्परा, इतिहास, साधना, दर्शन एवं महत्वपूर्ण सभी हठयौगिक ग्रन्थों के आधार  के रूप स्वीकृत है।

#### 1.4.1.1 कौलज्ञाननिर्णय :-

यह ग्रन्थ चौबीस पटलों में विभक्त है। जो देवी और भैरव के मध्य क्रमशः जिज्ञासा और उत्तर के रूप में प्रस्तुत है। इस ग्रंथ के प्रथम एवं द्वितीय पटल में देवी के प्रश्नों का भैरव द्वारा दिये गए उत्तर में कहा गया है कि सृष्टि, शिव-शक्ति के अंतः संबंधों का परिणाम है, जिसमें शिव ज्ञान एवं शक्ति क्रिया के रूप है। तीसरे पटल में कुल की चर्चा उनके स्थान, देहस्थ चक्रों, उनके दल संख्याओं चार, आठ, बारह, सोलह, चौसठ, शतक एवं सहस्त्र आदि उनके वर्णों, मानस पूजा (अन्तःपूजा) आदि की चर्चा है। पटल संख्या चार, पाँच एवं छः में भैरव ने अन्तःशक्ति को धारण करने के साधन विधियों के रूप में मन्त्र, नाद-बिन्दु एवं मुद्राओं का उपदेश किया है। साधना में आने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु

मेरूदण्ड में सूक्ष्म रूप में स्थित, स्थान विशेष पर उनके कमलदलों, वर्णों के साथ ध्यान का निर्देश है। जीव एवं शिव के लक्षणों का देवी को उपदेश करते हुए निरालम्ब, निर्विकार, सदैव रहने वाला आत्म तत्त्व को ही शिव की संज्ञा दी है, वही जब चित्त, मन, इन्द्रियों के वश में कार्य करने लगता है, तब जीव कहलाता है। मृत्युंजय, के लिए खेचरी मुद्रा का उपदेश किया है। जिसमें जीभ को तालुमूल में स्थित गुहर के अन्दर ले जाकर स्थापित कर देने से योगी त्रिकालदर्शी, निरोगी, सिद्धिवान् एवं मृत्यु विजयी हो जाता है। यह अभ्यास बिन्दु का ऊर्ध्वगमन कराता है। कुल (जागतिक) से अकुल (शिव) स्वरूप होने के लिए चक्र जागरण की आवश्यकता का निर्देश किया है। चक्रों के जागरण से परकाया प्रवेश, अतीन्द्रिय क्षमताओं की प्राप्ति आदि सिद्धियों का उल्लेख है। नौवें, दसवें एवं ग्यारहवें पटल में विभिन्न पुरातन परम्परा के सिद्धों के साथ सिद्ध योगिनियों के नामों का उल्लेख मिलता है, जो मत्स्येन्द्रनाथ से पूर्व त्रेता, द्वापर आदि कालों से चली आ रही परम्परा के पुरातन सिद्ध रहे हैं।

विभिन्न प्रकार के बीज मन्त्रों के द्वारा सूक्ष्म शरीर के ऊर्जा केन्द्रों नाभि के अधः, नाभि, हृदय, वक्ष, कण्ठ, भ्रूमध्य, ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करने से प्राप्त सिद्धियों एवं उससे अमरता की प्राप्ति। अद्वैतावस्था की प्राप्ति के लिए भेदाभेद से परे गुरू के निर्देशों का पालन करते हुए आहार ग्रहण करने एवं कौलमार्गी साधक को साधना में जगत के सामान्य राजा, शिशु,पागल, जानवर, गृहस्थ आदि की भाँति व्यवहार कर उन व्यवहारों से मुक्त रहने का निर्देश किया गया है। पटल संख्या तेरह, चौदह एवं पन्द्रह में सामान्य रूप से आवागमन कर रहे प्राण को नाभि, हृदय और कण्ठ में महसूस करने एवं नासिका में देखने का निर्देश है। इस अभ्यास को भैरव द्वारा हंसमन्त्र की संज्ञा दी गयी है। यही मोक्ष प्रदायक है। इस मार्ग को कौलसम्प्रदाय, योगिनीकौल, कौलसाधना आदि नामान्तरों से भी पुकारा गया है। इस नश्वर देह को वज्र के समान अक्षुण्ण बनाने के लिए शक्ति के उर्ध्वगमन एवं सहज चक्र के जागरण की अनिवार्यता का उपेदश है।

सोलहवें पटल में पुरातन कालीन तन्त्र साधना के लिए प्रख्यात प्रसिद्ध पीठों में श्रीशैल, महेन्द्र एवं कामाख्या का नामोल्लेख है। मत्स्येन्द्र ने स्वयं अपने

अवतरण का उद्देश्य, कौलशास्त्र का उद्धार करना स्वीकार करते हुए स्वयं को मत्स्यघन कहकर पुकारा है। सत्रहवें पटल में चित्त की दृढ़ता की प्राप्ति के लिए सोऽहम् साधना करने का निर्देश है। इस साधना में नासिका से प्राणों का बर्हिगमन संसार एवं अन्तः प्रवेश होना मुक्ति का प्रतीक माना गया है। इस साधना से योगी शिव-शक्ति को जान लेता है, जिससे सहज की प्राप्ति होती है। सहज, संसार एवं निर्वाण से परे है, जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। अठारहवें पटल में गुरू के द्वारा शिष्य को दिया जाने वाला अभिषेक, गुरू आदेश पर साधना के लिए योगिनी का चयन आदि का उल्लेख है। उन्नीसवें पटल में योगी के मुक्ति के लिए शंख, चक्र, सुगन्धित पुष्प धारण किये हुए सोलह वर्षीय रक्तवर्णी युवती का ध्यान का उपदेश है। बीसवें पटल में कुण्डलिनी के जागरण एवं विभिन्न प्रकार के नादों, शक्ति के ऊर्ध्वगमन से प्राप्त सिद्धि के लक्षणों आदि की चर्चा है।

उपरोक्त लक्षण वाले योगी को वीरसाधक की उपाधि दी गयी है। कुण्डलिनी को विद्युतलता आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है। इक्कीसवें पटल में देवी ने भैरव को भिन्न-भिन्न प्रसंगों में नाथ कहकर संबोधित किया है। बाईसवें पटल में भैरव के द्वारा देवी को कौलशास्त्र की उत्पत्ति के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहा है कि चन्द्रद्विप में विशाल मत्स्य के पेट से इस कौलशास्त्र का उद्धार किया गया एवं प्रथमतः इस विद्या का उपदेश मत्स्येन्द्र के रुप मे मेरे द्वारा कामाख्या में किया गया। भैरव ने ही मत्स्येन्द्र रूप में अवतार ग्रहण किया एवं हठयोगविद्या के महासिद्ध के रूप में प्रसिद्ध होकर कामाख्या क्षेत्र में इस विद्या को उद्घाटित किया। उस क्षेत्र विशेष में विद्यमान, उस समय की योगिनियों की चर्चा की है जो अपना रूप बदलकर विभिन्न स्थानों में गमनागमन किया करती थी। चौबीसवें पटल में देहस्थ सिद्धों की पूजा, चक्रों के जागरण से प्राप्त सिद्धियों एवं मुक्ति को पुष्प एवं उसकी सुगन्धि के रुप में व्यक्त किया गया है।

### 1.4.1.2 अकुलवीरतन्त्रम् 'ए' व 'बी':-

अकुलवीर (सहज) ही सभी धर्मों का सार है। जिस प्रकार सभी नदियाँ अन्ततः समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। उसी प्रकार सभी प्रकार के धर्मों का

समन्वय अकुलवीर कहलाता है। यही सभी का आश्रयस्थल है साथ ही उस समय प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों जैसे- न्याय, वैशेषिक, बौद्ध, जैन, मीमांसा, सोमसिद्धांत, तन्त्र के वाममार्गी, दक्षिणमार्गी एवं शैव सम्प्रदाय के विभिन्न शाखाओं आदि के अनुयायिओं को उस परमतत्व अकुलवीर अवस्था को प्राप्त करने में असमर्थ मिथ्यावादी कहकर आलोचना की गयी है।

अकुलवीर, इन्द्रियातीत एवं मन की मौनावस्था भावाभाव से मुक्त है। इसकी प्राप्ति के उपरान्त किसी प्रकार के नाड़ीशोधन, आँखों को बंद करना, मुद्रा का अभ्यास, प्राणायाम, खेचरी, आसन, यज्ञ, दान, तप आदि करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यही सहज है जो सभी अवस्थाओं से परे है। इसे न तो दूर कहा जा सकता है और न ही पास, न ही यह भरा हुआ अथवा खाली है, न ही ज्यादा और न ही कम कह सकते हैं। तब योगी को न सुख होता है न ही दुःख, न उष्णता होती है और न ही शीतलता। वह शिव-शक्ति से परे सभी प्रकार के गुणों से मुक्त है। सहज से समरस की अनुभूति होती है, जिससे योगी ब्रह्म, शिव, हरि आदि के साथ एकाकार होकर सहजानंद में रमण करता है। यह स्वसंवेद्य (स्वयं के द्वारा जानना) है। इस प्रकार उस परम अनुभव को जिसे बता पाना असम्भव है। इसे जान लेने वाला योगी जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार जिस प्रकार बीज के जल जाने से नये पौधे और वृक्ष बनने, शाखाओं का विकास आदि समाप्त हो जाता है।

### 1.4.1.3 कुलानन्दतन्त्रम् :-

कैला शशिखर पर आसीन, आदि देव, जगद्गुरू को प्रमाण कर भैरव द्वारा विभिन्न प्रकार के धूनन, कम्पन, खेचर, समरस, बलित पलित नाशक सिद्धि दायक यौगिक अभ्यासों की चर्चा की गयी है। ब्रह्मस्थान में चौंसठ दलयुक्त कमल पर ध्यान लगाने से अग्निशिखा के समान प्रकाश की अनुभूति होती है। नाभि स्थान में मन को लगाने से शारीरिक दृढ़ता की प्राप्ति होती है। हृदय कमल में मन को स्थापित करने से परम शान्ति की अनुभूति के साथ दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है। मूर्धा के कमल संस्थान में महाग्रन्थि स्थित है, यह दो कमलदल युक्त है, वही मूर्धा स्थान के मध्य में बत्तीस दलयुक्त कमल से अमृत का स्राव हृदय कमल एवं नाभि

पर्यन्त होता रहता है। इस अमृत के स्राव को योगी के द्वारा उर्ध्वगमन कर सभी प्रकार के रोगों से छुटकारा पाया जाता है। बुढ़ापा, मृत्यु आदि लक्षणों को रोकने के लिए खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने का निर्देश है। इससे बिन्दु अधोपतित न होकर उर्ध्वगमन करता हुआ मस्तक पर स्थापित हो जाता है, जिससे प्राण नियन्त्रित हो जाता है। तब योगी का चित्त कामनाओं एवं वासनाओं से रहित हो जाता है। उस समय योगी को किसी स्थिर आसन में स्थित होकर सभी प्रकार के भावाभावों से रहित होकर चित्त को आकाश में नियोजित करने से दूर देश में हो रही वार्ता का ज्ञान एवं दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की सिद्धि की प्राप्ति होती है। उपरान्त योगी को समरसता (अभेद) ज्ञान की प्राप्ति होती है।

### 1.4.1.4 ज्ञानकारिका :-

सभी प्रकार के आलम्बनों से रहित ज्ञान (विकल्प रहित) का अनुभव प्रस्तुत करने वाला शास्त्र ही ज्ञानकारिका है। इसे ही मुक्ति उपदेश कहकर संबोधित किया गया है, जो सूर्य-चन्द्र, रात-दिन, इन्द्रियातीत, मन्त्ररहित, ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, शिव आदि से अतीत है। सभी प्रकार के द्वन्द्वों, मन, बुद्धि आदि कुल से रहित मुक्त योगी ही अकुल है। इसके विपरीत कल्पनाज्ञान अथवा केवल शास्त्रज्ञान आदि से युक्त कुल में विचरण करने वाले माया, मोह आदि बन्धनों में पड़कर संसार सागर में भ्रमण करते हैं। सिद्धमार्ग ही अकुल मार्ग है, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है। इसी मार्ग से ही तमस, रजस एवं सत्त्व को सन्तुलित कर गुणातीत होना सम्भव है। यह अवस्थारहित ज्ञान, चित्त के आलम्बन रहित होने से अनुभूत होती है। जो धर्म, अधर्म आदि जगत अनुशासनों से मुक्त है। उपरोक्त ज्ञान के अधिकारी योगियों (कौलिको) के लक्षणों को बताते हुए कहा गया है कि वे शमशान, नदी के संगम स्थान, गुफा, निर्जन स्थान, वृक्ष के जड़  समुद्र तट आदि स्थानों में सभी प्रकार के चिन्ताओं से रहित होकर नग्न एवं मुक्त केश हो आलम्बन रहित होकर निवास करते हैं। वे ही उस शून्य, निरंजन को जानते हुए सहजानन्द (अव्यक्त) में रमण करते हैं।

## 1.4.2 सिद्धसिद्धांतपद्धति

सिद्धसिद्धांतपद्धति हठयोग का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। जिसके रचनाकार नाथ सिद्ध गोरक्षनाथ माने जाते हैं। इस ग्रंथ की विभिन्न हस्तलिपियों की खोज विभिन्न विद्वानों के द्वारा की गयी । इनमें डॉ. कल्याणी मल्लिक, द्वारिकादास शास्त्री आदि प्रमुख हैं। यह ग्रंथ मुख्य रूप से छः उपदेशों में विभक्त है। प्रथम अध्याय का नाम पिण्डोत्पत्ति है। जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति अनाम ब्रह्म एवं उससे उत्पन्न शक्तियों के नामों का उल्लेख करते हुए अदृश्य जगत से दृश्य जगत की उत्पत्ति के क्रम का उल्लेख है। द्वितीय अध्याय का नाम पिण्डविचार है। जिसमें पिण्ड रुप शरीर के अन्दर स्थित ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र आदि नौ चक्रों, अंगुष्ठाधार, मूलाधार आदि सोलह आधारों, अंतःलक्ष्य, मध्यलक्ष्य एवं बाह्य नामक तीन लक्ष्यों, पाँच प्रकार के आकाशों एवं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि अष्टांग योग की विस्तृत चर्चा है।

तृतीय अध्याय का नाम पिण्डसंवित्ति है। जिसमें पिण्ड (देह) को विश्व के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हुए विश्व ब्रह्माण्ड में स्थित इक्कीस ब्रह्माण्डों, सात महासागरों, नदियों, राशियों, नक्षत्रों आदि मानव देह के अंग विशेष में उपस्थिति की विस्तृत चर्चा की गयी है। चौंथे अध्याय का नाम पिण्डाधार है। जिसमें पिण्ड (देह) के आधार रूप देवी एवं शिव को क्रमशः कुल एवं अकुल की संज्ञा देते हुए शक्ति स्रोत कुण्डलिनी के तीन अवस्थाओं की चर्चा करते हुए उस शक्ति के जागृत होने पर प्राप्त जीव एवं शिव की अभेदता का वर्णन है। पंचम अध्याय का नाम पिण्डपद समरसता है। जिसमें योगी के वेशभूषाओं, साधना एवं परमपद की प्राप्ति में गुरू के महत्त्व, बारह वर्षों तक गुरू के संरक्षण में साधना से प्राप्त सिद्धियों, पाँच नाथ सम्प्रदायों के शाखाओं के नामों एवं परमपद की प्राप्ति से पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड की समानता के अनुभवों का उल्लेख किया गया है। छठवें अध्याय का नाम श्रीनित्यावधूत है। जिसमें मध्यकालीन परम्परा में जीवित विभिन्न सम्प्रदायों के नामों एवं उनके लक्ष्यों के आधार पर मुक्त, निर्लिप्त, परमानंद, नित्य अमृतरस का पान करने वाले, ब्रह्म के साथ जिनकी अभेदता है।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, सम्प्रदायों आदि सीमाओं से परे योगी को अवधूत की संज्ञा देते हुए मिथ्यावादियों एवं आडम्बरियों को फटकारा गया है।

## प्रथम उपदेश :-

जगत गुरू, शक्तियुक्त आदिनाथ को नमस्कार कर सिद्धसिद्धांतपद्धति आरंभ की गयी है। लोक व्यवहार के लिए सिद्धों के मतानुसार पिण्ड की उत्पत्ति का ज्ञान प्रस्तुत किया गया है। जब इस सृष्टि में कोई कर्ता, कारण, कार्य नहीं होता और न ही कोई कुल और अकुल होता है, उस समय अव्यक्त ब्रह्म अनामा कहलाता है। वह अनामा स्वयं सिद्ध है। अनादि है। वही एक मात्र सत्य है, जो जन्म एवं मृत्यु आदि से परे है। उसी की इच्छा मात्र से उत्पन्न शक्ति निजा कहलाती है। इसके साथ ब्रह्म के मानसिक अहलाद उपरान्त परा शक्ति उत्पन्न होती है। उसमें स्पन्दन मात्र से अपरा शक्ति जागती है। अपरा में अहमता मात्र से सूक्ष्मा शक्ति का जागरण होता है और अंत में वेदनशीला (मायाशक्ति) कुण्डलिनी उत्पन्न होती है। इस प्रकार पंच शक्तियाँ उत्पन्न होती है। उपरोक्त पाँचों शक्तियों के पाँच-पाँच गुणों का उल्लेख है। कुण्डलिनी, पूर्णता, इसे पूर्ण माना गया है। प्रतिबिम्बता, योगी के शरीर में जागृत होकर प्रतिबिम्बित होती है। प्रबलता, शक्तियों में कुण्डलिनी की शक्ति प्रबल है। प्रोच्वलता, सामान्यावस्था में यह सुप्त रहती है एवं हठयोग के द्वारा उर्ध्वगमन करती है। प्रत्यड्मुखता, सामान्यतः यह सृष्टि की उत्पत्ति, कामोपभोग में प्रवृत्त होती है।

परपिण्ड, उपरोक्त पाँचों शक्तियों निजा, परा आदि के मिलने से परपिण्ड परमशिव का आविर्भाव होता है। इनके पंच देव क्रमशः अपरम्पर, परमपद, शून्य, निरन्जन, परमात्मा कहे गये हैं।

अनादिपिण्ड की उत्पत्ति, उपरोक्त पंच देवों से सगुण, साकार अनादि पिण्ड उत्पन्न होता है। अनादि पिण्ड से आदि पिण्ड की उत्पत्ति होती है। इसके क्रम में अनादिपिण्ड से परमानंद, परमानंद से प्रबोध, प्रबोध से चिदुदय, चिदुदय से चित्प्रकाश, चित्प्रकाश से सोऽहम् भाव उत्पन्न होते हैं।

महासाकार पिण्ड (महाभूत) की उत्पत्ति, महाभूतों की उत्पत्ति का कारण आद्यपिण्ड है, जिससे महाकाश, महावायु, महातेज, महासलिल, महापृथ्वी उत्पन्न होते हैं। महासाकार पिण्ड से क्रमशः शिव, शिव से भैरव, भैरव से श्रीकण्ठ, श्रीकण्ठ से सदाशिव, सदाशिव से ईश्वर, ईइश्वर से रूद्र, रूद्र से विष्णु, विष्णु से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। उपरोक्त देवों के द्वारा ही सृष्टि में सृजन, पालन एवं संहार आदि कार्य संपादित किये जाते हैं।

प्रकृति पिण्ड (शरीर), ब्रह्म के द्वारा, महाकाशादि के अवलोकन से नर-नारी के रूप के समान प्रकृति पिण्ड उत्पन्न होते हैं। जिनमें सभी प्रकार के जीव, वनस्पति आदि सम्मिलित हैं। पंच महाभूत भूमि, जल, तेज, वायु एवं आकाश के गुणों से युक्त, प्रकृति पिण्ड ही शरीर है। उपरोक्त परपिण्ड अनादि पिण्ड आदि पंच भागों में विभक्त है, जिनके पच्चीस गुण मिलकर उपरोक्त पिण्डों को निर्मित करते हैं अंततः पिण्ड रुपी देह में मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चैतन्य इस देह में अन्तःकरण पंचक है। जिनके पाँच पाँच गुणों की विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। देह में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, पूषा, अलम्बूषा, गान्धारी, हस्तिजिह्विका, कुहू, शंखिनी दस प्रधान नाड़ियाँ हैं। इनके उत्पत्ति स्थान क्रमशः बायीं नासिका, दाहिनी नासिका, तालु मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक, मुखद्वार, बायीं आँख, दाहिनी आँख, बायीं कान, दाहिनी कान, गुदाद्वार, लिंगद्वार से ब्रह्मरन्ध्र तक स्थित हैं। उपरोक्त नाड़ियों के अतिरिक्त नाड़ियाँ रोमकूपों से बहती हैं। दस वायुओं में प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान प्रधान हैं। प्राण का स्थान हृदय है जो हकार एवं ठकार की ध्वनि से श्वास-प्रश्वास का संचालक है।

'ह' और 'ठ' (प्राणापान) का संयोग ही हठयोग है। जिसमें हकार सूर्य एवं ठकार चंद्र है। अपान, का स्थान गुद्वादार है। समान वायु का स्थान नाभि है, जो जठराग्नि को उदीप्त कर भोजन को पचाता है। उदान, वायु का स्थान कंठ है, जो वमनव शोषण का कार्य करता है। व्यान, सम्पूर्ण शरीर में फैला हुआ है। नाग वायु, यह समस्त शरीर में फैला हुआ है जो शरीर के समस्त अंगों को संचालित करने में सहायता करता है। कूर्म वायु, पलकों के खोलने एवं बंद करने का कार्य

करता है। कृकल वायु, डकार लाना एवं भूख बढ़ाने वाला, देवदत्त वायु, जम्हाई लाने वाला, धनंजय वायु, समस्त शरीर में व्यापत होकर नाद उत्पन्न करता है।

स्थूल शरीर की उत्पत्ति नर एवं नारी के क्रमशः वीर्य एवं रज के संयोग से होता है,संयोग काल में मनोदशा, पुत्र एवं पुत्री की प्राप्ति, युगल संतान की उत्पत्ति के कारण से लेकर विभिन्न समयांतराल में गर्भ में उस जीव के अंगों, उपांगों, नख, बाल, त्वचा आदि के विकास एवं दसवें मास में गर्भ से जीव की उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख किया गया है। उत्पन्न शिशु के शरीर में सप्तधातुओं के नामों के साथ उनके मात्राओं की चर्चा सूक्ष्म रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार माता-पिता के मिलन, त्रिदोषों (वात, पित्त एवं कफ) व सप्त धातुओं से बने इस शरीर का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

## द्वितीय उपदेश :-

पिण्ड विचार में पिण्ड से तात्पर्य मानव देह से है। इसके आधार में ब्रह्मचक्र का स्थान है। त्रिकोणाकार, भगमण्डल की तरह इसी के पास मूलकंद का स्थान है। उस स्थान पर कामरूप पीठ है। साधक को उस स्थान पर अग्नि शिखा का ध्यान करने से सभी तरह की कामनाओं की पूर्ति होती है। स्वाधिष्ठान चक्र, मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्वाधिष्ठान नामक द्वितीय चक्र है। इसके मध्य में मूंगे के अग्र भाग के समान पश्चिम की ओर मुख वाले शिवलिंग का ध्यान करने से संसार के प्राणी आकर्षित होते हैं। यही उड्डियान पीठ भी है। उड्डियान पीठ तंत्र साधना का प्रसिद्ध पीठ माना जाता है।

नाभिचक्र, पाँच वलय युक्त, सर्प के समान, कुण्डलाकार है। इसके मध्य में उगते हुए हजारों सूर्य (बाल सूर्य) के प्रकाश का ध्यान करने से साधक को सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है। अनाहत चक्र, इसका स्थान हृदयाधार है। इसका आकार आठ कमल दल वाला अधोमुखी कमल के समान है। इस स्थान पर ज्योतिरूप शिवलिंग का ध्यान करने से सभी इन्द्रियाँ वश में होती है। यही हंसकला शक्ति भी है। कण्ठचक्र, यह चार अंगुल परिमाप वाला है। इसके बायीं

ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिंगला दोनों नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना का ध्यान करने से संकल्पसिद्धि की प्राप्ति होती है।

तालुचक्र, इससे अमृत धारा का प्रवाह निरंतर होता रहता है। यह मुख खोलने पर घंटी की तरह लटका हुआ लिंग के आकार का होता है। इसके मूल में एक रन्ध्र स्थित है, जिसमें शंख के समान खाली स्थान होने के कारण शंखिनी विवर के साथ ही दसवाँ द्वार भी कहा गया है। इस स्थान पर शून्य का ध्यान करने से चित्त लय की प्राप्ति होती है। भ्रूचक्र, दोनों भौहों के बीच में भ्रूचक्र का स्थान है, जो अंगूठे के आकार का है, यही ज्ञाननेत्र है। इस स्थान पर दीपशिखा का ध्यान करने से कहे गये वचन सिद्धी की प्राप्ति होती है। ब्रह्मरन्ध्र चक्र, इसे निर्वाणचक्र भी कहा गया है। इसका आकार सुई के नोक से बने छिद्र के आकार का है। इस स्थान पर धुएँ के ऊपरी शिखर का ध्यान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसे ही जालन्धर पीठ कहा गया है। आकाश चक्र, यह पूर्णागिरी पीठ है। यह सोलह पंखुडियों वाला कमल के समान ऊपर की तरफ मुख किये हुए स्थित है। इसके बीच में त्रिकोण आकार की ऊर्ध्वमुखी शक्ति स्थित है। इस स्थान पर परमशून्यता का ध्यान करने से सभी प्रकार की इच्छाओं की सिद्धि की प्राप्त होती है।

सोलह आधारों में प्रथम आधार अंगूठे हैं। इसके अग्र भाग में तेजोमय स्वरूप का ध्यान करने ने नेत्र ज्योति स्थिर होती है। मूलाधार, गुदाद्वार एवं लिंग के मध्य स्थान पर बायीं पैर की ऐड़ी को दबाकर स्थिर होने से शरीर में अग्नि प्रदीप्त होती है। गुदाधार, गुदाद्वार को सिकोड़ने, ढ़ीला छोड़ने एवं संकुचित कर रखने से अपान वायु स्थिर होता है। लिंग प्रदेशाधार, लिंग प्रदेश को संकुचित करने से तीनों ग्रन्थियों का भेदन होता है। इससे बिन्दु उर्ध्वगति करता हुआ ऊपर जाकर भ्रमर गुहा (ग्रीवा भाग के ऊपर) में स्थिर होती है। यही वज्रोली नाम से प्रसिद्ध है। ओड्डियानाधार, इसका स्थान लिंग प्रदेश व नाभि के मध्य में है। इस प्रदेश का संकुचन करने से मल एवं मूत्रों की मात्रा में कमी आती है। नाभि आधार, नाभि में चित्त को एकाग्र कर ओंम के उच्चारण करने से, चित्त नाद में लय हो जाता है।

हृदयाधार, हृदय आधार में प्राण का निरोध करने से हृदय चक्र विकसित होता है। कण्ठाधार, कण्ठ के मूल में अपने चिबुक (दाढ़ी) को लगाकर रखने से शरीर की दो प्रधान नाड़ी, इड़ा एवं पिंगला में वायु की स्थिरता प्राप्त होती है। घण्टिकाधार, मुख के अंदर लटक रहे (उबला) वाले स्थान पर जीभ के अग्र भाग को लगाकर रखने से अमृत पान होता है, जो शरीर को पुष्ट करता है। तालुआधार, तालु के अंदर के छिद्र में जीभ को उलट कर ले जाने एवं उसके अंदर चालन करने से लकड़ी के समान पूर्ण स्थिरता की प्राप्त होती है। जिह्वाधार, जीभ के मूल में, जीभ के अग्रभाग को लगाकर रखने से सभी प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

भ्रूमध्याधार, दोनों भौहों के मध्य में चन्द्रमण्डल की धारण करने से शीतलता की अनुभूति होती है। नासाधार, नासिका के अग्र भाग में दृष्टि स्थिर करने से मन की स्थिरता प्राप्त होती हैं। नासिका मूल कपाटाधार, दोनों नासिका के मध्य में स्थित कपाट में दृष्टि स्थिर करने से छः महीने में ज्योतिपुँज का दर्शन होता है। ललाटाधार, ललाट के आधार में ज्योतिपुँज की धारणा से तेजस्विता की प्राप्ति होती है। ब्रह्मरन्ध्र आधार, इसे आकाश चक्र भी कहा गया है। उस स्थान पर गुरू के दोनों चरण कमलों का अवलोकन करने से आकाश के समान विशालता की अनुभूति होती है।

तीन लक्ष्यों में अन्तर्लक्ष्य, लिंग मूल एवं नाभि के मध्य में नाड़ियों का उद्गम स्थान है। उसके बीच में डण्डे के समान श्वेत रंग की ब्रह्मानाड़ी मस्तिष्क के ब्रह्मरंध्र  तक गयी हुई है। इसी कमल नाल के समान दण्ड पर हजारों विद्युत के प्रकाश युक्त रश्मियाँ ऊर्ध्वगमन कर रही है। ऐसा मन में ध्यान करने से सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है। बाह्यलक्ष्य, आकाश को लक्ष्य कर अवलोकन करने से सभी प्रकार की निर्मलता की प्राप्ति होती है अथवा आकाश की ओर देखते हुए उसके अंदर के आकाश को लक्ष्य करने से चित्त आकाश के समान मुक्त हो जाता है। मध्यमलक्ष्य, श्वेतरंग, रक्त के रंग का, काले रंग का, अग्नि के शिखा का, ज्योति रूप का, विद्युत के आकार का, सूर्यमण्डल के आकार का,

अर्धचन्द्राकार का अथवा जो उचित हो उनका स्वयं के शरीर में, लक्ष्य करना चाहिये इसे ही मध्य लक्ष्य कहा गया है।

शरीर के बाहर व अन्तः में पंच आकाश के अंतर्गत अत्यंत निर्मल, आकार रहित आकाश, अत्यंत अंधकारमय पराकाश, प्रलय के समय की अग्नि के समान महाकाश, सद्, चित्त्, आनंद स्वरूप तत्त्वाकाश तथा करोड़ों सूर्यों के प्रकाश युक्त सूर्याकाश का ध्यान करना चाहिये।

अष्टांग योग में यम के अंर्तगत आहार, निद्रा, शीत, वात आदि पर विजय प्राप्त करना। नियम, एकांत में निवास करना, अकेले रहना, उदासीनता, संतोष, वैर भाव का त्याग, गुरू के द्वारा के निर्देशों का अनुसरण कर मन की वृत्तियों पर नियंत्रण प्राप्त करना। आत्मस्वरूप में स्थित होना ही आसन है। इसके अंतर्गत स्वस्तिकासन, पद्मासन एवं सिद्धासन का उल्लेख है। जिसमें प्राण की स्थिरता प्राप्त होती है वही प्राणायाम है, यह पूरक, कुम्भक रेचक एवं संघटक मिलाकर चार प्रकार के हैं। पूरक, कुम्भक एवं रेचक करने से पूरक व रेचक का मिलन होता है। जिससे प्राण की स्थिरता प्राप्त होती है। इसे संघटक कहा गया है।

चैतन्य रूपी आत्म तत्त्व के इन्द्रिय रूपी घोड़े विषयों में जाकर विकार ग्रस्त हो जाते हैं। इन इन्द्रियों का उन विषयों से वापस लौटाना ही प्रत्याहार है। अपने अंतः करण में शरीर के बाहर एवं अन्तः दोनों ओर आत्म तत्त्व विद्यमान है, इसका का चिंतन ही धारणा है। एकान्त में स्वयं की आत्म तत्व का उसी प्रकार चिंतन करना चाहिये जिस प्रकार निर्वात (वायु रहित स्थान) में दीपक की ज्योति निश्चल रहती है, यही ध्यान है। द्वैत भाव से परे, परम अद्वैत की भावना ही आत्मा है। इसी आत्म तत्त्व को सभी भूतों में सभी स्थानों पर उपस्थिति की भावना करनी चाहिये। सभी भूतों मे वहीं आत्म तत्त्व विद्यमान है, यही ध्यान है। सभी तत्वों में उपरोक्त धारणा एवं ध्यान की भावना करते हुए जब अनायास बिना प्रयास के सभी के प्रति दृष्टि सम हो जाए। तटस्थता आ जाए। यही सहज अवस्था ही समाधि है।

## तृतीय उपदेश :-

इसी शरीर में ही समस्त चर-अचर, विश्व ब्रह्माण्ड को जानने वाला ही योगी है। शरीर में पैर के अंगूठे, अंगूठे के अग्र भाग, पैर के ऊपरी त्वचा में, पैर के गुल्फ में, जंघा मे, घुटने में एवं ऊरू में क्रमशः पाताल, तलातल, महातल, रसातल, सुतल, वितल एवं अतल नामक पाताल हैं। इस शरीर में क्रोध भाव ही कालाग्नि रूद्र है।

## देह में इक्कीस ब्रह्माण्डों का स्थान [48]:-

| क्र. | शरीर में स्थान | लोक | देवता |
|---|---|---|---|
| 01. | गुह्यस्थान (मूलाधार) | भूर्लोक | इन्द्र देवता |
| 02. | लिंगस्थान | भुवर्लोक | इन्द्र देवता |
| 03. | नाभि स्थान | स्वर्लोक | इन्द्र देवता |
| 04. | मेरूदण्ड के मूल | महर्लोक | ब्रह्मादि देवता |
| 05. | मेरूदण्ड के छिद्र में | जन लोक | ब्रह्मादि देवता |
| 06. | मेरूदण्ड के नाल में | तपोलोक | ब्रह्मादि देवता |
| 07. | मूल कमल स्थान में | सत्यलोक | ब्रह्मादि देवता |
| 08. | पेट स्थान पर | विष्णु लोक | विष्णु देवता |
| 09. | हृदय में | रूद्रलोक | रूद्र देवता |
| 10. | वक्ष स्थल में | ईश्वर लोक | तन्त्रेश्वर देवता |
| 11. | कण्ठ मूल में | ईश्वर लोक | सदाशिव |
| 12. | कण्ठ मध्य में | नीलकण्ठ लोक | नीलकण्ठ देवता |
| 13. | तालु द्वार में | शिवलोक | शिव देवता |
| 14. | जिह्वा के मूल में | भैरव लोक | भैरव देवता |
| 15. | जिह्वा के मध्य | महासिद्ध लोक | |
| 16. | ललाट मध्य में | अनादि लोक | अनादि देवता |
| 17. | भृकुटी में | कुललोक | कुलेश्वर देवता |
| 18. | शंखनाड़ी,नलिनी स्थान में | अकुलेश्वर लोक | अकुलेश्वर देवता |

[48] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. पृ. 44-47

| | | | |
|---|---|---|---|
| 19. | ब्रह्मरन्ध्र में | परब्रह्मलोक | परब्रह्म देवता |
| 20. | ऊर्ध्वकमल में (सहस्त्रार) | परापरलोक | परब्रह्म देवता |
| 21. | त्रिकूट स्थान में | शक्ति लोक | शक्ति देवता |

## सप्त द्विपों का स्थान :-

| क्र. | शरीर स्थान | द्वीप के नाम |
|---|---|---|
| 01. | मज्जा में | जम्बू द्वीप |
| 02. | अस्थि में | शाक द्वीप |
| 03. | शिराओं में | सूक्ष्म द्वीप |
| 04. | त्वचा में | क्रौञ्च द्वीप |
| 05. | रोम में | गोमय द्वीप |
| 06. | नखों में | श्वेत द्वीप |
| 07. | मांस में | प्लक्ष द्वीप |

## सात समुद्रों का स्थान :-

| क्र. | शरीर के स्थान | समुद्रों के नाम |
|---|---|---|
| 01 | मूत्र में | क्षार समुद्र |
| 02 | लार में | क्षीर समुद्र |
| 03 | कफ में | दधि समुद्र |
| 04 | मेद में | घृतसमुद्र |
| 05 | वसा में | मधुसमुद्र |

06 रक्त में इक्षु समुद्र

07 शुक्र में अमृत समुद्र

## नौ द्वारों में नौ खण्डों का स्थान :-

| क्र. | शरीर के स्थान | नौ खण्डों के नाम |
|---|---|---|
| 01. | गुदाद्वार में | भारत खण्ड |
| 02. | लिंगद्वार में | कर्पर खण्ड |
| 03. | मुख में | काश्मीर खण्ड |
| 04. | बायीं नासिका में | श्रीखण्ड |
| 05. | दाहिनी नासिका में | शंखखण्ड |
| 06. | बायीं आँख में | एकपाद खण्ड |
| 07. | दाहिनी आँख में | गान्धार खण्ड |
| 08. | बायीं कान में | कैवर्तखण्ड |
| 09. | दाहिनी कान में | महामेरू खण्ड |

## कुल पर्वतों का स्थान :-

| क्र. | शरीर में स्थान | कुल पर्वतों के नाम |
|---|---|---|
| 01. | मेरूदण्ड में | सुमेरू पर्वत |
| 02. | मस्तक के ऊपर (ब्रह्मकपाट) | कैलाश पर्वत |
| 03. | पीठ भाग में | हिमालय पर्वत |
| 04. | बायें कन्धे में | मलय पर्वत |
| 05. | दाहिने कन्धे में | मदरांचल पर्वत |

06. बायें कान में मैनाक पर्वत

07. दाहिने कान में विन्ध्यांचल पर्वत

08. ललाट में श्रीपर्वत

आठ पर्वतों के अतिरिक्त अन्य शरीर में सभी अंगुलियों में स्थित हैं।

## शरीर में नौ महानदियों व उप-नदियों का स्थान-

| क्र. | शरीर में स्थान | महानदियों के नाम |
|---|---|---|
| 01. | इड़ा नाड़ी में | गंगा |
| 02. | पिंगला नाड़ी में | यमुना |
| 03. | सुषुम्ना में | सरस्वती का स्थान है। |

उपरोक्त इड़ा आदि नाड़ियों में उपरोक्त तीन प्रमुख गंगादि महानदियाँ एवं अलम्बुषा आदि नाड़ियों में पीनसा, चन्द्रभागा, पिपासा, शतरूद्रा, श्रीरात्रि, श्रीनर्मदा नामकमहानदियाँ विद्यमान हैं एवम् अन्य बहत्तर हजार नाड़ियों में छोटी-बड़ी नदियाँ स्थित हैं।

तंत्र के प्रसिद्ध पीठ व उपपीठ रोमछिद्रों में वास करते हैं। शरीर के मर्म स्थानों में अनेक तीर्थ, सिद्धों का वास बुद्धि के प्रकाश में है। सूर्य और चंद्र दोनों आँखों में वास करते हैं। इच्छा पूर्ति के लिए किये गये कर्म बंधन है एवं बिना संकल्प-विकल्प के किये गये कर्म मुक्ति परक है। सामान्यजनों की दृष्टि में निद्रा आदि तमस ही उन्हें अपना स्वरूप प्रतीत होता है किन्तु शुद्ध, बुद्धि युक्त, चैतन्य स्वरूप, आत्म तत्त्व में जागृत रहना ही शान्ति में स्थित होना है। अखण्ड रूप परमात्मा सभी के देह में एवं विश्व के कण-कण में चित् स्वरूप में विद्यमान है। उसके स्वरूप को जानना ही इस पिण्ड को जानना है। वही योगी के रूप में प्रसिद्ध है।

## चौथा उपदेश :-

पिण्ड का आधार, इस पिण्ड एवं समस्त जगत का आधार निजा शक्ति है। यह शक्ति स्वतंत्र, बुद्धि से परे, ज्ञान प्रकाश रूप एवं नित्य, आद्य शक्ति, शिव की अंतरंग है। समस्त जगत इसी से ही उत्पन्न है। यह केवल स्वयं के अनुभव (स्वसंवेद्य) से ही जाना जा सकता है। इस शक्ति से ही लौकिक जगत के कार्य व्यापार को गति देने वाली शक्ति परा, कार्य करती है। प्रलयकाल में शिव में ही स्थित रहती है। शिव एवं शक्ति की भेद रहित अवस्था ही कुल-अकुल समरसता है। दानों समरस होकर जगत को विस्तार देते हैं। परा, सत्ता, अहन्ता, स्फुरता एवं कला ये पाँच शक्तियाँ विश्व के आधार रूप में विद्यमान है। जाति, वर्ण, गोत्र, आदि नियमों से रहित शक्ति परब्रह्म में स्थित अकुल शक्ति है। यह भेदरहित, अखण्ड, अनन्य, अद्वय, निर्धर्म, नाम व स्वरूप से परे होती है।

शिव एवं शक्ति के सामरस्य के प्रकाश का विस्तार रुप परा शक्ति संलग्न रहती है। यह शक्ति विश्व के प्रपंच रूपी जाल के विस्तार में मुख्य भूमिका अदा करती हुई, परम शिव में इसे संयुक्त कर देने वाली आज्ञा का पालन करने वाली शक्ति आज्ञावती परा शक्ति कहलाती है। समस्त जगत का व्यापार उस अकुल (शिव) के द्वारा कुल शक्तियों के माध्यम से संपन्न होते हैं। अंत में ये कुल शक्ति अकुल में उसी तरह समाहित हो जाती है, जिस तरह जल में उठने वाली बुलबुले जल में ही मिल जाते है।

लोक व्यवहार में नाना प्रकार से विभिन्न रूपों में भाषित होने वाले वह शक्तिमान, सदैव आनंद में स्थित, एकरस, सभी के कारण रूप, परिपूर्ण ब्रह्म एक ही है। विश्व रूप में फैली हुई अर्थात् दिखाई देने वाली शक्ति भी अंत में लुप्त हो जाती है। अंत में ब्रह्म ही शेष रह जाता है। अतः वही सबका कारण रूप शिव शक्ति का संचालक है। शिव, शक्ति से युक्त नहीं हाने पर कार्य करने में असमर्थ है तथा इसी से युक्त होने पर ही शिव, जगत के साक्षी कहे गये है।

कुण्डलिनी शक्ति के रुप में ही अनन्त शक्तिमान परमेश्वर ही विश्व रूप में भासित होता है। सिद्धों के अनुसार परापर स्वरूप शक्ति ही मानव देह में स्थित

है। कुण्डलिनी शक्ति मानव देह में प्रबुद्ध एवं अप्रबुद्ध रूपों में स्थित है। अप्रबुद्ध (सुप्त) रूप में यह नाना प्रकार की चिंताओं, सांसारिक व्यापार, प्रपंच आदि पर निम्नगामी होकर कार्य करती है परन्तु योग साधनाओं से जागृत होने पर उपरोक्त विकारों का त्याग करती हुई ऊर्ध्वगमन करने वाली शक्ति के रूप में प्रसिद्ध होती है। यह जगत का कारण रूपा है। इस शक्ति में ही सभी तत्त्वों का वास है। जो ऊर्ध्वगति करती हुई योगी को स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठित कर देती है।

कुण्डलिनी स्थान एवं शक्ति के अनुसार मध्य, उर्ध्व एवं अधः तीन स्वरूपों में विभक्त है। इन्द्रियों की चंचलता एवं विभिन्न प्रकार के इच्छाओं की पूर्ति की चिंताओं के कारण यह शक्ति निम्नगामी होती है। अतः यह अधःशक्ति कहलाती है। योगियों के द्वारा मूलाधार (गुदाद्वार एवं लिंग द्वार के मध्य स्थान) का आकुंचन करते हुए मूलबंध के अभ्यास से इसकी शक्ति ऊपर उठायी जाती है। मूलाधार से ही दृश्यमान जगत उत्पन्न हुआ है। अतः मूलबंध से इस अधः शक्ति को योगी द्वारा उर्ध्व किया जाता है।

मध्यमा शक्ति कुण्डलिनी का स्वरूप चंचल स्वभावा होने के कारण जीवात्मा भ्रमणशील बनकर इसी मध्यमा शक्ति में स्थित होती है। इस शक्ति के स्थूल एवं सूक्ष्म दो भेद है। स्थूल रूप में यह शक्ति सांसारिक पदार्थों, भोगों आदि स्थूल जगत में भ्रमण करती हुई उन्हीं पदार्थों को ही अपना स्वरूप समझती है। इसे ही स्थूल अथवा साकार कुण्डलिनी कही गयी है। सूक्ष्म कुण्डलिनी, योगी के द्वारा जब यह शक्ति ऊर्ध्वगमन होती है। तब यह स्थूल से सूक्ष्म रूप में रूपांतरित होते हुए योगी को परमानंद प्रदान करने वाली सूक्ष्म एवं निराकार के रूप में प्रसिद्ध होती है। शक्ति की इन अवस्थाओं को सिद्धों ने जाना है। इस प्रकार सूक्ष्म रूप वाली विषय रहित पराशक्ति युक्त, मध्यमा शक्ति कुण्डलिनी को सद्गुरू के मुख से जानना चाहिए। जो इसी देह में स्थित होती है।

ऊर्ध्वशक्ति, यह शक्ति सभी प्रकार के तत्वों से ऊपर होने के कारण परम पद प्रदायक ऊर्ध्व रूप में प्रसिद्ध है। यह नाना प्रकार के सिद्धियों को प्रदान करने वाली मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक गमन करते हुए साधक को स्वरूपस्थ कर द्वैत को मिटाकर ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड की अखण्डता का ज्ञान करा देती है। यही

महासिद्धों, योगियों आदि के अनुसार परम पद प्रदायिका है। इस अवस्था में योगी को शिव, शक्ति में एवं शक्ति, शिव में विद्यमानता का अनुभव होता है। जिस प्रकार अग्नि के साथ उसकी दाहकता एवं चन्द्रमा के साथ उसकी परछाई (चन्द्रिका) में कोई भेद नहीं होता। उसी प्रकार शिव-शक्ति भेद रहित होकर चराचर जगत में व्यापत हैं।

## पंचम उपदेश :-

पिण्डपद समरसता, महासिद्ध, योगी कुण्डलिनी को प्रबुद्ध कर ऊर्ध्वगमन के द्वारा स्वपिण्ड को परपिण्ड (परमात्मा) में समरस कर परम पद की प्राप्ति करते हैं। इसे स्वयं के अनुभव से ही जाना जा सकता है। दूसरे किसी भी माध्यम से जाना नहीं जा सकता। बुद्धिमानों के द्वारा भी वचनों से व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह उपाधि रहित है। सद्गुरू द्वारा उपदेशित यह योग मार्ग कहलाता है। जिसका सिद्ध योगियों ने अनुभव कर कालजयी होकर प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं। अपने स्वरूप के आनंद के विकास को समेट कर परमात्मा से अपनी अखण्डता की अनुभूति कर चुके हैं जो समरसीकरण के नाम से प्रसिद्ध है।

पिण्डसिद्ध योगी गुरू के निर्देशन में शंख, मुद्रा धारण करना, अपने सिर के बालों को बढ़ाना, सहस्त्रार से स्त्रावित अमृत का पान, एकांत में रहना, संध्यावंदन, जप, भैरवमूर्ति की पूजा, शंखनाद, सिंहगर्जन, कौपीन पहनना, कंबल, अंगवस्त्र, बिछाने का वस्त्र, धूप एवं वर्षा से बचने के लिए छाता, बेत, कमण्डल, अपने शरीर में भस्म एवं मस्तक में त्रिपुण्ड लगाना आदि साधनात्मक वेशभूषा के साथ गुरू की वन्दना करते हुए साधना में लगा रहता है। पिण्ड सिद्ध योगी सभी प्रकार की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। उपरोक्त वेशभूषा तो केवल लोकव्यवहार के लिए है जो साधना के सहायक अंग मात्र है। परम पद की प्राप्ति होने पर यह जगत खेल के समान लगने लगता है। योग से तात्पर्य ज्ञान, सत्संगति आदि उपायों से है। जो परम पद की प्राप्ति में सहायक है।

पिण्ड की सिद्धि के उपरान्त पूर्ण ज्ञान या परमपद की प्राप्ति के लिए महासिद्धों ने सिद्ध किया है कि स्वयं के इस पिण्ड में ही अर्थात् जीवात्मा ही

परमशिव से अभिन्न है। सहज, सोपाय, संयम व अद्वैत आदि लक्षण आत्मा के ही है। निगुर्ण एवं निराकार कहा जाने वाला परमेश्वर विश्व के समस्त आभास होने वाली पदार्थों में वही परमेश्वर ही आभास होते है। उसी प्रकार उस परमेश्वर एवं जीवात्मा में भी अभेद एवं अखण्ड सम्बन्ध का ज्ञान ही सहज है। कर्तापन से रहित, सदैव रहने वाला, पूर्ण, निर्विकल्प स्वरूप योगी की जो स्थिति है, वहीं अद्वैत है।

परम ज्ञान की प्राप्ति न तो करोड़ों शास्त्रों के पढ़ने से होती है, न ही तर्क से, न ही व्याकरण से, न ही ज्ञान की चर्चा से ही और न ही वेद के पढ़ने से ही होती है वरन् सद्गुरू के कृपा उपदेश से ही संभव है। यह शिव के वचन है कि परम पद की प्राप्ति में गुरू से बढ़कर और कोई भी सहायक नहीं है। आठ प्रकार के पाशों (बंधनों) से मुक्त कर देने वाला ही गुरू हो सकता है। जिनमें अविद्या, जन्म, काम, क्रोध, अभिमान, व्याधि, जरा, मरण शामिल हैं। ऐसे गुरू ही वंदनीय है।

साधक, सद्गुरू के मार्गदर्शन  में योग साधनाओं को करता हुआ पहले वर्ष में शरीर निर्मल, शुद्ध व पूर्ण निरोग तथा सभी का प्रिय हो जाता है। उस साधक का दर्शन की लोगों में इच्छा होती है। दूसरे वर्ष में, सभी सभी भाषाओं को जानने व बोलने की सिद्धि आ जाती है। तीसरे वर्ष में, दिव्य देह की प्राप्ति कर लेता है एवं बाघ आदि हिंसक पशुओं के द्वारा भी उसे हानि नहीं होती। चौथे वर्ष में, भूख, प्यास, निंद, सर्दी-गर्मी आदि दुःखों को जीत लेता है एवं सामान्य मनुष्य से परे दूर की ध्वनियों को सुनने की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। पाचवें वर्ष में, उस योगी के द्वारा बोले गये वचन सिद्ध हो जाता है व उस योगी में दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की सिद्धि आ जाती है।

छठवें वर्ष में, उस योगी को किसी भी शस्त्र, वज्र आदि से किंचित भी हानि नहीं पहुँचाया जा सकता। सातवें वर्ष में, वायु के समान वेग वाला, पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण को जीतकर उड़ान भरने वाला, दूर के चीजों को भी जान लेने वाला हो जाता है। आठवें वर्ष में, आठ प्रकार की कहे जाने वाली सिद्धियों अणिमा, गरिमा आदि को प्राप्त कर लेता है। नौवें वर्ष में, उस योगी का शरीर वज्र के समान हो जाता है एवं वह सभी दिशाओं में आकाश मार्ग से उड़ते हुए पहुँचने

की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। दसवें वर्ष में, तीव्र वायु की तरह इच्छानुसार गतिशीलता की सिद्धि आ जाती है। ग्यारहवें वर्ष में, सब कुछ जानने वाला एवं सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। बारहवें वर्ष में, शिव के समान हो जाता है। इस प्रकार वह योगी स्वयं के शरीर (पिण्ड) परमेश्वर (परपिण्ड) की अखण्डता का अनुभव करता हुआ परम पद में स्थित हो जाता है।

उपरोक्त उपदेश में कुलसन्तान परम्परा के अंतर्गत उत्पत्ति तत्त्व, गुण, देव एवं योगावस्था का उल्लेख है। उपरोक्त सन्तान योगमार्गी हैं एवं शिव ही इनके परम लक्ष्य है।[49]

| क्र. | कुल सन्तान | तत्वों से उत्पन्न | पंच गुण | पंच देव | योगावस्था |
|---|---|---|---|---|---|
| 01. | आईसन्तान | पृथ्वी | कठोरता | ब्रह्मा | स्थूल |
| 02. | बिलेश्वर सन्तान | जल | आर्द्रता | विष्णु | सूक्ष्म |
| 03. | विभूति सन्तान | अग्नि | तेज | रूद्र | कारण |
| 04. | नाथ सन्तान | वायु | गतिशीलता | ईश्वर | तुर्य |
| 05. | योगीश्वर सन्तान | आकाश | स्थिरता | सदाशिव | तुर्यातीत |

परम पद की प्राप्ति के बाद किसी प्रकार के नियम, आसनादि, वर्ण के अनुसार आचरण, संस्कारों की आवश्यकता, शुद्धता, वैराग्य भाव, प्राणायाम, आहार संयम, मुद्रा, मौन, उपवास, पूजन, भक्ति, अध्ययन, मंत्रजाप, ध्यान, यज्ञ, तीर्थ, विशेष स्थान में निवास आदि की आवश्यक नहीं रह जाता।

## छठवाँ उपदेश :-

इस उपदेश में अवधूत योगी के लक्षणों की चर्चा की गयी है। जिसने बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रियादि विकारों को अपने वश में कर लिया है। जो क्लेशों से मुक्त हो चुका है। अखण्ड आत्म स्वरूप में स्थित है। अनाहद नाद में जिसका चित्त

[49] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. पृ. 73-74

लय हो चुका है जो परमानंद में लीन रहता है। सहस्त्रार से स्त्रावित अमृत का नित्य पान करता है। जिसने प्राणजय कर वीर्य को ऊर्ध्वमुख कर लिया है। जो अखण्ड एकरस में लीन है। जिनके भेदाभेद मिट चुके हैं। जो स्वस्वरूप में स्थित है। जो इस लोक के व्यवहारों को भी प्रवीणता से पूर्ण करता है। जिसमें सभी दर्शनों एवं सिद्धांतों का समावेश है। जो स्वयं ईश्वर के समान है। उसके नामान्तरों में आत्मा, परमात्मा, शिव, रूद्र, स्वरूप आदि कहे जाते हैं जो शिव एवं परमशिव भी कहलाता है। जिसने अभिलाषाओं को जलाकर भस्म रमाया है। विचार एवं सन्तोष नाम के दो कुण्डल जिसने अपने कर्णों में धारण कर लिया है। जिसका चित्त स्थिर हो चुका है। जिसके हाथ में आकाश रूपी खर्पर है एवं आत्मस्थ स्थिति ही उस योगी का भजन है। वह अवधूत अखण्ड, ज्ञानपूर्ण, आत्म बोध से परिपूर्ण रहने, सदैव ब्रह्म के साथ रमण करने के कारण ब्रह्मचारी, गृहस्थ एवं एकान्त में स्वप्रकाश में रहने के कारण वानप्रस्थ, संकल्पों एवं विकल्पों से रहित अपनी इच्छाओं को ब्रह्म में समर्पित कर आत्मा एवं परमात्मा में अभेदता प्राप्त करने के कारण वहीं सन्यासी कहलाता है। कर्म के बंधनों, माया के प्रभावों एवं कलाजाल  को नियंत्रित करने के कारण त्रिदण्डी कहलाता है।

नाना प्रकार के विकल्प जालों आदि के उत्पत्ति स्थल, एक मात्र चित्त को नियंत्रण करने के कारण एकदण्डी, शुद्ध, शान्त, निराकार, स्वरूप परमानंद, स्वप्रकाशित शिव को जानने वाला शैव है। जिसने अपनी इन्द्रियादि आदि को वश में कर विषयादि को भस्म कर दिया है। वही तापस कहलाता है। उस अवधूत योगी ने पशु के समान बंधन में डालने वाले क्रिया जालों को नष्ट कर उन कर्मों के नियंत्रणकर्ता एवं स्वामी बनकर पाशुपत के नाम से प्रसिद्ध है। जिस अवधूत योगी ने प्राप्त दीक्षा के आधार पर उस पर चलते हुए अपने स्वरुप को प्राप्त कर लिया है, वही कापालिक है।

अहंकार रूपी मद्य, अतृप्त इच्छा रूपी मुद्रा, माया रूपी मीन, मन रूपी मांस एवं प्राणायाम के द्वारा प्राण और अपान का मिलन मैथुन को जानने वाला शाक्त है। समस्त जगत में व्याप्त परम सार रूप विष्णु को जान लेने वाला वैष्णव

है। शिव एवं शक्ति के योग को जानने वाला वही सिद्ध योगीराट् है। उसी के द्वारा अलग-अलग सिद्धान्त एवं दर्शन को समन्वित कर उपदेश किया जाता है।

केवल तर्क के जाल में उलझाने वाले वेदांती, मीमांसक, सन्यासी, तपस्वी, वैष्णव, सूर्य के उपासक, बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदाय अपने मूल उद्देश्य से भटककर पदभ्रष्ट हो माया के अधीन हो जाते हैं। अतः सिद्धों के द्वारा उपदिष्ट सिद्ध मत योग मार्ग का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

योग के विभिन्न सिद्धियों, चक्रों के जागरण, ऊर्ध्व रेतस हो जाने, सहस्त्रार से स्त्रावित अमृत के पान करने वाला, खेचरी के सिद्धि के उपरान्त, विभिन्न मुद्राओं, बंधों के अभ्यास से इड़ा और पिंगला का मिलन कर षट्चक्रों के भेदन करने वाला, महाकाश का ध्यान करने वाला, अनहत नाद को सुनने वाला आदि उच्च स्तर के लोग भी उस परम पद की प्राप्ति के बगैर इस जगत में ही भ्रमणशील बने रहते हैं। योगी का उद्देश्य द्वैताद्वैत विवर्जित परम पद का अनुभव करना है। जिसकी प्राप्ति समर्थ गुरू के संरक्षण में ही किया जा सकता है। विचार करने पर जीवात्मा, आत्मा एवं परमात्मा तीनों की एकता का अनुभव को आदेश नाम से संबोधित किया गया है। यही सद्वाणी है। इसके उच्चारण से सभी प्रकार के द्वन्द्व दूर हो जाते है एवं आत्मा एवं परमात्मा के एकता की अनुभूति होती है।

यह सिद्धांत सिद्धों के अनुभवों पर आधारित दिव्य ज्ञान सार रूप में प्रकट किया गया है जो परमेश्वर के साथ नित्य आनंद की अनुभूति कराने वाला है। श्रद्धावान, दयावान, सदाचारी, स्थिरमति, शान्त, ज्ञान की इच्छा रखने वाला, निर्भय, घृणा रहित, मोह शोक से रहित को ही इस शास्त्र का ज्ञान गुरू-शिष्य के नियमों के अनुसार प्रदान किया जाना चाहिये। निंदक, व्यभिचारी, हिंसक व शास्त्रार्थ में अपना समय नष्ट करने वालों को इसका ज्ञान नहीं देना चाहिये।

### 1.4.3 गोरक्षशतकम्

गोरक्षशतकम् एक महत्वपूर्ण हठयौगिक ग्रंथ है। आरंभ में विभिन्न विद्वानों ने उपलब्ध सीमित संसाधनों एवं प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर इसे गोरक्षपद्धति का एक भाग माना गया था। उनकी मान्यता थी कि गोरक्षपद्धति का प्रथम भाग

सौ श्लोकों का है वही गोरक्षशतकम् है। उपरोक्त मत मोहन सिंह, डब्लू. सी. ब्रिग्स, पी.सी. बागची और हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों की थी, किन्तु दर्शनिक साहित्यिक शोध विभाग कैवल्यधाम, लोनावला ने गोरक्षशतकम् पर वैज्ञानिक रीति से कार्य संपादित करते हुए भारत के पूना, वाराणसी, कलकत्ता, अड्यार, बिकानेर, मद्रास, तंजौर, मण्डलेश्वर आदि स्थनों से पैंतीस पाण्डुलिपियों को संग्रहीत कर उनके विषय वस्तुओं का मिलान कर गोरक्षशतकम् का संपादन किया। इस शोधकार्य से यह ज्ञात होता है कि गोरक्षपद्धति के दो भाग (सौ-सौ श्लोकों का संग्रह) कहे जाने वाले श्लोकों में गोरक्षशतकम् के मूल छः योग के अंग, आसन, प्राण संयम (प्राणायाम), प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि सम्मिलित थे। किसी एक भाग में इन छः अंगों का विवरण उपलब्ध न था।

उपरोक्त दोनों सौ-सौ श्लोकों के संग्रह ग्रंथ को मिलाने पर ही गोरक्षशतकम् के छः अंग पूरे हो रहे थे। जो ग्रंथ के मूल मान्यता को पुष्ट करता था। नाम से ही स्पष्ट है गोरक्षशतकम् सौ श्लोकों का एक ग्रंथ जिनमें योग के छः अंग समावेशित हो। इस शोधकार्य में इंडिया ऑफिस मनुस्क्रिप्ट लायब्रेरी, लंदन से एक सौ एक श्लोकों की गोरक्षशतकम् की हस्तलिपि प्राप्त हुई यह बहुत बड़ा आधार था। जिसमें हठयोग के छः अंगों का विस्तार था। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला गया कि महायोगी गोरक्षनाथ की प्रसिद्ध रचना गोरक्षशतकम् है, एवं जिसका विस्तार रूप गोरक्षपद्धति है जो की दो सौ श्लोकों में विस्तारित था जिनमें गोरक्षशतकम् के छः अंगों का विस्तार था ।

## आसन :-

आसनों का अभ्यास रोगों को नष्ट करता है। चौरासी आसनों में से सिद्धासन और पद्मासन विशिष्ट हैं। सिद्धासन में दृष्टि को भ्रूमध्य में एवं पद्मासन (बद्धपद्मासन) में ठुड्डी को सीने से लगाकर दृष्टि नासिकाग्र पर लगाकर रखने के निर्देश हैं।

## नाड़ियाँ :-

नाभि के नीचे और लिंग प्रदेश के ऊपर नाड़ियों का उद्गम स्थान (मूलस्थान) है। इस नाड़ी कंद के ऊपर कुण्डलिनी स्थित है, जो अधोमुखी होकर सुषुम्ना के मुखद्वार को बंद कर पड़ी हुई है। मूल स्थान से बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई है। इनमें से दस नाड़ियाँ प्रमुख हैं, इनमें गान्धारी, हस्तिजिह्वा क्रमशः बायीं और दाहिनी आँख तक, पूषा बायें और यशस्विनी दाहिने कान में अलम्बूषा मुख में पायी जाती है। कुहू, शंखिनी क्रमशः लिंग प्रदेश व मूल स्थान में, इड़ा और पिंगला क्रमशः शरीर के बायीं और दाहिनी ओर तथा दोनों के मध्य सुषुम्ना स्थित है। यही इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियों में विशिष्टि है। इनके देवता क्रमशः चंद्र, सूर्य और अग्नि है।

## प्रमुख वायु और उपवायु :-

सम्पूर्ण शरीर में प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान और इनके उपवायु नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय हैं। इनमें भी प्राण और अपान प्रमुख माने गये हैं। सामान्य अवस्था में ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, जिससे जीव जन्म-मरण में पड़ा रहता है परंतु योगी द्वारा प्राणायाम से इन दोनों को मिलाया जाता है। जिससे ये जीती हुई प्राणवायु सुषुम्ना में प्रवेश कर कुण्डलिनी को जागृत करती है।

## प्राणायाम :-

वायु ही प्राण है और उसका नियंत्रण ही आयाम। प्राणायाम का अभ्यास पूरक, कुम्भक रेचक से पूरा होता है। स्थिर आसन में बैठकर चंद्रमण्डल में (तालुमूल) ध्यान करते हुए बायीं नासिका से श्वास लेना (पूरक) क्षमतानुसार प्राण को रोकना (कुम्भक) दाहिनी नासिका से प्रश्वास कर (रेचक) करना और पुनः दाहिनी से श्वास लेने, रोकने और छोड़ते समय नाभिमण्डल में सूर्य का ध्यान करने के निर्देश हैं। प्राणायाम मात्राओं के अनुसार अधम, मध्यम और उत्तम तीन

प्रकार के हैं जो बारह, चौबीस एवं छत्तीस मात्रा वाला है। इनमें क्रमशः शरीर से पसीना, कम्पन तथा देह भूमि से ऊपर उठ जाता है।

## चक्र :-

सप्त चक्रों का उल्लेख करते हुए आधार चक्र- गुदा प्रदेश में, स्वाधिष्ठान- लिंग क्षेत्र में, मणिपूर- नाभि प्रदेश में, अनाहत- हृदय में, विशुद्धि- कंठ में, आज्ञा- भ्रूमध्य में एवं महापद्म- ब्रह्मरंध्र में स्थित है।

## मुद्रा और बंध :-

इस ग्रंथ में महामुद्रा, खेचरी, नभोमुद्रा, उड्डियान, जालंधर, मूलबंध और विपरीतकरणी मुद्राओं का उल्लेख है। उपरोक्त सभी अभ्यास कुण्डलिनी शक्ति को उर्ध्वगति प्रदान कर चक्रों को जागृत करने में सहायक हैं।

## प्रत्याहार :-

सोममण्डल (तालुमूल) से अमृत के स्त्राव को नाभि (सूर्यमण्डल) में आने से रोकना ही प्रत्याहार है। इस अभ्यास में सिर नीचे और पैर को ऊपर रखकर स्थिर रहना ही प्रत्याहार है।

## धारणा :-

**पंचमहाभूतों की शरीर के विशेष अंगों में उनके तत्त्व, बीजमंत्र, रंग, देवता एवं उनसे प्राप्त परिणाम आदि के साथ धारणा का निम्नवत है-[50]**

| क्र. | तत्त्व | धारणा स्थान | तत्त्व का आकार | बीजमंत्र | रंग | धारणा का समय | देवता | परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 01. | पृथ्वी | हृदय | चतुष्कोण | लं | पीत | 5घटिका | ब्रह्मा | पृथ्वी तत्त्व विजय |

[50] दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग. (संपादित). गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. लोनावला : कैवल्यधाम,स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2013.पृ.59-62

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 02. | जल | कण्ठ | अर्द्धचंद्राकार | वं | श्वेत | 5घटिका | विष्णु | विष का पाचन |
| 03. | अग्नि | तालु प्रदेश | त्रिकोणाकार | रं | रक्तवर्ण | 5घटिका | रूद्र | अग्नि तत्त्व विजय |
| 04. | वायु | भ्रूमध्य | गोलाकार | यं | धूम्रवर्ण | 5घटिका (2 घंटे) | ईश्वर | आकाश गमन |
| 05. | आकाश | ब्रह्मरंध्र | निराकार | हं | वर्णहीन | 5घटिका | सदाशिव | मोक्ष प्रदायक |

## ध्यान :-

मन का एक तत्त्व पर स्थिरता ही ध्यान है यह जो सगुण और निगुर्ण दो प्रकार के हैं। जिसमें वस्तु के रंग, गुण, आकार आदि का आधार लिया जाता है, वह सगुण ध्यान तथा जिसमें सभी आधार विलीन हो जाते हैं, वह निगुर्ण ध्यान हो जाता है। देहस्थ चक्रों पर ध्यान के साथ-साथ दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर रखकर आधार चक्र पर तपे हुए सोने का ध्यान, स्वाधिष्ठान चक्र पर मणि के रंग का ध्यान, मणिपूर चक्र पर प्रातःकाल उदित सूर्य का ध्यान, अनाहत चक्र पर विद्युत सदृश रंग का ध्यान, विशुद्धि चक्र में अमृत स्त्रोत का ध्यान, लम्बिका पर अमृत स्त्राव का ध्यान, आज्ञा चक्र में मोती सदृश रंग का ध्यान, ब्रह्मरंध्र पर शांत शिव का ध्यान। इन अभ्यासों से योगी को भय व मृत्यु से मुक्ति मिलती है। चित्त आकाश के समान होकर आनंदमय हो जाता है।

## समाधि :-

मन का इन्द्रियों व तन्मात्राओं से अलग होकर स्वयं में स्थित होना ही समाधि है अथवा प्राण का क्षीण होकर मन के साथ विलीन हो जाना ही समाधि है। समाधि सिद्धि योगी पर मंत्र, शस्त्र आदि का कोई प्रभाव नहीं होता। यह

जीवात्मा और परमात्मा की एकता की स्थिति है, जिससे समस्त कर्म बंधनों से मुक्ति मिलती है। समस्त भेद समाप्त होकर आकाश के समान  अद्वैत स्थिति की प्राप्ति होती है।

## 1.4.4 वसिष्ठ संहिता

वसिष्ठ संहिता हठयोग का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो पुत्र शक्ति और पिता वसिष्ठ के मध्य संवाद रूप में प्रस्तुत है।

**प्रथम अध्याय :-**

मुमुक्षु शक्ति के द्वारा पिता वसिष्ठ से संसार के समस्त दुःख एवं अज्ञानता को दूर करने वाले ज्ञान एवं मुक्ति के उपायों को पूछे जाने पर वसिष्ठ के द्वारा शक्ति को

सनातन उपाय बताते हुए कहा गया कि मैंने भी यही प्रश्न ब्रह्मा से किया था। तब ब्रह्मा जी ने वेदों में उल्लेखित प्रवर्तक एवं निवर्तक दो प्रकार के कर्मों का उपदेश किया था, जिसमें प्रथमतः संकल्प व कामना युक्त कर्म होने से बंधन का कारण एवं दूसरा संकल्प एवं कामना से रहित होने से मुक्ति का कारण है। मुक्ति की इच्छा रखने वालों को निवर्तक कर्म करना चाहिए।

वसिष्ठ ने योग एवं ज्ञान में भेद नहीं मानते हुए कहा है कि योगात्मक ज्ञान ही मुक्ति की ओर ले जाने में सक्षम है। जिनके अंतर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि नामक अष्टांग योग का उल्लेख है। इनमें से आरम्भ के चार बहिरंग व बाद के चार अंतरंग कहलाते हैं। जो सभी प्रकार के धर्मों में श्रेष्ठ है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, धृति (अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में चित्त की स्थिरता) क्षमा, दया, आर्जव (धर्म शास्त्रों पर विश्वास व मन, वाणी एवं कर्म में समानता), मिताहार एवं शौच मिलाकर दस यम।

तप, सन्तोष, आस्तिकता (धर्म, अर्धम में विश्वास) दान, ईश्वरपूजा, सिद्धान्त श्रवण, लज्जा (निन्दित कर्म का त्याग), मति (शास्त्र एवं गुरू आदेश का पालन),

जप, व्रत मिलाकर दस नियम हैं। स्वस्तिकासन, गोमुखासन, पद्मासन, वीरासन, सिंहासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्म आसन, भद्रासन, मुक्तासन मिलाकर आसनों की संख्या दस है। यम, नियम एवं आसन में स्थिरता के बाद प्राणायाम के पूर्व नाड़ी शोधन किये जाने का निर्देश है।

## द्वितीय अध्याय :-

शक्ति के द्वारा शरीर, मन, वायु आदि को जानने के उद्देश्य से जिज्ञासा करने पर वसिष्ठ ने प्रत्येक जीव के शरीर की लम्बाई उसके छियानवे अंगुल माप का बताते हुए शरीर के पृष्ठभाग में बहत्तर हजार नाड़ियों। शरीर से बाहर, बारह अंगुल परिमाप तक आवागमन करने वाले प्राण लिंग से दो अंगुल नीचे एवं गुदा से दो अंगुल ऊपर तपे हुए सोने के समान ज्योर्तिमय स्थान देहमध्य। देहमध्य से नौ अंगुल ऊपर अण्डे के समान आकृति वाला कंद स्थान। चक्रों का इसी कंद मध्य से उद्गम आदि का उल्लेख किया है। इसी कंद के नाभि में मूलचक्र का स्थान है, जहाँ कुण्डलिनी स्थित है जो सुषुम्ना के मार्ग को बंदकर आठ फेरे लगाकर नाभि के ऊपर, नीचे एवं चारों ओर विस्तृत है। वर्णमाला के अ से क्ष तक के सभी वर्ण इसी कुण्डलिनी में स्थित हैं।

## नाड़ियाँ :-

योगाभ्यास से अपान वायु ऊपर उठकर अग्नि तत्त्व के साथ संयुक्त होती है। जिससे कुण्डलिनी जागृत होती है। कंद स्थान के मध्य में ब्रह्मरंध्र में सुषुम्ना विद्यमान है यही मोक्षमार्ग है। जो देहरूपी संसार का आधार है। यह मेरूदण्ड में मूल से लेकर सिर तक विस्तारित है जिसके चारों ओर समस्त नाड़ियाँ फैली हुई हैं। शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं इनमें सुषुम्णा, इड़ा, पिंगला, सरस्वती, कुहू, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, विश्वोदरा, वारूणी, पयस्विनी, शङ्खिनी, अलम्बुषा मिलाकर चौदह प्रधान हैं। इनमें से सुषुम्णा, इड़ा एवं पिंगला प्रमुख हैं। इन तीनों में भी सुषुम्णा सर्वोत्तम है। सुषुम्णा के बायीं ओर इड़ा नाड़ी स्थित है। इड़ा नाड़ी में चन्द्र तत्त्व विद्यमान होने के कारण इसे चन्द्र कहा गया है। इसकी प्रकृति तमस प्रधान होने के कारण रात्रि की भी संज्ञा दी गयी है।

सुषुम्णा के दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी स्थित है। पिंगला नाड़ी में सूर्य तत्त्व विद्यमान होने के कारण इसे सूर्य कहा गया है। सूर्य के कारण इसकी प्रकृति रजस प्रधान है। इड़ा और पिंगला दोनों क्रमशः रात और दिन के प्रतिनिधि होने से काल के प्रतीक हैं वही मध्य में स्थित सुषुम्णा काल का भक्षण करने वाली मोक्ष प्रदायिका है। जो नाड़ियों में संचरण करते हैं, वे प्राण हैं, जिनमें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय शामिल हैं। इनमें से प्रथम पाँच प्रमुख हैं।

## प्राण :-

कंद के नीचे विद्यमान रहते हुए नासिका, मुख, हृदय, नाभि मण्डल एवं पाँव के अँगूठे तक प्राण का संचार करता है। अपान, नाभिमूल, अण्डकोश, गुदा, ऊरू, जंघा, पेट, कमर स्थानों में संचरित होता है। व्यान, कान, आँख, नाक, गला, गर्दन में संचरण करता है। उदान, शरीर के सभी जोड़ों, पांव, और हाथों में संचरण करता है। समान, जठराग्नि के साथ मिलकर अन्नरस का सम्पूर्ण शरीर में संवहन करता है। यह शरीर कि समस्त नाड़ियों में समान वायु व्याप्त रहता है। नाग के द्वारा डकार लाने, कूर्म के द्वारा पलक झपकने, कृकरके द्वारा छींकने का कार्य, देवदत्त के द्वारा जम्हाई, धनंजय के द्वारा शरीर में शुष्कता का कारण हैं, ये सभी उप प्राण कहलाते हैं।

## नाड़ी शुद्धि का अभ्यास :-

नाड़ी शुद्धि के लिए पवित्र स्थान नदी के समीप, प्राकृतिक वातावरण में पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुखकर दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिनी नासिका को बंदकर नासिका के अग्रभाग में ज्योत्स्ना जाल युक्त चन्द्रमा की कल्पना कर, मन से बिन्दु मध्य को देखते हुए भ्रूमध्य में वं बीजमंत्र का ध्यान करते हुए बायीं नासिका से पूरक करने के उपरान्त नाभि में ज्वालाओं से युक्त अग्नि की कल्पना करते हुए रं बीजमंत्र का ध्यान करते हुए दाहिनी नासिका से रेचन करें। उपरान्त नाभि में रं बीजमंत्र का ध्यान करते हुए दाहिनी नासिका से पूरक करने के उपरांत बायीं नासिका से रेचन करते हुए वं बीजमंत्र का ध्यान करना चाहिए।

इसका अभ्यास तीन चार वर्ष अथवा तीन-चार महिनें तक दिन में प्रातः मध्यान्ह एवं सायंकाल मिलाकर तीन बार करने से शरीर में हल्कापन, देह कांति, जठराग्नि की प्रदीप्ति, अन्तःनाद का सुनाई देना आदि लक्षण प्रकट होने लगते है। अतः उपरोक्त लक्षणों की अनुभूतियों तक नाड़ीशोधन का अभ्यास साधक को करना चाहिये।

## तृतीय अध्याय :-

प्राण और अपान का संयोग ही प्राणायाम है। इसकी सिद्धि पूरक, कुम्भक एवं रेचक से पूर्ण होती है। पूरक, कुम्भक एवं रेचक ओंकार के तीन वर्ण अ, उ, म से अभिन्न  है। यही ओंकार ही वेदों में स्वर के रूप में एवं वेदान्त के आधारतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित है। तीनों ही जगत के सृजनकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता हैं। पूरक करते समय रक्त के समान वर्ण की हंस में विराजित एवं दण्ड धारण किए हुए सोलह वर्षीय युवती (बाल गायत्री) अकार जिसका वर्ण शुक्ल है जो गरूड़ में विराजित एवं चक्र धारण किये हुए युवती रूप उकार एवं  जिसके तीन नेत्र है व वर्ण शुक्ल है। शूल धारण करने वाली वृषभ में जो विराजित है ऐसे वृद्धा रूप मकार का ध्यान करना चाहिये।

## प्राणायाम :-

पूरक, कुम्भक एवं रेचक से पूर्ण होता है। सोलह मात्रा तक बायीं नासिका से पूरक, चौंसठ मात्रा तक कुम्भक एवं बत्तीस मात्रा तक दाहिनी नासिका से रेचक कर दायी नासिका से पूरक, कुम्भक और रेचक क्रमशः सोलह, चौंसठ और बत्तीस मात्रा तक करना चाहिये। इस प्रकार दोनों ओर मिलाकर प्रतिदिन सोलह बार इसका अभ्यास करना चाहिये। इनके अभ्यास से देह में शरीर से पसीना आना। शरीर में कम्पन महसूस होना। शरीर का भूमि से ऊपर उठ जाने के लक्षण दिखलाई देते हैं। जो क्रमशः अधम, मध्यम व उत्तम लक्षण हैं। सहित और केवल को मिलाकर कुम्भक के दो प्रकार हैं। जब प्राणायाम का अभ्यास पूरक, कुम्भक एवं रेचक के साथ किया जाता है, तब उसे सहित एवं सहित कुम्भक के निरन्तर अभ्यास से साधक के अन्दर पूरक एवं रेचक की गति शांन्त हो जाती है। तब

बिना पूरक एवं रेचक के बिना साधक में वायु को धारण करने की क्षमता आ जाती है। उसे केवल कुम्भक कहा गया है, अतः साधक को केवल कुम्भक सिद्ध होते तक सहित कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये। जिससे मन नियंत्रित होता है। किसी विषय में लगाने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है। बुढ़ापा के लक्षण समाप्त हो जाते है। मृत्यु भय दूर हो जाता है।

नादोत्पत्ति एवं नाद क्रम, उपरोक्त अभ्यास के उपरान्त साधक जब दोनों हाथों से आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों को बंदकर स्थिर बैठता है, तब सुस्पष्ट नाद सुनाई देता है। जो योगी को मूलद्वार से लेकर मस्तक पर्यन्त उठी हुई कमल नाल के समान सुष्म्णा में आरम्भ में शंख, बादल गर्जन आदि की ध्वनियाँ सुनाई देती है। प्राणजय होने पर मन के साथ वायु सुषुम्णा के मूलद्वार में प्रवेश कर जाता है, तब साधक को झरने से गिरते हुए जल की ध्वनि सुनाई देती है, उस समय योगी को आनंदानुभूति होती है।

कुण्डलिनी (नाग) का जागरण, प्राणायाम अभ्यास पूरा हो जाने के बाद साधक को एकान्त स्थान का चयन कर बायें पैर की ऐड़ी को सीवनी में रखकर एवं दाहिने पैर की ऐड़ी को बायें पैर की एड़ी के ऊपर रखकर कमर गर्दन को सीधा कर दाहिने पैर के टखने को देखते हुए ओंकार मंत्र का उच्चारण करना चाहिये। जिससे अपान वायु नियंत्रित होकर ऊपर उठता हुआ कंद स्थान में स्थित प्राण एवं अग्नि के साथ संयुक्त होकर चलायमान होता है। उस समय योगी को सुषुम्णा के ब्रह्मरन्ध्र में ओंकार का ध्यान करते हुए ज्योति युक्त प्राण को मस्तकाकाश में स्थिर करना चाहिए। उस समय योगी को प्राण त्यागने की इच्छा होने पर मस्तकाकाश में स्थित ब्रह्मरंध्र को भेदकर आकाशान्तर्गत महाप्राण में मिला देने से योगी परमानंद स्वरूप में लीन होकर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

इन्द्रियाँ स्वभावतः विषयों में रमण करती रहती हैं, इन इन्द्रियों को विषयों से लौटाकर स्व में केन्द्रित करना ही प्रत्याहार है। पैर के अँगूठे, दोनों टखने, दोनों जंघाओं के मध्य, दोनों घुटनों के नीचे का भाग, दोनों पैरों में घुटनों एवं जंघा के मध्य, गुदा मूल, शरीर का मध्य, लिंगमूल, नाभिमूल, हृदय, कण्ठकूप,

तालुमूल, नासिका मूल, आखों के मध्यबिन्दु, भौहों के मध्य, ललाट, मूर्धा (ब्रह्मरंध्र) उपरोक्त अट्ठारह मर्म स्थानों में से प्राण को क्रमशः अँगूठे से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाना ही उत्तम प्रत्याहार है। इस प्रकार का अभ्यासी योगी ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है।

## चतुर्थ अध्याय :-

हृदय में अन्तःकाश के साथ बाहर में व्याप्त बाह्याकाश का चिंतन धारणा है। पंचतत्त्वों के पंचवर्णों की धारणा एवं इन पंचतत्त्वों में उनके पंचदेवताओं का चिंतन को भी धारणा की संज्ञा दी गयी है। देह में पंच महाभूतों का स्थान उनके बीज मंत्र, वर्ण एवं देवताओं की धारणा निम्नवत हैं[51]-

| क्र. | पंचमहाभूत | देह में स्थान | बीज मंत्र | देवता |
|---|---|---|---|---|
| 01. | पृथ्वी | पैर से घुटने तक | लकार | ब्रह्मदेवता |
| 02. | जल | घुटने से गुदा तक | वकार | विष्णु देवता |
| 03. | तेज | गुदा से हृदय तक | रकार | रूद्र देवता |
| 04. | वायु | हृदय से भौहों तक | यकार | महत्तत्त्व |
| 05. | आकाश | भौहों से कपालान्त तक | हकार | अव्यक्त परमात्मा |

पैर से घुटने तक लकार बीज मंत्र, ब्रह्मदेवता के साथ प्राण वायु की पाँच घटिका (दो घण्टे) तक धारणा करने से पृथ्वी तत्त्व पर अधिकार प्राप्त होता है। इसी प्रकार जल, तेज, वायु एवं आकाश स्थानों पर उनके बीज मंत्रों एवं देवताओं के साथ प्राण की धारणा करने से क्रमशः सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं। साधक को अग्नि से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। आकाश में विहार करने की

[51] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग, संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009. पृ.100-103

शक्ति आ जाती है। आकाश स्थान में प्राण की धारणा से योगी में मलमूत्र की अल्पता एवं जीवन मुक्त अवस्था आ जाने से सभी प्रकार के दुःख दूर हो जाते हैं।

अपने मन में आत्म स्वरूप (निज स्वभाव) का चिंतन ही ध्यान है। यह जगत की ओर होने पर बंधन एवं आत्म स्वरूप होने पर मोक्ष का उपाय बनता है। योगी को अपने देह के विशेष स्थानों जैसे, नाड़ी संस्थानों, मर्मस्थानों एवं वायु स्थानों पर ध्यान लगाना चाहिए। निर्गुण और सगुण दो प्रकार के ध्यान का उल्लेख है। योगी ब्रह्म के सदृश अपने को सर्वत्र, आकाश के समान, विराट, सर्वसाक्षी आदि और अन्त से रहित, स्थिर, इन्द्रियों से परे, जिसका किसी के साथ तुलना नहीं किया जा सकता, पूर्णानंद, अमूर्त, सभी का साक्षी आदि निरालम्ब ब्रह्म का चिंतन ही निगुर्ण ध्यान है। अष्टदल युक्त हृदयकमल में पीत वस्त्र धारण किये हुए, चार भुजाओं वाले शंख, चक्र, गदाधारी। जिनका मुख पूर्णिमा के चांद की तरह है। जिनके नेत्र कमल पत्र के समान गुलाबी, देह स्फटिक मणि के समान निर्मल, जिनके चारों ओर प्रकाश की दिव्य आभा निकल रही है। उपरोक्त गुणों से युक्त सभी प्राणियों के हृदय में विद्यमान ईश्वर मैं ही हूँ। इस प्रकार मन में निज स्वरूप का चिंतन सगुण ध्यान है।

हृदय कमल में दिव्य प्रकाश युक्त ज्योति के समान स्वरूप वाली तेज, जिसका नाल ज्ञान रुप है। जिसका कंद महत तत्त्व है। जो सम्पूर्ण संसार के कारण स्वरूप कभी न बुझने वाली अग्निशिखा के मध्य, परमेश्वर मैं ही हूँ। देहमध्य में स्थित कंद से दोनों भौहों के मध्य तक उठा हुआ अव्यक्त स्वरूप, सभी का कारण रूप आत्मा मैं ही हूँ। यह ध्यान सभी में उत्तम कहा गया है। अष्ट कमल दल युक्त हृदय में अपने को एक बाल रूप में चिंतन करते हुए सिर में स्थिति, सोलह कमल दलयुक्त पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से घिरा हुआ शिरसस्थ कमल से निरंतर हो रहे अमृत का स्राव में पूर्णरूप से भिगा हुआ पूर्ण तृप्त अक्षय परमात्मा मैं ही हूँ। सूर्यमण्डल में पद्मासन में स्थिति, जगत के कारण रूप आत्म पुरूष जिसके नख, बाल, दाढ़ी आदि सम्पूर्ण शरीर सोने के समान है। अभयदाता, सर्वज्ञ, सर्व सम्पन्नता से परिपूर्ण सर्व जगत् के साक्षी मैं ही हूँ। उपरोक्त सगुण ध्यान से योगी

छः महिने में मृत्यु को जीतने वाला हो जाता है, एवं एक वर्ष में जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान के उपरान्त समाधि घटित होती है। जीवात्मा एवं परमात्मा की समता (अभेदावस्था) ही समाधि है। साथ ही आत्मा में सर्वज्ञता, साक्षीभाव, सर्वव्यापक, इन्द्रियादियों से परे ब्रह्म के गुणों के ध्यान से हृदयकमल स्थान में आत्मा में वासुदेव परमात्मा का ध्यान से, हृदय में अग्निशिखा के समान ज्योतिमय ईश्वर के ध्यान से, हृदय में आत्मा के पुरूषाकार ध्यान से, भौहों के मध्य पीतवर्ण ईश्वर के ध्यान से, हृदय में सोने के समान देह वाले हरि के ध्यान से विभिन्न समाधियाँ घटित होती है।

अतः वसिष्ठ द्वारा पुत्र शक्ति को उपरोक्त समाधि का ज्ञान देते हुए कहा है कि हे शक्ति फलासक्ति से रहित होकर उपरोक्त अभ्यासों को इस शरीर के अन्त होने तक करना चाहिये।

## पंचम अध्याय :-

पंचम उपदेश में पुत्र शक्ति के द्वारा पिता वसिष्ठ से प्रश्न किया गया है कि यदि आत्मा अविनाशी है तब जन्म और मृत्यु किसकी होती है? शरीर के न रहने पर वह आत्मा कहाँ होती है ? वसिष्ठ के अनुसार आत्मा देहावरण युक्त (देहात्मक) होने पर जीव कहलाता है। वही मृत्यु और जन्म को ग्रहण कर शुभाशुभ कर्मों के कारण बने संस्कारों को भोगने के लिए जन्म लेता है। जन्म और मृत्यु का कारण भ्रान्तियाँ हैं, जो जीव को बन्धन में ड़ालती है। एक ही आत्मा सभी जीवों में निवास करती है किन्तु भ्रान्तियों के कारण वे सभी पृथक-पृथक दिखलाई पड़ती है।

चेतना की, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति व तुरिया चार अवस्थायें कही गयी है। जागृत अवस्था में देहधारी इन्द्रियों से विषयों का उपभोग करते है। स्वप्न में मन से भोग करते है। सुषुप्ति में आत्मा अपने निज स्वरूप में स्थित होती है एवं तुरीयावस्था में आत्मा संसार भाव से मुक्त हो जाता है। शरीर के नहीं रहने पर आत्मा कारण शरीर में तेजोरूप अथवा वायुरूप में स्थित होती है। कर्मसंस्कार के

आवरण रूपी भोग के क्षीण होने पर आत्मा की शुद्धि होती है। जिसके उपरांत ज्ञान संभव होता है।

आत्मज्ञान का सशक्त माध्यम ध्यान है। सभी जीवों में देहधारी, देहधारियों में बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान, विद्वानों में दृढ़बुद्धिवाले, दृढ़बुद्धिवालों में क्रियावान, क्रियावानों में ब्रह्मवित् क्रमशः श्रेष्ठ हैं। सामान्यतः देहधारियों में बायीं और दाहिनी नासिका से श्वास-प्रश्वास का गमनागमन होते रहता है। किन्तु इससे परे किसी बिरले योगी के देह में गमनागमन से परे सुषुम्णा जागृत रहती है। अतः सुषुम्णा को जागृत करने का प्रयास करना चाहिये।

प्राण का बारह राशियों के साथ सम्बन्ध, मेष, वृषभ आदि को मिलाकर इनकी संख्या बारह है। प्रत्येक राशि में पंच तत्त्वों का निवास है। उन राशियों के स्वामियों की प्रकृति उन तत्त्वों के अनुसार है। जैसे, वायुतत्त्व के साथ गुरू एवं राहु, अग्नितत्त्व के साथ शुक्र एवं मंगल, पृथ्वीतत्त्व के साथ बुध व रवि, चन्द्र एवं शनि, जलतत्त्व के साथ होते हैं। आकाशतत्त्व के साथ किसी भी राशि का सम्बन्ध नहीं होता है। उपरोक्त राशियों का सम्बन्ध प्राण है। अतः साधक को इस जगत के सभी कार्यों के पूर्व नासिका से प्राण के प्रवाह, राशियों में पंचतत्त्वों की स्थिति का परीक्षण कर कार्य सम्पादित करने चाहिये। अतः बायीं नासिका के चलने पर सभी तरह के शुभकार्य, विवाह एवं यात्रा आदि कार्य संपादित किया जाना चाहिये। वही भोजन, युद्ध, धनसंग्रह, मैथुन आदि दाहिनी नासिका के चलने पर संपादित करने का निर्देश है।

## षष्ठ अध्याय :-

शक्ति के जिज्ञासा पर वसिष्ठ के द्वारा मृत्यु से छुटकारा पाने के विभिन्न उपायों का उपदेश षष्ठ उपदेश में है। मृत्यु के काल को जानकर योगी को निर्भय, निर्द्वंद्व कामानाओं से रहित होकर चित्त को स्थिर कर योग के द्वारा अपनी चेतना को परमात्म स्थान अन्तराकाश में लगाकर तारक मन्त्र, ओंकार का जाप करना चाहिये। यही ब्रह्म है। जिससे योगी मृत्यु भय से मुक्त होकर ब्रह्मवित् हो जाता है।

वसिष्ठ ने विभिन्न मृत्युंजयी उपायों का उपदेश किया है। जिसमें सर्वप्रथम ओंकार की साधना है। वह ओंकार सूक्ष्म सूर्य के समान बिन्दु रूप वाला, संहारक के नाम से जाना जाता है। जिसे प्रतीक रूप में म् भी कहा गया है। यह सम्यक् चित्त वाले योगियों के हृदय में बिन्दु के रूप में अनुभव होता है। इसी बिन्दु के ऊपर ही स्फटिक के समान सुन्दर नाद का उदय होता है। उसी स्थान में निर्मुक्त, पीले रंग के आवरण से आवृत्त जिनकी आभा नीलवर्ण युक्त, भावाभाव से परे अन्तः शक्ति के स्वामी रूद्र का स्थान है। उस रूद्र को प्राप्त करने के लिए ओंकार मन्त्र साधन रूप है।

सांख्य योगियों एवं वेदान्तियों ने भी उसी रूद्र को अनुभव किया है। वहीं रूद्र गृहस्थों एवं योगियों आदि के मुक्ति के लिए उपाय है। अतः समस्त कामनाओं का त्यागकर निर्भय होकर उस रूद्र का ध्यान करते हुए ओंकार मन्त्र का जप करने से योगी मृत्यु को टाल लेता है। गायत्री मन्त्र अथवा प्रणव मन्त्र के जाप से प्राण संयमित कर समस्त अंगों में उस शक्ति को स्थापित करने से आत्मशुद्धि होती है। तभी जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्था की प्राप्ति संभव हो पाता है।

कंदस्थान (नाभि) से विकसित हृदयकमल (अष्टदल) में महादेव, पंचमुखवाला, नील कांन्तिवान आदि संज्ञाओं के रूप में प्रसिद्ध परम पुरूष रूद्र विराजित है। जिसके ऊपर सिर में स्थित सोलह कमलदल युक्त चन्द्रविकिरणों से अमृतरस का स्राव हो रहा है। अमृतरस से प्लावित हो रहे परमपुरूष का चिंतन त्र्यंबक मन्त्र के साथ करने से योगी मृत्युंजयी हो जाता है।

परमानंद से परिपूर्ण अपनी आत्मा का सोऽहं मन्त्र से साधना करने वाला मृत्यु को टाल देता है। यह सोऽहं की साधना मोक्ष की इच्छा रखने वालों के लिए संजीवनी के समान है। अपने हृदय में जगत् के नाथ, पीतवस्त्रधारी, चर्तुभुज हरि के ध्यान से भी योगी मृत्यु को टाल देता है।

चित्त की शून्यता ही समाधि है। जो ध्यान आदि के क्रम उपरांत घटित होती है। इसे ही आत्मा एवं परमात्मा में अभेदता की संज्ञा दी गयी है, जो मृत्यु को टाल देती है। तब योगी स्व में विराजित आत्मा में परमात्मा को देखता है, वही

वास्तविक द्रष्टा है, वही आत्मा का उपासक भी है। उपरोक्त उपायों से ही काल भय अथवा मृत्यु से मुक्त हुआ जा सकता है।

## 1.4.5 हठप्रदीपिका

यह अति महत्त्वपूर्ण रचना है। जो हठयौगिक ग्रंथों में बहुप्रसिद्ध है। इसके रचनाकार योगी स्वात्माराम है। इस ग्रंथ की अभी तक कैवल्यधाम लोनावला के द्वारा एक सौ एक हस्तलिपियों का संकलन किया गया है। जिनमें सबसे ज्यादा हस्तलिपियाँ भारत इतिहास संशोधन मण्डल, पुणे से प्राप्त हुई है। जिनकी संख्या अट्ठारह है। विभिन्न विद्वानों के मतों एवं प्राप्त हस्तलिपियों के आधार पर इस ग्रंथ की रचना चौदहवीं शताब्दी स्वीकार की जाती है। अभी तक ज्ञात सबसे पुरानी हस्तलिपि नेशनल लायब्रेरी कलकत्ता में रखी हुई है जिस पर 1629 ई. उल्लेखित है। यह मुख्यतः आसन, कुम्भक (प्राणायाम) मुद्रा व नादानुसंधान नामक चार उपदेशों में विभक्त है। साथ ही पंचम उपदेश में यौगिक अभ्यासों में किंचित त्रुटियों के कारण उत्पन्न दोषों के शमन के लिए यौगिक व आयुर्वेदिक उपचार का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

### प्रथम उपदेश :-

आदिनाथ (शिव) ही हठयोगविद्या के प्रवर्तक है जिसने राजयोग की प्राप्ति के लिए सीढ़ीवत् हठविद्या का उपदेश किया है। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि इस विद्या के जानकार थे। इस ग्रंथ का उद्देश्य विभिन्न प्रकार के भ्रांतियों को दूर कर राजयोग की प्राप्ति करना है। इस योगविद्या के विभिन्न सिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्र, शाबर, आनंद, भैरव चौरंगी, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, विलेशय, सुरानंद, बुद्ध नागार्जुन आदि प्रमुख हैं। हठयोगियों के रहने के स्थान, साधनाओं में प्रगति के लिए साधक तत्त्वों में उत्साह, साहस, धैर्य, तत्त्वज्ञान, निश्चय और जनसंघ का परित्याग एवं बाधक तत्त्वों में अत्याहार, अधिक प्रयास, प्रजल्प, नियम आग्रह, जनसंघ व इन्द्रियों की चंचलता शामिल हैं।

आसन, हठयोग का प्रथम अंग है। इसके अंर्तगत स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, उत्तानकूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन,

पश्चिमतानासन, मयूरासन, शवासन, सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन मिलाकर पन्द्रह आसनों की चर्चा है। जिनमें सिद्धासन,पद्मासन, सिंहासन व भद्रासन प्रमुख हैं। इनमें से भी सिद्धासन श्रेष्ठ है। यम में मिताहार व नियम में अहिंसा उत्तम है। योगाभ्यासी को स्निग्ध, मधुर एवं चावल, गेहूँ, गोदूध, सोठ, मिसरी, रूचिकर, मधुर व पाँच प्रकार के शाक शिव को अर्पित कर आधा पेट लेना चाहिये एवं एक चौथाई अंश जल एवं एक चौथाई वायु के लिए छोड़ देना चाहिये। इसे ही मिताहार कहा गया है जो योगाभ्यासियों के लिए पथ्य एवं पुष्टिकारक है। वही अम्ल, लवण, कटु आदि अपथ्य होने के कारण त्यागने योग्य है। गुरू के मार्गदर्शन में वस्त्र आदि आडम्बरों से रहित, चिंतामुक्त होकर साधक को योगाभ्यास करना चाहिये। आलस्य रहित होकर उपरोक्त योगाभ्यासों को करने से युवा, वृद्ध, रोगी आदि सिद्धियों को प्राप्त कर सकते हैं।

## द्वितीय उपदेश :-

आसन में दृढ़ होकर मिताहार का सेवन करते हुए गुरू के निर्देशों के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। प्राण और चित्त का गहरा संबंध है। एक के नियंत्रित होने पर दूसरा अपने आप नियंत्रित हो जाता है।अतः योगियो ने प्राणायाम के अभ्यास से चित्त को नियंत्रित करने का उपदेश किया है। प्राण ही आयु है। प्राणायाम के पूर्व नाड़ियों की मलिनता को दूर करने के लिए नाड़ियों का शोधित करने का विधान है।

प्रथमतः बायीं नासिका से पूरक कर जालंधर बंध के साथ प्राण को अपनी क्षमतानुसार रोके श्वास छोड़ने की संवेदना होने पर गुदा एवं नाभिप्रदेश को सिकोड़ते हुए जालंधर बंध को मुक्त कर दाहिनी नासिका से श्वास छोड़े। उपरांत दाहिनी नासिका से श्वास लेकर जालंधर बंध के साथ कुम्भक करे एवं श्वास छोड़ने की संवेदना होने पर गुदा मार्ग एवं नाभि प्रदेश को सिकोड़कर जालंधर बंध को मुक्त करते हुए बायी नासिका से श्वास छोड़े। इस प्रकार योगाभ्यासी को उपरोक्त अभ्यास प्रातः, दोपहर, सायंकाल एवं अर्द्धरात्रि मिलाकार चार बार करना चाहिये, जिससे तीन महीने से कुछ थोड़े ज्यादा समय में देहस्थ समस्त नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है।

देहस्थ कफ एवं स्थूलता की अधिकता में इन्हें संतुलित करने के उद्देश्य से षट्कर्म (छः शोधन क्रियाऐं) का उल्लेख है। जिनमें धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति सम्मिलित हैं। जिससे कुम्भक (प्राणायाम) में सफलता जल्दी प्राप्त होती है। कुम्भक मूलतः सहित और केवल को मिलाकर दो प्रकार के हैं। सहित कुम्भक सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूचर्छा व प्लावनी मिलाकर आठ प्रकार के हैं, जो पूरक, कुम्भक व रेचक के साथ संयुक्त रूप से किये जाने के कारण सहित कहलाते हैं।

सहित प्राणायाम के दीर्घकाल तक अभ्यास की गहनता में साधक के द्वारा बिना किसी पूरक अथवा रेचक के प्राण को लम्बे समय तक धारण करने की क्षमता आ जाती है। इसे ही केवली कहा गया है। प्राणायाम से विभिन्न प्रकार के रोगों का शमन होता है एवं इनके मूल कारण त्रिदोषों को संतुलित किया जा सकता है। प्राणायाम के अधम, मध्यम व उत्तम लक्षणों में क्रमशः पसीना आता है। शरीर में कम्पन होता है। साधक का देह भारहीन होकर पृथ्वी से ऊपर उठ जाता है। इससे साधक का मन विषयों से अलग हो जाता है। जिसे उन्मनी कहा गया है। उन्मनी राजयोग का ही समनार्थी है। अतः हठयोग व राजयोग एक दूसरे के पूरक हैं। हठयोग अभ्यासी के देह में विभिन्न प्रकार के लक्षणों में शरीर का सुडौल हो जाना, शरीर का हल्कापन, प्रसन्नता, अंतः नाद सुनाई देना, नेत्रों में चमक, निरोगता, बिन्दु (वीर्य) का रक्षण जठराग्नि का प्रदीप्त होना, नाड़ियों की शुद्धता आदि। उपरोक्त हठसिद्धि के लक्ष्ण दिखलाई पड़ते हैं।

## तृतीय उपदेश :-

समस्त योग एवं तंत्रों का आधार कुण्डलिनी है। जो कंद के ऊपर मूलाधार में इड़ा और पिंगला के मध्य सुप्त पड़ी हुई है। इसे ही शक्ति, ईश्वरी, अरून्धती, भुजङ्गी, कुटिलाङ्गी, बालरण्डा, तपस्विनी आदि नामों से पुकारा गया है। जिसके जागरण में गुरू का मार्गदर्शन आवश्यक है। इसके जागृत होने से प्राण के लिए सुषुम्ना नामक राजमार्ग खुल जाता है। तब षट्चक्रों का भेदन, मृत्यु भय दूर होकर चित्त निरालंब (आश्रयरहित) हो जाता है। तदोपरांत साधक जीवन मुक्त होकर विचरण करता है। अतः शिव के द्वारा इस शक्ति के जागरण के लिए

महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली शक्तिचालन नामक दस मुद्राओं का उपदेश किया गया है। साथ ही वज्रोली की सहायक सहजोली और अमरोली का भी उल्लेख है। उपरोक्त मुद्रायें अष्ट सिद्धियों की प्रदायिका है, एवं सिद्धों के मध्य प्रसिद्ध हैं।

## चतुर्थ उपदेश :-

इस उपदेश में नादानुसंधान का उल्लेख है जो समाधि का ही नामांतर है। जिस प्रकार नमक जल में मिलकर अभेद हो जाता है। उसी प्रकार प्राण का चित्त में अथवा मन का आत्मा में लय हो जाता है। यही समाधि है। इसे ही राजयोग, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत आदि नामों से पुकारा गया है। शिव के द्वारा उपदिष्ट सवा करोड़ समाधि में लय प्रमुख है। जिसमें चित्त नाद में लय हो जाता है। आसनों में सिद्धासन, कुम्भक में केवली, मुद्रा में खेचरी एवं नाद में लय प्रमुख हैं। इन्द्रियों का स्वामी मन है। मन का स्वामी वायु है। वायु का स्वामी लय है एवं लय भी नाद पर आश्रित है।

साधक मुक्तासन में स्थित होकर चित्त को अन्तःनाद में लगाता है। जिसमें चित्त का लय योग की आरंभा, घटा, परिचया से गुजरते हुए निष्पत्ति में पूर्ण होती है। सुषुम्ना मार्ग में क्रमशः ब्रह्म, विष्णु एवं रूद्र ग्रन्थि के भेदन से झड़-झड़, भेरी, मृदंग, ढ़ोलक आदि की अनाहत ध्वनि सुनाई देता है। उस समय साधक दिव्यदेह वाला, निरोगी, आनंदयुक्त, ज्ञानी, सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। अंत में रूद्रग्रन्थि के भेदन से मधुर वीणा की ध्वनि में चित्त नाद में लय हो जाता है। इसे ही शक्ति रूपी कुण्डलिनी का शिव रूपी आकाश में विलीन हो जाता है। जिस प्रकार पुष्पों का रसपान कर भ्रमर उनके गंधों की अपेक्षा नहीं करता उसी प्रकार मन विषयों की अपेक्षा नहीं करता हुआ परमानंद में लीन हो जाता है।

इस प्रकार नादानुसंधान चार चरणों में पूर्ण होता है। इसे ही नाद-बिन्दु का लय, अद्वैत पद व जीवन मुक्त अवस्था की प्राप्ति आदि कहा गया है। यही सहज अवस्था है। जो विविध आसन, कुम्भक, मुद्रादि के अभ्यास से स्वतः ही उत्पन्न होता है। अंततः चित्त और प्राण निरंजन पद में विलीन हो जाता है।

**पंचम उपदेश :-**

हठप्रदीपिका का पंचम उपदेश अज्ञानतावश अथवा गुरु के निर्देशन के बिना हुए यौगिक अभ्यासों के कारण, शरीरस्थ त्रिदोष, वात, पित्त और कफ असंतुलित हो जाते हैं। देह में ये पैरों से लेकर नाभिपर्यंत वात, नाभि से हृदय तक पित्त तथा हृदय से लेकर सिर पर्यंत कफ का स्थान माना गया है। वात दोष के कारण देह में पीड़ा, ऐठन व गांठ बन जाता है। अतः ऐसी स्थिति में साधक गर्म जल से स्नान, तेल की मालिश, पथ्याहार के साथ घी मिलाकर खीर का सेवन एवं वायु के प्रकोप वाले अंग विशेष में वायु का चिंतन करते हुए पूरक कर सामर्थ्य के अनुसार रेचक करे। कफदोष के कारण उत्पन्न खाँसी, हिचकी, दमा, सिर दर्द आदि होने पर भोजन उपरांत दो से तीन बार कुम्भक का अभ्यास एवं खीर या दूध में घी मिलाकर उसका सेवन करना चाहिये। उन अंग विशेष पर पंच धारणा करनी चाहिये। पुनः-पुनः सामर्थ्य अनुसार पूरक कर रेचक करना चाहिये। समस्त दोषों के संतुलन के लिए भूमि में पीठ के बल लेटकर प्राणायाम करना चाहिये। आयुर्वेदिक एवं यौगिक दोनों प्रकार से चिकित्सा भी करनी चाहिये। साधक को बिना डरे योगाभ्यास को करते रहना चाहिये।

## 1.4.6 गोरखबानी

**सबदी :-**

गोरखबानी चालीस छोटी-बड़ी रचनाओं का संकलन है जो सबदी से आरम्भ होती है। जिसमें पदों की संख्या दो सौ पचहत्तर है। ये मुक्तक रचनायें हैं। इनमें आसन, प्राणनिरोध, कुण्डलिनी आदि के साथ-साथ गोरक्षनाथ द्वारा नाथ योगियों को दी गयी दिशा निर्देशों का विस्तृत उल्लेख करते हुए सुप्त शक्ति कुण्डलिनी को जगाकर अमृतपान करने, इसी देह में स्थित ब्रह्माण्ड को जानने। ब्रह्म के व्यक्त एवं अवयक्त स्वरूप का विचार, जगत के विभिन्न क्रियाकलापों में शामिल होकर भी हर परिस्थितियों में अपने चित्त को दृढ़ रखने, ध्यान से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करने, नाथ अर्थात् अपना स्वामी स्वयं होने, मन से प्रभावित न होने, काजी को, मोहम्मद शब्द का सही ज्ञान कराने, शब्द से परे अनुभव को

जानने, वाद-विवाद में न पड़ने, योगियों को जातिगत व्यवस्था के बाहर रहने, नाथ योगी भरथरी (भर्तृहरि) एवं गोपीचंद के योगी स्वरूप, योगी के लक्षणों, ध्यान से मन को विषयमुक्त रखने, इन्द्रियातीत ज्ञान का अनुभवी होने, किसी की भी आशा नहीं करने, बिन्दु का उर्ध्वगमन करने, कामिनी का त्याग, अजपाजप, मन को वश में रखने, धन एवं यौवन की आशा न करने, सात्त्विक भोजन करने वाला मिताहारी होने तथा नाथ के लक्षणों में देह का कांतियुक्त होना, नेत्र में तेज आदि का उल्लेख है।

पंथ एवं आश्रम निर्माण की चाह न करते हुए गुरू निर्देशों के अनुसार साधना करने, गुरू गोरक्षनाथ के अनुभव ज्ञान को महत्त्व देने, स्वयं के ब्रह्मरंध्र से नीचे की ओर कुएँ के समान गहरे स्थान को जानने (जहाँ अमृत रूपी जल संचित है) इसे ही गुरू के द्वारा संकेत रुप में बताया जाता है। इन्द्रिय, मन, अहंकार एवं वासना आदि के विजेता गोरक्ष प्रसिद्ध है। क्रोध, अहंकार न करने, कड़े नियम नहीं बनाने, अनहत नाद को अभ्यास से जानने, गोरक्ष का अवधूतों को निर्देश है कि आहार, नींद कम लेते हुए, स्त्री संग का त्याग करें।

विभिन्न सम्प्रदायों के कड़े नियम बनाने वालों की निंदा करते हुए शरीर को योगबल से सिद्ध बनाने, श्वास रूपी जीवन को साधने, मन को विषय से मुक्त कर उन्मनी बनाने, प्राणायाम से प्राण निरोध कर इड़ा और पिंगला को जीतने एवं बंध लगाकर प्राण को रोकने, अपने को अपने ही श्रम साधना से जानने, वाणी में मधुरता लाने, हर परिस्थितयों में आपा न खोने, अधिक न बोलने, पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता, मत्स्येन्द्र के शिष्य गोरक्षनाथ के रूप में वर्णन, स्थिर आसन बांधकर प्राणायाम करने, योगसाधना से प्राण को सुषुम्ना मार्ग से ऊपर उठाने, षट्चक्रों का भेदन करने, इन्द्रिय सुख के पार, मन का विषय शून्य हो जाने पर सहज का अनुभव करने को कहा गया है।

सहज, निरालम्ब, कार्य-कारण से परे, स्वप्रकाशित है। इस देह का मांस अन्न और अस्थियाँ प्राण से निर्मित है, अतः प्राणसाधना से इसे शुद्ध किया जाना चाहिये। केवल शास्त्रज्ञान होना थोथा ज्ञान है। बिन्दु (वीर्य) के संरक्षण से देह नष्ट नहीं होता। तीर्थाटन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकने की अपेक्षा

गोरक्षनाथ ने अवधूतों को निर्देशित करते हुए कहा है कि चित्त की चंचलता को जानना और अपने भीतर उठ रहे अनहद नाद को सुनना चाहिए। योगबल से ही गोरक्षनाथ ने शिव-शक्ति को एक कर लिया है।

नादानुसंधान के चार चरणों आरम्भ, घट, परिचय व निष्पत्ति में चतुर्थ अवस्था ही उत्तम है, जो इसे जानता है, वही परमानंद का आस्वादन निरन्तर करता है। कैवल्य, कुण्डलिनी और सहस्रार में स्थित शिव के सामरस्य से प्राप्त होता है। मद्य और मांस का सेवन न कर अपने मन को वश में रखने के लिए योगियों को समूह में रहने, ध्यान करने, सिद्धों की संगति करने, मन को विषयों से दूर रखने। साधना में दो या दो से अधिक होने पर कलह होने और विघ्न उत्पन्न होने आदि का निर्देश करते हुए पंच प्राणों पर नियंत्रण स्थापित कर आत्मचिंतन में लगे रहने का योगियों को निर्देश है।

राजा भर्तृहरि ने भी महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ का स्मरण कर, कहा है कि उनके द्वारा उपदिष्ट प्राणायाम के द्वारा ही देह को शुद्ध कर नाद-बिन्दु की साधना से योगसिद्धि प्राप्त की है। योगाग्नि से तपा हुआ देह निर्मल होने के कारण कृश हो जाता है। हठयोग साधना से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना संयुक्त हो जाते हैं। जो योगी होने का दिखावा करते हुए केवल वेशभूषा धारण किये हुए हैं, ऐसे लोगों को फटकारते हुए गोरक्ष ने योगसाधना में लगे रहने का उपदेश किया है।

## 1.4.7 शिव संहिता

शिव संहिता एक महत्वपूर्ण हठयौगिक ग्रंथ है,जो शिव और पार्वती के मध्य संवाद के रूप में प्रस्तुत है। यह ग्रंथ पाँच पटलों में विभक्त है, जो निम्नवत है-

### प्रथम पटल :-

प्रथम पटल में सत्य, असत्य एवं स्वरूप की प्राप्ति के लिए विविध साधनाओं दार्शनिक सिद्धांतों, पुण्य एवं पाप कर्मों में भेद, जगत, जगत में विविधता का कारण अविद्या, सूक्ष्म से जगत के स्थूल तत्वों की उत्पत्ति, आत्मा का स्वरूप, योगशास्त्र की महत्ता, मुक्ति का स्वरूप आदि विषयों पर चर्चा करते

हुए अपरिवर्तनशील, नित्य, अखण्ड, सनातन एवं एक मात्र आत्मा ही है। अज्ञानता के कारण ही बुद्धि, अहंकार, मन एवं इन्द्रियों के प्रभाव से सत्य का अनुभव न होना ही असत्य है। जो रस्सी में सर्प के जैसा दिखाई देता है किन्तु सत्य का ज्ञान होते ही अविद्या रूपी रस्सी को जान लिया जाता है।

जगत में विविधता का कारण शुद्ध ब्रह्म के साथ अविद्या के संयोग होने से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। आत्मा ही एक मात्र सत्य है जो उपाधि रहित, अखण्ड रूप में सदैव स्थित है। इसका अनुभव ही मुक्ति है। अतः इस अवस्था की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के साधना मार्गों आदि में योगशास्त्र का ही अनुसरण कर अभ्यास करना चाहिये।

## द्वितीय पटल :-

जगत में विद्यमान सात द्विपों, नदियों, ऋषियों, मुनियों, नक्षत्र, ग्रह, तारें, तीर्थ, शक्तिपीठ, सूर्य, चंद्र, पंच तत्व, तीनों लोक, सुमेरू शिखर आदि अपने रक्षक के साथ मानव देह में स्थान विशेष में स्थित हैं। इस शरीर में ही उपरोक्त ब्रह्माण्ड का अनुभव करने वाला ही योगी है। शरीर के मध्य में स्थित मेरूदण्ड सुमेरू पर्वत है। सुमेरू शिखर पर चन्द्रमा अधः मुख किये हुए स्थित है। चन्द्रमा से लगातार अमृत की वर्षा होती रहती है। यह अमृत देह में इड़ा से प्रवाहित होते हुए पूरे शरीर को अमृत से पोषण करती है। दूध के सामान अमृत की दूसरी धारा मेरूदण्ड के सुषुम्ना मार्ग से नीचे की ओर प्रवाहित होती रहती है। सुमेरू पर्वत रूपी मेरूदण्ड के मूल में सूर्य का स्थान है, जो बारह कलाओं से युक्त है। यह शरीर में खाए हुए अन्न का पाचन कर स्फूर्ति, पोषण एवं बल प्रदान कर रोगों से बचाता है। इसे ही वैश्वानर भी कहा गया है। सूर्य, पिंगला नाड़ी के माध्यम से देह में ऊर्ध्वगमन करता है एवं चन्द्रमा के अमृत धारा को सोख लेता है। अतः उपरोक्त चन्द्र एवं सूर्य दोनों इस देह में क्रमशः सृष्टि निर्माता एवं सृष्टि संहारक हैं।

**नाड़ियाँ :-** मानव देह में विद्यमान नाड़ियों का उद्गम स्थान मूलाधार है। सम्पूर्ण देह में तीन लाख पचास हजार नाड़ियाँ फैली हुई हैं जो की सभी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ से जुड़ी हुई है। ये नाड़ियाँ देह में बाह्य विषयों का

अनुभव कराती हैं। उपरोक्त तीन लाख पचास हजार नाड़ियों में से सुषम्णा, इड़ा, पिंगला, कुहू, शंखिनी, गान्धारी, पूषा, हस्तिजिह्विका, पयस्विनी, सरस्वती, अलम्बुषा, वारूणी, यशस्विनी, विश्वोदरी चौदह विशेष हैं। इनमें भी सुषुम्णा, इड़ा एवं पिंगला तीन प्रमुख हैं। इन तीनों में भी सुषुम्णा श्रेष्ठ है।

**सुषुम्णा :-** इड़ा एवं पिंगला दोनों नाड़ियों के मध्य में स्थित है। इड़ा नाड़ी, सुषुम्णा नाड़ी के साथ लिपटी हुई बायीं नासिका में खुलती है। वही पिंगला नाड़ी, सुषुम्णा से लिपटी हुई दाहिनी नासिका में खुलती है। इस प्रकार सुषुम्णा इड़ा एवं पिंगला दोनों के मध्य विद्यमान है। इड़ा का स्वरूप सोम (चन्द्र) के गुणों वाला, पिंगला नाड़ी का स्वरूप सूर्य के गुणों वाला एवं सुषुम्ना नाड़ी का स्वरूप अग्नि शिखा के समान है। सुषुम्णा के अंदर मध्य में चित्रा नाड़ी विद्यमान है। यह सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है। यह कल्याणकारी एवं मुक्तिदात्री ब्रह्मरंध्र है। इसी सुषुम्णा में ही शक्ति के छः केन्द्र हैं। योगीजन इन्हीं शक्ति केन्द्रों को छः कमल चक्रों के रूप में जानते हैं। ये तीनों नाड़ियाँ मेरूदण्ड में नीचे कि ओर मुख किये हुए कमल युक्त डण्ठल के समान स्थित है। देह में गुदाद्वार एवं लिंगमूलसे क्रमशः दो अंगुल ऊपर एवं दो अंगुल नीचे, चार अंगुल के आकार वाला, मूलाधार चक्र का स्थान है।

इसी स्थान पर कुण्डलिनी सुषुम्ना के मार्ग को अवरूद्ध किये हुए स्थित है। मानो विद्युत प्रवाह तीन फेरे लेकर स्थित हो,यह कुण्डलिनी ही जगत की उत्पत्ति विकास की कारण रूपा है। यह वाणी से बतायी नहीं जा सकती। इसे ही वाग्देवी की संज्ञा दी गयी है। जो देवों के द्वारा भी सदैव प्रणम्य है। इस जगत में भेद देखना ही अज्ञान है एवं योग का अभ्यास, भेद रहित दृष्टि व निष्काम कर्म योग ही मुक्तिकारक है।

## तृतीय पटल :-

इस पटल में प्राण के प्रकार एवं कार्य बताते हुए प्राणायाम की चर्चा की गयी हैं। प्राण हृदय कमल के मध्य में स्थित है। हृदयकमल बारह दलयुक्त है। इस कमल के प्रत्येक दल में 'क' से लेकर 'ठ' तक बारह वर्ण विद्यमान हैं। यही प्राण

हृदय में विभिन्न प्रकार के कर्मसंस्कार, वासना एवं अहंकार के साथ संयुक्त होकर स्थित रहता है। यह प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय मिलाकर दस हैं।

| **क्र.** | **वायु (प्राण) के नाम** | **स्थान** |
|---|---|---|
| 01. | प्राण | हृदय |
| 02. | अपान | गुदा |
| 03. | उदान | कण्ठ |
| 04. | समान | नाभि |
| 05. | व्यान | समस्त शरीर के नाड़ियों में |

उपरोक्त पाँच मुख्य हैं। उनमें से भी प्राण एवं अपान सभी प्राणों में श्रेष्ठ हैं। बाद के नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त व धनंजय को मिलाकर पाँच, उपप्राण हैं। जिनके कार्य क्रमशः डकार लाना, आँखों के पलकों का झपकना, भूख और प्यास लगना, जम्हाई आना, हिचकी आना आदि है। इस प्रकार सभी दस प्राण देह में अपने-अपने नियत स्थान में रहकर उपरोक्त विभिन्न कार्यों को संपादित करते हैं।

योग में सफलता प्राप्त करने के लिए गुरू को ही अपना सर्वस्व मानकर उसी के निर्देशन में योगविद्या का अभ्यास मन, कर्म एवं वचन से करना चाहिये। योग में सिद्धि की प्राप्ति के लिए फल की प्राप्ति होगी ही ऐसा विश्वास रखना, अपने कर्यों में श्रद्धा रखना, गुरू के निर्देशो का सम्मान के साथ पालन करना, समता में रहना, इन्द्रियों को वश में रखना एवं मिताहार का सेवन करना उपरोक्त छः लक्षण बताये गये हैं।

शिव द्वारा उपदिष्ट चौरासी आसनों में सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन (पश्चिमोत्तानासन), स्वस्तिकासन प्रमुख हैं। इनमें भी सिद्धासन श्रेष्ठ है। एक पैर की एड़ी को सीवनी स्थान (गुदा एवं लिंग के मध्य) में रखकर दूसरे पैर की एड़ी को लिंग के ऊपर अच्छी तरह से स्थापित कर अपनी दृष्टि भ्रूमध्य में लगाकर

स्थिर रहना चाहिये। इसे ही सिद्धासन कहा गया है। इसके अभ्यास से योग में सफलता शीघ्रता से प्राप्त होती है। एक पैर के तलवे को दूसरे पैर के जंघामूल में एवं दूसरे पैर के तलवे को पहले वाले पैर के जंघामूल में रखकर, बायें हाथ को दाहिने घुटने के ऊपर एवं दाहिने हाथ को बायें घुटने के ऊपर स्थापित कर, अपनी दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर लगाकर रखना ही पद्मासन है।

उग्रासन (पश्चिमोत्तानासन) यह जठराग्नि प्रदीप्त करने वाला, शरीर के कष्टों को दूर करने वाला, प्राण को सुषुम्णा में प्रवेश कराने वाला एवं सिद्धि प्रदायक अभ्यास है। स्वस्तिकासन, इस आसन में प्राणायाम का अभ्यास करने से वायु कुपित नहीं होती एवं सभी प्रकार के दुःखों को नाश करने के कारण इसे स्वस्तिकासन कहा गया है।

**नाड़ीशोधन :-** साधक को सिद्धासन अथवा पद्मासन में स्थिर होकर, दाहिनी नासिका को अंगूठे से बंदकर बायीं नासिका से पूरक कर, कुम्भक करना चाहिये। श्वास छोड़ने की संवेदना होने पर दाहिनी नासिका से धीरे-धीरे रेचन करना चाहिये। इसी प्रकार दाहिनी नासिका से पूरक कर सामर्थ्य के अनुसार कुम्भक करे एवं बायीं नासिका से रेचन करे। इस अभ्यास को दिन में प्रातः, दोपहर, संध्याकाल एवं अर्द्धरात्रि को मिलाकर चार बार करना चाहिये। इस प्रकार एक बार के नाड़ी शोधन में कुम्भक का अभ्यास बीस बार करना चाहिये। इस तरह चार समय में नाड़ी शोधन में अस्सी कुम्भकों का अभ्यास करना चाहिये है। उपरोक्त विधि से नाड़ी शोधन के तीन महीनों के अभ्यास से देह की नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। जिससे देह पतला, सुगन्धि युक्त, कान्तिवान हो, वाणी में शुद्धता, जठराग्नि की प्रदीप्ति, भोजन में संयम, शारीरिक बल में वृद्धि, उत्साह से भरा हुआ एवं संवेदनशीलता आदि लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

**योगसाधना में विघ्न :-** योग साधना में अम्ल, सूखा, तीखा, नमकीन, कड़वा, अधिक भ्रमण करना, प्रातः काल का स्नान, चोरी, हिंसा, अहंकार, द्वेष करना, मोह करना, उपवास, असत्य भाषण, प्राणियों को कष्ट पहुँचाना, अधिक

बोलना (वाचालता), स्त्री का संग, अच्छे बुरे में भेद करना, अग्नि का सेवन (शरीर को गर्म रखने के उपाय करना), अधिक भोजन आदि विघ्न रूप हैं।

**योग सिद्धि के उपाय :-** दूध, घी का सेवन, बिना छिलके का पदार्थ, कर्पूर, चूना रहित पान, स्निग्ध भोजन, छोटा द्वार वाला कुटी में निवास करना, सिद्धों के सिद्धांतों को सुनना, भगवान विष्णु के नाम का संकीर्तन, वैराग्य के साथ गृहस्थ धर्म का पालन, सुन्दर नाद को सुनना, पवित्रता, क्षमा,तप, धैर्य, सात्विक बुद्धि से गुरू के उपदेश का पालन करना, सूर्य स्वर (दाहिनी नासिका) के चलने पर भोजन करना, चन्द्रस्वर (बायीं नासिका) के चलने पर नींद लेना, एक साथ अधिक भोजन न कर, एक से अधिक बार हल्के भोजन करना, एकांत में जाकर ओंकार मंत्र का जाप करना आदि उपायों से योग में सिद्धि की प्राप्ति होती है।

वायु साधना, वायु साधना विभिन्न प्रकार के रोगों से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है। जिह्वा को तालुमूल में लगाकर पूरक करने से सभी तरह के रोग दूर हो जाते हैं। मुख से शीतल वायु का पान करने से थकान, बुढ़ापा एवं अन्य सभी रोगों की निवृत्ति होती है। जीभ को ऊपर उठाकर तालु गुहर से लगाकर चंद्रामृत का पान करते हुए पूरक करने पर मृत्युंजय की प्राप्ति होती है। ऊपर एवं नीचे के दोनों दंत पंक्तियों को मिलाकर जीभ को दोनों दंत पंक्तियों के मध्य रखकर कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए पूरक करने पर साधक कवि हो जाता है। प्रातः एवं सायंकाल कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए काकी मुद्रा के साथ वायु का पान करने से साधक में दूर की वस्तुओं को देखने की शक्ति आ जाती है। पूरक करने के उपरान्त दोनों दंत समुहों को मिलाकर उनके मध्य में दबाव ड़ालते हुए ब्रह्मरन्ध्र का ध्यान करने से साधक मृत्यु को जीत लेता है। नीचे एवं ऊपर के दंत समुहों को मिलाकर, जीह्वा को ऊपर की ओर ले जाकर पूरक करने से साधक मुत्युंजयी हो जाता है। तब भूख प्यास नहीं सताते एवं साधक कामदेव के समान हो जाता है।

प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त विभिन्न लक्ष्णों को वायु सिद्धि कहा गया है। ये लक्षण तीन प्रकार के हैं। प्राणायाम के दौरान साधक के शरीर से पसीना निकलना निकल रहे पसीने को शरीर में ही मर्दन करने से धातु पुष्ट होता है यह

अधम लक्षण, साधक के शरीर में कम्पन का होना जिससे मेंढ़क की तरह उझलने की शक्ति आ जाती है, यह मध्यम एवं साधक का शरीर हल्का भारहीन हो जाता है। जिससे साधक का शरीर गुरूत्वाकर्षण के विपरीत भूमि से ऊपर उठ जाता है, इसे ऊत्तम लक्षण कहा गया है। साथ ही साधक शारीरिक व मानसिक रूप से निरोगी, बलशाली, नींद का कम समय में ही पूरा हो जाना, मल-मूत्र का अल्प हो जाना, त्रिदोषों का संतुलन हो जाना आदि लक्षण भी दिखलाई पड़ते हैं।

योग में पूर्णता चार अवस्थाओं से होकर गुजरती है। नाड़ियों के शुद्ध हो जाने पर प्राप्त अवस्था आरंभा, प्राणायाम के सिद्ध हो जाने से प्राण एवं अपान का एक्य हो जाना ही घटावस्था। यही नाद एवं बिन्दु, जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन भी है।

प्राणायाम की सिद्धि प्राप्त हो जाने पर इड़ा तथा पिंगला को छोड़कर प्राण का सुषुम्ना मार्ग में स्थिर हो जाना ही परिचयावस्था है। इस समय साधक भूत, भविष्य एवं वर्तमान को जानने वाला हो जाता है। उपरान्त साधक मूलाधार में पृथ्वी तत्व का, लिंग स्थान में जल, नाभि में अग्नि, हृदय में वायु एवं भ्रूमध्य में आकाश तत्व की पाँच घड़ी (दो घण्टे) तक एक ही तत्व में धारणा करने पर पंच तत्वों पर विजय प्राप्ति की प्राप्ति हो जाती है। साधना की गहनता में निष्पत्ति अवस्था की प्राप्ति होती है। जिसमें साधक के बीज रूप सभी कर्म संस्कार नष्ट हो जाता हैं। जिससे अनायाश ही समाधि घटित होती है। उस समय वेगवान प्राणशक्ति सुषुम्ना में षट्चक्रों का भेदन करते हुए ज्ञान शक्ति में विलीन हो जाता है।

## चतुर्थ पटल :-

**मुद्रिका प्रकरण :-** इस पटल में योग की विभिन्न मुद्राओं की चर्चा की गयी हैं। योनिमुद्रा, साधक गुदा एवं लिंग के मध्य स्थान (सीवनी स्थान) का आकुंचन करते हुए मूलाधार में अपने मन को लगाये एवं वायु का पूरक कर कामकला पीठ, सुषुम्णा के मूल में करोड़ों सूर्य एवं चन्द्रमा की उष्णता एवं शीतलता का ध्यान करें। इसके ऊपर ही सूक्ष्म ज्ञानमयी परमकला, ज्योति रूप में

विद्यमान है। मन एवं आत्मा दोनों का उसी परम कला के साथ संयुक्त कर चिंतन करना चाहिये। उपरोक्त तीनों इसी सुषुम्णा मार्ग (ब्रह्म मार्ग) से ऊर्ध्वगमन करती हैं। यही ब्रह्ममार्ग स्वर्गानंद को प्रदान करने वाली अमृत स्वेत एवं लाल रंग के रूप में सदैव स्रावित करती रहती है। शिवरूप जीवात्मा उसी अमृत का पान करते हुए जहाँ से अमृत का स्राव निरंतर हो रहा उस कुलामृत (चंद्रस्थान) में लय हो जाता है। इस योनिमुद्रा के अभ्यास से संसार के सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

**महामुद्रा :-** बायें पैर की ऐड़ी को गुदा एवं लिंग स्थान के मध्य योनिस्थान (सीवनी स्थान) में दृढ़ता से स्थापित कर दाहिने पैर को सामने फैलाकर रखें दोनों हाथों से दाहिने पैर की ऐड़ी को दृढ़ता से पकड़कर नासिका से पूरक करते हुए जालंधरबंध लगाये एवं शरीर के नौ द्वारों को भी बंदकर चित्त को सुषुम्णा में लगाने से महामुद्रा का अभ्यास पूरा होता है। इसी प्रकार दाहिनी दिशा से भी बायें पैर को फैलाकर दाहिने पैर को सीवनी स्थान में रखकर अभ्यास करे। दोनों ओर के पैरों से समान अभ्यास करना चाहिये। इससे नाड़ियों का मल दूर होता है। इन्द्रियों पर नियंत्रण, बिन्दु का उर्ध्वगमन, शरीर में निर्मलता एवं कान्ति, वायु का ब्रह्मरन्ध में प्रवेश, कुण्डलिनी का जागरण, मृत्यु पर विजय की प्राप्ति होती है।

**महाबंध :-** एक पैर के तलवे को उल्ट कर दूसरे पैर के जंघामूल में रखें एवं दूसरे पैर की ऐड़ी को गुदा एवं लिंगमूल के मध्य दृढ़ता से रखकर गुदा एवं योनि अथवा लिंग प्रदेश का संकुचन करते हुए ऊपर की ओर खींचे। इस अभ्यास से प्राण एवं समान वायु की एकता होती है, एवं दोनों अपान के साथ संयुक्त होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर मध्य में स्थित हो जाते हैं। इस मुद्रा के अभ्यास से सभी नाड़ियों से अमृत का स्राव मूर्धा की ओर होने लगता है। कंकालतंत्र एवं संधिस्थल मजबूत बनते हैं। मांसपेशियाँ सुदृढ़ बनती है। साधक के हृदय में आत्मसंतोष की अनुभूति एवं प्राण-अपान का मिलन होता है।

**महावेध :-** साधक महाबंध लगाकर दोनों हाथों को भूमि में स्थापित कर अपने नितम्बों को उठाकर शनैः-शनैः भूमि में पटके जिससे वायु सुषुम्ना में प्रवेश कर तीनों ग्रन्थियों का भेदन करते हुए महामाया कुण्डलिनी शिव स्थान आज्ञा चक्र (कैलास) में विलय हो जाती है। महामुद्रा एवं महाबंध का अभ्यास महावेध के बिना अधूरा है। अतः तीनों बंधों का अभ्यास क्रमशः करना चाहिये। इस प्रकार तीनों बंधों को दिन में प्रातः, मध्यकाल, सायंकाल एवं अर्द्धरात्रि में चार बार, छः महिने तक अभ्यास करने से साधक बुढ़ापा एवं मृत्यु को जीत लेता है।

**खेचरी :-** वज्रासन (सिद्धासन) में स्थिर हो साधक अपनी दृष्टि भ्रूमध्य में लगाकर अपनी जिह्वा (लम्बिका) को उल्टकर तालुमूल के पास कपालगुहर के अंदर प्रविष्ट कराकर स्थिर रहे। सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली इस मुद्रा के अभ्यास से साधक अमृत रस का पान करता हुआ छः माह में ही मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है। जो इसका अभ्यासी है वह नित्य पवित्र है। वह पापों से निर्लिप्त रहता है। इसे ही शिव ने प्राण से भी प्रिय कहा है।

**जालंधर बंध :-** कंठ प्रदेश की नाड़ियों को संकुचित कर चिबुक (ठुड्डी) को वक्षस्थल में लगाकर रखना ही जालंधर बंध है। यह सहस्त्रार से होने वाले अमृत रस को नाभि में जाने से रोकता है। वह अमृत साधक के शरीर का पोषण करते हुए आनंदानुभूति प्रदान करती है। इसीलिए सिद्धों ने इस बंध को सिद्धिप्रदायक कहा है। जिसका अभ्यास साधक को नियमित रूप से करना चाहिये।

**मूलबंध :-** पैर की ऐड़ी से गुदामार्ग को दबाते हुए गुदा एवं लिंग प्रदेश का संकुचन करते हुए अपान वायु को ऊपर उठाकर स्थिर रहे। इस अभ्यास से अपान वायु ऊपर की ओर आकृष्ट होने लगता है। जिससे प्राण एवं अपान दोनों संयुक्त होते है। इसका अभ्यास  योनिमुद्रा की सिद्धि में सहायक है।

**विपरीतकरणी :-** भूमि में सिर को अच्छी तरह से स्थापित कर, दोनों पैरों को ऊपर उठाकर अकाश की ओर स्थिर होने से विपरीतकरणी कहलाती है। साधक को इस मुद्रा का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाते हुए दिन में तीन घण्टे तक ले जाना चाहिये। इसके नियमित अभ्यास से साधक सहस्त्रार से निकलने वाली

अमृत का पान करता हुआ आनंदानुभूति करता है एवं विपरीत परिस्थितियों में भी दुःख नहीं होता हुआ सिद्धों के समतुल्य हो जाता है।

**उड्डियानबंध :-** नाभि के ऊपर एवं नीचे के प्रदेश को खींचकर पीठ की ओर ले जाना ही उड्डियान बंध है। इसका अभ्यास दिन में प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल एवं अर्द्धरात्रि मिलाकर चार बार करना चाहिये। छः महीने के अभ्यास से नाभिचक्र की शुद्धि, जठराग्नि एवं पाचक रसों में वृद्धि होती है। यह अभ्यास सभी प्रकार के रोगों का नाश करने वाला है। जिसे जानकार गुरू से ही सीखना चाहिये।

**वज्रोली मुद्रा :-** गुरू के निर्देश में साधक लिंग के माध्यम से योनि से हुँ हुँ की ध्वनि के साथ अपान वायु को ऊपर उठाते हुए रज को खींचकर (आकर्षण) कर अपने शरीर में प्रवेश कराये एवं बिन्दु (वीर्य) के पात होने की संवेदना होने पर लिंग को बाहर निकालकर, योनिमुद्रा के अभ्यास से रोक कर रखें। लिंग का चालन कर बिन्दु को बाहर आने से रोकें। बिन्दु को चन्द्रमा के समान एवं रज को सूर्य के समान मानकर प्रयत्न पूर्वक साधक रज एवं बिन्दु को मिलाकर शरीर में धारण करें जिससे साधक का शरीर दिव्य हो जाता है। बिन्दु को धारण करना ही स्वास्थ्य सिद्धि का कारण है अतः यही जीवन है। बिन्दु का पतन ही रोग, शोक आदि का कारण है अतः इसे ही मृत्यु कहा गया है। इस अभ्यास काल में साधक दूध एवं घी का सेवन करें। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी साधक सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। गुरू के निर्देशन में छः महीने तक नियमित इस वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करने से साधक बिन्दु सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार बिन्दु के सिद्ध हो जाने से कामनियों का संग करने पर भी बिन्दु पतित नहीं होता।

**शक्तिचालनी मुद्रा :-** साधक द्वारा मुक्तासन (सिद्धासन) में स्थित होकर अपान वायु को बलपूर्वक खींचकर मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी को दृढ़ता के साथ चालन करना चाहिये। यह सभी प्रकार की शक्तियों की प्रदायिका है। अतः इसे शक्तिचालनी मुद्रा कहा गया है। इसके अभ्यास से सुप्त कुण्डलिनी जागकर उर्ध्वगमन करती हुई समस्त सिद्धियों को प्रदान करती है। इसका नियमित

अभ्यास रोगों की निवृत्ति एवं मृत्युभय दूर करता है। इस प्रकार उपरोक्त दस मुद्राओं का ज्ञान एवं अभ्यास असाधारण हैं।

## पंचम पटल :-

पंचम पटल के आरंभ में देवी के प्रश्न पर शिव ने योग के मार्ग में आने वाले विघ्नों का उल्लेख किया हैं। जैसे- मखमली बिस्तर, स्त्री संग, धन, पान चबाना, प्रसिद्धि, सोना, रत्न, गौ, वेदशास्त्र के जानकार होना, नृत्य, संगीत, विषय आदि भोगरूप विघ्न हैं। हवन, पूजन, अत्यधिक शुद्धता, उपवास, मौन, मंत्र, प्रसिद्धि, तालाब एवं कुंआ बनवाना, कठोर व्रत, तीर्थ यात्रा आदि धर्मरूप विघ्न। गोमुखासन आदि आसनों को जानना, षट्कर्म आदि क्रियाओं को जानना व नौलिकर्म आदि का अभ्यस्त होना, नाड़ी विज्ञान का जानकार होना आदि ज्ञानरूप विघ्न। यह मान्यता को मानना की नौ धातुओं को सोंठ के साथ मिलाकर उसका चूर्ण बनाकर सेवन करने से समाधि लग जाती है। साधु की संगति करो, दुर्जनों से बचकर रहें आदि विचार भी विघ्न है।

योग के चार प्रकार, मन्त्र, लय, हठ एवं राजयोग हैं जिनमें राजयोग अद्वैत अवस्था है। योगसाधक मृदु, मध्य, अधिमात्र एवं अधिमात्रतम् मिलाकर चार प्रकार के हैं। लोभी, अधिक भोजन करने वाला, गुरू का निंदा करने वाला, पराधीन आदि लक्षण मृदु साधक के हैं। ऐसे साधक बारह वर्ष तक साधना करने बाद योग का अधिकारी बनता है। तब गुरू द्वारा इन्हें मंत्रयोग की दीक्षा दी जाती हैं। मृदुभाषी, क्षमाशील, पुण्यार्थी मध्य साधक के लक्षण है। ऐसे साधकों को गुरू द्वारा लययोग की दीक्षा दी जाती हैं। अनुभवी, शूरवीर, योगाभ्यास में लगा हुआ, गुरू के प्रति श्रद्धावान अधिमात्र साधक के लक्षण हैं। ऐसे साधक को गुरू द्वारा हठयोग की दीक्षा दी जाती है। ऐसे साधक छः वर्ष में हठयोग के सभी अंगों में सफलता प्राप्त कर लेता है। उत्साही, पराक्रमी, शौर्यवान, शास्त्रों को जानने वाला, मिताहारी, निर्भय, पवित्र, क्षमाशील, गुरू पर पूर्ण विश्वास रखने वाला, मोह रहित व शांत स्वभाव वाला अधिमात्रतम कहलाता है। ऐसे साधक तीन वर्ष में ही सभी योगों में सफलता प्राप्त कर लेता है।

**प्रतीक उपासना,** धूप में खड़े होकर, दोनों नेत्रों से आकाश में अपने ही प्रतिबिम्ब रूप ईश्वर को देखना ही प्रतीकोपासना है। अभ्यास की निरंतरता में साधक को प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगता है। जिससे सभी प्रकार के इच्छित फलों की प्राप्ति होती है। आयु बढ़ती है एवं मृत्युभय दूर हो जाता है। मंत्रों के जाप से प्राप्त होने वाली इच्छा पूर्ति, सिद्धोंगणों के दर्शन, मेघावी, शक्तिसम्पन्नता आदि विभिन्न प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

ज्योतिरूप आत्मा का साक्षात्कार, साधक किसी एक आसन में स्थिर होकर अंगूठों से कान को, दोनों तर्जनी से नेत्रों को, मध्यमा से नासिका को, अनामिका से मुख को बंदकर प्राणायाम से प्राण का निरोध कर लेता है। तब साधक को ज्योतिरूप आत्मा का दर्शन होता है। इससे अन्तःनाद की उत्पत्ति होती है। जिसमें फूलों के रसों से मस्त भ्रमर के गुंजन के समान, बासुरी, वीणा, घण्टानाद, मेघगर्जन के समान, नाद क्रमशः सूक्ष्म होने लगता है। साधक का मन इसी नाद में लीन होकर प्रशान्त अवस्था को प्राप्त कर चिदाकाश में लीन हो जाता है।

**योगाभ्यासों में श्रेष्ठता एवं विभिन्न सिद्धियाँ :-** आसनों में सिद्धासन, बल में कुम्भक, मुद्रा में खेचरी एवं नाद के समान लय नहीं है। साधक पद्मासन में स्थिर होकर नाड़ी शोधन का अभ्यास करें। इसके सिद्ध होने पर सुखरूप आत्मा का दर्शन होता है। जीभ को तालु मूल में लगाकर कण्ठ कूप का ध्यान करने से साधक को भूख एवं प्यास पर विजय प्राप्त हो जाता है। कण्ठ कूप के नीचे स्थित कूर्मनाड़ी पर ध्यान लगाने से चित्त में स्थिरता आती है। कपाल में रूद्राक्ष के छिद्र के समान आकृति का ध्यान लगाने से विद्युत के समान प्रकाशपुंज का दर्शन होता है।

कपाल में रूद्राक्ष के छिद्र के समान आकृति का रात-दिन चिंतन करने से सिद्ध महात्माओं के दर्शन एवं उनसे सम्भाषण होता है। कपाल में शून्यता का ध्यान करने पर मन चिदाकाश में विलीन हो जाता है। पद्मासन में स्थिर होकर नासिकाग्र में ध्यान लगाने से मन संकल्प-विकल्प से मुक्त हो जाता है एवं खेचरी मुद्रा की सिद्धि प्राप्त होती है। सिर के पिछले वाले हिस्से में ध्यान लगाने से साधक मृत्यु को जीत लेता है।

शरीर में नाड़ी कंद का स्थान, गुदामार्ग से दो अंगुल ऊपर एवं लिंगमूल से एक अंगुल नीचे चार अंगुल के परिमाप वाला समकोणाकार कंद का स्थान है। इसी कंद के ऊपर मध्यभाग में कुण्डलिनी का वास है। यह नाड़ियों के उद्गम स्थान में साढ़े तीन फेरे लिये हुए पूछ को मुख में दबाकर बैठी हुई है। यह सत्व, रज एवं तम की माता वाणी की देवी एवं विष्णु की स्वर्ण कांतियुक्त शक्ति है। यह लाल वर्ण युक्त कामबीज की प्रतीक है। कंद मध्य में सुषुम्ना, कुण्डलिनी एवं कामबीज तीनों सम्मिलित रूप से त्रिपुर भैरवी कहलाती है। उपरोक्त तीनों करोड़ों सूर्य एवं चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित है। यही क्रिया-शक्ति एवं ज्ञान-शक्ति के रूप में शरीर में ऊर्ध्व, अधः एवं मध्य में भ्रमणशील रहती है। यही कभी सूक्ष्म रूप, कभी अग्निशिखा सदृश एवं कभी स्वयंभूलिंग के नाम से जानी जाती है। **षट्चक्रों के दलसंख्या, वर्ण, स्थान, रंग, सिद्ध एवं देवियों का विवरण :-**

| क्र. | **चक्रों के नाम** | **दल संख्या** | **वर्ण** | **स्थान** | **रंग** | **सिद्ध** | **देवी** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 01 | मूलाधार | 4 | व्,ष्,ष्,स् | कंद स्थान | स्वर्ण कान्ति | द्विरण्ड | डाकिनी |
| 02 | स्वाधिष्ठान | 6 | ब्,भ्,म्,य्,र्,ल् | लिंगमूल | रक्तवर्ण | बल | राकिणी |
| 03 | मणिपूर | 10 | ड्,ढ्,ण्,त्,थ्,द्,ध्,न्,प्,फ् | नाभिस्थान | स्वर्णिम | रूद्र | लाकिनी |
| 04 | अनाहत | 12 | क्,ख्,ग्,घ्,ङ्,च् छ्,ज्,झ्,ञ्,ट्,ठ् | हृदयस्थान | गहरेरक्त वर्ण | पिनाकी | काकिनी |
| 05 | विशुद्धि | 16 | अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ऋ,ॠ,ऌ,ॡ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः | कण्ठ स्थान | स्वर्ण कान्ति युक्त | छागलाण्ड | शाकिनी |
| 06 | आज्ञा | 2 | ह,क्ष | भ्रूमध्य | श्वेत | महाकाल | हाकिनी |

## चक्र ध्यान से सिद्धियाँ :-

**मूलाधार चक्र :-** आधार चक्र के मध्य में तेजप्रकाश युक्त कामबीज रूप में कुण्डलिनी सक्रिय रहती है। इस चक्र के ध्यान से जठराग्नि प्रदीप्ति, शरीर कान्तियुक्त, अरोग्यता, सर्वज्ञता, वायु एवं बिन्दु पर नियंत्रण, मन विजय एवं

आकाश गमन की सिद्धियाँ प्राप्त होती है। मूलाधार में वाग्भव बीज स्थित है। जिसका मंत्र गुरू से जानना चाहिये।

**स्वाधिष्ठान चक्र :-** इस चक्र के ध्यान से स्त्रियों का मोहित होना, रोगमुक्ति, निर्भयता, अष्टसिद्धियों की प्राप्ति, शरीर में रसों की वृद्धि, सुषुम्ना में वायु का संचार, सहस्त्रार से अमृत का स्त्राव होता है।

**मणिपूर चक्र :-** इस चक्र के ध्यान से सुखों में निरन्तर वृद्धि, इच्छाओं की पूर्ति, औषधियों का ज्ञान, भूमिगत खजाने का ज्ञान आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

**अनाहत चक्र :-** इस चक्र के ध्यान से लोक एवं परलोक के इच्छित फलों की प्राप्ति, अप्सराओं का आकर्षित होना, भूत, वर्तमान एवं भविष्य को जान लेना, सूक्ष्मवस्तुओं को भी जान लेना, आकाश गमन की शक्ति, खेचरी एवं भूचरी की सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

**विशुद्धि चक्र :-** इस चक्र के ध्यान से वेदों के रहस्यों को जानने वाला पण्डित हो जाता है। इस ध्यान से मन हृदय में लीन हो जाता है। उस देह की क्षति नहीं होती वह योगीश्वर हो जाता है।

**भ्रूमध्यचक्र (आज्ञाचक्र) :-**इस चक्र की चर्चा सभी तांत्रिक ग्रन्थों ने की है। इसके ध्यान से उपरोक्त सभी चक्रों के ध्यान का लाभ प्राप्त हो है। परम सिद्धि दायक इस ध्यान से साधक शिव के समान हो जाता है। आज्ञा चक्र में शक्ति बीज का स्थान है। इसका मंत्र गुरू से जानना चाहिये। इड़ा को वरणा एवं पिंगला को असी कहते हुए दोनों के मध्य में स्थित वाराणसी (शिव स्थान) ही आज्ञा चक्र है। आज्ञा चक्र के बायें भाग से निकलकर पिंगला नाड़ी दाहिनी ओर की नासिका में खुलती है। वहीं इड़ा नाड़ी बायीं ओर की नासिका में खुलती है। इसी चक्र के ऊपर बिन्दु, नाद एवं शक्ति तीन पीठों का स्थान है।

**सहस्त्रदल कमल :-** तालुमूल एवं आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्त्रदल कमल का स्थान है। कपाल विवर में सोलह कलाओं से युक्त अमृतमयी किरणों को फैलाने वाले हंस रूपी उस निरंजन परमात्मा का ध्यान करने से चित्त शुद्ध हो जाता है। समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं एवं साधक सिद्ध हो जाता है। तालुमूल में ही सुषुम्ना नाड़ी नीचे की ओर मुख किये हुए स्थित है। इसी के मध्य में ब्रह्मरन्ध्र स्थित है। यही सरस्वती नाम से प्रसिद्ध है जो गंगा एवं यमुना के मध्य में निवास करती है। इसी त्रिवेणी तीर्थ पर ध्यान लगाने से साधक मुक्ति को प्राप्त करता है।

शरीर से बाहर सहस्त्रकमल पर ध्यान, शरीर के बाहर सिर के ऊपर सहस्त्रार स्थित है। इसे ही कैलाश भी कहा गया है। इसी स्थान पर शिव (अकुल स्वरूप) निवास करते है। इसके ध्यान से योगी शारीरिक, मानसिक आदि रोगों से मुक्ति पा लेता है। वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है। जगत विस्मृत हो जाता है। साधक विभिन्न शक्तियों का स्वामी हो जाता है। अन्ततः अन्तःशून्य में रमण करता हुआ योगी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

**राजाधिराज योग :-** उपरोक्त वर्णित सभी प्रकार के ध्यान आलम्बन युक्त हैं। जिसमें किसी चक्र, स्थान, कल्पना एवं भावना आदि का समावेशित है, परन्तु राजाधिराज योग में साधक को एकान्त में अपने मठ में स्थिर आसन में स्थित होकर किसी भी स्थान, कल्पना एवं भावना से रहित सभी आलम्बनों को छोड़कर जीवात्मा, परमात्मा एवं ब्रह्माण्ड आदि में मैं ही स्थित हूँ, के साथ आत्मचिंतन कर अपने आत्मा का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार सदैव विद्यमान आत्मा के ध्यान से स्वप्रकाश की जागृति होती है। जिससे अखण्ड ज्ञान उत्पन्न होता है।

## 1.4.8 घेरण्ड संहिता

महर्षि घेरण्ड और राजा चण्डकपालि के मध्य संवाद के रूप में प्रस्तुत प्रसिद्ध हठयौगिक ग्रन्थ है। जहाँ चण्डकपालि घेरण्ड से तत्त्वज्ञान को जानने के लिए साधन रूप घटस्थ योग के उपदेश के लिए प्रार्थना करता है। पाँच प्रकाशित

ग्रन्थ एवं प्राप्त चौदह हस्तलिपियों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि यह सत्रहवीं शताब्दी में लिखी गयी होगी। यह ग्रन्थ षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, समाधि नामक सात उपदेशों में विभक्त है। जिससे क्रमशः शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धीरता, लघुता, आत्मा का प्रत्यक्षीकरण एवं निर्लिप्तता की प्राप्ति होती है।

## प्रथम उपदेश :-

प्रथम उपदेश का नाम षट्कर्म है, जिसमे शारीरिक (वात पित्त व कफ) शोधन (संतुलन) के लिए महत्वपूर्ण साधनों का उल्लेख है। महर्षि के द्वारा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए घटस्थ योग के उपदेश में कहा गया है कि माया के समान बन्धन, योग के समान बल, ज्ञान के समान भ्राता एवं अहंकार के समान कोई दुश्मन नहीं है। शरीर के शोधन के लिए षट्कर्मों के अंतर्गत छः शोधन क्रियाएँ धौति, बस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति का उनके प्रकारों एवं लाभों के साथ विस्तार से विवरण किया गया है।

**धौति :-** ये चार प्रकार के हैं अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन है। अन्तर्धौति के उप प्रकारों में वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत आते हैं, जो क्रमशः वायु, जल, उदर के चालन से उत्पन्न अग्नि एवं गुदामार्ग से शक्ति नाड़ी का प्रक्षालन एवं वायु, जल तथा अग्नि से देहस्थ कोष्ठों की शुद्धि की क्रिया विधि है। दन्त धौति के अन्तर्गत दाँत, जीभ, कान और सिर (कपाल प्रदेश) की तर्जनी, मध्यमा अंगुलियों एवं उन अंगुलियों को मिलाकर अंजलि बनाकर कपाल प्रदेश में पानी की थपकी दी जाती हैं जिससे कफ दोष शमन होता है। हृद्धौति के अंतर्गत दण्ड, वस्त्र और वमन धौति में क्रमशः बेत, गन्ने या हल्दी के डण्डे को मुख से प्रवेश कराते हैं। वस्त्र धौति में उन्नीस हाथ लम्बा और चार अंगुल चौड़े कपड़े को मुख से निगलना और धीरे-धीरे निकालना एवं वमन धौति में साधक आकण्ठ जल पीकर बाहर निकाल देता है। उपरोक्त धौति के अभ्यासों से कफ और पित्त दोषों का शमन होता है। मूलशोधन, नाभि के नीचे

कार्य करने वाले अपान वायु की शुद्धि के लिए साधक के द्वारा अपने मध्यमा अंगुली या हल्दी के जड़ से गुदामार्ग का प्रक्षालन करना मूलशोधन कहलाता है।

**बस्तिकर्म :-** यह गुदामार्ग का शोधन कर्म है। यह जलबस्ति और शुष्क बस्ति मिलाकर दो प्रकार के हैं। जलबस्ति में साधक नाभिपर्यंत जल में उत्कटासन में स्थिर होकर अपने गुदामार्ग का आकुंचन व प्रसार करता है। इससे जल अंदर जाकर दूषित द्रव्यों को बाहर करती है। शुष्कबस्ति में साधक पश्चिमोत्तानासन में स्थिर होकर गुदामार्ग का आकुंचन व प्रसारण(अश्विनी मुद्रा) करता है। उपरोक्त बस्ति के अभ्यास से अपान वायु का कुप्रभाव नियंत्रित होता है।

**नेति :-** एक बित्ता लम्बा, सूक्ष्म सूत्रों से बने नेति को नासिका से प्रवेश कराये एवं मुख से धीरे-धीरे निकाले। यह अभ्यास दोनों ओर की नासिका से क्रमशः करें। यह कफदोष शामक, दृष्टि को तीक्ष्ण और खेचरी को सिद्ध करने में सहायक है।

**लौलिकी :-** उदर को दाहिने तथा बायें दोनों दिशाओं में भ्रमर के समान घुमाना ही लौलिकी है। यह देहाग्नि को बढ़ाने वाला और सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने वाला है।

**त्राटक :-** बिना पलकों को झपके आँखों से किसी सूक्ष्म लक्ष्य को लगातार तब-तक देखते रहना चाहिये जब तक की आँसू न आ जाये। इसे ही त्राटक कहा गया है। इससे नेत्र दोषों का शमन होता है और शाम्भवी की सिद्धि प्राप्त होती है।

**कपालभाति :-** यह वातक्रम, व्युत्क्रम और शीतक्रम मिलाकर तीन प्रकार के हैं। वातक्रम में शनैः-शनैः बायीं नासिका से श्वास लेकर दाहिनी नासिका से छोड़ना और दाहिनी नासिका से श्वास लेकर बायीं नासिका से छोड़ने का अभ्यास किया जाता है। व्युतक्रम में जल को मुख के माध्यम से ग्रहण कर नासिका से निकाला जाता है एवं नासिका से जल ग्रहण कर मुख से निकाला जाता है।

मुख से जल ग्रहण कर नासिका से निकालने का अभ्यास शीतक्रम कहलाता है। उपरोक्त अभ्यासों से कफ सम्बन्धि रोगों का शमन होता है। इस प्रकार प्रथम उपदेश में वर्णित षट्कर्म विभिन्न प्रकार के रोगों दूर कर वात, पित्त और कफ (त्रिदोषों) को संतुलित करता है।

## द्वितीय उपदेश :-

इस उपदेश में शिव द्वारा उपदिष्ट चौरासी लाख योनियों से आये हुए आसनों की चर्चा है। महर्षि घेरण्ड के द्वारा इन चौरासी लाख आसनों में से बत्तीस आसनों को मृत्युलोक में विशेष माना गया है। इनमें सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वतिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कटासन, संकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, उत्तानमण्डुकासन, वृक्षासन, मण्डुकासन, गरूडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन, योगासन। उपरोक्त आसनों में सिद्धासन को मुक्तिदायक एवम् श्रेष्ठ कहा गया है।

उपरोक्त आसनों के अभ्यास से रोगों की निवृत्ति होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। नाड़ियाँ में प्राण का प्रवाह संतुलित होता है एवं सुप्त कुण्डलिनी का जागरण होता है।

## तृतीय उपदेश :-

तृतीय उपदेश में विभिन्न मुद्राओं की चर्चा है। जिनमें महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियान, जालंधर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनिमुद्रा, वज्रोली, शक्तिचालनी, ताड़ागी, माण्डुकी, शाम्भवी, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी, भुजंगिनी, पंच धारणा के अंतर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश की धारणा को सम्मिलित किया गया है। उपरोक्त मुद्राओं की संख्या पच्चीस है। इनके अभ्यास से विभिन्न प्रकार के दोषों जैसे यकृत विकार, बालों का सफेद होना, बुढ़ापे के लक्षण आदि दूर होते हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। वात, पित्त,कफ दोषों में संतुलन, शारीरिक एवं मानसिक रोगों की निवृत्ति, अपान वायु

का ऊर्ध्वगमन, बिन्दु (वीर्य) का संरक्षण, सिर प्रदेश में स्थित चन्द्रमण्डल से स्रावित अमृत का रक्षण, कुण्डलिनी का जागरण, पंच तत्त्वों पर विजय आदि सिद्धियों को प्रदान करने वाली ये मुद्रायें प्रसिद्ध हैं।

## चतुर्थ उपदेश :-

इसमें प्रत्याहार का उपदेश किया गया है। चंचल मन जिन-जिन विषयों में रमण करता है उन-उन विषयों से अभ्यासी के द्वारा मन को लौटाकर अपने स्वयं में लगाना ही प्रत्याहार है। इससे योग मार्ग में आने वाली इच्छा, वासना आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त किया जाता है। साथ ही मन को प्रभावित करने वाले मान-अपमान, अच्छा-बूरा, सुगन्ध-दुर्गन्ध, प्रिय-अप्रिय, अम्ल, लवण, मधुर आदि इच्छाओं के प्रति सतर्क रहते हुए इनसे अप्रभावित रहना चाहिये। इस अभ्यासों से सजगता की प्राप्ति होती है। ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता और वही ऊर्जा कुण्डलिनी के जागरण में सहायक बनती है।

## पंचम उपदेश :-

**स्थान काल और मिताहर :-** इस उपदेश में योगी के लिए रहने के स्थान, अभ्यास का काल, मिताहार, नाड़ी शोधन व प्राणायाम का विस्तार से उल्लेख है। इस अभ्यास के लिए योगी को प्रथमतः उपद्रव रहित, सुराज्य, अन्न-जल की पर्याप्त व्यवस्था वाले स्थान पर कुटी बनाकर, छः ऋतुओं में से बसंत और शरद में ही योगाभ्यास आरम्भ करनी चाहिए। क्षुधा तृप्ति के लिए मिताहार का वर्णन करते हुए योगियों के लिए खाद्य आहारों में चावल, मूंग, गेहूँ, चना, जौ, भूसी रहित अन्न, कुदरू, परवल के पत्ते, कटहल, गूलर, चौलाई, केले का दण्ड, बैंगन, बथुआ, मौसमी शाक आदि को आधा पेट ही ग्रहण करना चाहिए। पेट का एक चौथाई पानी के लिए एवं एक चौथाई वायु के संचार के लिए खाली रखना चाहिए इसे ही मिताहार कहा गया है, जो योग में सफलता के लिए आवश्यक है। निषिद्ध आहार के अंतर्गत, कटु, अम्ल, तिक्त, तली और भुनी हुई चीजें, दही, लहसुन, पेठा, गोभी, सेमर, कैथ, कदम्ब के फूल, प्याज, हींग, गुड़, आँवले, बासी,

ठंडा, अति उष्ण भोजन आदि का सेवन नहीं करना चाहिये। उपरोक्त निषिद्ध आहार को ग्रहण करने से योगाभ्यास में विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

**नाड़ी शोधन व प्राणायाम :-** प्राणायाम के पूर्व नाड़ियों को शुद्ध करने की अनिवार्यता है। जिससे प्राण नाड़ियों में प्रवेश कर सुषुम्ना मार्ग का भेदन कर सके। इनके लिए बीज मंत्रों के साथ किये जाने वाले नाड़ी शोधन को समनु और धौति आदि कर्म से किये जाने वाले नाड़ी शोधन को निर्मनु कहा गया है। उपरांत प्राणायाम भी बीज मंत्र के साथ किये जाने पर सगर्भ जिसमें अँ, उँ व मँ के साथ क्रमशः रजोगुण युक्त ब्रह्मा, सतोगुण युक्त विष्णु और तमोगुण युक्त शिव का ध्यान करते हुए पूरक, कुम्भक और रेचक क्रमशः सोलह, चौसठ और बत्तीस मात्रा तक करने का विधान है। प्राणायाम को उनके मात्राओं के अनुसार अधम, मध्यम और उत्तम नामक तीन स्तरों में विभजित किया गया है। वहीं बीजमंत्र रहित प्राणायाम को निगर्भ कहा गया है। इसके अंतर्गत सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली प्राणायाम का क्रियाविधि एवं उनके लाभों के साथ विस्तार से उल्लेख है।

## षष्ठ उपदेश :-

इसमें चण्डकपालि को ध्यान का उपेदश किया गया है। जो आत्मा के प्रत्यक्षीकरण में साधन रूप है। ध्यान के तीन प्रकारों में स्थूल, ज्योति और सूक्ष्मध्यान का विस्तृत वर्णन हैं।

**स्थूलध्यान :-** हृदय में गुरू का ध्यान करने का निर्देश जिनके चारों ओर सभी प्रकार के ऐश्वर्य विद्यमान है जो करूणा और ज्ञान के मूर्ति है। सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले गुरू का ध्यान स्थूल ध्यान है। दूसरा स्थूल ध्यान सहस्त्रार कमल के मध्य में शक्ति के साथ गुरू के ध्यान का विवरण है। स्थूल ध्यान से योग में सिद्धि की प्राप्ति होती है और आत्मा की अनुभूति होती है।

**ज्योर्तिध्यान :-** सुषुम्णा मार्ग में अधः स्थान (मूलाधार) में कुण्डलिनी सुप्त रूप में स्थित है उसी सुषुम्णा मार्ग में प्रज्ज्वलित दीपक के समान ऊर्ध्वज्योति के

प्रकाश रूप आत्मा का ध्यान करें। दूसरा भ्रूमध्य में तेजोमय प्रणव रूप देदिव्यमान् ज्वाला के सदृश, ब्रह्म ज्योति, प्रणव (ओंकार) का ध्यान ही ज्योर्ति ध्यान कहा गया है।

**सूक्ष्मध्यान :-** उपरोक्त योगांगों के अभ्यासों की निरंतरता में किसी बिरले भाग्यवान की कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। यह शक्ति मूलाधार से भ्रूमध्य में जाकर शिव से एकाकार हो जाती है। इस कुण्डलिनी का अधः से उर्ध्वगमन करते हुए भ्रूमध्य में एकाकार होने का अनुभव ही सूक्ष्म ध्यान है। यह ध्यान शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास से सिद्ध होता है। उपरोक्त ध्यान के प्रकारों की महत्ता को व्यक्त करते हुए महर्षि घेरण्ड ने कहा है कि हे चण्ड, स्थूल, ज्योति और सूक्ष्म ध्यान क्रमशःसौ गुना श्रेष्ठ है। ये आत्मसाक्षात्कार के साधन हैं।

## सप्त उपदेश :-

यहाँ समाधियों का उपदेश है, जो योग में उत्तम है। यह गुरूकृपा एवं दीर्घकाल के योगाभ्यास से भाग्यवानों को ही उपलब्ध होता है। समाधि के पूर्व उपरोक्त अभ्यासों की प्रगाढ़ता में निर्मलता, ज्ञान की अनुभूति आदि का बोध होते-होते मन समाधि में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसकी प्रतिष्ठा से सभी प्रकार के शोक, भय, मोह आदि समाप्त होकर स्वयं में ब्रह्म की अनुभूति होती है। सद्-चित्त-आनंद स्वरूप नित्य मुक्तावस्था का अनुभव ही समाधि है। इस उपेदष में छः प्रकार की समाधियों की चर्चा निम्न्वत है-

**ध्यानयोग समाधि :-** योगी शाम्भवी मुद्रा में बिन्दु स्थान (भ्रूमध्य) में आत्मा को प्रत्यक्ष मानकर मन को लगाता है। उसी आकाश स्थान में आत्मा को आकाश में एवं आकाश को आत्मा में देखने से बाधा रहित सदा आनन्द दायक विशालता का अनुभव के साथ घटित समाधि, ध्यानयोग समाधि है।

**नादयोग समाधि :-** भ्रामरी में मादा भ्रमरी के समान उत्पन्न मंद-मंद गुंजन से योगी का सम्पूर्ण शरीर गुंजायमान हो रहा है। योगी द्वारा मन को भी उसी नाद में लीन कर देने से जो समाधि घटित होती है। उसे नादयोग समाधि कही गयी है।

**रसानंदसमाधि :-** खेचरी मुद्रा में जब योगी जीभ को कपाल गुहर में प्रवेश कराता है, तब उसे सभी प्रकार के रसों की अनुभूति होने लगती है। उस रसानंद में मन को लगा देने से परमानंद दायक रसानंद समाधि की प्राप्ति होती है।

**लययोग समाधि :-** योगी योनिमुद्रा में स्थित होकर स्वयं में शक्ति और शिव दोनों का अनुभव करता हुआ। श्रृंगारित होकर अपने को स्त्री रूप और परमात्मा को परमपुरूष के रूप में मानते हुए यह भावना करें कि शिव और शक्ति दोनों एकाकार हो रहे हैं और दोनों एक हैं, उसी भावना में मन को लगाने से लययोग समाधि घटित होती है।

**भक्तियोग समाधि :-** योगी अपने हृदय में श्रद्धा और विश्वास के साथ इष्ट का ध्यान करता हुआ मन को लगाकर परम आनंद का अनुभव करे। उस परमानंद से देह रोमांचित पुलकित और नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है। इस अवस्था में जो समाधि घटित होती है। उसे भक्तियोग समाधि कही गयी है।

**मनोमूर्च्छा समाधि :-** मनोमूर्च्छा प्राणायाम के सिद्ध हो जाने के बाद जब मन विषयों से आलम्बन रहित हो जाता है। उस समय योगी में जो समाधि घटित होती है। जिसे मनोमूर्च्छा समाधि नाम से सम्बोधित किया गया है। ऋषि घेरण्ड के अनुसार, उपरोक्त समाधि से योगी सभी प्रकार के बन्धनों आदि से निर्लिप्त होकर मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सप्तम् उपदेश पूर्ण होता है।

## 1.4.9 हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना हठयोग के महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक है। जो हठप्रदीपिका की प्रमुख एवं प्रसिद्ध टीका है। इसके रचनाकार ब्रह्मानंद यति है। लेखक ने गोरक्षसिद्धांत (हठयोग) को समझने के लिए स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका को सामान्य जनों के लिए उपयोगी बनाने के उद्देश्य से सरल रुप में प्रस्तुत किया है।

### प्रथम उपदेश :-

हठविद्या के उपदेशकर्ता आदिनाथ (शिव) ने ही इस विद्या का उपदेश पार्वती को दिया है। जो मोक्ष की इच्छा रखने वालों के लिए आधार भूमि है। आदिनाथ का वैकल्पिक नाम विष्णु है। हठ शब्द में ह से सूर्य व ठ से चंद्र समझना चाहिये। जिसका उद्देश्य प्राण व अपान का मिलन है, जो राजयोग की प्राप्ति कराता है। अतः राजयोग मंत्र, हठ की तुलना में सबसे ऊपर है। सभी वृत्तियों का निरोध, असम्प्रज्ञात योग ही राजयोग है। इस हठविद्या का उपदेश मात्र राजयोग की प्राप्ति है। इस मार्ग में प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ गौण है। राजयोग ध्यान, तर्क, सत्कर्मों, आगम, वेदांत आदि के माध्यम से जाना नहीं जा सकता। हठयोग व राजयोग के बीच साध्य-साधन का संबंध है। विभिन्न मान्यताओं व भ्रांतियों को दूर करने के लिए दीपक के समान हठविद्या से राजयोग की प्राप्ति के लिए इसका उपदेश किया जा रहा है। हठयोग के जानकार मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ प्रमुख थे, इन्हीं नाथ सिद्धों से ही जालंधरनाथ, भर्तृहरि, गोपीचंद आदि सिद्धों ने भी इस हठविद्या को जाना इस पर हठविद्या के प्रमाण रूप में याज्ञवल्क्यस्मृति का उल्लेख किया गया है।

सिद्धों की चर्चाओं में हठप्रदीपिका के समान ही सभी सिद्धों के नामों का उल्लेख करते हुए जालंधरनाथ, भर्तुहरि, गोपीचंद के साथ-साथ सहजयानी बौद्ध सिद्धों पर लेख व तिब्बती व नेपाली तांत्रिक बौद्ध परम्पराओं में प्रसिद्ध सोलहवीं शताब्दी के तारानाथ को भी नाथ सिद्धों में गिना गया है। गुरू के निर्देशन में

हठविद्या को गोपनीय रखते हुए योगी को उपयुक्त स्थान पर कुटी बनाकर यौगिक अभ्यासों को चिंतामुक्त होकर करना चाहिये।

अत्यधिक भोजन, अधिक श्रम, अधिक बोलना, नियमाग्रह (सुबह स्नान, उपवास, सिर्फ फलाहार आदि) अधिक लोगों से मिलना-जुलना, मन की चंचलता योगमार्ग में बाधक हैं। वही उत्साह, सिद्धि अथवा असिद्धि आदि के चिंता के बिना समय गवाएं हुए अभ्यास में लग जाना साहस है। जीवनभर अथवा लंबे समय तक अभ्यास करते हुए भी सिद्धियों के न मिलने पर चिंता न करना व लगे रहना धैर्य है। विषय को मृगतृष्णा के जल के समान असत्य मानना व केवल ब्रह्म को ही सत्य मानना अथवा योगांगों का ज्ञान ही सत्यज्ञान है। गुरू व शास्त्रों के कथनों पर विश्वास ही निश्चय है। योग के प्रतिकूल व विरोधी लोगों से संबंध न रखते हुए अन्य सभी के ज्यादा सम्पर्क में न रहना, जनसंघ परित्याग है, जो साधक तत्त्व हैं।

आसन, हठयोग का प्रथम अंग है व हठयोग के चार अंगों में आसन, कुम्भक (प्राणायाम), मुद्रा व नादानुसंधान शामिल हैं। ब्रह्मानंद ने प्रत्याहार, ध्यान, समाधि को नादानुसंधान के अंर्तगत ही माना है। इन आसनों से रजस व तमस विकारों का शमन होता है। मन की चंचलता दूर होती है। शरीर में हल्केपन की वृद्धि होती है। यहाँ पीठ का एक अर्थ आसन भी है। मत्स्येन्द्रनाथ व जालंधरनाथ जैसे हठयोग के सिद्धों के द्वारा उपदिष्ट चौरासी आसनों में से श्रेष्ठ आसनों के अंतर्गत स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन आदि पंद्रह आसनों की चर्चा है। उनमें से भी क्रमशः सिंहासन, भद्रासन, पद्मासन व सिद्धासन महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी सिद्धासन विशिष्ट है। ब्रह्मानंद ने सिद्धासन में पैरों की ऐड़ी को स्थान विशेष में रखने के कारण उन्हें सिद्धासन, वज्रसान, गुप्तासन व मुक्तासन नामों में विभाजित किया है। यमों में मिताहार व नियमों में अहिंसा प्रमुख है। आत्मा का ध्यान करने वाला, मिताहारी व सिद्धासन का अभ्यास करने वाला एक वर्ष से कुछ अधिक दिनों में, हठयोग की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। आसनों में सिद्धासन, कुम्भकों में केवल कुम्भक, मुद्राओं में खेचरी मुद्रा, नाद के समान कोई मन को लय करने वाला साधन नहीं।

स्निग्ध, मधुर आहार के साथ मिताहार एवम् अपथ्य आहारों का भी उल्लेख है। मिताहार के अंतर्गत दत्तात्रेय व स्कन्दपुराण से भी संदर्भ प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्मानंद ने स्वात्माराम द्वारा वर्जित कहे गये नियमों में समयानुकूल थोड़ी ढ़िल देते हुए ठंड़ के मौसम में शरीर को गर्म रखने के लिए धूप आदि का सेवन, गृहस्थ योगाभ्यासियों के लिए ऋतुकाल में पत्नी का संग, कभी-कभी तीर्थाटन आदि के लिए छूट दी है, किन्तु ये अभ्यासकाल में वर्जित कहा गया है। प्रातःकाल स्नान से कफदोष, उपवास से पित्त दोष, अधिक श्रम से थकान होने से अभ्यास में बाधा उत्पन्न होती है। अतः इन्हें त्याग देना चाहिये।

पथ्याहार में गेंहू, शाठी का चांवल, दूध, घी, मधु, सोठ, मक्खन, शर्करा, परवल, पाँच प्रकार के शाक जीवंती, बथुआ, चौलाई, मेघनाद व पुनर्नवा, मूंग की दाल, वर्षा का जल गाय का दुग्ध आदि। उपरोक्त आहार हितकारी है। रोगी, दुर्बल, अतिवृद्ध आदि सभी यौगिक अभ्यासों को कर सिद्धि को प्राप्त कर सकते है इसमें संशय नही। योग को जानने, विशेष वस्त्र पहनने से नहीं वरन अभ्यास से ही लाभ और सिद्धियों की प्राप्ति होती है। प्रथम उपदेश के अंत में कहा गया है कि सभी वृत्तियों के निरोध अर्थात असम्प्रज्ञात समाधि तक हठयोग के अंगों का अभ्यास करते रहना चाहिए।

## द्वितीय उपदेश :- आसन :-

आसनों में पंद्रह आसनों की चर्चा करते हुए सिद्धासन, पद्मासन आसनों में स्थिरता दृढ़ता प्राप्त हो जाने के बाद कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये। कुम्भक (प्राणायाम) के माध्यम से प्राण को धीरे-धीरे ही नियंत्रित करना चाहिये। इनके सही अभ्यास से ही सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं तथा गलत अभ्यास से श्वास, हिक्का, सिर में, कान में, आँख में दर्द आदि कष्टों की उत्पत्ति होती है।

## नाड़ी शोधन :-

नाड़ीशोधन कर नाड़ियों को मल रहित किया जाना चाहिये जिससे प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर सके और मनोन्मनी अवस्था प्राप्त हो। अतः बायीं नासिका से पूरक कर जालंधर बंध के साथ प्राण का नियंत्रण करें व सामर्थ्य के अनुसार

कुम्भक के बाद गुदा और नाभि प्रदेश को अंदर की तरह सिकोड़ते हुए जालंधर बंध को मुक्त करते हुए दाहिनी नासिका से रेचक करना चाहिये उपरांत दाहिनी नासिका से पूरक कर जालंधर बंध के साथ कुम्भक कर उपरोक्त प्रक्रिया साथ बायीं नासिका से रेचक करना चाहिये। इस प्रकार के अभ्यास से तीन महीने से कुछ अधिक समय में साधक की नाड़ियाँ मलरहित (शुद्ध) हो जाती है। जिससे देह पतला कांति युक्त, प्राण को रोकने की क्षमता, जठराग्नि प्रदीप्ति, ध्वनि (नाद) की उत्पत्ति, आरोग्यता की प्राप्ति आदि लक्षण दिखलाई पड़ते हैं।

उपरोक्त अभ्यास प्रातः, मध्य, सायंकाल एवं अर्द्धरात्रि में करना चाहिये। यदि अर्द्धरात्रि को असुविधा हो तो उसे छोड़ा जा सकता है। एक बार में अस्सी कुम्भक के अनुसार दिन में तीन बार के अभ्यास में दो सौ चालीस बार कुम्भक पूरा होता है। प्राणायाम मुख्यतः कनिष्ठ, मध्यम व उत्तम तीन भागों में क्रमशः बारह, चौबीस और छत्तीस मात्रा तक प्राण को रोक कर रखने के आधार पर विभिजित है। इनसे क्रमशःशरीर से पसीना आता है जिसे शरीर में ही मर्दन करने से हल्कापन शारीरिक दृढ़ता की प्राप्ति होती है। दूसरे में शरीर में कंपन होता है व उत्तम मात्रा में प्राण सुषुम्ना में ऊर्ध्वगमन करने लगता है। साथ ही आनंद की अनुभूति, निद्रा, रोमांच, नाद की उत्पत्ति आदि लक्षण प्राप्त होते हैं। एक मात्रा से तात्पर्य घुटने में तीन बार हाथ फेरने अथवा अंगूठे व मध्यमा अंगुलि से एक बार चुटकी बजाने अथवा तीन बार ताली बजाने में लगा समय है। ब्रह्मानंद ने इस टीका में उपरोक्त विषय की चर्चा करते हुए स्कंदपुराण, योगचिंतामणि, लिंगपुराण आदि विभिन्न ग्रंथों एवं याज्ञवल्क्य, दत्तात्रेय, गोरक्षनाथ आदि योगियों के नामों का उल्लेख किया है।

## षट्कर्म :-

छः प्रकार की शोधन क्रियाएँ त्रिदोषों को संतुलित करती है, एवं प्राण सिद्धि में सहायक होने के कारण प्राणायाम के पूर्व किया जाना चाहिये जो निम्नवत है-

**धौति :-** पन्द्रह हाथ लम्बा और चार अंगूल चौड़ा सूती वस्त्र अथवा विकल्प के रूप में मलमल का कपड़ा को गर्म जल में भिगाकर धीरे-धीरे निगलना चाहिये व धौति के अंतिम हिस्से को दांत से दबाकर नौलि का अभ्यास कर, धीरे-धीरे बाहर निकालना चाहिये। पहले दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो हाथ, तीसरे दिन तीन हाथ धौति को निगलते हुए क्रमशः पूरा धौति निगलना चाहिये। यह श्वास, कुष्ठ, प्लीहा, कास इत्यादि बीस प्रकार के कफ रोगों के दूर करता है।

**बस्ति :-** कनिष्ठिका अँगुलि के परिमाप का छः अंगुल लंबा वंशनाल को गुदाद्वार से प्रवेश कराये व दो अंगुल भाग को बाहर ही रहने दे उपरांत नाभि तक गहरे जल में उत्कटासन में बैठकर जल को वंशनाल के माध्यम से जल को अंदर खीचें फिर जल बाहर निकाल दे। इस प्रकार बस्ति व धौति का अभ्यास भोजन के पूर्व किया जाना चाहिये। इसके अभ्यास से सप्त धातुओं, कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों, अंतःकरण में सात्विकता का विकास, जठराग्नि की प्रदीप्ति, त्रिदोष में संतुलन आदि प्राप्त होता है साथ ही यह भी कहा गया है कि शुष्क बस्ति के बाद जलबस्ति करने से जल के दुष्प्रभावों के कारण धातु क्षय एवं विभिन्न प्रकार के रोगों के होने की संभावना होने से केवल जल बस्ति को ही व्यवहार में लाना चाहिये।

**नेति :-** गांठ रहित हाथ भर लम्बा स्निग्ध सूत्रों को नौ, बारह या पंद्रह बार गुणित कर उसके एक सिरे को नासिका के एक खुली हुई छिद्र में प्रवेश कराते समय दूसरी नासिका को बंदकर नेति वाली नासिका से पूरक कर मुख से वायु का धीरे-धीरे रेचन करने से नेति का एक सिरा मुख में आ जाता है। इस प्रकार नासिका के बाहर एवं मुख से निकाले गये नेति के दूसरे सिरे को पकड़कर धीरे-धीरे चलाना चाहिये। इसी प्रकार दूसरी नासिका से भी अभ्यास करना चाहिये। यह क्रिया कपाल प्रदेश का शोधन करती है। कन्धों से ऊपर होने वाले रोगों को जल्द ही नष्ट करती है। दिव्यदृष्टि प्रदान करने वाली है। अपने चित्त को एकाग्र कर, स्थिर होकर, किसी सूक्ष्म लक्ष्य को बिना पलकों को बिना झपके आँखों से

आँसू आने तक देखते रहना ही त्राटक है। यह निद्रा, तन्द्रा आदि नेत्र दोषों को दूर करता है।

कंधों को थोड़ा ढ़ीला कर आगे की ओर झुकाकर पेट को अंदर की ओर खींचते हुए अपने उदर को जल भंवर के समान बायीं से दाहिनी एवं दाहिनी से बायीं ओर घुमाना चाहिये। यह नौलि कर्म है। यह अभ्यास जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला, भोजन को अच्छी तरह से पचाने वाला, वात दोषों को दूर करने वाला, आनंद प्रदायक है। धौति एवं बस्ति कर्म नौलि के बगैर अधूरे माने गये हैं।

लोहार की आग वाली धौकनी के समान बिना रूके पूरक-रेचक का अभ्यास करना कपालभाति कहलाता है। यह बीस प्रकार के कफ दोषों को दूर करने वाला, कफ शामक अभ्यास है। साधक के द्वारा खाये हुए पदार्थों, अन्न, जल आदि को, अपान वायु को ऊपर उठाते हुए मुख से बाहर निकालना ही गजकरणी है। इस अभ्यास से शंखिनी नाड़ी एवं शरीरस्थ अन्य नाड़ियों पर भी नियंत्रण स्थापित होता है।

## कुम्भक :-

शौच आदि से निवृत्त होकर शरीर में भस्म रमाकर, सुबह, दोपहर, शाम एवं अर्धरात्रि में चार बार योगी को गुरू व ईश्वर को प्रणाम कर सिद्धासन में स्थित होकर प्रथमतः अनुलोम-विलोम का अभ्यास करना चाहिये उपरांत हर दिन पाँच-पाँच कुम्भकों का अभ्यास बढ़ाते हुए चार बार में अस्सी कुम्भक तक का अभ्यास करना चाहिये।

प्राणायाम के अभ्यास से प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है जिससे मनोस्थिरता के साथ सिद्धियों की प्राप्ति होती है। तब प्रत्याहार आदि अन्य अभ्यासों की आवश्यकता नहीं होती। कुम्भक के  पूर्व नाड़ी शोधन करने का निर्देश है। नाड़ी शोधन में जालंधर बंध के साथ जिह्वाबंध जीभ को पलटकर तालु से लगाकर रखना) के अभ्यास से उड्डियान तथा मूलबंध के अभ्यास की जरूरत नहीं होती एवं अन्य किसी भी प्रकार के हानि की संभावना भी समाप्त हो जाती है।

अपने शरीर में स्थित वायु ही प्राण है एवं उसका नियंत्रण ही आयाम है। कुम्भक, प्राणायाम का ही नामांतर है जो मूलतः सहित एवं केवल में विभक्त है। पूरक एवं रेचक के साथ कुम्भक का अभ्यास सहित कहलाता है। इसके अंतर्गत आठ प्रकार के कुम्भकों की चर्चा निम्नवत है-

**सूर्यभेदन :-** प्राणायाम, साधक को दाहिनी नासिका से पूरक कर जालंधर बंध के साथ प्राण को अपनी क्षमता के अनुसार रोककर रखना चाहिये उपरान्त मूल एवं उड्डियान बंध लगाकर जालंधर बंध को मुक्त करते हुए बायीं नासिका से शनैः-शनैः वायु का रेचन करना चाहिये। जिस प्रकार जंगली पशुओं को धीरे-धीरे ही नियंत्रण में लाया जा सकता है। उसी प्रकार वायु को भी नियंत्रण में लाना चाहिये। यह अभ्यास कपाल एवं मस्तक दोनों का शोधन करने वाला, वात दोषों एवं पेट के कृमि को नष्ट करने वाला, ठंडे के मौसम में अधिक हितकारी है।

**उज्जयी प्राणायाम :-** मुख को बंद कर, कण्ठ को सहजता से सिकोड़ते हुए कण्ठ से हृदय तक महसूस होने वाली वायु को ध्वनि के साथ दोनों नासिका से पूरक करना चाहिये। जालंधर बंध के साथ क्षमतानुसार कुम्भक करें उपरांत मूलबंध व उड्डियान बंध के साथ बायीं नासिका से रेचक करना चाहिये। यह अभ्यास कफ, कास, पित्त एवं धातु आदि दोषों को दूर कर जठराग्नि प्रदीप्त करता है। इसका अभ्यास टहलते, सामान्य बैठे हुए भी बिना कुम्भक के किया जा सकता है।

**सीत्कारी :-** दोनों जबड़ों के दंत पंक्तियों को मिलाकर मुख से सी की आवाज के साथ पूरक करे जालंधरबंध के साथ कुम्भक एवं मूल व उड्डियान बंध के साथ दोनों नासिका से ही वायु का रेचन करे। इस अभ्यास में मुख से रेचन करने से शरीर बल घटता है। यह आलस्यता, कफदोष आदि को दूर करता है। साधक का शरीर सुन्दर व आकर्षक हो जाता है। शरीर बल की वृद्धि होती है। गर्मी के मौसम में अधिक हितकारी है।

**शीतली :-** जिह्वा को मुख से बाहर निकालर पक्षी के चोंच की तरह बनाकर शनैः-शनैः वायु का पूरक करे। उपरोक्त जालंधरादि बंधों के साथ कुम्भक करने के उपरांत दोनों नासिका से धीरे-धीरे वायु का रेचन करे। शीतली के अभ्यास से भूख, प्यास, सर्प आदि विषैले जीवों के प्रभाव, पित्त विकार, गुल्म, प्लीहा आदि रोग दूर हो जाते हैं।

**भस्त्रिका :-** कुम्भक की पहली विधि, साधक को पद्मासन में बैठकर किसी एक नासिका से पूरक एवं रेचन का अभ्यास करना चाहिये। इस पूरक एवं रेचन के अभ्यास में वायु का स्पर्श हृदय प्रदेश से लेकर कपाल प्रदेश तक अनुभव हो। यह अभ्यास तब-तक करना चाहिये जब-तक की शरीर में थकान न हो जाए। थकान का अनुभव होने पर दाहिनी नासिका से पूरक कर अंगूठे से दाहिनी नासिका एवं अनामिका व कनिष्ठिका से बायीं नासिका को बंदकर जालंधरबंध के साथ कुम्भक कर मूल व उड्डियान के साथ बायीं नासिका से रेचन करना चाहिये।

दूसरी विधि दाहिनी नासिका से पूरक कर बायीं नासिका से रेचन करना चाहिये। इस अभ्यास को पुनः-पुनः करें एवं थकान होने पर दाहिनी नासिका से पूरक कर जालंधर बंध के साथ कुम्भक कर मूल व उड्डियान के साथ बायीं नासिका से रेचन करना चाहिये। पुनः दाहिनी नासिका को बंद कर बायीं नासिका से पुनः-पुनः पूरक कर दाहिनी नासिका से वायु का रेचन करना चाहिये। थकान होने पर पुनः बायीं नासिका से पूरक कर जालंधर बंध के साथ कुम्भक लगाकर दाहिनी नासिका से ही रेचन करे। भस्त्रिका का उपरोक्त अभ्यास कफ, पित्त दोषों को दूर कर जठराग्नि को विशेष रूप से प्रदीप्त करता है। त्रिदोषों को दूर करने के कारण यह सभी मौसम में अभ्यास किये जाने योग्य है। यह सुषुम्ना मार्ग के तीन ग्रन्थियों ब्रह्म, विष्णु एवं रूद्र ग्रन्थियों के भेदन करने के कारण प्रसिद्ध है।[52]

---

[52] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : लोनावला कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ.148.

भ्रामरी, नर भौंरे के समान ध्वनि करते हुए दानों नासिका से वायु का पूरक करना चाहिये एवं उपरोक्त जालंधरबंध में कुम्भक के बाद मूलादि बंध के साथ मादा भ्रमरी के समान ध्वनि उत्पन्न करते हुए रेचन करना चाहिये। इस विधि को ही भ्रामरी कहा गया है। यह चित्त में अव्यक्त आनंद की अनुभूति कराता है।

मुर्च्छावायु का पूरक करने के बाद जालंधर बंध लगाकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुम्भक कर जालंधर बंध में ही वायु का शनैः-शनैः रेचन करना चाहिये। जिससे मस्तिष्क में मुर्च्छा की अनुभूति होता है। यह अभ्यास मन को स्थिर कर शांति प्रदान करता है।

**प्लाविनी :-** साधक द्वारा उपरोक्त प्राणायामों के अभ्यास से शरीर में प्राण धारण की क्षमता बढ़ जाती है। उस साधक का शरीर प्राणायाम के प्रभाव से हल्का हो जाता है। तब वह वायु को पेट में भरकर गहरे जल में भी कमल के पत्ते की भाति तैरने में समर्थ हो जाता है। वही केवली कुम्भक में बिना पूरक एवं रेचन के प्राण को लम्बे समय तक धारण करने की क्षमता आ जाती है। सुषुम्ना मार्ग में, पानी से किसी घड़े को पूरा भरने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसी प्रकार की अनुभूति होने पर केवल कुम्भक की सिद्धी समझनी चाहिये। अतः केवल कुम्भक की अनुभूति की प्राप्ति तक साधक को सहित कुम्भकों का अभ्यास करते रहना चाहिये। योगाभ्यासी में हठसिद्धि के विभिन्न लक्षण दिखलाई पड़ते है। केवल कुम्भक सिद्ध हो जाने पर सुषुम्ना मार्ग कफ आदि दोषों से रहित हो जाती है। जिससे सुप्त कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। जिससे उत्तरोत्तर कैवल्य सिद्ध हो जाता है। इसे ही राजयोग भी कहा गया है।

हठयोग तथा राजयोग दोनों एक दूसरे के बगैर अधूरे हैं। अतः राजयोग की प्राप्ति तक हठयोग का अभ्यास करते रहना चाहिये। केवलकुम्भक (प्राणजय) सिद्ध हो जाने पर चित्त विषयों से आश्रय रहित हो जाता है। तब सम्प्रज्ञात समाधि घटित होती है। उसमें भी परवैराग्य के माध्यम से अपने चित्त को ब्रह्म (निराकार, स्वयंप्रकाशित) अवस्था में लीन करने पर परम पद (राजयोग) की प्राप्ति होती है।

## तृतीय उपदेश :-

**मुद्रा :-** कुण्डलिनी का जागरण ही समस्त योगाभ्यासों का मूल उद्देश्य है। इसके बगैर समस्त यौगिक साधनायें आधारहीन है। कुण्डलिनी का जागरण ही हठयोग का लक्ष्य है। इसे भुजंगी, कुटिलांगी, ईश्वरी, शक्ति, कुण्डली, अरून्धती, बालरण्डा आदि नामों से संबोधित किया गया है। उपरोक्त सभी के एक ही अर्थ है। इड़ा व पिंगला के मध्य स्थित सुषुम्ना (ब्रह्ममार्ग) के मुख को बंदकर सोई हुई है। योगीजन हठयोग के अभ्यास से सुप्त कुण्डलिनी को जगाते हैं। जिससे यह शक्ति सुषुम्ना के मुख का भेदन कर मूलाधार से ऊर्ध्वगमन करते हुए अज्ञान के बन्धन से साधक को मुक्त कर देती है। सद्-चित्त्-आनंद प्रदायक सुषुम्ना के द्वार पर स्थित सुप्त कुण्डलिनी मुद्राओं के अभ्यास से जागृत होकर ऊर्ध्वगमन करती हुई षट्चक्रों एवं तीनों ग्रन्थियों (ब्रह्मादि ) का भेदन कर चित्त को विषय रहित कर काल का भक्षण कर लेती है। यह कुण्डलिनी जिस मार्ग से उर्ध्वगमन करती है वह ब्रह्मरन्ध्र है। इसे ही नामांतर भेद से शून्यपदवी, सुषुम्ना, महापथ, शाम्भवी, श्मशान, मध्यमार्ग आदि नामों से संबोधित किया गया है। आदिनाथ के द्वारा उपदेशित दस मुद्रायें प्रमुख हैं जो विभिन्न सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। ये मुद्रायें निम्नवत हैं-

**महामुद्रा :-** साधक बायें पैर की ऐड़ी को गुदा एवं लिंग के मध्य (सीवनी स्थान) में स्थिर कर सहजता से सीवनी पर दबाव देते हुए। दाहिने पैर की अंगुलियाँ ऊपर रखते हुए पैर को सामने फैलाकर पूरक कर तर्जनी अंगुली से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़कर जालंधर बंध के साथ, मूल बंध लगाकर स्थिर रहे। श्वास छोड़ने की संवेदना होने पर शनैः-शनैः गर्दन को सीधा करते हुए रेचक करे। इसी प्रकार दाहिने पैर को मोड़कर दाहिनी एड़ी को भी सीवनी प्रदेश में स्थिर कर दाहिनी ओर से अभ्यास को दोहराना चाहिये। इस अभ्यास से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर सीधी होकर सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश कर जाती है। जिससे दोनों नासिका से श्वास-प्रश्वास का आवागमन निरूद्ध हो जाता है। योगाभ्यासी में सभी प्रकार के अन्न, अम्ल, रस आदि को आसानी से पचाने की शक्ति आ जाती है,

एवं अस्वाद वस्तु भी स्वादिष्ट लगने लगती है। यह कुष्ठ, क्षयरोग, गुदामार्ग के रोग, अपच के कारण होने वाले दोषों को नष्ट कर शोक, मोह, मृत्यु भय आदि को दूर कर देता है।

**महाबंध :-** बायें पैर की एड़ी को सीवनी स्थान में रखकर दाहिने पैर के तलवे को बायें पैर के जंघा के ऊपर स्थिर करे। वायु का पूरक कर जालंधर बंध लगाये एड़ी से सीवनी स्थान का आकुंचन करते हुए मूलबंध लगाये अथवा मूलबंध एवं जालंधर बंध दानों के स्थान पर जिह्वाबंध लगाकर मन को सुषुम्ना में लगाना चाहिये। यह प्राण को सुषुम्ना मार्ग से भ्रूमध्य में पहुँचाता है एवं विभिन्न सिद्धियाँ प्रदान करता है।

**महावेध :-** महाबंध मुद्रा में स्थिर हो जाने के बाद वायु का पूरक कर जालंधर बंध लगाये। दोनों हथेलियों को दोनों जंघाओं के बाहर की तरफ भूमि में स्थापित कर शरीर को ऊपर उठाकर धीरे-धीरे जमीन पर पटकना चाहिये एवं श्वास छोड़ने की संवेदना होने पर वापस जमीन में स्थिर होकर धीरे-धीरे श्वास छोड़ना चाहिए। यह अभ्यास बुढ़ापा के कारण आने वाली झुर्रियों, सिर के सफेद बालों को पकने से रोकती है एवं शारीरिक कम्पन को दूर करती है। इस मुद्रा के अभ्यास से प्राण इड़ा और पिंगला नाडियों को छोड़कर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है। उपरोक्त महामुद्रा एवं महाबंध, महावेध के बगैर अधूरे हैं। तीनों बंधों के अभ्यास से धातु पुष्ट होता है। इन तीनों बंधों का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाते हुए दिन में आठ बार तक अभ्यास करना चाहिये।

**खेचरी (व्योमचक्र) :-** जीभ को उलटकर तालु मूल में स्थित गुहर में प्रवेश कर अपनी दृष्टि को भ्रूमध्य में लगाकर रखना खेचरी मुद्रा है। इस अभ्यास के लिए जीभ के नीचले सिरे के बंध को रोम के बराबर काटा जाता है एवं उस स्थान पर कत्था एवं हरठ के चूर्ण को रगड़ते है। तर्जनी एवं अँगूठे से बाहर की ओर गौ की दूध निकालने के समान दुहने एवं उसे बायीं और दाहिनी दिशा में चलाने से छः महीने में जीभ ललाट को छुने लगता है। तब  कपाल कुहर में प्रविष्ट

हो पाने में सक्षम हो पाता है। तब जाकर खेचरी सिद्ध होती है। उपरोक्त विधियों को योग्य गुरू के निर्देशन में ही सीखना चाहिये। अभ्यास सिद्ध होने पर साधक सभी प्रकार के रसों का स्वाद अनुभव करता है। निद्रा, भूख, प्यास आदि नहीं सताता। विषैले जीवों के जहर का असर साधक में नहीं होता। विपरीत परिस्थितियों में भी वीर्य का क्षय नहीं होता, रोग, ज्वर, बुढ़ापा नहीं आते। जीभ को तालु गुहर में प्रवेश को गौमांस का भक्षण[53] कहकर भी संबोधित किया गया है। यह सभी मुद्राओं में श्रेष्ठ है।

**उड्डियान बंध :-** नाभि प्रदेश को ऊपर एवं अंदर की तरफ (पीठ कि ओर) खींचकर रखना जिससे पेट पीठ से लग जाए। इस बंध के अभ्यास से प्राण सुषुम्ना में उड़ान भरने लगता है। अतः इसे उड्डियान कहा गया है। यह सोलह आधारों में श्रेष्ठ है। इसके अभ्यास से वृद्ध साधक भी युवा जैसे व्यवहार करता है। प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर ऊपर उठने लगता है एवं सहस्रार तक पहुँच जाता है। छः महीने के निरंतर अभ्यास से साधक मृत्यु को भी जीत लेता है।

**मूलबंध :-** ऐड़ी से गुदा एवं मूत्रमार्गके मध्यभाग योनिस्थान को दबाते हुए गुदा का आकुंचन करना ही मूलबंध है। इस अभ्यास से अपान वायु की गति सुषुम्ना में ऊपर की ओर होने लगता है। इसके अभ्यास से अपान वायु, प्राण वायु के साथ मिश्रित हो जाती है। तब नाभि मध्य की अग्नि प्रदीप्त हो जाती है उस समय सुप्त कुण्डलिनी जागकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती हैं। इस प्रकार सुषुम्ना में प्राण, अपान एवं नाद तीनों का प्रवेश होता है। तब नाद उत्पन्न होता है। यह बंध योग सिद्धि में सहायक है। जठराग्नि प्रदीप्त करता है। मल-मूत्र में कमी लाता है। वृद्ध भी तरूण हो जाते हैं।

**जालन्धरबंध :-** गले के विवर को संकुचित करते हुए अपने चिबुक को हृदय से चार अंगुल ऊपर वक्ष प्रदेश में दृढ़ता से लगाना जालन्धर बंध है। इसका

---

[53] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : लोनावला कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ.195-196.

उपदेश जालंधर नामक योगी ने किया है। अतः उन्ही के नाम पर जालंधर बंध कहा गया। यह कपाल गुहर से स्रावित अमृत को नाभि प्रदेश में जाने से रोकता है क्योंकि नाभि में स्थित सूर्य इस अमृत को नष्ट कर देता है। यह अभ्यास शरीर की अनपेक्षित नाड़ियों में वायु के प्रवेश को रोक कर प्राण के प्रवाह को इड़ा एवं पिंगला नामक प्रधान नाड़ियों में बांधता है। जिससे सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश संभव हो पाता है। इसका अभ्यास विविध रोगों से बचाता है। वृद्धावस्था एवं मृत्यु को समाप्त करता है। उपरोक्त मूल, उड्डियान और जालंधर तीनों बंध सोलह आधारों में श्रेष्ठ हैं। इनके अभ्यास से प्राण ब्रह्मरन्ध्र में चला जाता है। तब देह में प्राण स्थिर हो जाता है। प्राण के स्थिर होते ही साधक में आलस्यता, झुर्रियां, बाल का पकना, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि नहीं होता।

**विपरीतकरणी :-** तालुमूल में दिव्यरूप चन्द्रमा अधोमुखी होकर स्थित है एवं निरन्तर अमृत का स्राव अधः अर्थात् नीचे कि ओर करता रहता है। नाभि में सूर्य ऊपर कि ओर मुख किये हुए स्थित है। जो चन्द्रमा के अमृत को नष्ट कर देता है। अतः इस क्षरण की प्रक्रिया को रोकने के लिए गुरू के निर्देशन में भूमि में पीठ के बल लेटकर दोनों हाथों की कोहनियों को जमीन में स्थिर कर दानों हाथों से कमर को ऊपर उठाते हुए दोनों पैरों को आसमान की ओर रखे, इस अभ्यास में सूर्य स्थान (नाभि) ऊपर एवं चन्द्रस्थान (तालुमूल) नीचे हो जाता है। यही विपरीतकरणी के नाम से प्रसिद्ध है। इस मुद्रा का अभ्यास शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये। यह जठराग्नि को विशेष रूप से बढ़ाता है। शरीर की झुर्रियाँ व बालों का सफेद रंग छः माह के अभ्यास से दूर हो जाते हैं। जो साधक इस मुद्रा का अभ्यास तीन घण्टों तक करता है। वह मृत्यु को भी जीत लेता है।

**वज्रोली मुद्रा :-** साधक को गुरू के निर्देशन में चौदह अंगुल लम्बी, पतली एवं चिकनी धातु की नलिका लेकर मूत्रमार्ग में शनैः-शनैः पहले दिन में एक अंगुल, दूसरे दिन में दो अंगुल बढ़ाते हुए बारह अंगुल नलिका को मूत्रमार्ग में प्रवेश कराये एवं दो अंगुल नलिका के भाग को बाहर निकालकर रखे जो, ऊपर की ओर उठी हुई टेढें आकार की हो। इस बाहर वाली नलिका के मुख को सुनार

के द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली पतली पोली नलिका से मूत्रमार्ग में बाहर निकली टेढ़ी नलिका में मिलाकर फूँकना चाहिये। जिससे मूत्रमार्ग की शुद्धि हो जाती है। इसके उपरान्त हल्के गुनगुने जल को उस नलिका से मूत्रमार्ग से अंदर खींचना चाहिये। इस क्रिया में सफलता प्राप्त हो जाने पर साधक द्वारा रतिकाल में स्त्री की योनि में बिन्दु (वीर्य) के गिरने के पूर्व ऊपर कि ओर आकर्षित करना चाहिये। योनि में बिन्दु का पात हो जाने पर भी वज्रोली सिद्ध साधक रज से मिश्रित बिन्दु को ऊपर खींचने में सक्षम हो जाता है। इस प्रकार बिन्दु को रज के साथ मिलाकर साधक को वज्रोली मुद्रा के द्वारा अपने शरीर में धारण करना चाहिये। यही वज्रोली मुद्रा कही गयी है। यह वही साधक सिद्ध कर सकता है। जिसने प्राणायाम से प्राणजय कर लिया है।

वज्रोली का अभ्यास स्त्रियों के द्वारा पुरूष की तरह ही वीर्य का आकर्षण किया जाता है। इस प्रकार अभ्यास के द्वारा वीर्य एवं रज के मिश्रित भाग को स्त्री द्वारा वज्रोली के सिद्ध हो जाने पर अपने शरीर में धारण किया जाता है। तब वह स्त्री योगिनी कहलाती है। इस प्रकार वज्रोली सिद्ध होने पर जो लाभ पुरूषों को प्राप्त होता है। वही लाभ स्त्रियों को भी प्राप्त होते हैं।

बिन्दु का नष्ट होना ही मृत्यु एवं उसका धारण करना ही जीवन है। अतः इस मुद्रा से बिन्दु की रक्षा करनी चाहिये। पुरूष का वीर्य चित्त के अधीन है। चित्त के चंचल होने से वीर्य भी चलायमान होता है। उसी प्रकार जीवन शुक्र के अधीन है। शुक्र के स्थिर होने पर जीवन निरोगी एवं स्थिर बना रहता है। वज्रोली के अभ्यास सिद्ध हो जाने पर साधक बिना ब्रह्मचर्य के भी योग की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। वीर्य का रक्षण होने से जीवन की रक्षा होती है। शरीर निरोगी एवं सुगन्धित बनता है। मृत्युभय दूर हो जाता है। वज्रोली की सिद्धि, पुण्यवान, वास्तविकता देखने वाले, धैर्यवान, तत्त्वदर्शी योगियों को ही प्राप्त होती है।

**सहजोली :-** यह वज्रोली का ही एक प्रकार है। जिसमें साधक एवं साधिका के द्वारा रतिक्रिया में वज्रोली अभ्यास के उपरान्त विश्रामावस्था में जले

हुए गोबर के राख को जल से गीला कर अपने मूर्धा, ललाट, नेत्र, हृदय भुजा आदि उत्तम अंगों में लेपन किया जाता है। स्त्री का संग होने पर भी मत्स्येन्द्रादि योगियों ने इस अभ्यास को कल्याणकारी एवं मुक्तिदायक कहा है।

**अमरोली :-** अमरोली भी वज्रोली का एक प्रकार है। इस अभ्यास में साधक के द्वारा अपने ही मूत्र का मूत्रनिष्कासन के समय आरंभिक एवं अंतिम भाग के मूत्र को छोड़कर मध्य के मूत्र का पान किया जाता है। इसे ही खण्ड कापालिक सम्प्रदाय में अमरोली कहा गया है।

**शक्तिचालन :-** इस अभ्यास में मूलाधार से बारह अंगुल ऊपर, लिंग मूल एवं नाभि के मध्य स्थित कंदस्थान पर विशेष प्रकार से दबाव दिया जाता है। जो चार अंगुल लम्बा, चौड़ा एवं कोमल है। यह सफेद वस्त्र में लिपटा हुआ शिवलिंग के समान स्वरूप वाला है। यही बहत्तर हजार नाड़ियों का उद्गम स्थान है। साधक वज्रासन (सिद्धासन) में स्थित होकर हाथों से पैर के गुल्फ को पकड़कर कंदस्थान पर दबाव ड़ाले एवं पिंगला नाड़ी (दाहिनी नासिका) से पूरक कर कुण्डलिनी स्थान का चालन कर सिद्धासन में ही भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास करे। एवं नाभि प्रदेश का आकुंचन कर कुण्डलिनी का चालन चार घड़ी ( छियान्वे मिनट) तक निर्भय होकर करने से कुण्डलिनी सुषुम्ना के मुख को छोड़कर ऊपर की ओर चली जाती है। तब साधक के विभिन्न रोग, श्वास, ज्वर आदि कभी नहीं घेरते। इस शक्तिचालनी मुद्रा का अभ्यास, सूर्योदय एवं सूर्यास्त दो समय करना चाहिये। यह अभ्यास बहत्तर हजार नाड़ियों के मलों का शोधन करती है। साधक अष्टसिद्धियों का स्वामी होकर मृत्यु को भी जीत लेता है।

**नूतन देह की प्राप्ति :-** ब्रह्मचारी, मिताहरी, संयमी, शक्तिचालन मुद्राआदि का अभ्यास करने वाले साधक के शरीर में चालीस दिनों में ही प्राणायाम सिद्धि के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। सूर्यभेदन प्राणायाम का अभ्यासी, विपरीतकरणी से अमृत को नष्ट होने से बचाने वाला ओजस्वी साधक जिसने षट्चक्रों का जागरण कर लिया है एवं तीनों ग्रन्थियों का भेदन कर चुका

है। वह अपने देह को उसी प्रकार नवीन कर लेता है। जिस प्रकार पतझड़ के बाद नये कोपलें आती हैं। उपरोक्त अभ्यासों के बाद वृत्तियों के निरोध क्रम से प्राप्त एकाग्रता से मन में अन्तःकरण की धारणा करने से स्थिरता आती है। जिससे निद्रा, आलस्यता आदि दोष दूर होकर मनोन्मनी नामक योगसिद्धि की प्राप्ति होती है जो हठयोग से राजयोग का क्रम है।

## चतुर्थ उपदेश :- नादानुसंधान

आसन, कुम्भक एवं मुद्राओं का उल्लेख करने के उपरांत गुरू एवं ईश्वर के साथ नाद बिन्दु एवं कला रूप शिव को नमस्कार कर राजयोग को प्रदान करने वाले नादानुसंधान प्रकरण को आरंभ किया गया है। शिव ही समस्त ज्ञान के उपदेशष्टा है। नाद, बिन्दु एवं कला रूप आत्मा में अपने गुरू रूप शिव का निरंतर ध्यान करना चाहिये।

कांसे की बनी घण्टे से निकलने वाली गूंजन के समान ही नाद है। इस प्रकार सामान्यजनों को नाद से परिचित कराया गया है। नाद से ही योगी माया रहित ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। यह नादानुसंधान समाधि का ही नामांतर है। शिव द्वारा सवा करोड़ समाधियों का उपदेश किया गया है। इनमें से नादानुसंधान से प्राप्त समाधि श्रेष्ठ है। इसे ही गोरक्षनाथ ने अन्य विधियों से प्राप्त समाधियों से सरल है। यही ब्रह्मानंद का भी मत है। जिसके प्रभाव से योगी अपनी स्वेच्छा से देह का त्याग कर वासनाओं, कर्मसंस्कारों का क्षय करता है। इससे तत्त्वज्ञान उदय होता है। यही जीवन मुक्ति आनंद का साधन है। चित्त की वृत्तियों का निरोध करता है। ब्रह्मानंद प्राप्ति कराता है।

समाधि से योगी उपरोक्त लक्षणों के साथ जीवन मुक्त अवस्था प्राप्त कर लेता है। इससे परममुक्ति की प्राप्ति होती है। जिसमें मन, अस्मिता, बुद्धि आदि के कार्य अपने कारण रूप में स्थित होते रहते है। इस कार्य से कारण का क्रम अर्थात् मन अहंकार में, अहंकार बुद्धि में एवं बुद्धि प्रकृति के तीन गुणों (सत्, रज्, एवं तम) में साम्यावस्था में सम्मिलित होकर लय हो जाती है। इससे सम्प्रज्ञात समाधि घटित होती है। जिनमें साधक के अन्दर कुछ संस्कार शेष रह जाते हैं,

परन्तु समाधि की गहनता में सम्प्रज्ञात से असम्प्रज्ञात घटित होने पर साधक के सभी कर्म संस्कार जले हुए बीज की तरह नष्ट हो जाते हैं। जिससे सभी प्रकार की वृत्तियों का निरोध होकर योगी परममुक्ति अवस्था में पुरूष रूप (ब्रह्मरूप) में स्थित हो जाता है।

जिस प्रकार पानी में नमक को मिला देने पर नमक का अस्तित्व पानी में लय हो जाता है। उसी प्रकार आत्मा में मन की धारणा से आत्म साक्षात्कार होने पर मन आत्मा में लीन हो जाता है। वही मन एवं आत्मा का एक होना ही समाधि है। समाधि को ही नामांतर भेद से उन्मनी, मनोन्मनी, राजयोग, लय, अमरत्व, शून्याशून्य, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, जीवन मुक्ति, तुर्या, परमपद, सहजा आदि नामों से संबोधित किया गया है।

**उन्मनी :-** साधक, भ्रूमध्य को ऊपर उठाकर, नासिकाग्र में दृष्टि रखकर बाहर देखते हुए अन्तःकरण में दिव्य प्रकाश का चिंतन करते हुए लीन कर देवें । उन्मनी की अवस्था प्राणायाम सिद्ध हुए बिना सम्भव नहीं हो सकती। जब प्राण का प्रवाह इड़ा एवं पिंगला नाड़ी से होता रहता है। तब चित्त स्थिर नहीं होता उस समय उन्मनी अवस्था की प्राप्ति असम्भव है। परन्तु प्राणजय हो जाने के बाद सुषुम्ना में प्राण के प्रवेश होने पर साधक उन्मनी को प्राप्त कर लेता है। प्राणवायु का ग्रास प्राणायाम में प्राणजय हो जाने के उपरान्त इड़ा व पिंगला नाड़ियों के मध्य स्थित सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश होने से प्राण स्थिर हो जाता है। सुषुम्ना नामक शून्य आकाश में प्राण का स्थिर होना ही प्राण वायु का ग्रसित होना है। भ्रूमध्य में शिव रूप आत्म की स्थिति है। मन को उसी शिवरूप आत्मा में लगाना चाहिये। ध्यान की प्रगाढ़ता में मन, आत्मा के साथ तल्लीन होते-होते क्रमशः जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति के बाद मन एवं आत्मा के साथ एक हो जाता है। योगी की इस अवस्था को तुरिय या तुर्यावस्था कहा गया है। जिसके बाद मृत्युभय दूर हो जाता है।

**समाधि :-** यह सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात दो रूपों में विभक्त है। सम्प्रज्ञात समाधि, साधक जब प्राणायाम से प्राण पर विजय प्राप्त कर लेता है। तब मन की

वृत्तियाँ स्थिर हो जाने से घटित समाधि, सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। उस समय साधक का संशय एवं मिथ्याज्ञान नहीं होता। यह ध्याता, ध्येय व ध्यान के आलम्बन में घटित होती है। अतः इसे लय, सबीज अथवा सम्प्रज्ञात भी कहा जाता है। इन्द्रियों का नाथ (स्वामी) मन है। मन का नाथ, प्राण है। प्राण का नाथ लय है। एवं नाद, लय का नाथ बताया गया है। मन के संकल्प-विकल्प, वासनादि का क्षय होकर विषयों से शून्य हो जाना ही लय है। असम्प्रज्ञात, जब चैतन्य रूप जीवात्मा का परमानंद रूप देश, काल, आवरण से परे, संकल्प-विकल्प से रहित परमात्मा में लीन हो जाने पर, ध्याता ध्येय व ध्यान में अभेदता हो जाती है। उसे असम्प्रज्ञात कहा गया है जो निरालम्ब, निर्बीज, राजयोग आदि नामों से जाना जाता है।

मत्स्येन्द्रासन आदि विभिन्न प्रकार के आसनों, कुम्भकों एवं मुद्राओं के अभ्यास से साधक क्रमशः शारीरिक, मानसिक एवं बुद्धि का पर नियंत्रण स्थापित करता जाता है। साधना की गहनता में सम्प्रज्ञात समाधि से बुद्धि के व्यापारों की भी समाप्ति हो जाती है। तब साधक निर्विकार, संस्कार रहित, अवस्था में स्थित हो जाता है। यही सहजावस्था है। जिसके उपरान्त स्वतः ही जीवनमुक्ति अवस्था की प्राप्त हो जाती है।

सामान्य अवस्था में बायीं एवं दाहिनी नासिका से प्राण का आवागमन क्रमशः ढ़ाई-ढ़ाई घड़ी (एक घण्टा) तक होते रहते हैं। दाहिनी नासिका से प्राण के प्रवाह को दिन एवं बायीं नासिका से प्राण के प्रवाह को रात की संज्ञा दी गयी है। परन्तु साधक के द्वारा जब प्राणजय कर लिया जाता है तब प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। उस समय बायीं एवं दाहिनी नासिका से प्राण प्रवाह समाप्त हो जाने से काल का प्रभाव समाप्त हो जाता है। दीर्घकाल तक समाधि के अभ्यास से साधक अपने मृत्युकाल को जान लेता है तब वह प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर कर मृत्यु को भी टाल देता है एवं अपनी स्वेच्छा से देह का त्याग करने में सक्षम हो जाता है।

मध्यनाड़ी सुषुम्ना ही शाम्भवी है। जहाँ शम्भु के साथ शक्ति निवास करती है। यही आत्मा एवं चित्त की अभिव्यक्ति सम्पन्न होती है। इसके ध्यान से साधक

आत्म साक्षात्कार करता है। बिना पलकों को झपके दृष्टि बाहर की ओर एवं ध्यान मूलाधार से लेकर सहस्रार चक्रों में स्थिर करना ही शाम्भवी कहलाती है। जिनका पवन व चित्त लय हो गया हो अथवा जीव व ईश्वर की एकता हो गयी हो वह योगी बाहर देखते हुए भी विषयों से परे मनोलय अवस्था में होता है। शाम्भवी में दृष्टि बाहर एवं खेचरी में दृष्टि भ्रूमध्य पर होती है। शाम्भवी में भावना हृदय पर एवं खेचरी में भावना भ्रूमध्य पर की जाती है। परन्तु दोनों ही अवस्था में चित्तलय की आनंदानुभूति समान है। यही शिव उपदेश है।

गुरू के द्वारा ही ज्ञान का स्वरूप, जीवनमुक्ति की अवस्था, आत्म साक्षात्कार, तुर्यावस्था एवं अष्टसिद्धियों की प्राप्ति संभव है। अन्यथा विषयों का त्याग, भोग की इच्छा, संकल्प-विकल्प राहित  आदि कठिन कार्य है। परन्तु गुरू की कृपा से सभी कार्य सरलता से हो जाते हैं।

प्राणायाम की सिद्धि के उपरान्त प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश होना पूर्व पूरित एवं जीभ को तालुमूल में प्रवेश कर स्थित होना पश्चिम पूरित कहा गया है। जिससे साधक दोनों ओर से अमृत का पान करता है। तभी खेचरी की सिद्धि संभव होती है। अन्यथा नहीं। कुम्भक के अभ्यास से प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। जिससे सुषुम्ना के अंदर क्रमशः आलम्बन रहित चक्रों का जागरण होने लगता है। सभी चक्र आकाश तत्त्व स्थान (भ्रूमध्य) में जाकर मिल जाते हैं।

इस प्रकार भ्रूमध्य में सभी चक्रों की एकता ही खेचरी है। जिससे साधक का चित्त आकाश के समान स्वच्छ, विशाल एवं निरालम्ब (विषयों से मुक्त) हो जाता है। खेचरी के अभ्यास से मन की विषया शक्ति कमजोर होने लगती है। अभ्यास की सघनता में तब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, तब योग की अवस्था प्राप्त होती है। इस योग को ही ब्रह्मानंद ने योगनिद्रा[54] कहा है। इसके अभ्यास से मन में विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है। तब मन आलम्बन रहित होकर एक मात्र ब्रह्मानंद वृत्ति में लीन रहता है,  जब योगी उस ब्रह्मानंद वृत्ति का भी

[54] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : लोनावला कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ.324.

त्याग कर देता है, तब वह आकाशवत् हो जाता है। जिस प्रकार खाली घड़े के बाहर एवं अन्दर आकाश एक समान होता है। उसी प्रकार पर वैराग्य उपरान्त योगी भी अपने स्वरूप में स्थित होकर जीवनमुक्त हो जाता है। जिस योगी ने प्राणजय कर सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश का अनुभव कर लिया है। जिनकी कुण्डलिनी जागृत हो गयी है। जिन्होंने सहस्त्रार से निःसृत अमृत का पान कर लिया है। मनोन्मनी का अनुभव कर लिया है। उस महाशक्ति को प्रणाम जिनके कारण इन्द्रिय, मन, बुद्धि संचालित है, एवं उस चित्ति शक्ति के कारण रूप, पुरूष को प्रणाम किया गया है।

मन संकल्प एवं विकल्प का स्थान है जहाँ द्वैतभाव हमेशा विद्यमान होता है। मन ही अभाव, सुख, दुःख, भाव, इच्छा का कारण है। ज्ञान एवं ज्ञेय में भेद मन की रचना है। जब मन, आत्मा में अच्छी तरह मिला हुआ जल में नमक की तरह विलीन हो जाता है, तब मन का अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है। ज्ञाता, ज्ञेय व ज्ञान तीनों में कोई भेद नहीं रह जाता। तब कैवल्यरूप आत्मा ही विद्यमान होती है।

उपरोक्त शाम्भवी एवं खेचरी आदि अभ्यासों से प्राप्त समाधि से जिनके अन्तःकरण शुद्ध हो चुके हैं एवं जिन्होंने अपने चित्त की वृत्तियों का निरोध कर लिया है। ऐसे महात्माओं एवं मत्स्येन्द्र आदि योगियों के यह अनुभवजन्य ज्ञान, संदेह रहित है।

**प्रत्याहार :-** मन इन्द्रियों में रमण करता हुआ जंगली हाथी के समान निरंकुश होता है। जिसके लिए अनाहत नाद, तीक्ष्ण अंकुश के समान है। जिससे मन वश में हो जाता है एवं विषयों में नहीं भागता। प्रत्याहार को समझाते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार भ्रमर फूलों से रसपान करते हुए उसके गंध की ओर प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार नाद में लगा मन विषयों में नहीं भागता इसे ही प्रत्याहार है।

**धारणा :-** नाद में आसक्त होकर चित्त उसी प्रकार स्थिर हो जाता है। जिस प्रकार आकाश में उड़ने वाले किसी पक्षी के पंख को काट देने पर वह एक

स्थान में स्थिर हो जाता है। उसी प्रकार प्राणायाम से वायु एवं प्रत्याहार से इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। तब किसी एक शुभ लक्ष्य पर चित्त को केन्द्रित करना धारणा कहलाता है।

**ध्यान :-** राजयोग की इच्छा रखने वाले साधक को बाह्य एवं आन्तरिक विषयों के प्रति उदासीन होकर केवल अनाहत ध्वनि का ही चिंतन करने से नादब्रह्म की एकाग्रता प्राप्त होती है। इसे ही ध्यान कहा गया है। ध्यान की गहनता में मन कल्पनाओं से रहित, स्वरूप शून्यता ही समाधि है।

**नादोत्पत्ति :-** ब्रह्मरन्ध (सुषुम्ना) में प्राण के प्रवेश होने पर समुद्र के किनारे जल के विस्तार होने जैसी ध्वनि, मेघ गर्जन, भेरी, डमरू, झड़झड़ की आवाज, सुनाई देती है। प्राण का ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर होने पर मृदंग, शंख, घण्टा, काहल (एक प्रकार का वाद्य यंत्र), की ध्वनियाँ एवं अंत में जब प्राण लम्बे समय तक ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर हो जाता है, तब छोटी घण्टिका के समान, बांसुरी, वीणा एवं भ्रमर के समान नाद सुनाई देती है। उपरोक्त नादों में साधक को क्रमशः सूक्ष्म नाद में अपने चित्त को लगाना चाहिए। जिससे चित्त उस सूक्ष्म नाद में लय हो जाता है। तब योगी विषय मुक्त होकर समाधि में स्थित हो जाता है।

## नाद की चार अवस्थाएँ[55] :–

| **क्र.** | **चार अवस्था** | **चक्र** | **ग्रन्थि भेदन** | **आकाश** | **नाद की उत्पत्ति** | **शून्यावस्था** | **परिणाम** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 01. | आरम्भावस्था | अनाहत | ब्रह्म ग्रन्थि | हृदयाकाश | भीषण निनाद | शून्य | **रूपवान, निरोगी आदि** |
| 02. | घटावस्था | विशुद्धि | विष्णु ग्रन्थि | विशुद्धाकाश | **मिश्रित एवं भेरीनाद** | अतिशून्य | **परमानंद** |

[55] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : लोनावला कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ.340-48.

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 03. | **परिचयावस्था** | आज्ञा | रूद्र ग्रन्थि | भ्रूमध्याकाश | **मृदंग नाद** | महाशून्य | **अष्टसिद्धि एवं सहजानंद** |
| 04. | निष्पत्ति | सहस्रार | | | वीणा नाद | सर्वपीठ | ईश्वर के समान |

मन रूपी मृग को पकड़ने के लिए अनाहत नाद जाल के समान है। अनाहत नाद रूपी शिकारी उस मन रूपी मृग को अपने वश में कर लेता है। अर्थात् अनाहत नाद से मन विषय मुक्त होने पर शून्य हो जाता है। जो धनुष पर चाप चढ़ाकर अर्थात् प्राणायाम के द्वारा प्राण का नियंत्रण कर सुषुम्ना में प्राण रूपी बाण का संधान करता है। जिससे मन रूपी मृग का जीवन समाप्त हो जाता है। अर्थात् मन विषय से मुक्त हो जाता है। इसलिये कहा गया है कि योगियों को हमेशा नाद की ही उपासना करनी चाहिये। अनाहत नाद आकाश तत्व का गुण है नाद रूपी कार्य आकाश रूपी कारण से उत्पन्न होते है। अंतिम अवस्था में नाद रूपी कार्य आकाश रूपी कारण में विलीन हो जाता है। उस समय योगी निःशब्द हो जाता है, तब योगी परमात्मा के समान हो जाता है। गुण,कर्म नाम से परे अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है, उसे शक्ति की संज्ञा दी गयी है, जहाँ सभी तत्त्व विलीन हो जाते हैं। वही परमेश्वर है। योगी के सभी प्रकार की वृत्तियों के निरोध हो जाने के उपरान्त अवस्थित निज स्वभाव ही आत्मा है। उपरोक्त, आसन, प्राणायाम एवं मुद्रा बंध आदि एवं नादानुसन्धान, शाम्भवी आदि लय के उपाय राजयोग के लिए उर्वरा भूमि तैयार करते हैं। जिसमें चित्त रूपी बीज में वैराग्य रूपी जल के सिंचन से राजयोग रूपी अंकुरण फूट पड़ता है। जिससे योगी असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त होता है। इस समाधि में स्थित योगी को किसी भी मंत्र, अस्त्र आदि से नहीं मारा जा सकता। कोई भी देहधारी उस योगी को वश में नहीं कर सकता। उस योगी को चराचर में कोई भी भेद नहीं दिखता। वह शरीरधारी जीव रूप होते हुए भी परमात्मा रूप होता है।

इस उपदेश के अंतिम श्लोकों में समाधि से प्राप्त सिद्धियों के साथ-साथ आने वाले विघ्नों की ओर भी संकेत किया गया है। जिसके प्रति योगियों को सावधान

रहना चाहिये। ब्रह्मानंद ने हठयोग के पूर्व आचार्यों एवं सिद्धों के द्वारा बताये गये विघ्नों का उल्लेख किया है। दत्तात्रेय के अनुसार आलस्यता, मूर्खों के साथ ज्ञान की चर्चा, मंत्र साधना, रसयान का ज्ञान प्राप्त कर प्रयोग करना।[56] मार्कण्डेय पुराण के अनुसार, कामना करना, दान-पुण्य अर्जन, स्त्री का संग, गुप्त धन की जानकारी करना, रसायनज्ञ होना, उपवास, देवताओं एवं पितरों की अर्चना आदि। स्कन्दपुराण के अनुसार, उपरोक्त विघ्नों से पार होने पर योगी परम पद की प्राप्ति करता है। उपरोक्त विघ्नों को हरि एवं शिव के ध्यान से दूर कर योगी मुनि की उपाधि प्राप्त कर जीवन मुक्त हो जाता है।

[56] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : लोनावला कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ.367.

# अध्याय 2.

## नाथ साहित्यों में हठयोग का विकास

प्रस्तावना

**2.1** हठयोग

**2.2** हठयोग की पुरातन परम्परा

**2.3** कतिपय नाथ साहित्यों में हठयोग का विकास

**2.4** नाथ सिद्ध

**2.5** नाथ सिद्धों की साधनाएँ

**2.6** नाथ साहित्यों में हठयोग का दर्शन

**2.7** हठयोग पर विभिन्न विद्वानों के मत

# हठयोग

## प्रस्तावना :-

हठ शब्द ह और ठ नामक दो वर्णों से मिलकर बना है। 'ह' से तात्पर्य 'हकार' एवं 'ठ' से तात्पर्य 'ठकार' है। सिद्धसिद्धांतपद्धति हठयोग की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए हकार से सूर्य एवं ठकार से चंद्र का संकेत करते है। यौगिक साधनाओं के द्वारा सूर्य-चंद्र (प्राण-अपान) का योग ही हठयोग है। नाथसिद्धों के अनुसार देह में विद्यमान प्राण शक्ति और चित्त शक्ति ही शक्ति की दो विपरीत धाराएँ है। इन्हें ही नामांतर भेद से प्राण-अपान, सूर्य-चंद्र, इड़ा और पिंगला भी संबोधित किया गया है, ये दोनों क्रमशः बायीं और दाहिनी नासिका की प्रतिनिधि भी हैं। सामान्यावस्था में इन दोनों में से किसी एक के सक्रिय होने पर दूसरा निष्क्रिय हो जाता है। इन दोनों विपरीत धाराओं को आसन, षट्कर्म, नाड़ी शोधन, प्राणायाम एवं मुद्रा साधना से संयुक्त किया जाता है। तब दोनों मिलन की प्रगाढ़ता में एक हो मध्यपथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। जिससे इस मार्ग में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वगमन करती हुई इस निरालंब मार्ग में शक्ति के केन्द्रों को जागृत करती हुई नाद के साथ परम शिव के साथ एक हो जाती है। तब योगी पूर्णानंद सहजानंद में निमग्न हो जाता है। इसे ही परम पद कहा गया है, जिससे इसी देह में ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड क अभेदता का ज्ञान होता है। इसे ही योगियों ने स्वसंवेद्य कहा है, जो संसार और मुक्ति से परे अव्यक्त है। उपरोक्त हठयोग की साधना नाथ सिद्धों के मध्य प्रचलित थी और आज भी प्रचलन में है।

इन हठयौगिक साधनाओं के सूत्र हमें वैदिककाल से ही प्राप्त होने लगते हैं एवं विभिन्न उपनिषद्, तंत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण, स्मृति, सूत्र आदि ग्रंथों में भी देखा जा सकता है, किन्तु मध्यकाल में नाथ सिद्धों (योगियों) के द्वारा इस योग पर विभिन्न प्रयोग किये गये एवं कालांतर में इस मार्ग में सम्मिलित विभिन्न विकृतियों को दूर कर हठयोग की पुरातन एवं नवीन साधनाओं को मिलाकर इस विद्या की पुनः प्रतिष्ठा की गयी। नाथ सिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, काणेरीनाथ, चर्पटनाथ, कंथडिनाथ,

गोपीचंद, भर्तृहरि, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या कहीं चौरासी तो कहीं सैकड़ों से भी ज्यादा प्राप्त होती हैं। इन नाथ सिद्धों ने हठयोग की साधना में अपने पुरातन सिद्धों की सूची प्रस्तुत करते हुए आसन, षट्कर्म, योग के लिए आवश्यक एवं निषिद्ध आहार, सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला आदि नाड़ियों, कुम्भक (प्राणायाम), मुद्रा, कुण्डलिनी, देहस्थ चक्र, नादानुसंधान, सिद्धदेह, सहजानंद के साथ-साथ यम, नियम, प्रत्याहार, धारणा आदि को भी कुछ नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए पिण्डब्रह्माण्डवाद, जीवनमुक्ति एवं परामुक्ति, द्वैताद्वैतविवर्जित, स्वसंवेद्य आदि दर्शनों को प्रस्तुत किया। इन नाथ सिद्धों की साधना, साहित्य एवं दर्शनपर विभिन्न विद्वानों ने भारतीय साधना में इनके योगदान को अतिविशिष्ट स्वीकार करते हुए अपने मत प्रस्तुत किये हैं।

## 2.1 हठयोग :-

हठ शब्द ह और ठ नामक दो वर्णों से मिलकर बना है। ह से तात्पर्य हकार एवं ठ से तात्पर्य ठकार है। सिद्धसिद्धांतपद्धति हठयोग की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए हकार को सूर्य एवं ठकार को चंद्र स्वीकार करता है। यौगिक साधनाओं के द्वारा सूर्य-चंद्र (प्राण-अपान) का योग ही हठयोग है।[57]तंत्र एवं आगम शास्त्र के विद्वान गोपीनाथ कविराज हकार एवं ठकार को तंत्र साधनाओं से आया हुआ मानते है।[58] उक्त कथन वास्तविक जान पड़ता है क्योंकि हठयोग के महासिद्ध आदिनाथ (शिव) तंत्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। वही आदिनाथ के बाद हठयोग के लौकिक महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ मध्यकाल में कौलयोगिनी तंत्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। कालांतर में इस परम्परा में  गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, विरूपाक्ष आदि नाथ सम्प्रदाय के महासिद्धों में परिगणित हैं।

स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका में हठयोग का क्रम आसन, विविध कुम्भक, मुद्रा और नादानुसंधान प्राप्त होता है।[59] वही हठयौगिक ग्रंथ हठरत्नावली के कर्ता

---

[57] शास्त्री,  द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति.  वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ.27.

[58] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007.पृ. 85.

[59] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण.पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.28.

श्रीनिवास ने प्रथम उपदेश में हठयोग के अभ्यासों के अंतर्गत दस मुद्रा, अष्ट शोधन क्रिया, कुम्भक एवं चौरासी आसनों को हठ साधना का क्रम माना है।[60]

हठयौगिक साधनायें नाथयोगियों के मध्य प्रचलित रही है। इस परम्परा में सिद्धों की लम्बी वंशावली प्राप्त होती है। मत्स्येन्द्रनाथ के द्वारा शिव से प्राप्त इस योग परम्परा का विस्तार होते गया जिनमें गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, काणेरीनाथ आदि सिद्धों का उल्लेख नाथ साहित्यों से प्राप्त होता हैं। हठ शब्द के लिए नाथयोगियों ने विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है।

नाथसिद्धों के कथनानुसार हठयोग साधना का उद्देश्य सूर्य-चंद्र का योग है जिसे नामांतर भेद से शिव-शक्ति, प्राण-अपान, बिन्दु-रज, इड़ा-पिंगला आदि नामों से पुकारा गया है। इस साधना के प्रथम अंक के रूप में आसनों का सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है। इनकी संख्या जीवों की योनियों के अनुसार चौरासी लाख है। इन आसनों के अभ्यास से साधक में शारीरिक एवं मानसिक रूप से हल्कापन, आरोग्यता, स्थिरता एवं धीरता की प्राप्ति होती है। इन आसनों में भी सिद्धासन को विशिष्ट वरीयता प्राप्त है। जो शरीरस्थ बहत्तर हजार नाड़ियों की मलिनता दूर कर देने में सक्षम है।[61] नाथ योगियों की मान्यता है कि सम्पूर्ण देह में नाड़ियों का जाल विस्तृत है। इन्द्रिय, मन, चित्त आदि के कार्य, ज्ञान, क्रिया, इच्छा आदि का संचालन नाड़ियों के माध्यम से संभव हो पाता है किन्तु सामान्यावस्था में इनमें मलिनता के कारण अशुद्धियाँ व्याप्त होने से प्राण के प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है। जिससे उपरोक्त कार्य बाधित होते हैं।

इन योगियों की साधनात्मक अनुभूतियों के अनुसार नाड़ी शोधन के अभ्यास से नाड़ियों में व्याप्त मलों को नष्ट कर देने से प्राण का प्रवाह निर्बाध रूप से होने लगता है, उपरांत पूरक एवं रेचक के साथ कुम्भक का अभ्यास करते हुए प्राणजय अवस्था (केवल कुम्भक) तक पहुँचा जाता है। सामान्य श्वास-प्रश्वास के बिना ही प्राण धारण की क्षमता विकसित हो जाती है। योगियों ने देह की

---

[60] घरोटे, एम. एल. देवनाथ, परिमल. झा, विजयकांत. (संपादित). हठरत्नावली. तृतीय संस्करण. लोनावला : लोनावला, योग संस्थान, 2014.पृ. 10-11.

[61] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 20.

निर्मलता एवं प्राणायाम में सहायक क्रियाओं का भी उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है। जिसे षट्कर्म[62] कहा गया है। इसमें छः प्रकार की धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाति शोधन क्रियायें शामिल हैं। जो वात, पित्त एवं कफ (त्रिदोष) के असंतुलन से उत्पन्न विकारों का शमन कर नाड़ियों को शुद्ध करते हैं।

इस प्रकार योगी प्राणजय कर लेता है। अर्थात देह में प्राण की पूर्ण स्थिरता प्राप्त होती है। इससे मनोजय की प्राप्ति होती है। इसे ही उन्मनी (मनोन्मनी) कहा गया है। जिसमें मन विषय शून्य हो जाता है। प्राणायाम की सिद्धि के उपरांत मुद्राओं का अभ्यास अभिहित है। जो मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के उद्देश्य से किया जाता है। यह शक्ति की जागृति ही हठसाधना का लक्ष्य है। इन मुद्राओं में महामुद्रा, महाबंध, महावेध, मूलबंध, खेचरी आदि शामिल हैं। उपरोक्त अभ्यास से इड़ा और पिंगला नाड़ियों का प्राण संयुक्त हो जाता है। तब प्राण का प्रवेश सुषुम्ना मार्ग में हो जाता है जिससे सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर ऊर्ध्वगमन करती है।

किन्तु इड़ा एवं पिंगला में समता न होने पर इनकी वैषम्यता से जगत का विस्तार होता है, तब द्वैत भाव एवं द्वन्द्व उत्पन्नहोता है। क्योंकि दोनों की प्रकृति त्रिगुणों से प्रभावित है। यही विषमता जीवनमुक्ति में बाधक है। मानव देह में इड़ा और पिंगला शक्ति की दो धारायें हैं। जो सामान्य अवस्था में एक-दूसरे के विपरीत कार्य करती है। जब प्राण सक्रिय होता है तब अपान निष्क्रिय रहता है और अपान के सक्रियता के साथ ही प्राण निष्क्रिय हो जाता है। इन प्रक्रियाओं को अनुकंपी एवं परानुकंपी तंत्रिकाओं से जोड़ सकते है। जहाँ एक की सक्रियता एवं दूसरी की निष्क्रियता से इन्द्रियों के कार्य व्यापारों में गति मिलती है।

नाथ योगियों (सिद्धों) ने उपरोक्त इड़ा एवं पिंगला की विशेषताओं को हठयौगिक अभ्यासों आसन, षट्कर्म, प्राणायाम, मुद्रा एवं नादानुसंधान (समाधि) से इनमें साम्यता आती है। बहिर्गमन हो रही इन्द्रियों का कार्य व्यापार नियंत्रित

---

[62] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम.एल. (संपादित). घेरण्ड संहिता. चतुर्थसंस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. भूमिका पृ. 8.

होते-होते स्थगित हो जाता है। तब प्राण का प्रवाह सामान्यावस्था में अवरूद्ध मेरूदण्ड में स्थित सुषुम्ना मार्ग में होने लगता है। मेरूदण्ड मानव देह में गुदा एवं लिंग द्वार के मध्य स्थित है। इसी में ही सुषुम्ना का मार्ग है। हठयोगियों के अनुसार उसी मार्ग के मूल में स्वयंभू नामक लिंग है, जिसे अग्नि स्थान कहा जाता है। उसी स्थान पर साढ़े तीन फेरे लगाकर सुषुम्णा के मार्ग को अवरूद्ध कर सुप्त अवस्था में पड़ी हुई कुण्डलिनी स्थित है।[63]

प्राणायाम के द्वारा केवल कुम्भक के सिद्ध होने से यह ऊर्ध्वगमन करती हुई सुषुम्ना मार्ग के शक्ति केन्द्रों (चक्रों) को जागृत कर देती है। सुषम्ना (सुषुम्णा) मार्ग में भी तीन सूक्ष्मतम नाड़ियाँ, वज्रिणि, चित्रिणि एवं ब्रह्म, क्रमशः बाहर से अन्दर की ओर स्थित होती हैं।

इस मध्यपथ से ही कुण्डलिनी शक्ति ऊपर उठती है। प्रथमतः मूलाधार चक्र का जागरण होता है। जो सुषुम्णा मार्ग के ऊपर स्थित है। जिसका आकार चार दलयुक्त कमल के समान है, इसके ऊपर, नाभि के नीचे स्वाधिष्ठान चक्र है। जिसका आकार छः दलयुक्त कमल के समान है। तीसरा चक्र नाभिस्थान पर है जिसका आकार दस दल युक्त कमल के समान है। इसके ऊपर में हृदय के पास अनाहत चक्र स्थित है। जिसका आकार बारह कमलदल के समान है। कण्ठ में विशुद्धि चक्र का स्थान है। जिसका आकार सोलह कमलदल के सामान है। भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र का स्थान है। जो द्विदल युक्त कमल के समान है। उपरोक्त छः चक्रों के ऊपर शून्य का स्थान है। जिसे सहस्रार चक्र भी कहा गया है, जहाँ अनेक कमल दल युक्त कमल का स्थान है। यही शिव स्थान है, जहाँ कुण्डलिनी पहुँचकर शिव से एकाकार हो जाती है। जिसके बाद ही सिद्धदेह अथवा जीवनमुक्ति की अवस्था पायी जा सकती है। यही हठयोग की उपलब्धि है, जो कालदण्ड से मुक्त कर देती है।

---

[63] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.115..

## 2.2 हठयोग की पुरातन परम्परा :-

योग साधना अनादिकाल से चली आ रही ऐसी विद्या है जिसका परम उद्देश्य मुक्ति की प्राप्ति है किन्तु विभिन्न प्राचीन मूर्तियों, शिलालेखों एवं ग्रन्थों आदि का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है की इन यौगिक साधनाओं की परम्परा बहु प्राचीन है। सिन्धुघाटी सभ्यता के प्रसिद्ध उत्खन्न से प्राप्त मूर्ति जिसे पशुपतिनाथ की संज्ञा दी गयी है। जिसे ध्यानस्थ शिव की मूर्ति भी कहा गया है।[64] उक्त कथन सत्य के निकट प्रतीत होता है। क्योंकि नाथ साहित्यों के अनुसार हठविद्या के प्रवर्तक आदिनाथ शिव ही स्वीकार्य हैं। नाथ योगियों में कुण्डलिनी जागरण एवं चक्र साधना प्रसिद्ध है। जो प्रचीन ग्रंथ अथर्ववेद के मंत्र अष्टचक्र नवद्वारा[65] श्लोक में सन्निहीत है। नाथ साहित्यों में प्राणायाम से तात्पर्य हृदयस्थ स्थित प्राण एवं नाभि के अधः स्थित अपान का एक्य है। जिसका संदर्भ श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदिष्ट योग में दृष्टव्य है। हठयोग की भांति प्राण एवं अपान[66] को योगियों के द्वारा एक्य करने एवं संतुलित आहारों को अपनाने की बात कही गयी हैं। हठयोग का मूल उद्देश्य प्राण-अपान का संयोग ही है जिसका उल्लेख नाथ सहित्यों में विस्तार से प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का उल्लेख करते हुए स्वयं को सिद्धों में कपिल मुनि कहा है। वही नाथ योगियों में कपिल मुनि नाथ सम्प्रदाय के एक शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं।[67]

हठयोग साधना के मूल सूत्र उपनिषदों में भी देखा जा सकता है। उपनिषदों की संख्या दो सौ से भी अधिक मानी जाती है। किन्तु बहुप्रसिद्ध आचार्य आदिशंकर ने उनमें से कुछ चयनित उपनिषदों पर ही भाष्य किया है। उनमें कठ, केन, प्रश्नोपनिषद् आदि शामिल हैं। उपरोक्त उपनिषदों में हठयोग के

---

[64] घारू, नरेश कुमार. नाथ सम्प्रदाय में योग का स्वरूप. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, 2010-11. पृ.74.

[65] कुमार, डॉ. धर्मेन्द्र. चन्द्र, प्रद्युम्न. (संपादित). अथर्ववेदसंहिता. दिल्ली : दिल्ली संस्कृत अकादमी, 2013. पृ.246. *अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।*

[66] श्रीमद्भगवद्गीता. गोरखपुर : गीताप्रेस. सं. 2073.पृ.69-70. *अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथापरे। प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।*

[67] संत ज्ञानेश्वर रचित. श्रीज्ञानेश्वरी. (हिंदी- भाषानुवाद). आठवां पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस सं. 2072.पृ. 315.

मूल साधनात्मक बीजों का अवलोकन किया जा सकता है। जैसे कठोपनिषद् में आत्मा से उत्पन्न और आश्रित प्राण-अपान ही समस्त इन्द्रियों का पोषण करता है। वही आत्मा विश्व देवता के रूप में देह में विद्यमान प्राण को उर्ध्व और अधः गति प्रदान करता है।[68]

मानव देह एक नगर के रूप में शोभित है जिसमें ग्यारह द्वार माने गये हैं। अतः साधन रुप देह को वज्र के समान अक्षुण्ण बनाकर उस परम तत्व को जानने के निर्देश किये गये है। इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद् में ऋषि पिप्लाद के द्वारा दिये गये उत्तर के बारहवें श्लोक में रयि और प्राण को चन्द्रमा और सूर्य की संज्ञा दी गयी है, जो क्रमशः अन्न और जीवन के प्रतीक हैं। द्वितीय प्रश्न के उत्तर में प्राण को इन्द्रियों के संचालक एवं प्राण के उष्ण, अग्नि रूप गुणों का वर्णन करते हुए स्थूल और सूक्ष्म शरीर के कारण रूप एवं समस्त जगत का आधार कहा गया है। तृतीय प्रश्न के उत्तर रूप में पंच प्राणों[69] में प्राण के द्वारा इन्द्रियों का संचालक, अपान के द्वारा प्रजनन और मुत्र त्याग, समान के द्वारा समस्त देह में अन्नरस का संवहन एवं उदान एवं व्यान के कार्यों की चर्चा की गयी है। इस क्रम में छठे श्लोक में हृदय में आत्मा का निवास बताते हुए हृदय से ही एक सौ एक नाड़ियों के उद्गम और एक-एक नाड़ी से निकलने वाली बहत्तर हजार उपशाखाओं का उल्लेख है साथ ही सुषुम्ना मार्ग[70] से ऊर्ध्वलोक की प्राप्ति एवं परमानंद की अनुभूति आदि का उल्लेख भी किया गया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति, गर्म से उत्पन्न मानव देह में विद्यमान इन्द्रिय, धातु आदि की उत्पत्ति, नेत्र, मुख, नाभि, गुदा आदि विभिन्न स्थानों में प्राण के कार्यों, बहत्त हजार नाड़ियों में तीन प्रमुख इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना[71] के बीच में चंद्रमण्डल के सदृश प्रकाश मण्डल के मध्य अचल आत्मा के विद्यमानता का उल्लेख है। उपरोक्त

---

[68] ईशादि नौ उपनिषद्. गोरखपुर : गीताप्रेससं. सं. 2073.पृ. 299-302.

[69] वही, पृ. 376.

[70] ईशादि नौ उपनिषद्. गोरखपुर : गीताप्रेससं.सं. 2073पृ. 377-78.

[71] पाण्डेय, डॉ. उमेशचंद्र. (व्याख्याकार). याज्ञवल्क्यसमृतिः. पुनर्मुद्रण. वाराणसी : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, सं. 2070. पृ. 463.

विषयों का इसी प्रकार से वर्णन गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धांतपद्धति में भी विस्तार से प्राप्त होता है।

हठयोग साधना का गहरा संबंध महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र से दिख पड़ता है। इस सूत्र में प्रसिद्ध अष्टांग योग[72] को हठयोग के विभिन्न मान्य ग्रंथों में योग के अंगों के रूप में अवलोकन किया जा सकता है। जैसे- गोरक्षकृत सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपदेश में वर्णित अष्टांगयोग[73], गोरक्षशतकम् में आसन, प्राणसंयम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का वर्णन है। योग सूत्र के साधन पाद में वर्णित अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आसन में स्थिरता आदि के समान ही हठयौगिक ग्रंथ सिद्धासन अथवा पद्मासन में से किसी एक में स्थिरता की बात करते हैं। दोनों में प्राणायाम पूरक, कुम्भक रेचक के साथ है, चतुर्थ प्राणायाम में बिना पूरक और रेचक के प्राण स्थिरता के सूत्र भी प्राप्त होते हैं।

हठयोगियों ने प्राणायाम को विभिन्न प्रयोगों से अष्ठ कुम्भक की क्रियाविधि और लाभ के साथ सहित और केवल में विभाजित किया है। सहित में पूरक कुम्भक और रेचक के साथ अभ्यास है एवं केवल अवस्था में योगी बिना पूरक और रेचक के शरीर में प्राण धारण कर उन्मनी की प्राप्ति करता है। जिससे मन में धारणा की योग्यता और चित्त में प्रकाश की अनुभूति होती है।

विभूति पाद में नाभिचक्र, कूर्मनाड़ी के साथ हृदय में संयम करने से चित्त की सम्पूर्ण रूप से सचेत्ता का ज्ञान हो जाने, कायसम्पदा के अंतर्गत शरीर की सुन्दरता, बल, आकर्षक और वज्र के समान देह की प्राप्ति आदि का वर्णन है। जो नाथ योगियों के साधनात्मक साहित्यों शिवसंहिता में षट्चक्र, हठप्रदीपिका में सिद्धदेह आदि के रूप में अमर काय बनाने एवं जीवनमुक्ति प्राप्ति आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। चतुर्थ पाद के प्रथम सूत्र में जन्म से, औषधि के सेवन से, मंत्रजप, तप करने एवं समाधि से प्राप्त सिद्धियों का उल्लेख है।

---

[72] तीर्थ, स्वामी ओमानन्द. (ग्रंथकार). पातञ्जलयोगप्रदीप. छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. सं. 2073. पृ.401.

[73] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक व अनुवादक). सिद्धसिद्धांत पद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ. 41.

नाथ योगी चर्पटनाथ औषधि एवं रसायन के जानकार एवं सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध माने जाते हैं। हठरत्नावली में मंत्रों के न्यास एवं गोरक्षशतकम् और घेरण्डसंहिता में बीजमंत्रों के साथ धारणा एवं प्राणायाम के अभ्यासों की चर्चा है। हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना के द्वितीय उपदेश में ब्रह्मानंद ने असम्प्रज्ञात समाधि से चित्त की वृत्तियों के निरोध का समर्थन किया है। पातंजल योग सूत्र के अवलोकन से यह ज्ञात होता है की महर्षि पतंजलि के पूर्व भी इन यौगिक अभ्यासों का प्रचलन था, एवं विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ औषधि, मंत्र, समाधि आदि से प्राप्ति की जाती थी।

हठयोग का तंत्र से घनीष्ट संबंध है, क्योंकि हठयोग एवं तंत्र के प्रवर्तक आदिनाथ ही माने जाते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित 'नाथ सम्प्रदाय' में शाबर तंत्र में उल्लेखित कापालिकों के बारह प्रधान आचार्यों में आदिनाथ प्रथम है, एवं प्राचीन तंत्र परम्पराओं में से एक शाक्त तंत्र के मतानुयायी भी बाह्याचार साधना के उपरान्त अन्ततः कुण्डलिनी जागरण का ही अभ्यास करते हैं, जो नाथ योगियों की मान्य साधना है।[74] माधवाचार्य ने 'सर्वदर्शनसंग्रह' में शैव सिद्धान्त के मान्य सम्प्रदायों में नकुलीश पाशुपत का उल्लेख किया है जिनका काल दूसरी शताब्दी स्वीकार की जाती है। महाभारत में शांतिपर्व के अंतर्गत इस पाशुपत मत के प्रवर्तक श्रीकण्ठ (शिव) ही मान्य है।[75] इस पाशुपत मत से नाथ योगियों के सिद्ध देह एवं जीवनमुक्त साधना का घनीष्ट संबंध है। सम्राट हर्षवर्धन के काल में चीनी दार्शनिक ह्वेनसांग उपस्थिति थे, जिन्होंने अपनी रचना शियुकी में नाथ धर्म की चर्चा की है।

नाथयोगियों में कान में कुण्डल धारण करने की प्रथा प्रचलन में रही है। इसीलिए गोरक्षनाथ अनुयायी कनफटा योगी कहलाते हैं। गोरक्ष की रचना सिद्धसिद्धांतपद्धति के पंचम उपदेश में योगी की वेषभूषा में एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचना 'नाथ सम्प्रदाय' में नाथ योगियों की परम्परागत साधनाओं का

---

[74] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. संस्करण. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010.पृ.4-5.

[75] द्विवेदी, व्रजवल्लभ.तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन. प्रथम खण्ड. प्रथम संस्करण. वाराणसी : शैवभारती शोधप्रतिष्ठानम्, जंगमवाड़ी मठ, 2000.पृ.216.

अभिन्न अंग स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार गोपीनाथ राव ने मद्रास के आरकाट जिले के परशुरामेश्वर मंदिर में स्थापित शिवलिंग में बनी शंकर की मूर्ति के कान में लगी कुण्डल धारी शिव का उल्लेख किया है। जिसका काल विद्वानों ने दूसरी-तीसरी शताब्दी माना हैं।[76] इटली की विद्वान टेसीटरी की मान्यता है कि कर्णकुण्डल धारण करने वाले योगियों की उपस्थिति बौद्ध धर्म के आरम्भिक काल से रहा है, जो गुप्त रूप से अपनी साधनाओं में रत रहा करते थे।

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में दत्तात्रेय से अलर्क के द्वारा पूछे गये योग में आसनों में पद्मासन, अर्द्ध आसन व स्वस्तिकासन आदि का उपदेश करते हुए प्राणायाम के द्वारा पापों को, धारणा के अभ्यास से विषयों को एवं ध्यान के अभ्यास से अनीश्वर गुणों को दग्ध करने की भी चर्चा है, वही प्राण और अपान का निरोध ही प्राणायाम कहा गया है। साधना के लक्षणों के अनुसार इनके लघु, उत्तम व उत्तरिय तीन प्रकार हैं। प्राण साधना[77] से ही चित्त की मलिनता, लोभ, मोह, कर्मादि समाप्ति आदि का विवरण भी प्राप्त होता है। दत्तात्रेय की अमृतसिद्धि हठयोग की प्रसिद्ध साधनाओं का उपदेश करती है, जो ललना आदि प्रमुख नाड़ियों, प्राण वायु, सुषुम्ना मार्ग[78], ब्रह्मरंध्र चित्तलय एवं मुक्ति आदि प्रमुख विषय है। जिसे ब्रह्मानंद ने अपने ग्रंथ हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में विस्तार उल्लेख किया है।

## 2.3 कतिपय नाथ साहित्यों में हठयोग का विकास :-

चयनित (कतिपय) नाथ साहित्यों के अंतर्गत ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी तक के ग्रंथ शामिल हैं। जिनमें हठयोग की साधनाओं का प्रादुर्भाव से लेकर कालांतर में हुए परिवर्तनों के कारण इस योग परम्परा में समावेशित नवीन आयामों आदि का विस्तृत उल्लेख है। किन्तु पुरातन परम्परा

---

[76] पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवं उनकी परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोधसंस्थान, गोरखपुर मंदिर, 1981.पृ.02.

[77] शर्मा, राजेन्द्रनाथ. सिंह, नागशरण. (संपादित). श्रीमार्कण्डेयमहापुराणम्. तृतीय संस्करण. दिल्ली : नाग पब्लिकेशन, 2008.पृ.134-135.

[78] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. (संपादित). ब्रह्मानंद कृत, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2004.पृ. 380.

एवं कालांतर के नवीन परिवर्तनों के उपरांत भी नाथ सिद्धों की साधना एवं दर्शन एक ही है।

हठयोग के विकास की परम्पराओं के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि आदिनाथ इस सम्प्रदाय के सर्वमान्य एवं प्रथम सिद्ध हैं। कापालिक सिद्धों के बारह प्रसिद्ध आचार्यों में आदिनाथ प्रथम है, साथ ही इनमें विभिन्न आचार्यों के नामों के अंत में नाथ नामक संबोधन शब्द जुड़ा हुआ है।

अतः नाथयोगियों के द्वारा इसीलिए कहा जाता है की नाथ ही इस हठयोग परम्परा के उपदेष्टा है, और प्रचारक भी। लौकिक दृष्टि से महासिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ प्रसिद्ध है। किन्तु उनसे पूर्व भी इस साधना के सिद्धों की लम्बी सूची है। मत्स्येन्द्रनाथ तंत्र एवं विभिन्न सम्प्रदायिक ग्रंथों में भी महासिद्ध के रूप में स्मरण किये गये हैं।[79] काश्मीर शैव तंत्र के प्रसिद्ध आचार्य अभिनव गुप्त ने तंत्रालोक के प्रथम भाग में इन्हें मच्छन्दविभु नाम से संबोधित किया है, वही जयद्रथ ने इस ग्रंथ की टीका में इन्हें चित्त वृत्तियों के नियंत्रक[80] कहकर सम्बोधित किया है।

हठयोग की साधना शैव तथा शाक्त आगमों में भी प्रचलित थी, किन्तु कालांतर में मध्यकाल के दौरान इन साधनाओं में अवांक्षनीय तत्त्वों के प्रवेश हो जाने से इस विद्या को तंत्रमार्ग से अलग कर मत्स्येन्द्रनाथ एवं उनके प्रसिद्ध शिष्य गोरक्षनाथ आदि नाथ सिद्धों ने कालांतर में हठयोग के नाम से प्रचलित एवं प्रसारित किया।

मत्स्येन्द्र कृत कौलज्ञाननिर्णय मध्यकालीन हठयौगिक साधना का आधार ग्रंथ माना जाता है। जिसमें इस यौगिक साधना का विस्तार पूर्वक चर्चा भैरव-देवी संवाद के रूप में आरंभ होता है। देवी, भैरव से सृष्टि उत्पत्ति, सिद्धि, मुक्ति आदि के प्रश्न पूछती है, वही भैरव के द्वारा शिव की इच्छा शक्ति से उत्पन्न सृष्टि,

---

[79] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक व अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ.41.

[80] द्विवेदी, मुकुंद. (संपादित). हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. भाग-6. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.पृ. 53.

स्थित और लय आदि का उपदेश देते हुए नाथ को ही इस विद्या का प्रवर्तक बतलाते हुए सिद्धों की परम्परा का उल्लेख है।

इनमें श्रीशैल, महेन्द्र, कामाख्या पीठ, नाड़ी, षट्कर्म, कौलयोगिनी साधना, ऊर्ध्वरेतस, खेचरीमुद्रा[81], बंध, धारणा, ध्यान, हंस मंत्र (सोऽहं) विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ, वीर साधना, कुण्डलिनी[82], देहस्थ चक्र, ब्रह्मग्रन्थि, नाद-बिन्दु, लय, अकुलवीर, सहजानंद[83] आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। कालांतर के हठयौगिक ग्रंथों में सम्मिलित हठयोग के विकास को निम्नवत जाना जा सकता है-

## 2.3.1 नाथसिद्ध परम्परा :-

हठयौगिक ग्रंथों के अनुसार सिद्धों की परम्परा त्रेता, द्वापर, कलयुग से चली आ रही है। इनमें ओमपादाः, व्याघ्रपादाः, पंचशिखिपादाः, लम्बोदरपादाः आदि सिद्धों के साथमहापूज्य लाकिनी, काकिनी, शाकिनी आदि की चर्चा है।[84] सिद्धसिद्धांतपद्धति में सिद्धों की पाँच वंश परम्पराओं में आईसंतान, बिलेश्वर संतान, विभूतिसंतान, नाथ संतान, तथा योगीश्वर[85] संतानों के साथ उनकी विशिष्टताओं का भी उल्लेख है। हठप्रदीपिकाज्योत्स्नाकार ब्रह्मानंद ने हठयोग की साधनाओं का विस्तार से उल्लेख करते हुए दत्तात्रेय मार्कण्डेय आदि योगियों के सिद्धांतों को पुनः पुनः प्रस्तुत किया है।

हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में आदिनाथ, मत्स्येन्द्र, शाबर, आनंदभैरव, चौरंगी, मीननाथ, गोरक्ष विरूपाक्ष, बिलेशय आदि हठयोग के महासिद्धों[86] की

---

[81] बागची, प्रबोधचंद. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ. 16 -17.

[82] वही, पृ. 73.

[83] वही, पृ.84.

[84] बागची, प्रबोधचंद. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.पृ. 28–29.

[85] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक व अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ.73.

[86] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानंदमार्ग, 2017.पृ. 03-04.

चर्चा है जो कालदण्ड से परे मुक्त विचरण करते हैं। इनमें से मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ बहुप्रसिद्ध हैं। इन्हीं आचार्यों की कृपा प्रसाद से हठप्रदीपिकाकार योगी स्वात्माराम ने हठयोग से राजयोग को जाना है। इस ग्रंथ के प्रत्येक उपदेश के अंत में ग्रंथकार ने स्वयं को सहजानंद संतान योगी के रूप में प्रस्तुत किया है। कौलज्ञाननिर्णय के अनुसार सहजानंद में जीवनमुक्त योगी रमण करता है।

## 2.3.2 आसन :-

आसन हठयौगिक ग्रंथों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मत्स्येन्द्र कृत उपरोक्त ग्रंथ में स्थिर आसन[87]में यौगिक विधानों को करने के निर्देश है। सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपेदश में अष्टांग योग के अंतर्गत आसन, परमात्म स्वरूप में चेतना की स्थिरता है। जिसमें स्वस्तिकासन, पद्मासन तथा सिद्धासन प्रमुख हैं। गोरक्षशतकम् ने शिव उपदिष्ट चौरासी लाख योनियों से आये हुए चौरासी लाख आसनों में से सिद्धासन तथा कमलासन (पद्मासन) विशिष्ट हैं।[88] हठप्रदीपिका के अनुसार आसन हठयोग का प्रथम अंग है।

इस ग्रंथ में पंद्रह आसनों का विधि तथा लाभ के साथ उपदेश है। इनसे स्थिरता, धीरता एवं लघुता (हल्कापन) की प्राप्ति होती है। इन आसनों में भी सिद्धासन श्रेष्ठ है। जिससे बहत्तर हजार नाड़ियों का मल शोधन होता है। इसे ही मुक्तासन, गुप्तासन, वज्रासन[89] आदि नामों से पुकारा गया है। शिवसंहिता में चार प्रमुख आसानों सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन तथा स्वस्तिकासन की चर्चा है। जिसमें से सिद्धासन[90] विशिष्ट है। इसके अभ्यास से योगी को सिद्धि तथा परमगति की प्राप्ति होती है।

---

87 बागची, प्रबोधचंद. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ.62.

88 दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग. (संपादित). गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. लोनावला : कैवल्यधाम,स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2013.पृ.44-45.

89 दिगम्बर, स्वामी.झा, पीताम्बर.(संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. षष्ठमसंस्करण. कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.18-20.

90 महेशानंद, शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. (संपादित). शिव संहिता. प्रथम संस्करण. पुणे: कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ.130-137.

## 2.3.3 षट्कर्म :-

कौलज्ञाननिर्णय में षट्कर्म शोधन क्रिया के रुप में प्राप्त नहीं होता है किन्तु मारण, सम्मोहन, स्तभन, उच्चाटन आदि क्रियाओं का उल्लेख जरूर प्राप्त होता है ये सभी तांत्रिक षट्कर्म माने जाते हैं किन्तु कालांतर के नाथ साहित्यों में षट्कर्म के

रूप में त्रिदोषों (वात, पित्त कफ) को संतुलित करने एवं देहस्थ नाड़ियों की मलिनता को दूर कर, प्राणायाम की सिद्धि के उद्देश्य से धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाति को समावेशित किया गया। जिसका हठप्रदीपिकाकार ने प्रथमतः उल्लेख करते हुए षट्कर्म[91] कहा है,कालांतर में घेरण्ड संहिताकार ने इक्कीस प्रकार के शोधन क्रियाओं को विस्तारित किया। हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, शिवसंहिता में भी इसकी चर्चा प्राप्त होती है।

उपरोक्त शोधन क्रियाओं (षट्कर्म) का घनीष्ट संबंध आयुर्वेद के पंचकर्म से दिख पड़ता है जैसे पंचकर्म में स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन और बस्ति तथा नस्य। नस्य में वैद्य के द्वारा औषधीय तेल को नाक में ड़ालकर नासिका के मलावरोधों को दूर कर प्राण-प्रवाह को संतुलित किया जाता है। नेतिक्रिया में सूत से बनी हुई रस्सी को नाक से प्रवेश करा कर मुख से निकाला जाता है। यह नासिका से कफदोषों को दूर कर आज्ञा चक्र को जागृत करने में सहायक है। बस्ति कर्म में वैद्य के द्वारा औषधीय तेल को रोगी  के गुदामार्ग से अंदर प्रवेश कराकर वात दोषों का शमन किया जाता है। वही हठयोग में षट्कर्म के अंतर्गत बस्ति क्रिया में गुदामार्ग से नलिका के माध्यम से योगाभ्यासी जल एवं वायु को अवशोषित कर बाहर निकालता है। जिससे वात, कोष्ठबद्धता, अर्जीण आदि दोषों से मुक्ति मिलती है।

पंचकर्म में वमन, औषधियों के माध्यम से उदर से जल अन्न आदि को मुख से निकाला जाता है। उसी प्रकार धौति क्रिया के अंतर्गत उदरस्थ अन्न, जल आदि

---

[91] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, षष्ठम संस्करण, 2017.पृ. 44-52.

को मुख से बाहर निकालना वमन धौति है इसे ही गजकरणी कहा गया है। हठयौगिक ग्रंथ हठरत्नावली में श्रीनिवास ने आयुर्वेद के पंचकर्म की तरह ही औषधियों के अंर्तगत गुड़ आदि का सेवन कर गजकरणी करने का उपदेश किया है।[92]

नाथ सम्प्रदाय में चर्पटीनाथ[93] महासिद्धों के रूप में प्रसिद्ध है जिन्हें रसेश्वर सम्प्रदाय के अंतर्गत रससिद्धों में रूप में माध्वाचार्य ने सर्वदर्शनसंग्रह में उल्लेख किया है। संभवतः नाथ योग में रससिद्धों के आगमन के पश्चात् पंचकर्म के समान देह के विकरों को दूर करने एवं दोषों को संतुलित करने के लिए हठयोगियों ने हठ साधना में पंचकर्म के समान ही षट्कर्मों को जोड़ा होगा इनमें अंतर इतना है कि पंचकर्म औषधियों से दोषों का शोधन करता है वही षट्कर्म में वस्त्र, जल आदि की सहायता से दोषों के संतुलन का कार्य सम्पन्न होता है। चूंकि योगी धन आदि साधनों का संग्रह नहीं करते थे। अतः देह के शोधन के लिए प्राकृतिक एवं सर्वजनों के लिए उपलब्ध सामान्य वस्त्र,जल, वायु आदि से त्रिदोषों के संतुलन हेतु षट्कर्म का उपदेश किया।

## 2.3.4 पथ्यापथ्य :-

पथ्यापथ्य से तात्पर्य योगाभ्यासियों के लिए योगानुकूल स्वीकृत एवं निषिद्ध आहारों से है। पथ्याहार स्निग्ध, मधुर एवं मनोनुकूल हो जिसके कारण नाड़ियाँ मलिन न हो, बिना हिंसा के दूसरे जीवों को कष्ट न पहुँचाते हुए त्रिदोषों को संतुलित करने वाले आहारों का चयन किया गया। साथ ही अम्ल, तीक्त, कसैला, मद्य, मांस आदि को वर्जित करते हुए अपथ्याहार कहा गया जो त्रिदोषों को असंतुलित कर योग में बाधा उत्पन्न करते हैं। उपरोक्त आहारों के चयन में आयुर्वेदिक ग्रंथ आधार मालूम होते हैं क्योंकि हठप्रदीपिकाज्योत्स्नाकार ब्रह्मानंद

---

[92] घरोटे, एम. एल. देवनाथ, परिमल. झा, विजयकांत. (संपादित). हठरत्नावली. तृतीय संस्करण. लोनावला : लोनावला, योग संस्थान, 2014.पृ. 24.

[93] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2017.पृ. 03.

ने पथ्याहार की चर्चा करते हुए वैद्यक ग्रंथों[94] का संदर्भ दिया है। पंच भाजियों में जीवंती, बथुआ[95], चौलाई, मेघनाद और पुनर्नवा का उल्लेख किया है। ये सभी दोषों को नहीं बढ़ाने वाले एवं उत्तम भाजियों के अंतर्गत चरक संहिता में वर्णित है। साथ ही हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता आदि ग्रंथों में वर्णित योगानुकूल यौगिक आहारों को भी आयुर्वेदिक ग्रंथों से त्रिदोषों को संतुलित करने वाले, पोषण प्रदायक एवं सहज उपलब्धता आदि गुणों के कारण शामिल किया गया।

## 2.3.5 नाड़ियाँ :-

नाथ साहित्यों में देहस्थ विभिन्न प्रकार की नाड़ियों का उल्लेख प्राप्त होता है। शिव संहिताकार के अनुसार इनकी संख्या तीन लाख पचास हजार है। हठप्रदीपिका के अनुसार इनकी संख्या बहत्तर हजार मानी गयी है। वसिष्ठ संहिता में चौदह प्रमुख नाड़ियों का उल्लेख है। सिद्धसिद्धांतपद्धति दस का वर्णन करता है, किन्तु सभी ने इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना[96] को तीन प्रमुख नाड़ियों में माना हैं। इनमें भी सुषुम्ना विशिष्ट मानी गयी है। इसकी चर्चा कौलज्ञाननिर्णय, सिद्धसिद्धांतपद्धति,गोरक्षशतकम्,वसिष्ठसंहिता,हठप्रदीपिका,घेरण्डसंहिता,शिवसं -हिता,हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, गोरखबानी[97] में भी प्राप्त होती है। जिसे मोक्षमार्ग मध्यपथ, राजमार्ग आदि नामों से संबोधित किया गया है। इसी मार्ग से ही कुण्डलिनी ऊर्ध्वगमन करती हुई शिव के साथ विलीन हो जाती है।

## 2.3.6 प्राणायाम :-

प्राण का चित्त से गहरा संबंध है। प्राण के नियंत्रण से ही चित्त पर नियंत्रण स्थापित होता है। इन्द्रिय, चित्त आदि अपना कार्य व्यापार देह में व्याप्त नाड़ियों के माध्यम से पूर्ण करते हैं। अतः देहस्थ नाड़ियों को प्राणायाम के पूर्व नाड़ी

---

[94] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. (संपादित). ब्रह्मानंद कृत, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2004. पृ. 69-70.

[95] वही, पृ. 69-70.

[96] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. (संपादित). शिव संहिता. प्रथम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ. 66.

[97] बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त. (सम्पादित). गोरखबानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ.53.

शोधन के माध्यम से शुद्ध किया जाता है। जिससे नाड़ियाँ प्राण को धारण कर सकें। प्राण के रहते ही जीव जीवित है। अतः सिद्धों ने प्राणायाम का विशेष रुप से उपदेश किया है। कौलज्ञाननिर्णय में इस साधना का अभ्यास पूरक, कुम्भक तथा रेचक[98] के साथ वर्णित है। सिद्धसिद्धांतपद्धति में पूरक, कुम्भक, रेचक तथा संघट्टन[99] (प्राण और अपान का योग) प्राणायाम पूरा होता है। जिससे प्राण की स्थिरता प्राप्त होती है।

गोरक्षशतकम् में पूरक, कुम्भक तथा रेचक के साथ प्राणायाम का अभ्यास करने के निर्देश है। जिसमें बायीं नासिका से पूरक कर कुम्भक के साथ ललाट पर चंद्रमण्डल का ध्यान करते हुए दाहिनी नासिका से उसका रेचन किया जाता है। उपरांत दाहिनी नासिका से पूरक करते समय कुम्भक कर नाभि में सूर्यमण्डल का ध्यान कर बायीं नासिका से रेचक करने का विधान है।

यह अभ्यास बारह, चौबीस तथा छत्तीस मात्राओं के अनुसार क्रमशः अधम, मध्यम तथा उत्तम प्रकार के कहलाते हैं। इनके अभ्यास से देह में क्रमशः पसीना आता है, कम्पन होता है तथा अंतिम लक्षण के रूप में योगी का शरीर जमीन से ऊपर उठ जाता है। हठप्रदीपिका में प्राणायाम मुख्य रूप से सहित (पूरक कुम्भक रेचक के साथ) और केवल (बिना पूरक, कुम्भक व रेचक के प्राण धारणा) में विभक्त है। इससे पूर्व नाड़ी शोधन करने का विधान है। जिससे नाड़ियाँ मल रहित हो जाए। सहित के अंतर्गत आठ प्रकार के प्राणायामों का विधि तथा लाभ के साथ उल्लेख है। सहित प्राणायामों के अभ्यासों की गहनता में योगी बिना किसी पूरक आदि के प्राणों को लम्बे समय तक धारण करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

शिवसंहिता के अनुसार पूरक कुम्भक तथा रेचक का अभ्यास क्रमशः बायीं तथा दाहिनी दोनों नासिका से सुबह, दोपहर, शाम तथा अर्द्धरात्रि को मिलाकर

---

[98] बागची, प्रबोधचंद. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णय:. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ.105.

[99] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक व अनुवादक). सिद्धसिद्धांत पद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ.42.

अस्सी कुम्भक[100] करना चाहिये। तीन मास तक इस अभ्यास को करने से नाड़ियाँ शोधित हो जाती हैं। जिससे योगी का देह संतुलित, सुगन्धित, स्वर को साधने वाला तथा कान्तियुक्त हो जाता है। कुम्भक के समय साधक में शरीर के स्थान विशेष जैसे ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी स्थान, तालूमुल आदि स्थानों पर ध्यान लगाने से विभिन्न प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोगों की निवृत्ति होती है। कुम्भक की साधना में प्राण को धारण करने का समय क्रमशः बढ़ने से योगी में दूरश्रवण, कवित्व आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। अंततः जीवात्मा-परमात्मा एक हो जाते है।

इस प्रकार प्राणायाम सहित और केवली में विभक्त है एवं इसके पुर्व नाड़ी शोधन की अनिवार्यता है। शिव संहिता और वसिष्ठसंहिता में यह अभ्यास बिना कुम्भक निर्देशित हैं, वही अन्य ग्रंथों में यह अभ्यास कुम्भक के साथ करने का विधान है ।

## 2.3.7 कुण्डलिनी एवं चक्र :-

हठयौगिक साधनों का आधार कुण्डलिनी शक्ति है। इसको जागृत करना परम उद्देश्य है। यह तम,रज एवं सत् की माता है।[101] इड़ा और पिंगला के मध्य मूलाधार में साढ़े तीन फेरे मारकर सुषुम्ना मार्ग को अवरूद्ध कर अधोमुखी होकर स्थित है। साढ़े तीन फेरे में तम, रज और सत्व तीन प्रकृति के मूल गुण हैं एवम् अर्द्ध फेरे से तात्पर्य त्रिगुण से परे हो जाना है। इसके जागृत होते ही सुषुम्ना मार्ग में स्थित शक्ति केन्द्र (षट्चक्र) का भी जागरण हो जाता है। नाथ साहित्यों में विभिन्न प्रकार के चक्रों का उल्लेख किया गया है किन्तु मूलरूप से षट्चक्रों को ही प्रमुख माना गया हैं।

इनमें मूलाधार, स्वादिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र प्रमुख हैं। उपरोक्त में से आरंभिक पाँच, पंच तत्त्वों से संबंधित हैं, जिनके जागरण से योगी पंच तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर विभिन्न सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

---

[100] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. (संपादित). शिव संहिता. प्रथम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ. 106.

[101] वही, पृ.258.

अंतिम आज्ञा चक्र चित्त से संबंधित होता है। जिसमें मन, बुद्धि अहंकार आदि शामिल हैं।[102] कुण्डलिनी जब शिव संज्ञय महाकाश में विलीन हो जाती है।

तब साधक शारीरिक, मानसिक आदि समस्त विकारों से मुक्त होकर आनंद में प्रतिष्ठित हो जाता है। इन्द्रियादि समस्त व्यापार स्थगित हो जाते हैं। यह शक्ति, गुरू कृपा, आसन, कुम्भक, मुद्राओं आदि के अभ्यास, मिताहार, ब्रह्मचर्य (बिन्दु साधना) आदि से जागती है। अन्ततः साधक तत्वातीत होकर सहज में स्थित हो जाता है।

## 2.3.8 मुद्रा :-

मुद्रा से तात्पर्य मोद (आनंद) से है। जो आनंद प्रदायक हो वही मुद्रा है। मत्स्येन्द्रनाथ कृत कौलयोगिनी साधना में गुरू के निर्देशन में योगिनी का वरण कर वीर साधना की जाती थी। जिसका उल्लेख हठप्रदीपिका वज्रोली के सहायक अभ्यासों में सहजोली[103] और अमरोली के रूप में करती है। शिवसंहिताकार ने भी इसी अभ्यास का उल्लेख किया है। इस अभ्यास में योगी को वज्रोली सिद्ध हो जाने के उपरांत स्त्री के साथ रति करते हुए बिन्दु और रज के मिश्रण को लिंग[104] से आकर्षित किया जाता था, जो कुण्डलिनी के जागरण में सहायक साधना थी, अतः इसे मुद्रा कह दिया गया किन्तु कालांतर में अवांछनीय तत्वों के प्रवेश होने एवं साधना के मर्म को नहीं जानने वाले स्वार्थी तत्त्वों के कारण यह मुद्रा का वरण, गुरू के निर्देशन में नहीं होने आदि के कारण व्यभिचार बढ़ने लगा और साधना विकृत होने लगी। इस प्रथा को समाप्त करने के उद्देश्य से गोरक्षनाथ आदि योगियों ने मुद्रा अभ्यासों में स्त्री के वरण करने की प्रथा को समाप्त कर गोरक्षशतकम् हठप्रदीपिका आदि में वर्णित महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, वज्रोली शक्तिचालनी आदि मुद्राओं का अभ्यास आरंभ हो गया।

---

[102] कविराज, गोपीनाथ. शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालयप्रकाशन, 1996. पृ. 192.

[103] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ. 110-11.

[104] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999. पृ.192.

सहजयानी सिद्धों की सूचियों में नाथसिद्ध ही प्राथमिक सिद्धों के रुप में प्रसिद्ध हैं। सहजयानी साधना ग्रंथों में मुद्रा का अर्थ स्त्री का वरण करना है। जिसको हेवज्रतंत्र एवं उनकी टीकाओं में अवलोकन किया जा सकता हैं।

## 2.3.9. प्रत्याहार :-

हठयौगिक ग्रंथों में कुछ स्थानों पर इन्द्रियों को विषयों से स्वयं में लौटाना प्रत्याहार[105] है वही गोरक्षशतकम् में तालुमूल में स्थित चंद्रमण्डल से स्त्रावित अमृत को नाभिमण्डल में स्थित सूर्य से बचाने के लिए गुरू के निर्देशन में सिरोभाग को नीचे कर तालुभाग को ऊर्ध्व रखना ही प्रत्याहार[106] कहा गया है। इस प्रकार हठयौगिक साहित्यों में दोनों अभ्यासों की स्वीकार्यता दिख पड़ती हैं।

## 2.3.10 ध्यान :-

ध्यान मुख्यतः आलंबन युक्त[107] एवं आलंबन रहित दो प्रकार के हैं। आलंबन सहित ध्यान में साधक षट्चक्रों में उनके बीजमंत्र, वर्ण, देवता, तत्त्व आदि के आधार पर ध्यान करता है। इस प्रक्रिया की प्रगाढ़ता में आलंबन के हट जाने पर आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है। इसे ही आलंबन रहित ध्यान[108] कहा गया है।

## 2.3.11 समाधि :-

हठयोग के समस्त अभ्यासों का उद्देश्य राजयोग[109] की प्राप्ति है। इसे ही नामांतर भेद से समाधि कहा गया है। समाधियों के विभिन्न प्रकारों के अंतर्गत

---

[105] शास्त्री, द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 42.

[106] दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग. (संपादित). गोरक्षशतकम्. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति लोनावला, 2013.पृ.56.

[107] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. (संपादित). वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009. पृ. 105-12.

[108] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. (संपादित). शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ. 302-03.

[109] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2017.पृ. 129.

घेरण्ड संहिता में ध्यानयोग, नादयोग, रसानंद आदि समाधियों की चर्चा है, किन्तु हठयौगिक ग्रथों में इन समाधियों में से नादानुसंधान को ही प्रमुख मानते हैं।

जिसकी चर्चा कौलज्ञाननिर्णय[110], गोरक्षशतकम्, हठप्रदीपिका, शिवसंहिता, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, गोरखबानी (सबदी) हठरत्नावली आदि ग्रथों में प्राप्त होता है। जो शिव द्वारा उपदिष्ट सवा करोड़ समाधियों में प्रमुख है।

उपरोक्त कतिपय नाथ साहित्यों में सिद्धों के द्वारा उपदिष्ट योग के अष्टांग, षष्ठ, चतुष्क, सप्त, पंच, आदि अंगों में हठयोग से राजयोग की प्राप्ति के साधनाओं का विस्तार है। जिसके अंतर्गत सिद्ध परम्परा, आसन, षट्कर्म, कुम्भक (प्राणायाम), मिताहार, मुद्रा, ध्यान, षट्चक्र, कुण्डलिनी, नादानुसंधान (समाधि) आदि विषयों का पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनमें प्रथमतः कृतक है अर्थात् किया जाने वाला जिसमें साधक अभ्यासों को निरंतरता में लाता है। उपरांत स्वतः ही सहज उत्पन्न होता है, जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से परे अव्यक्त(मुक्ति) है।

## 2.4 नाथ सिद्ध :-

हठयौगिक ग्रंथों में नाथ से तात्पर्य परमतत्त्व से है। जो समस्त ब्रह्माण्ड के आदि कारण है एवं स्वयं अकारण है। वही नाथ सिद्धों के परमलक्ष्य है। जो स्वयं सिद्ध है वही आदिनाथ (शिव) के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ शिव सोपाधिक एवं निरोपाधिक दो अर्थों में व्यक्त है। सोपाधिक से तात्पर्य है, जो जगत के संचालक एवं नियंत्रक है। अनामा (ब्रह्म) की निजा, परा, अपरा, सूक्ष्मा एवं कुण्डलिनी शक्तियों के संयोग से उत्पन्न अपरपिण्ड रूप शिव हैं वही निरोपाधिक परमसत्य, निरालंब ब्रह्म को भी नाथ सिद्धों ने शिव अथवा आदिनाथ कहा है।

शिव ही पशुपति के रूप में भी प्रख्यात है। पाशुपत मत का उल्लेख महाभारत में भी प्राप्त होता है। इस मत के परम उपास्य देवता शिव ही माने जाते हैं। इस मत के योगपरक साधनाओं एवं दर्शन का नाथ सिद्धों की साधनाओं

---

[110] बागची, प्रबोधचंद. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934.पृ.50.

एवं दर्शन से घनिष्टता[111] है। परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार नाथ शब्द वैदिक साहित्यों आदि विभिन्न ग्रंथों मे भी देखे जा सकते हैं।[112] इस शब्द का प्रचलन आदिशंकराचार्य के समय में भी रहा है। उन्होंने इसका अर्थ कहीं ईश्वर तो कहीं, अधिष्ठाता के रूप में बताया है।

मत्स्येन्द्रनाथ कृत कौलज्ञाननिर्णय नामक ग्रंथ में देवी ने भैरव को नाथ[113] शब्द से ही संबोधित किया है। वही नाथ शब्द कैलाश में विराजित शंकर के लिए भी किया गया है।[114] स्वात्माराम ने नाथ शब्द का प्रयोग सिद्धों के परम लक्ष्य आदिनाथ, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष आदि हठयोग के जानकारों एवं प्रसिद्ध सिद्धों के लिए एवं योग के गूढ़ज्ञान के जानकार एवं निर्देश करने वाले गुरूओं[115] के प्रति किया है।

**सिद्ध** से तात्पर्य प्रमाणित अथवा पूर्ण से है। वह मार्ग जिस पर चलकर अनेकों योगियों ने हठयोग साधना से मानवीय क्षमताओं से भी अधिक विशेष शक्तियों का अर्जन किया इन्हीं सिद्धियों के कारण योगियों को सिद्धों के रूप में भी जाना जाता रहा है। हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश के पाँचवे से नौवें श्लोकों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, शाबर, चौरंगी आदि के नामों का उल्लेख करते हुए इन्हें महासिद्ध कहकर संबोधित किया गया है। नाथसिद्धों (योगियों) की चर्चा विभिन्न ग्रंथों में देखे जा सकते हैं। जिनमें वर्णरत्नाकर एक महत्पूर्ण ग्रन्थ है, जो मूल रूप से बाँग्ला में है।

इस ग्रंथ के रचनाकार कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर है। इस ग्रंथ की पोथी में भी सिद्धों की संख्या चौरासी कही गयी है किन्तु सिद्धों के छिहत्तर[116] नाम ही

---

[111] कुकरेती, विष्णुदत्त. नाथपंथ : गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में. प्रथम संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ मंदिर, संवत्, 2043. पृ. 23.

[112] वही, पृ. 23.

[113] बागची, प्रबोधचंद. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णय:. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934.पृ. 04.

[114] वही, पृ. 4.

[115] दिगम्बर स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ. 03.

[116] शास्त्री, द्वारिकादास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. पृ. 37.

प्राप्त होते हैं। जिसमें आरंभिक सिद्धों के नामों के अंत में नाथ की उपाधि जुड़ी हुई है। उपरोक्त ग्रंथ तेरहवीं शताब्दी का माना जाता है। इनमें भी नाथों के लिए सिद्ध शब्द का प्रयोग किया गया है।

वर्णरत्नाकर की उपरोक्त पोथी एशियाटिक सोसायटी लायब्रेरी, कलकत्ता में रखी गयी है। जिसमें प्रथम सिद्ध का नाम मीननाथ[117] है। मत्स्येन्द्रनाथ मीननाथ के रूप में भी जाने जाते हैं। उत्तरोत्तर क्रमशः गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, चामरीनाथ, तन्तिपा, हालिपा, केदारिपा, धोंगपा, दारिपा, विरूपा, कपाली, कमारी, कान्ह, कनखल, जालंधर, नागार्जुन, ढेण्टस, चर्पटी, मीन, भर्तृहरि, भैरव आदि सिद्धों[118] के नामों का उल्लेख किया गया है।

'सिद्ध साहित्य' के रचनाकार धर्मवीर भारती की मान्यता है कि शैवनाथ योगियों को सिद्धों के रूप में जाना जाता था किन्तु कालांतर में नाथों के लिए योगी शब्द का प्रयोग होने लगा।[119]

सिद्धों की दूसरी सूची तिब्बती स्रोतों से प्राप्त चौरासी सिद्धों[120] की है। जिसे राहुल सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इस सूची में आरंभ के सिद्धों के नामों के अंत में पा नामक उपाधि जुड़ी हुई हैं। आठ-दस सिद्धों को छोड़कर अन्य के नामों के अंत में पाद नामक संबोधन जुड़ा हुआ है। इस सूची में सिद्धों की संख्या चौरासी हैं।

योगी स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका में बत्तीस नाथ सिद्धों के नामों के साथ आदि शब्द जोड़ा गया है। इससे ज्ञात होता है कि सभी के नामों का उल्लेख करना संभव नहीं हो पाया होगा। इसमें प्रथम सिद्ध आदिनाथ (शिव) है, उपरांत क्रमशः

---

[117] द्विवेदी, मुकंद. (संपादित). हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. क्र. 6. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2013. पृ. 44-45.

[118] वही, पृ. 45- 47.

[119] भारती, धर्मवीर, सिद्धसाहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1955. पृ. 19.

[120] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ. 144 क-प.

मत्स्येन्द्रनाथ, शाबर, आनन्दभैरव, चौरंगी, मीन, गोरक्ष[121], विरूपाक्ष, विलेशय आदि नाथसिद्धों के नामों का उल्लेख है।

श्रीज्ञानेश्वरचरित्र में संत ज्ञानेश्वर की साधना मार्ग के गुरू परम्परा में नाथ सिद्धों के नामों का उल्लेख है। जिसमें आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, गैनीनाथ, निवृत्तिनाथ उपरान्त संत ज्ञानेश्वर[122] आते है। इन्हें ज्ञाननाथ भी कहा गया है। उपरोक्त सिद्धोंकी सूची के अलावा महार्णवतन्त्र, गोरक्षसिद्धांतसंग्रह, योगिसम्प्रदायाविष्कृति, सुधाकरचन्द्रिकाआदि ग्रंथों में प्रमुख रूप से मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ एवं कानिफा[123] के नाम प्राप्त होते हैं। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है की मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ एवं कानिफा पहुँचे हुए सिद्ध थे। इनकी चर्चा भारत के विभिन्न भाषाओं में लिखे गये ग्रन्थों एवं अनेक कहानियों, किंमवदंतियों आदि में भी देखे जा सकते हैं।

उपरोक्त सूचियों के आधार पर सभी सिद्धों को गिना जाए तो इनकी संख्या लगभग एक सौ सैतीस होते हैं। जिनमें कुछ पुराने एवं कुछ नये सिद्ध शामिल हैं। इनमें भी कई सिद्धों के नाम एक या एक से अधिक बार शामिल हैं। इसी प्रकार द्वारिकादास शास्त्री ने इनके नामों का संग्रहकर उनमें से एक ही सिद्ध के विभिन्न नामों जैसे कानिफानाथ के अन्य नामों में कन्हड़ी, करणिपा, कृष्णपाद[124] आदि को अलग करते हुए सिद्धों की जो सूची दी है। उसके अनुसार इनकी संख्या एक सौ पच्चीस तक पहुँचती है। इनमें से कुछ सिद्धों के नामों में अन्तर भी दिख पड़ता है। जैसे, नेमिनाथ, नीमनाथ बन गये है। नागार्जुन, नागाअरजन्द हो गये है। कंथाधारी को खिंथड़ कहा गया है, इत्यादि।

---

[121] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. कैवल्यधामस्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ. 3-4.

[122] शास्त्री द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ. 40.

[123] वही, पृ. 41.

[124] शास्त्री द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ. 40.

## 2.4.1 आदिनाथ :-

आदिनाथ नाथ सिद्धों में प्रथम स्थान रखते हैं। हठयौगिक साहित्यों में इनके नाम की बहुलता है। दत्तात्रेयप्रबोध में आसनों के प्रवर्तक आदिनाथ को माना है, जो स्वयं शिव[125] हैं। सिद्धसिद्धांतपद्धति में गोरक्षनाथ ने शक्ति युक्त जगत गुरू के रूप में आदिनाथ[126] को स्मरण किया है। शाबर तंत्र में कपालिकों के बारह आचार्यों में आदिनाथ[127] ही प्रथम स्थान में है। प्रसिद्ध हठयौगिक ग्रन्थ हठप्रदीपिका में इन्हें हठविद्या के उपदेशकर्ता कहा गया है। हठयोग से सिद्धि प्राप्त कर कालदण्ड से मुक्त सिद्धों की सूची में पहला स्थान आदिनाथ[128] का ही है। इनका अनुसरण करने से अन्य किसी भी प्रकार के शास्त्र अथवा अन्य प्रयोजनों की आवश्यकता नहीं होती। हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में ब्रह्मानंद ने आदिनाथ को शिव[129] कहा है।

## 2.4.2 मत्स्येन्द्रनाथ :-

नाथ सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ, आदिनाथ के उपरांत लौकिक दृष्टि से हठयोग के प्रथम सिद्ध एवं आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। प्रबोधचंद्र बागची के द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ की पाँच प्रमुख ग्रंथों को मिलाकर कौलज्ञाननिर्णय के नाम से संपादित किया गया है। जिनमें इनके विभिन्न नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। कौलज्ञाननिर्णय में मच्छघनपाद, मच्छेन्द्रपाद[130], मत्स्येन्द्रपाद, मीनपाद। अकुलवीरतंत्र 'ए' मीननाथ, अकुलवीरतंत्र 'बी' में मच्छेन्द्रपाद, कुलानंद में मत्स्येंद्र ज्ञानकारिका में मच्छिन्द्रनाथपाद।

---

[125] पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981. पृ.113.

[126] शास्त्री, द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ.01.

[127] पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981. पृ.8.

[128] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). हठप्रदीपिका, षष्ठम संस्करण. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2017.पृ. 3.

[129] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. (संपादित). हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004.पृ.11-12.

[130] बागची प्रबोधचंद्र. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. भूमिका पृ. 06.

हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि इनका जन्म मछुआ जाति में होने के कारण मत्स्येन्द्र पड़ा। बागची ने इन्हें सहजयानी परम्परा के प्रथम सिद्ध लुईपा[131] (लुअिपा) से अभिन्न माना है। तिब्बत में प्रचलित अनुश्रुतियों के आधार पर लुईपाद का एक नाम मत्स्यान्त्राद[132] है। राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत चौरासी सहजयानी सिद्धों में प्रथम सिद्ध लुअिपा (लुईपा) के चित्र में उनके सामने मत्स्य स्पष्ट रूप से दिख रहा है। इससे यह प्रतीत होता है की मत्स्येन्द्रनाथ का ही तिब्बती संस्करण लुईपाद[133] है।

व्रजवल्लभ द्विवेदी ने तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन, प्रथम खण्ड के मत्स्येन्द्र प्रकरण में द्वैतवादी शैवसिद्धांत मत के अघोरशिव के ग्रंथ का संदर्भ प्रस्तुत करते हुए मत्स्येन्द्र को कौलशास्त्र का आदि प्रवर्तक बताते हुए मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित एक महत्वपूर्ण वंश परम्परा का उल्लेख किया है। जिसमें मत्स्येन्द्रनाथ ने स्वउपार्जित ज्ञान को उत्तराधिकारी राजपुत्रों को प्रदान कर योगी, अवलि, आनंद, प्रभु, बोधि और पाद[134] नामक छः भागों में विस्तारित किया था।

इन राजपुत्रों के द्वारा ज्ञान की इस परम्पराओं से जुड़कर अपने नाम के अंत में उपरोक्त छः पदनामों को जोड़ने की प्रथा आरंभ हो चली। इस तरह हम जहाँ भी इन छः नामों योगी, अवलि, आनंद, प्रभु, पाद, बोधि को देखकर नाथ योगी मत्स्येन्द्रनाथ की ही वंश परम्परा को पहचान सकते हैं। योगी, आनंद शब्द नाथ सम्प्रदाय के योगियों में और बोधि, प्रभु और पाद शब्दों को तांत्रिक बौद्ध परम्परा में सहजयानी सिद्धों के नामों के अंत में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसे- जालंधरिपा, विरूपा, सरहपा आदि।

मत्स्येन्द्रनाथ तंत्र की अद्वैत शाखा कौलयोगिनी मार्ग (कौलाचार) के प्रवर्तक माने जाते है। इसका संबंध कामरूप पीठ से था। इनके अन्य नामों में 'तुरीय

---

131 पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981. पृ. 113.

132 द्विवेदी, मुकुन्द. (संपादित). हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. छठवां भाग. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.पृ. 55.

133 सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ. 144 क.

134 द्विवेदी, व्रजवल्लभ. आगम और तंत्र शास्त्र. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स, 1984. पृ.63.

सन्तति', कालीनय, कौलमार्ग, कुलमार्ग, अर्द्धत्र्यंबक मार्ग आदि प्रसिद्ध हैं। तुरीयनाथ (तुर्यनाथ) एवं मीन सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ का ही नामान्तर हैं।[135] महार्णवतंत्र में इन्हें मत्स्येंद्रनाथ, वर्णरत्नाकर एवं श्यामारहस्य में मीन एवं मीनो। मत्स्येन्द्र प्रवर्तित कौलमार्ग आध्यात्मपथ का श्रेष्ठ मार्ग है।

कुलावर्णव तंत्र के द्वितीय उल्लास के कथनानुसार सात आचारों में कौलाचार मत श्रेष्ठ है। विश्वसार तंत्र के अनुसार बताये गये तीन पशु, वीर एवं दिव्य भाव उत्रोत्तर श्रेष्ठ माने जाते हैं। कौलमत, दिव्य भाव में होने से श्रेष्ठ है। यह भेद एवं अभेद से रहित मुक्त अवस्था है। काश्मीर शैव परम्परा के प्रतिष्ठित आचार्य अभिनव गुप्त ने मत्स्येन्द्रनाथ को 'मच्छन्दविभु'[136] से संबोधित करते हुए समस्त प्रकार के रागादि मोहात्मक वृत्तिजाल को नष्ट कर देने वाले आकाशवत चेतना वाले ब्रह्मपथिक कहा है।

जयद्रथ की तंत्रालोक की टीका में शिव पार्वती को उपदेश करते हुए कह रहे है कि सिद्धपीठ कामरूप में मच्छन्द ने ही मुझसे योग प्राप्त किया था।[137] साथ ही टीकाकार ने कहा है कि मच्छ का अर्थ चंचल चित्तवृत्तियाँ हैं। उस मत्स्यरूपी चित्त की चंचल वृत्तियों को जिसने समाप्त कर दिया है वही मत्स्येन्द्र हैं। कौलज्ञाननिर्णय के अंतर्गत अकुलवीरतन्त्रम् 'ए' की हस्तलिपियों से ज्ञात होता है कि इनका एक नाम मीननाथ भी प्रसिद्ध था । नाथ परम्परा में इनके अतिरिक्त एक और सिद्ध मीन नाम से प्रसिद्ध रहे है, जो चौरंगीनाथ के पश्चात आते है। योगिसम्प्रदायाविष्कृति एवं सुधाकरचंद्रिका में मत्स्येंद्रनाथ, हठप्रदीपिका में मत्स्येंद्र, डॉ. कल्याणी मल्लिक द्वारा संपादित, योगविषय एवं सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर वर्क्स ऑफ नाथ योगिज में इन्हें मत्स्येंद्रनाथ कहा गया है।

अघोरशिव के द्वारा रचित मृगेन्द्रवृत्ति नामक ग्रंथ में मत्स्येन्द्र ही कौल शास्त्र के आद्य प्रवर्तक है। वर्णरत्नाकर में छिहत्तर नाथ सिद्धों की सूची में प्रथम

---

[135] तिवारी, हंसकुमार. (अनुवादक ). कविराज, गोपीनाथ कृत. तंत्र और आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन. द्वितीय संस्करण, पटना : बिहार-राष्ट्रभाषापरिषद्, 2003. पृ. 43-44.

[136] द्विवेदी,हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, 1950. पृ. 37.

[137] द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. छठवां भाग. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013. पृ.54. *भैरवा भैरवात् प्राप्तं योगं व्याप्य ततः प्रिये। कामरूपे महापीठे मच्छन्देन महात्मना।।*

सिद्ध  मीननाथ ही है। साथ ही दूसरे स्थान में गोरक्षनाथ का नाम आता है। ज्ञानेश्वरचरित के अनुसार संत ज्ञानेश्वर की गुरू परम्परा में मत्स्येन्द्रनाथ का स्थान आदिनाथ के उपरान्त उल्लेखित है एवं क्रमशः गोरक्षनाथ, गैनीनाथ, निवृत्तिनाथ एवं ज्ञानेश्वर का नाम है।

नेपाली बौद्धों के मध्य मत्स्येन्द्रनाथ अवलोकितेश्वर[138], शक्ति के उपासक, शक्ति स्वरूप, लोकेश्वर एवं  ब्रह्म स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। नेपाली जन बहुतायत में एकत्रित होकर इनके नाम से उत्सव मनाते हैं। नेपाल की मध्यकालीन मंदिरों में मत्स्येन्द्र, मत्स्येन्द्रासन में स्थित है एवं मुद्रा में इनका नाम अंकित है।

सिद्धों की सूची प्रस्तुत करने वाले वर्णरत्नाकर, महार्णवतंत्र, हठप्रदीपिका, योगिसम्प्रदायाविष्कृति, ज्ञानेश्वरचरित्र, सुधाकरचन्द्रिका, गोरक्षसिद्धान्त संग्रह आदि में मत्स्येन्द्र का नाम प्रथमतः प्राप्त होता है। इस प्रकार सिद्धों में इनकी वैशिष्टता एवं प्रभाव स्पष्टतः दिख पड़ता है। इनका जन्म स्थान कामरूप आसाम के आस-पास चन्द्रद्विप[139] मानी जाती है। कौलज्ञाननिर्णय के आधार पर यह द्वीप समुद्र के आस-पास मानी गयी है। जिसका उल्लेख कौलज्ञाननिर्णय के सोलहवें पटल में किया गया है। रत्नाकर जोपम कथा में यह द्वीप ब्रह्मपुत्र (लौहित्य) के अंदर मानी जाती है,  जो कामरूप क्षेत्र में आता है। प्रबोधचंद्र बागची ने नित्याह्निकतिलकम् नामक ग्रंथ के आधार पर इनकी जाति ब्राह्मण एवं जन्म स्थान बंगलादेश माना है।[140] रांगेय राघव इन्हे ब्राह्मण कुल का मानते है। शिव से प्राप्त कौलज्ञान का भी प्रथमतः प्रचार इन्होनें कामरूप से ही किया था।

बंगाल में प्रचलित मत्स्येन्द्रनाथ के उद्धार की कहानी गोरक्षविजय एवं मीन चेतन में उल्लेखित है जो सार रूप में यह है की शिव और गौरी के मध्य होने वाली गूढ़ ज्ञान की वार्ता को मत्स्येन्द्र के द्वारा छिपकर सुना गया था तब शिव के

---

[138] पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981. पृ.113.

[139] बागची प्रबोधचंद्र.  (संपादित). कौलज्ञाननिर्णयः.कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड,1934.पृ. 59.

[140] द्विवेदी,हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय., इलाहाबाद  :  हिन्दुस्तानी एकेडमीउत्तरप्रदेश, 1950 . पृ. 41- 42.

द्वारा उन्हें इस ज्ञान को भूलजाने का श्राप मिला था एवं गौरी के द्वारा मत्स्येन्द्र को स्त्रीराज्य में कामकौतुक[141] में रत रहने का भी श्राप दिया गया था।

उपरोक्त कहानी से यह अनुमान होता है की मत्स्येन्द्र पहले सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध थे किन्तु संस्कार वश, श्राप अथवा अन्य कारणों से स्त्री राज्य में कामनियों के बीच वामाचारी के रूप में भी समय व्यतीत करने लगे थे। तब गोरक्षनाथ को अपने गुरू की स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त होने पर उन्हें बचाकर पुनः सिद्धमार्ग में पुनः लाया गया था। उपरोक्त प्रसंग गोरखबानीके अंतर्गत पद : राग-रामग्री में गोरक्षनाथ के द्वारा अपने गुरू को जीवन, योग, भोग, आदि को स्पष्ट करते हुए स्वयं को पहचानने का उपेदश किया गया है।[142]

योगी सम्प्रदायविष्कृति, नाथचरित्र की कथा के अनुसार भी मत्स्येन्द्रनाथ अपने पूर्व के सिद्धमार्ग से संयोगवश वामाचारी साधना के भी उपदेशक के रूप में प्रसिद्ध थे। वह क्षेत्र कदली प्रदेश या स्त्रीराज्य कहलाता था। विभिन्न विद्वानों ने हिमालय के नीचले स्थानों उत्तराखण्ड से लेकर आसाम तक के क्षेत्रों को स्त्रीप्रदेश या कदली क्षेत्र कहा है।

कौलज्ञाननिर्णय के आधार पर भी यही ज्ञात होता है की मत्स्येन्द्र सिद्धमार्ग के ही अनुयायी थे। जिन्होंने प्रथमतः खेचरीमुद्रा, शरीरस्थ चक्र ध्यान, देहस्थ सिद्धों की पूजा, विभिन्न सिद्धियों, कुण्डलिनी जागरण आदि का उल्लेख कर अकुलवीरतंत्र में सहजावस्था का उपदेश किया है जो शिव-शक्ति से परे, अव्यक्तावस्था है। इस ग्रंथ के अनुसार इनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था, इन्होनें स्वयं को सदाशिव, ईश, श्रीकण्ठ, रूद्र, धीवर व वीरेश्वर के रुप में व्यक्त किया है।[143] चन्द्रद्वीप कामरूप में कौलज्ञान का उद्धार मछली के गर्भ से करने के कारण

---

[141] द्विवेदी,हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय., इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडमीउत्तरप्रदेश, 1950 . पृ. 44.

[142] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004.पृ. 106-09.

[143] बागची प्रबोधचंद्र. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934.पृ.58 .

इन्हें धीवर(कैवर्त) कहा गया। इनके पूर्व भी यह परम्परा विद्यमान थी, किन्तु कालांतर में यह विद्या लुप्त हो चली थी, जिसे इनके द्वारा प्रकाश में लाया गया।

## 2.4.3 गोरक्षनाथ :-

नाथसिद्धों में महिमाशाली व्यक्तित्त्व के रूप में प्रसिद्ध हैं। जो भारत में आदिशंकराचार्य के उपरान्त सबसे प्रभावशाली योगी[144] के रूप में प्रतिष्ठित हैं। नाथ साहित्यों में गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ के घनिष्ट एवं प्रमुख शिष्य के रूप में जाने जाते है। भारतवर्ष के उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिमतक गोरक्षनाथ एवं उनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ की योग एवं चमत्कार की तरह-तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं।

इनके विभिन्न नामों में गोरक्षनाथ[145] सिद्धसिद्धांतपद्धति एवं अमरौघप्रबोध, योगिसंप्रदायाविष्कृति, योगमार्तंड़ ग्रंथों में भी प्राप्त होते हैं। हठप्रदीपिका में गोरक्ष नाथ सिद्धों की छिहत्तर नामों को प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ वर्णरत्नाकर में गोरक्षणाथ[146] राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत सस्क्य बिहार की सूची में गोरक्षपा[147]। इनके जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं हैं। इनके जन्म स्थान को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किया हैं।

संत ज्ञानेश्वर की रचना योगिसम्प्रदायाविष्कृति के अनुसार गोदावरी नदी के निकट चंद्रगिरि[148] में, नेपाल दरबार लायब्रेरी में उपलब्ध एक हस्तलिपि के आधार पर दक्षिण के किसी बड़व देश में, वही ब्रिग्स ने पंजाब, ग्रियर्सन ने पश्चिमी हिमालय कहा गया है।

---

[144] द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. क्र. 6.चौथा संस्करण.नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013. पृ. 108.

[145] शास्त्री, द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ.01

[146] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. भारतीय साहित्य के निर्माता गोरखनाथ. पंचम संस्करण. साहित्य अकादेमी, 2014. पृ. 26.

[147] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ. 144 क.

[148] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1950. पृ. 94.

गोरक्ष अनुयायिओं के द्वारा प्रस्तुत परम्परा के अनुसार सत्युग, द्वापर, त्रेता एवं कल्युग में क्रमशः पंजाब पेशावर, गोरखपुर, द्वारिका, काठियावाड़ में उत्पन्न होने का उल्लेख किया है। इनके अनुयायी आज भी भारत के सुदूर भागों में भी देखे जा सकते हैं। गोरक्षनाथ के जन्म के विषय में जहाँ मोहन सिंह ने इन्हें रावलपिण्डी वर्तमान में पाकिस्तान का क्षेत्र तो रांगेय राघव ने पेशावर के निकट उत्तरी-पश्चिमी पंजाब का अनुमान किया है। बंगाल में प्रचलित विश्वास के अनुसार बंगाल के निवासी थे। नासिक के योगियों की मान्यता है कि नेपाल से पंजाब आये थे। नेपाल में प्रचलित मान्यता के अनुसार पंजाब से नेपाल गये थे।

उपरोक्त विद्वानों के मतों से यह तो स्पष्ट जान पड़ता है की गोरक्ष का जीवन एक योगमय था एवं उन्होंने वृहदोत्तोर भारत का भ्रमण कर हठयोग और संयम पूर्ण जीवन को जागृत एवं जीवंत रखने के लिए अनवरत यात्राऐं की थी।

उसी प्रकार गोरक्षनाथ के काल पर विचार करने पर विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न जान पड़ते हैं। जिसमें आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य का काल आ जाता है। उपरोक्त विद्वानों के कालनिर्णय की समीक्षा के आधार पर गोरक्ष दसवीं शताब्दी में उपस्थित जान पड़ते हैं।[149] इस काल पर विभिन्न विद्वानों के मतों की स्वीकृति है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विभिन्न विद्वानों, मध्यकालीन एवं कालान्तर में लिखित ग्रंन्थों के अनुसार इस विषय पर विस्तार से लिखा है।[150] जिसके अनुसार कुछ लोग इन्हे गोदावरी के निकट तो कुछ ने पंजाब प्रान्त, बंगाल, दक्षिणप्रदेश, नेपाल, हिमालयवासी आदि कहा है। वही नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने इनके साधना स्थलों, भ्रमणशील साधनात्मक जीवनशैली आदि का वृत्तांत प्रस्तुत किया है। उपरोक्त कथनों से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है की गोरक्षनाथ ने भारतीय परम्परा में अनुपालनीय सिद्धांतों का अनुसरण कर योगमार्ग में दीक्षित

[149] राय, डॉ. विनय प्रकाश. नाथ साहित्य परंपरा और प्रदेय. प्रथम संस्करण. सारस्वत प्रकाशन, 2016.पृ. 50.

[150] द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. क्र. 6.चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013. पृ. 108.

होकर अपने निजीगत सांसारिक परिचय को प्रस्तुत करना अनिवार्य नहीं समझा होगा। इनके विभिन्न रचनाओं की जानकारी विभिन्न विद्वानों ने प्रस्तुत की है।

इनमें से लोक भाषा में प्रसिद्ध गोरखबानी (सबदी) में गोरक्ष ने हठसाधकों, अवधूतों, साधुओं, गृहस्थों को संबोधित करते हुए अपने आत्मस्वरूप को न भूलने, स्त्रीप्रसंग से दूर रहने, अनुशासनपूर्ण सात्विक जीवन के साथ साधना में लगे रहने, आहार के स्वाद को छोड़कर जीवन यापन के लिए आवश्यकतानुसार भोजन ग्रहण करने एवं निद्रा आदि के प्रति दृढ़ रहने,[151]आश्रम न बनाने भ्रमणशील रहते हुए विवेक एवं वैराग्यपूर्ण जीवन के साथ आत्मिक उन्नती करने के निर्देश दिए हैं।

नाथ साहित्यों पर कार्य करने वाले विभिन्न प्रमुख विद्वानों में पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डब्लू. जी. ब्रिग्स, हजारीप्रसाद द्विवेदी कल्याणी मल्लिक आदि ने गोरखबानी, ज्ञानामृत, गोरक्षशतकम्, अमनस्क, अमरौघप्रबोध, योगमार्तंड, चतुरशीत्यासन, योगमहिमा, योगसिद्धांतपद्धति, गोरक्षसहस्त्रनाम, गोरक्षकल्प, गोरक्षपिष्टिका, सिद्धसिद्धांतपद्धति गोरक्षसिद्धांत संग्रह को गोरक्ष कृत माना है।

नाथ साहित्यों एवं विभिन्न प्रकार के प्रचलित किवदन्तियों आदि के आधार पर यह तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि गोरक्षनाथ संयमी, ब्रह्मचर्य के पक्के, हठयोविद्या के जानकार, संगठनकर्ता थे। जिन्होंने अपने जीवन में उपरोक्त सिद्धांतों को व्यवहार में लाया था, तभी अपने गुरू तक के मार्ग दर्शन करने में भी सक्षम बने थे । हठयोग साधना में इनकी अमूल्य योगदान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता है की गोरक्षनाथ ने योगमार्ग को व्यवस्थित कर प्रचारित एवं प्रसारित किया था, जिसमें शैव सम्प्रदाय[152] के साधनात्मक सिद्धान्त शामिल थे। मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना विशेषकर तंत्र एवं योग मार्ग के अवरोधों वामाचार, हिंसा, व्यभिचार आदि को दूर कर अपनी साधना, सिद्धि एवं संगठन शक्ति के बल पर गोरक्ष ने संयमित, संतुलित,

---

[151] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004.पृ.64.

[152] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, 1950. पृ. 97.

समाज के अनुकूल हठयोग साधना को जन-मानस में पुनः स्थापित कर दिया था। नाथ सम्प्रदाय में गोरक्ष हठयोग के विशेषज्ञ एवं महासिद्ध[153] माने गये हैं।

## 2.4.5 जालंधरनाथ :-

सिद्ध जालंधर, महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के समकालीन माने जाते है। कौलज्ञाननिर्णय में तीन प्रमुख साधना केन्द्रों (शक्ति पीठ)में श्रीशैल महेन्द्र और कामाख्या[154] का नाम आता है। सहजयानी ग्रंथ हेवज्रतंत्र में कामाख्या, पूर्णागिरी और उड्डियान के साथ जालंधर पीठ[155] का भी उल्लेख है। इससे स्पष्टतः कहा जाता है की जालंधर मत्स्येन्द्रनाथ के पश्चात हुए होंगे।

नाथ सिद्धों की सूची प्रस्तुत करने वाले वर्णरत्नाकर में जालंधर, सहजयानी सिद्धों की सूची में जालंधरपा एवं जालंधारक[156], नवनाथों के नामों का उल्लेख करने वाले तीस ग्रंथों की सूची जिसमें गोरख उपनिषद्, गोरक्षसिद्धांत संग्रह सुधाकरचंद्रिका, योगिसम्प्रदायाविष्कृति, हठप्रदीपिका, नवनाथकथामृत आदि शामिल हैं। जिनमें इन्हें मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ के बाद तीसरे स्थान पर अवस्थित हैं।[157] इन्हें हाडिपा, बालपाद, हलखोर, हाड़ी अथवा हालीकपाव भी कहा गयाहै। योगिसम्प्रदायविष्कृति में इन्हे ज्वालेन्द्र कहकर संबोधित किया है। तिब्बती परम्परा में कृष्णाचार्य के गुरू माने जाते हैं। गोरक्षशतकम्, हठप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता, शिवसंहिता, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, गोरखबानी आदि हठयौगिक ग्रंथों में मुद्रा प्रकरण के अंतर्गत जालंधर बंध का अभ्यास निर्दिष्टि है। सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपदेश में सोलह आधारों के प्रकरण के अंतर्गत

---

[153] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 03.

[154] बागची, प्रबोधचंद्र. (संपादित). कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ. 57.

[155] न्यौपाने, काशीनाथ. (अनुवादक). हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : इंडियन माइंड, 2012. पृ.57 .

[156] शास्त्री, द्वारिकादास. सिद्धसिद्धांत पद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2004. पृ. 37-38.

[157] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य मे. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 11.

अष्टाधार निर्वाण चक्र में जालंधरपीठ की उपस्थित से इनके प्रसिद्ध नाथ महासिद्ध होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

योगिसम्प्रदायाविष्कृति के अनुसार जालंधर ने शिवत्व की प्राप्ति के लिए मत्स्येन्द्रनाथ से दीक्षित हुए थे।[158] 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' नामक रचना में जालंध्री पाव की सबदी में ओंकार[159], आसन, अजपाजप आदि की चर्चा प्राप्त होती है। जो नाथ योगियों की रचनाओं में बहुलता में उपलब्ध है।

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में महासिद्धों की सूची में श्लोक क्रमांक चार में जालंधर को जालंधरनाथ[160] कह कर सम्बोधित किया गया है। प्रेमदास ने सिद्ध वंदना में इनका नाम लेते हुए ब्रह्मबुद्धि के संचारक योगी कहा है।[161]

इनका जन्म स्थान निश्चित नहीं है। कुछ इन्हें नगरभोग का ब्राह्मण तो कुछ हलखोर जाति का जालंधरपीठ अथवा हस्तिनापुर का रहने वाला मानते हैं। योगी सम्प्रदायविष्कृति में पुरूवंशीय होने के कारण क्षत्रिय वंश का कहा गया है। ज्यादातर विद्वानों की मान्यता है कि इनकी पंजाब प्रांत में साधना पूर्ण हुई थी। तब जालंधर सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हुए होंगे। प्रबोधचंद्र बागची के तर्कपूर्ण अनुसंधान से यह स्पष्ट हो गया है कि जालंधर पीठ और उड्डियान दोनों स्वातघाटी के आस-पास माने जाते हैं।

जालंधरपीठ नाम से प्रसिद्ध शक्ति पीठ में बज्रेशवरी की साधना होती रही है। साथ ही तारा, त्रिपुरा, काली आदि शक्तियों की पूजा प्रचलित थी उपरोक्त शक्तियाँ उक्त स्थान की अधिष्ठात्री कही गयी हैं। जहाँ चक्र साधना एवं त्रिपुरा पूजा का भी प्रचलन था। इस प्रकार यह स्थान शक्ति उपासना का मुख्य केन्द्र के

---

158 पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981.पृ.120.

159 द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (संपादित). नाथ सिद्धों की बानियाँ. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, सं. 2014. पृ. 31-32.

160 महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. (संपादित). हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला: कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004.पृ. 9-10.

161 द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (संपादित). नाथ सिद्धों की बानियाँ. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, सं. 2014. पृ.1.

रूप में प्रसिद्ध रहा है। नाथ सम्प्रदाय के अनुसार उड्डियान क्षेत्र में एक ज्वालेन्द्र नामक राजा राज्य करता था जो बाद में एक सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हुआ था।

जालंधरनाथ ने नाथ तेज की वन्दना अपने सिद्धांतवाक्य में नाथों के तेज रूप शंकर की वंदना करते भुवनों के अंधकार को दूर करने वाले, समस्त सत्कर्मों में व्याप्त, प्राण के संचालक विभू के समान, मुद्रा, नाद, त्रिशुल धारण करने वाले एवं अपने अंगों में भस्म रमाने वाले, द्वैताद्वैत से परे आराध्य को नमस्कार किया है।[162]

## 2.4.6 काणेरीनाथ :-

नाथ सिद्ध काणेरीनाथ महासिद्ध, महाचार्य, पाण्डित्य प्रवीण होने के कारण पण्डिताचार्य, सिद्धयोगी आदि उपाधियों से सम्बोधित किये गये हैं। इनके कानफा, कानिफा, कणेरीपाव , कान्डुपा, कण्डपा आदि नाम भी प्रसिद्ध हैं। हठयौगिक ग्रन्थ हठप्रदीपिका में करणी, कणेरी, कावारी, कानेरी[163] महासिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हैं, जो कालदण्ड को पारकर जीवनमुक्त हो चुके है।

वर्णरत्नाकर, योगिसम्प्रदायविष्कृति, ज्ञानेश्वरचरित्र के नाथ सिद्धों की सूची में कान्ह करणिपा[164], गोरक्षसिद्धांतसंग्रह में काणेरी एवं मयनामतीरगान में कान्हपा, जालंधर शिष्य कहे गये है। कबीर दास कृत माने जाने वाली कबीर ग्रंथावली के पद संख्या दो सौ निन्यानवें में कनड़ापा कहकर पुकारते हुए भर्तृहरि के पूर्व समस्त सांसारिक सुख-सुविधाओं को त्याग करने वाले सिद्धियों के स्वामी एवं योगी माने गये है। भर्तृहरि ने इन्हीं की प्रेरणा से गोरक्षनाथ से दीक्षित होकर योग मार्ग में प्रवेश पाया।

योगीसम्प्रदायाविष्कृति में इन्हे प्रबुद्धनारायण कहकर नवनाथों में गिना गया है, जो नाथ योग के रहस्य को जानने वाले है। संतज्ञानेश्वर ने इन्हें करणिपा और काणेरीनाथ कहकर पुकारा है। परशुराम चतुर्वेदी के द्वारा प्रस्तुत नवनाथों

---

[162] श्रीवास्तव, रामलाल. (संपादित). नाथसिद्धचरितामृत. गोरखपुर : गोरखनाथ मंदिर, वि. स. 2040. पृ. 175.

[163] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 03-04.

[164] शास्त्री, द्वारिकादास. सिद्धसिद्धांतपद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2004. पृ. 37.

की सूची प्रस्तुत करने वाले तीस ग्रंथों में इनका नाम का उल्लेखित है। मयनामतीर गान जैसे ऐतिहासिक तथ्य में इनके गुरू जालंधर गोपीचंद की माता मयनामती के गुरू बताते हुए नाथपंथी योगी कहा गया है। इन्होंने कर्ण कुण्डलधारी शबर को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण करते हुए अपने को कापालिक कहते हुए  नाथ योगियों के समान ही कर्णकुण्डल धारण किया था। इसकी पुष्टि 'बौद्धगान ओ दोहा', 'चर्यापद' आदि से होती है।

बौद्धकापालिक साधना और साहित्य नामक रचना के चर्यापद संख्या दो में अपने को इन्होंने कान्ह, कपाली (कापालिक) योगी[165] कहा है। शाक्त परम्परा के अनुसार कापालिक साधना वामाचार में शामिल है जो नाथों के कौलयोगिनी मार्ग के पूर्व साधना मार्ग के रूप में स्वीकृत है। साथ ही इन्होनें प्राण-अपान के संयुक्त करने, कामवासना कामचण्डालिनी को नष्ट कर देने के उपरांत अन्तस्थ में हो रहे नाद की विभिन्न अनुभूतियों को सांसारिक वैवाहिक कार्यक्रमों में बजने वाले विभिन्न वादयंत्रों की उपमा देकर नाथ सिद्धों की ही भांति साधना का उल्लेख किया है।

उपरोक्त अनुभवों को नाथ योगियों के नादानुसंधान में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। गोरक्षविजय और मीनचेतन की कथा एवं विभिन्न प्रसंगों के अनुसार कानेरीनाथ, गोरक्षनाथ के समकालीन माने जाते हैं। जो दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में उपस्थित थे। नाथसम्प्रदाय के बारह उपशाखाओं में कान्हपा का उपसम्प्रदाय वामराग सम्मिलित है। इनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ और इन्होंने सोमपुरी बिहार में कई वर्षों तक तप किया था। जो पश्चिम बंगाल के अंतर्गत किसी जनपद में मानी जाती है।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने अपने 'श्रीनाथतीर्थावली' के तीन, सात एवं आठ के पदों में महासिद्ध कार्णपाद, कणेरीपाद कहकर संबोधित करते इन्हे जीवनमुक्त कहा है। 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में काणेरी पाव जी के पद में मन की चंचलता को व्यक्त करते हुए आने वाले विभिन्न इन्द्रियाकर्षण, अल्पवैराग्य,

[165] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ.208.

कामना, इच्छा आदि को दीपक के प्रकाश में आसक्त पतंगा और पुष्प के रस में आसक्त भौंरे का उदाहरण देते हुए इससे पार जाने की बात कहते हुए मन की विभिन्न लहरों से पार कराने वाले आदिनाथ का नाति और मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र कहकर स्वयं को संबोधित किया है।[166]

## 2.4.7 चौरंगीनाथ :-

वर्णरत्नाकर की सूची में तीसरा एवं हठप्रदीका के अनुसार हठसिद्धों में इनका स्थान पाँचवां है। चौरंगी का अर्थ जिनके पैर एवं हाथ न हो। ज्ञानेश्वरचरित्र एवं सहजयानी सिद्धों में भी इनकी प्रसिद्धि है।[167] 'नाथसिद्धों की बानियाँ' में चौरंगीनाथ की रचना प्राणसांकली के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ से हठयोग की दीक्षा पायी थी। इनकी रचना में मत्स्येन्द्रनाथ के नामों की बहुलता है। इन्होंने गोरखनाथ को भाई कहकर सम्बोधित किया है।[168] इससे अनुमान होता है की ये गोरखनाथ के समकालीन एवं गुरूभाई रहे होंगे।

नाथ सम्प्रदाय में शामिल बारह पन्थों में पागलपन्थ के मूलप्रवर्तक माने जाते हैं। इनकी सबदी में भी नाथ सिद्धों के परमलक्ष्य सहज की प्राप्ति के लिए प्राण का नियमन कर उन्मनी की प्राप्ति कर अलख को जानने एवं सहज में स्थित हो आवागमन के बंधनों से मुक्ति का उल्लेख है। हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में इन्हें मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से कटे हुए हाथ और पैर के स्थान पर पुनः नये हाथों और पैरों की प्राप्ति हुई थी[169] एवं योग का उपेदश भी मिला था।

गोरक्षसिद्धांतसंग्रह में चार प्रमुख गुरूओं में मत्स्येन्द्रनाथ, ईश्वर, गोरक्षनाथ के साथ इनका नाम लिया गया है। पंजाब क्षेत्र में इन्हें पूरनभगत से अभिन्न माना गया है। नाथसिद्धों की बानियाँ के अंतर्गत चौरंगीनाथ कृत प्राणसंकली के

---

[166] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (संपादित). नाथ सिद्धों की बानियाँ. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, संवत, 2014. पृ. 05.

[167] द्विवेदी, मुकुंद. (संपादित). हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. भाग6. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.पृ. 48.

[168] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सिद्धों की बानियाँ. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा. 2014. पृ. 19.

[169] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. (संपादित). हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, लोनावला : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ. 12.

अनुसार इनका जन्म सियालकोट, सालवाहन (शालिवाहन) वंश में हुआ था। उनकी विमाता के द्वारा लांछन लगाकर हाथ-पैर कटवा देने पर शोकसंताप मय जीवन के बीच गुरू मत्स्येन्द्रनाथ से भेंट हुई तब उन्हीं से प्राप्त ज्ञान से योगी होकर निरंजन को जान पाये और सिद्ध योगी के रूप में प्रसिद्ध हुए।

ऐतिहासिक दृष्टि से चौरंगीनाथ का समय दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी माना गया है। इनके पिता राजा शालिवाहन का समय भी उपरोक्त काल ही ठहरता है। जिसका उल्लेख गोरखनाथ मंदिर से प्रकाशित नाथसिद्धचरितामृत के पृष्ठ क्रमांक एक सौ चौंतीस से प्राप्त होता है।

## 2.4.8 चर्पटीनाथ :-

नाथसिद्धों की सूची प्रदान करने वाली वर्णरत्नाकर व हठप्रदीपिका में चर्पटी[170], गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में चर्पट, योगिसम्प्रदायाविष्कृति में इन्हे पिप्पलायननारायण का अवतार माना गया है। 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में इनकी सबदियाँ एवं श्लोक संग्रहीत हैं। माध्वाचार्य कृत सर्वदर्शन संग्रह में रसेश्वरदर्शन के अंतर्गत रसायनों के सेवन कर सिद्धि प्राप्त विशेष जनों में इनका उल्लेख है, जहाँ इन्हें चर्वटी[171] कहा गया है। चरपटनाथ की सबदी एवं श्लोक में नाथ और अवधूत शब्द का सम्बोधन, बाह्याडम्बर का विरोध, स्त्रीसंग का त्याग, प्राणायाम से मन का नियमन एवं प्राण के ऊर्ध्वगमन से चक्रों के जागरण आदि का उल्लेख मिलता है। जहाँ इन्होंने गोरक्षनाथ के उपदेशों का उल्लेख करते हुए, नाथ सिद्ध नागार्जुन को सम्बोधित कर अपने अनुभवों को व्यक्त किया है।[172]

दिवाकर पाण्डेय ने जोधपुर दुर्ग के पुस्तक प्रकाश में इनके चार दर्जन से भी ज्यादा सबदियों के विषय में जानकारी दी है, साथ ही इन्हें गोरक्ष पुत्र[173] कहा

---

[170] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : स्वामी कैवल्यधाम, कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.13.

[171] शर्मा, उमाशंकर. (संपादक एवं टीकाकार). माधवाचार्य कृत, सर्वदर्शनसंग्रहः. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014.
पृ. 326.

[172] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथसिद्धों की बानियाँ. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, 2014. पृ. 13.

[173] पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981.

गया है। उपरोक्त विवरणों से यह ज्ञात होता है कि चर्पटी पहले रसेश्वर सम्प्रदाय के रससिद्ध रहे होंगे एवं गोरक्षनाथ के द्वारा संगठित नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित होकर परमतत्व निरंजन का अनुभव कर परामुक्ति प्राप्त कर नाथ सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हुए।

## 2.4.9 कंथडिनाथ :-

हठप्रदीपिका में कन्थडि,[174] वर्णरत्नाकर में काण्डलि,[175] परशुराम चतुर्वेदी द्वारा नव नाथों पर किये गये अनुसंधान कार्य के उपरान्त प्रस्तुत लगभग तीस सूचियों में कन्थडिनाथ[176] का नामोल्लेख मिलता है।

## 2.4.10 भर्तृहरिनाथ :-

वर्णरत्नाकर में भर्तृहरि, योगिसम्प्रदायाविष्कृति और हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में भी इन्हे भर्तृहरि[177] कहा गया है। ये उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के भाई माने जाते हैं। भर्तृहरिनिर्वेद नामक नाटक के अनुसार गोरक्ष इनके गुरू हैं।[178] उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जनपद के अंतर्गत ग्राम भितरी को इनका तपस्थली माना गया है। वही पंजाब के एक सरगोथा नामक जिले के पहाड़ी पर भर्तृहरि के समाधि का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

उज्जैन की नगरवधु पिंगला के साथ इनकी कहानी बहुप्रसिद्ध मानी जाती है जिसके उपरांत इन्होनें वैराग्य धारण किया था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें वाक्यपदीयकार भर्तृहरि से अलग स्वीकार करते हुए इनकी रचनाओं के आधार पर शैव माना है। 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में भरथरी की सबदी में नारी संग का

---

पृ.128-29.

[174] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.03

[175] शास्त्री, द्वारिकादास. सिद्धसिद्धांतपद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2004. पृ. 37.

[176] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में. द्वितीयसंस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 11.

[177] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. (संपादित). हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2004. पृ. 08-09.

[178] पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981. पृ.130.

त्याग, बिन्दु रक्षण, अनहत नाद की अनुभूति, वैराग्य को प्राथमिकता देते हुए अपने को गोरक्ष का दास[179] सम्बोधित किया है, साथ ही गोरक्षनाथ द्वारा संगठित नाथ सम्प्रदाय के बैरागपन्थ के मूल प्रवर्तक माने जाते हैं।

कवि जायसी ने इन्हें ज्ञान योगी कहकर संबोधित करते हुए इनका काल ग्यारहवीं शताब्दी स्वीकार किया है।[180] हरिद्वार स्थित गोरक्षनाथ मंदिर में इन्होंने साधना पूर्ण की थी, ऐसी मान्यता है। उक्त स्थान पर इनकी गुफा आज भी अवलोकनीय है।

## 2.4.11 गोपीचंद्रनाथ :-

योगिसम्प्रदायाविष्कृति और गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में इनका नाम गोपीचन्द्रनाथ[181] हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में गोपीचन्द[182] नाथ सम्प्रदाय के बारह पंथों में से माननाथी पंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं। भर्तृहरि की बहन मैनामति के पुत्र एवं बंगाल में पाल वंश के राजा के रूप में प्रतिष्ठित रहे है। बंगाल एवं राजस्थान के लोक गीतों में गोपीचंद के द्वारा राज्य का त्यागकर, योगी होने की कहानियाँ बहु प्रसिद्ध हैं, जो आज भी बंगाल के लोकगीतों में जीवंत हैं।

'नाथ सिद्धों की बानियाँ' नामक रचना में इनकी सबदी में माता मैनामती से प्रेरित होकर योगमार्ग अपनाने, अपने राज्य, धन-धान्य को त्यागने, विलासिता से वैराग्य, मृत्यु के सत्य को स्वीकारने आदि का वर्णन करते हुए गोरक्ष को गुरू एवं चरपट को गुरू भाई स्वीकार किया है। जालंध्रीपाव अर्थात् जालंधरनाथ का भी नाम उनके रचनाओं में गुरू के रूप में प्राप्त होता है। डॉ. जोशी ने अपने शोध प्रबंध में उन्नीस सबदीयों को प्रकाशित किया है। जिसमें गोरक्ष गुरू और मैनामती माता के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

---

[179] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (संपादित). नाथ सिद्धों की बानियाँ. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, संवत्, 2014. पृ. 56.

[180] राय, विनय प्रकाश. नाथ साहित्य : परंपरा और प्रदेय. प्रथम संस्करण. मुजफ्फरपुर : सारस्वत प्रकाशन, 2016. पृ. 55.

[181] द्विवेदी, मुकुंद. (संपादित). हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. क्र. 6. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.पृ. 49.

[182] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. (संपादित). हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला: कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. 08-09.

नाथसिद्धचरितामृत के अनुसार गोरक्ष के साथ इनकी भेंट गिरनार की पहाड़ियों में हुई थी। इन्हें पीरपटाव भी कहा गया है। गोरखबानी में सबदी के पन्द्रहवें दोहे में गोरक्षनाथ ने व्यक्त किया है की भर्तृहरि और गोपीचंद[183] दोनों ने गुरू मुख से उस शब्द को स्वीकारकर आचरण में लाये, तब उनके मन के द्वंद्व दूर हो गये और वे परमानंद को प्राप्त हुए थे।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार दक्षिण के राजेन्द्रचोल और गोपीचंद के बीच इनके संन्यास के पूर्व युद्ध हुआ था, जिसकी चर्चा तिरूमलय की शिलालेख से प्राप्त होती है। इसके अनुसार इनका काल ग्यारहवीं शताब्दी[184] स्वीकार की गयी है। इस प्रकार गोपीचंद, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ एवं चरपटनाथ आदि के समकालीन जान पड़ते हैं।

## 2.4.12 गहिनीनाथ :-

महाराष्ट्र में इन्होंने भक्ति एवं हठयोग का समन्वय कर अपनी साधना को विस्तार दिया था। इन्हें गैनीनाथ भी कहा गया है। हठयौगिक परम्परा मे इनके नाम का पता श्रीज्ञानेश्वरचरित से प्राप्त होता है। गहिनीनाथ[185] के पूर्व आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ एवं इनके शिष्यों में निवृत्तिनाथ, ज्ञाननाथ (संत ज्ञानेश्वर) का उल्लेख है।

योगिसम्प्रदायाविष्कृति में गहिनीनाथ के साथ इनका एक नाम ग्रहणनाथ भी प्राप्त होता है। नासिक के निकट त्र्यंबकेश्वर के सह्याद्रि पर्वत के किसी स्थान पर इन्होंने निवृत्ति नाथ को दीक्षित किया था। महाराष्ट्र के बारकरी एवं विट्ठलभक्त कवियों की साधनाओं में हठयोग का गहरा सम्बन्ध है। जो कृष्णभक्ति के साथ मिश्रित है।जिसे सिद्ध गहिनीनाथ की देन मानी जाती है।

---

[183] बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004.पृ. 26.

[184] पाण्डेय, दिवाकर. गोरखनाथ एवम् उनके परम्परा का साहित्य. गोरखपुर : शोध संस्थान गोरखपुर मन्दिर, 1981. पृ. 132-134.

[185] शास्त्री, द्वारिकादास. सिद्धसिद्धांतपद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी. चौखम्बा विद्या भवन, 2004. पृ. 40.

उपरोक्त बहु प्रसिद्ध नाथ सिद्धों के अलावा अन्य नाथ सिद्धों में शाबर, विरूपाक्ष, बिलेशय, भैरवयोगी, मन्थान, सिद्धिपाद, कोरण्टक, सुरानंद, पूज्यपाद, निरंजन, कपाली, नित्यनाथ, घोड़ाचोली, बिन्दुनाथ, तारानाथ आदि के नाम प्राप्त होते हैं, किन्तु इन सिद्धों की जानकारी प्रस्तुत करने वाले साहित्यों की अल्पता एवं विस्तार भय के कारण इनका विस्तार से उल्लेख किया जाना सम्भव नहीं है।

## 2.5 नाथ योगियों की साधनाएँ :-

नाथ साहित्यों में हठयोग की साधनाएँ अधिकाशतः योगांगों के रूप में वर्णित हैं। जो निम्नवत है -

### 2.5.1 आसन :-

हठ साधना में आसन का महत्वपूर्ण स्थान है। शिव के द्वारा चौरासी लाख आसनों का उपदेश किया गया है। ये सभी चौरासी लाख योनियों से आये हुए हैं जो उन जीवों की स्थिर स्थित हैं।

कुलानंदतन्त्रम् के अनुसार स्थिर आसन  में स्थित होकर योगी को सभी प्रकार के भावों से रहित होकर चित्त को खमध्य में लगाये।

सिद्धसिद्धांत पद्धति के द्वितीय अध्याय में अष्टांग योग के अंतर्गत इसका स्थान तृतीय है। जहाँ ध्यानात्मक आसनों में स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासन तीनों में से किसी एक का चयन कर परमतत्त्व में स्थिर स्थितिको ही आसन[186] कहा गया है।

गोरक्षशतकम् में पद्मासन तथा सिद्धासन विशिष्ट हैं।[187] गोरक्षपद्धति में भी गोरक्षशतकम् की भांति सिद्धासन व पद्मासन को श्रेष्ठता व्यक्त कर मत्स्येन्द्र उपदिष्ट पद्मासन[188] का उल्लेख है। जिसमें दोनों पैरों के जंघा के ऊपर एक दूसरे

---

[186] शास्त्री, द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 41-42.

[187] दर्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. (संपादित). गोरक्षशतकम्. प्रथमआवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013. पृ.44.

[188] श्रीकृष्णदास, गंगाविष्णु. गोरक्षपद्धति. मुंबई : लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापाखाना कल्याण, 1867. पृ. 12-13.

पैर के तलवों को अच्छी तरह से स्थापित कर दोनों हथेलियों को गोद में बायीं नीचे तथा दाहिनी ऊपर रखकर जिह्वा बंध लगाकर, अपान वायु को मूलाधार से ऊपर की ओर शनैः-शनैः उठाये। वसिष्ठ संहिता में वसिष्ठ के द्वारा पुत्र शक्ति को प्रथम अध्याय में स्वस्तिकासन, भद्रासन, मुक्तासन, गोमुखासन, पद्मासन, सिंहासन आदि दस आसनों[189] का उपदेश किया गया है।

हठप्रदीपिका में आसन हठयोग का प्रथम अंग है, जो जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला, आरोग्यता एवं हल्कापन के साथ-साथ चंद्रमण्डल (सहस्रार) से अमृत के स्त्राव को नियंत्रित कर शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता देने वाला, कुण्डलिनी के जागरण में सहायक माना गया है। इस ग्रन्थ में मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, शवासन, सिद्धासन, पदमासन, सिंहासन आदि पन्द्रह आसनों का विधि एवं लाभ के साथ उल्लेख है। इनमें सिद्धासन, पदमासन, सिंहासन, एवं भद्रासन श्रेष्ठ हैं। इनमें भी सिद्धासन विशिष्ट है।[190] वज्रासन, मुक्तासन एवं गुप्तासन सिद्धासन का ही नामान्तर है।[191] जिसके अभ्यास से शरीर की बहत्तर हजार नाड़ियों का मल शोधन हो जाता है।

घेरण्ड संहिता के द्वितीय उपदेश में आसनों का उल्लेख करते हुए बत्तीस[192] को महत्वपूर्ण माना गया है जो मृत्युलोक में सिद्धि प्रदायक हैं। इनमें सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चि मोत्तानासन, मयूरासन आदि का क्रियाविधि के साथ विस्तार से वर्णन है। उपरोक्तासन सर्वरोगों को हरकर शारीरिक एवं मानसिक दृढ़ता प्रदान करते हैं। इनमें भी सिद्धासन मोक्ष प्रदायक है।

---

[189] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग.(संपादित). वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009. पृ. 59-62.

[190] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 17.

[191] वही, पृ.19.

[192] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे,एम.एल. (संपादित). घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018.पृ.43.

शिवसंहिता के तृतीय पटल में शिव कथित चौरासी आसनों में सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन (पश्चिमोत्तान) तथा स्वस्तिकासन को प्रमुख माना गया हैं।[193] इनमें से उग्रासन शारीरिक कष्टों का नाशकर, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला एवं सुषुम्ना में प्राण के प्रवेश के लिए उत्तम है। इनमें भी सिद्धासन गुह्य एवं मोक्ष प्रदायक होने के कारण उत्कृष्ट है।

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में हठप्रदीपिका की भांति पन्द्रह आसानों का उल्लेख करते हुए इन्हें तमस एवं रजस गुणों को संतुलित करने वाला, इन्द्रियों की चंचलता का नियंत्रक, जठराग्नि प्रदीप्त करने वाला, चित्त विक्षेप का नियंत्रण कर, शरीर को हल्कापन एवं स्थिरता प्रदान करने वाला कहा गया है। यहाँसिद्ध, पद्म, सिंह और भद्रासन श्रेष्ठ हैं,[194] इनमें भी सिद्धासन विशिष्ट है। जिसके अभ्यास से त्रिबंध (मूल, जालंधर उड्डियान) की सिद्धि प्राप्त होती है।

चरणदासकृत अष्टांगयोग में आसन हठयोग का अनिवार्य अंग हैं जिससे सभी प्रकार के रोगों का निवारण होता है, किन्तु सिद्धासन और पद्मासन के अभ्यास से ध्यान एवं समाधि की सिद्धि होती है। अतः सभी में उपरोक्त दोनों श्रेष्ठ हैं।[195]

कतिपय हठयौगिक ग्रन्थों में उपरोक्त वर्णित आसनों में से सिद्धासन, पद्मासन एव स्वस्तिकासन का उल्लेख लगभग सभी में प्राप्त होते हैं। इनमें भी सिद्धासन विशिष्ट माना गया है, क्योंकि यह शरीरस्थ समस्त नाड़ियों के मल का शोधन करने वाला, कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने वाला, मोक्ष प्रदायक है।

---

[193] महेशानंद. शर्माबाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. (संपादित). शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ.130.

[194] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. (संपादित). हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ. 43-44.

[195] तिवारी, ओमप्रकाश. (भाषानुवाद). अष्टांग योग. द्वितीय आवृत्ति. कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2010. पृ.21.

## 2.5.2 षट्कर्म :-

षट्कर्म से तात्पर्य छः प्रकार के ऐसे हठयौगिक शुद्धि क्रियाएँ हैं, जो नाड़ियों के दोषों को दूर कर इनके मूल कारण कफ, पित्त, वात (त्रिदोष) को संतुलित करते हैं। कफ, हृदय के ऊपर सिर पर्यन्त, पित्त, हृदय से नाभि तक एवं वात का स्थान नाभि से पादतल पर्यन्त माना जाता है।

इन दोषों के संतुलन से शरीर स्वस्थ्य बना रहता है, किन्तु इनके असंतुलन से विभिन्न प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। जिसके कारण नाड़ियों में अवरोध उत्पन्न होने लगता है। जो प्राण के प्रवाह में बाधा उत्पन्न करते हैं, जिसके कारण प्राणायाम सिद्ध नहीं होता। मन विषयों से निवृत्त नहीं हो पाता, तब योग में सफलता प्राप्त नहीं होती। अतः हठयौगियों ने मोटापा एवं कफ आदि दोषों के निवारण के लिए षट्कर्मों का विधान किया गया है। प्राणायाम के पूर्व इन अभ्यासों से शीघ्र सफलता प्राप्त होती है।

इन शोधन क्रियाओं का सर्वप्रथम उल्लेख हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में प्राप्त होता है। जहाँ देह की स्थूलता एवं त्रिदोषों के संतुलन के लिए आवश्यक माना गया है। ग्रंथकार के अनुसार इनका अभ्यास आसनों के उपरांत प्राणायाम के पूर्व किया जाना चाहिये। इनमें धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति[196] शामिल हैं। इनका अभ्यास जानकर गुरू के मार्गदर्शन में ही किया जाना चाहिए। उपरोक्त क्रियाओं में से धौति व गजकरणी, कफ दोषों का निवारण करती हैं। इससे बीस प्रकार के कफरोग जैसे दमा, खांसी आदि के साथ कुष्ठ आदि दोष दूर हो जाते हैं। बस्ति क्रिया सेजलोदर, वायु गोला और त्रिदोष संतुलित होता है।

**नेति,** कपाल प्रदेश को निर्मल बनाती है एवं दिव्यदृष्टि प्रदायिका है। त्राटक का अभ्यासनिद्रा, तन्द्रा तथा नेत्र दोषों को दूर करता है। नौलि, जठराग्नि प्रदीप्त कर पाचन क्रियाको संतुलित कर, पेट की स्थूलता को कम करती है एवं त्रिदोषों

[196] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 45.

को संतुलित करती है। कपालभाति, यह कफरोगों को दूर करने के लिए प्रसिद्ध है। उपरोक्त हठक्रियाओं में नौलि[197] का अभ्यास श्रेष्ठ माना गया है।

घेरण्डसंहिता के प्रथम उपदेश में षट्कर्मों[198] के विभिन्न प्रकारों का विस्तृत उल्लेख मिलता है, जो सम्मिलित रूप से इक्कीस प्रकार के हैं। धौति के मुख्य चार प्रकारों में अंतर्धौति, दंतधौति, हृदधौति एवं मूलशोधन। अंतर्धौति में वायु से, जल से, अग्निसार एवं बड़ी आँत का प्रक्षालन किया जाता है। दंतधौति में, दंत, जिह्वा, कर्ण एवं कपाल प्रदेश का शोधन करने की क्रिया विधि का उल्लेख है। हृदधौति में, वस्त्र, दण्ड एवं वमन के माध्यम से कफ दोषों के शमन करने का विधान है।

मूल शोधन में मध्यमा अंगुली से गुदाद्वार का शोधन किया जाता है। बस्ति क्रिया में गुदाद्वार से जल अंदर खिंचकर जल से एवं भूमि में वायु को अंदर खींचकर वायु से शोधन किया जाता है। नेति से नासिका मार्ग की सफाई होती है। जिससे खेचरी की सिद्धि और सूक्ष्म दृष्टि की प्राप्ति होती है। नौलि के अभ्यास से देहानल में वृद्धि होती है। त्राटक से नेत्र दोष एवं कपालभाति से कफदोषों का निवारण होता है। अतः उपरोक्त हठक्रियाएँ, जठराग्नि को प्रदीप्त करती हैं। त्रिदोषों से उत्पन्न दोषों का निवारण कर योग में सफलता प्रदान करने में सहायक हैं।

## 2.5.3 पथ्यापथ्य :-

हठयौगिक ग्रन्थों में योगियों के लिए साधना में सफलता हेतु यौगिक आहारों की चर्चा प्राप्त होती है। विभिन्न प्रकार के आहारों का उल्लेख करते हुए उपयुक्त और निषिद्ध आहारों का उपदेश है। सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपदेश, पिण्डविचार में अष्टांग योग के अंतर्गत यम शामिल है, जिसमें आहार का सेवन संतुलित मात्रा[199] में  करने के निर्देश है।

---

[197] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.  पृ.51.

[198] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम.एल. (संपादित). घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. पृ. 8.

[199] शास्त्री, द्वारिका दास. (संपादक एवं अनुवादक). सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी. चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 32.

गोरक्षशतकम् में योगियों के लिए कड़वे, खट्टे, नमकीन, सब्जियों, फलों आदि आहारों का सेवन वर्जित बताते हुए दुग्ध पदार्थों से बने आहारों को उपयुक्त माना गया है।[200]

हठप्रदीपिका में मिताहार, नियमों में श्रेष्ठ है। इसके अंतर्गत योग साधक को अपने भूख से आधा पेट भोजन करना चाहिये एवं एक चौथाई जल के लिए और एक चौथाई वायु के आवागमन के लिए खाली रखना चाहिये। इसे ही मिताहार कहा गया है, जिसे शिव को अर्पणकर सेवन करना चाहिए। पथ्याहार के अंतर्गत चावल, गेहूँ, परवल, जौ, दूध, खाँड, मिश्री, सोठ, पंच शाक, मूंग, वर्षा का जल, स्निग्ध, मधुर पौष्टिक एवं मनोनुकूल आहारों का सेवन करना चाहिए।[201]

अपथ्याहार में कडवे, खट्टे, नमकीन, उष्ण, मद्य, मत्स्य, लहसुन, हिंग पुनः गर्म किया हुआ, बासी भोजन आदि वर्जित है।[202] उपरोक्त मिताहार के सेवन से योगी के शरीर में त्रिदोष कुपित नहीं होते जिससे स्वास्थ्य अक्षुण्ण बना रहता है। जिससे योग में सफलता जल्दी प्राप्त होता है।

घेरण्ड संहिता में योग साधकों के लिए चावल, गेहूँ, जौ, परवल, मौसमी शाक, परवल के पत्ते, कटहल, करेला, मिश्री, परवल, खजूर, जामुनफल आदि स्निग्ध, सुपाच्य आदि आहारों की चर्चा करते हुए मिताहार[203] का उल्लेख है। जिससे त्रिदोष कुपित नहीं होता। योगाभ्यासियों के लिए ये आहार, योग में उन्नति प्रदान करता है एवं विभिन्न प्रकार के रोगों से बचाता है। निषिद्ध आहारों में अम्ल, कड़वे, अधिक नमकीन, तीखा, नीबू का रस, लहसुन,प्याज, गुड़, अधिक मीठी वस्तुओं, अधिक गर्म भोजन, पुनः गर्म किया हुआ, बासी आदि का नहीं खाना चाहिए। इन निषिद्ध खाद्य वस्तुओं के सेवन से तामसिकता की अधिकता एवं त्रिदोषों में असंतुलन से योगोन्नति में बाधा आती है।

---

[200] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. (संपादित). गोरक्षशतकम्. प्रथमआवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ.55.

[201] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. (संस्करणकर्ता). स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.31-32.

[202] वही,पृ.29.

[203] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम. एल. (संपादित). घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. पृ. 136-43.

योग साधकों के लिए मद्य एवं मांस का सेवन अनुपयुक्त है। इनके सेवन से प्राण क्षीणता, हिंसावृत्ति आदि उद्भव होने लगता है।[204] जिससे संवेदना, प्रेम आदि मानवीय गुणों की हानि होने, पशु वृत्ति का विकास होने से योग में बाधा उत्पन्न होती है। अधिक मीठा का सेवन रोग उत्पन्न करता है। खट्टे आहार लेने से धातु क्षीण[205] होती है वही अधिक नमकीन का सेवन शुक्र को नष्ट करता है।

अतः योगियों को स्वाद की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। स्वाद के प्रति आसक्ति होने से भक्ष्याभक्ष्य में अंतर समाप्त होने लगता है, जिससे साधक की इन्द्रियाँ विषयासक्त होनेसे प्राण व्यथित होने लगता है। तब चित्त की चंचलता में वृद्धि होकर योग बाधित होता है। अतः नाथ योगियों के समान निर्मल एवं सिद्ध देह की प्राप्ति के लिए हठयोगियों को पथ्य एवम् मिताहार[206] का सेवन करना चाहिये ।

## 2.5.4 देहस्थ नाडियाँ :-

नाड़ी शब्द नद धातु से आया हुआ है। जिसका अर्थ बहना अथवा प्रवाहित होना है। नाड़ियाँ प्राण शक्ति की सरणियाँ हैं। जिसमें प्राण का प्रवाह निरंतर बना रहता है। ये स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है। सिद्धसिद्धांतपद्धति के प्रथम उपदेश में दस प्रमुख नाड़ियों में नाड़ीत्रय, सुषुम्ना, इडा, पिंगला प्रमुख हैं।

कुलानंदतन्त्रम् के अनुसार देह में कुण्डलाकार में समस्त क्लेशादि विकारों को दूर करने वाली महावहा नाड़ी[207] स्थित है।

गोरक्षशतकम् के अनुसार नाभि के नीचे और लिंग प्रदेश के ऊपर नाड़ियों का उद्गम स्थान है। इसी नाड़ी कंद के ऊपर कुण्डलिनी अवस्थित है जो अधोमुखी होकर सुषुम्ना के मुखद्वार को बंद कर पड़ी हुई है। मूलस्थान में ही सुषुम्ना को

---

[204] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. (सम्पादक और टीकाकार). गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,2004.पृ.76.

[205] वही, पृ. 69.

[206] वही, पृ. 28.

[207] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित, कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ. 110-111.

आधार लेकर बहत्तर हजार नाडियाँ निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई हैं।[208] इनमें से दस प्रधान हैं। जिनमें गान्धारी, हस्तिजिह्वा क्रमशः बायीं और दाहिनी आँख तक जाती है। पूषा बायें कान और यशस्विनी दाहिने कान तथा अलम्बूषा मुख में पायी जाती है। कुहू, शंखिनी क्रमशः लिंग प्रदेश व मूल स्थान में कही गयी है।

इड़ा और पिंगला क्रमशः शरीर के बायीं और दाहिनी ओर स्थित है। तथा दोनों के मध्य सुषुम्ना अवस्थित है। इन तीनों के देवता क्रमशः चंद्र, सूर्य और अग्नि है।

वसिष्ठ संहिता के अनुसार शरीर के पृष्ठभाग के मध्य में स्थित मेरूदण्ड से बहत्तर हजार नाड़ियाँ सम्पूर्ण देह में फैली हुई हैं। इनका उद्गम स्थान देहमध्य है जो गुदा एवं लिंग के मध्य में स्थित है। इस कंद के बीच में सुषुम्ना नामक प्रधान नाड़ी स्थित है। इसी के आधार से इनके दोनों ओर देहस्थ समस्त नाड़ियाँ विस्तार लेती हैं। इनमें चौदह प्रमुख हैं। उसमें से भी सुषुम्ना (सुषुम्णा), इड़ा और पिंगला विशिष्ट हैं।

इनमें भी सुषुम्ना ही मोक्ष प्रदायिनी मार्ग होने के कारण श्रेष्ठ है।[209] इस मध्य नाड़ी के बायीं ओर इड़ा एवं दाहिनी ओर पिंगला क्रमशः चंद्रमा और सूर्य तमस और रजस, रात्रि और दिन रूपी काल के प्रतीक हैं। मध्य में स्थित सुषुम्ना कालभक्षिणी है। यह उपरोक्त दोनों नाड़ियों के मध्य प्रतिष्ठित रहते हुए मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यंत जाती है। इसे ही अव्यक्त एवं वैष्णवी भी कहा गया है।

हठप्रदीपिका के अनुसार नाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार है। इनमें से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों का उल्लेख है। इनमें प्राण का प्रवाह निरंतर बना रहता है किन्तु नाड़ियों में मलों के कारण प्राण अवरूद्ध होने लगता है।

---

[208] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. (संपादित). गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ.47.

[209] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009.पृ.70.

अतः नाड़ियों के शोधन की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए बायीं नासिका से पूरक कर यथा शक्ति उस प्राण का निरोध कर दाहिनी नासिका से रेचक करने एवं दाहिनी नासिका से पूरक कर यथाशक्ति कुम्भक कर बायीं नासिका से रेचक करने से नाड़ियों का शोधन तीन महीने से कुछ अधिक समय में हो जाता है तभी मुख्य नाड़ी सुषुम्ना[210] में प्राण शक्ति का संचार संभव हो पाता है।

उपरोक्त संचार के उपरांत योगी को उन्मनी (मन शून्यता) का अनुभव होता है। उपरोक्त नाड़ियों के निर्मल हो जाने से साधक प्राण को अधिक समय तक धारण करने में सक्षम हो जाता है। साथ ही उसका शरीर कांतियुक्त और सुड़ौल हो जाता है।

घेरण्ड संहिता में नाड़ियों की संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु राजा चण्ड को नाड़ी शोधन की अनिवार्यता बताते हुए समनु और निर्मनु नामक अभ्यासों का उल्लेख किया गया है,[211] जो क्रमशः बीजमंत्र एवं धौति आदि कर्मों के द्वारा नाड़ियों के शोधन की क्रियाविधि है।

शिवसंहिता के द्वितीय उपदेश में नाड़ियों की संख्या तीन लाख पचास हजार है। इनमें से चौदह विशेष एवं सुषुम्ना श्रेष्ठ है। समस्त नाड़ियों का उद्गम मूलाधार है। जहाँ से शरीर के समस्त इन्द्रियों, अंगों एवं उपांगों तक समस्त नाड़ियाँ सुषुम्णा के आश्रय से अधोमुखी होकर देह में व्याप्त हैं।

उपरोक्त सभी नाड़ियों के द्वारा शरीर में अन्नरस का संवहन एवं संतुलन आदि के कार्य संपादित होते हैं। इड़ा, सुषुम्णा के बायीं ओर से निकलकर ऊर्ध्वगति करते हुए बायीं नासिका में खुलती है। पिंगला, सुषुम्णा के दाहिनी ओर से निकलकर दाहिनी नासिका में खुलती है। मध्य में स्थित सुषुम्णा नाड़ी के अंदर

---

[210] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.41.

[211] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018.पृ.146.

चित्रा नामक अतिसूक्ष्म नाड़ी है, जहाँ मोक्ष मार्ग, ब्रह्मरन्ध्र विद्यमान है। यही तत्वज्ञान का बीज है।[212]

## 2.5.5 कुम्भक (प्राणायाम) :-

कुम्भक से तात्पर्य प्राणायाम से है। प्राण अर्थात् शरीर के अंदर, नाड़ियों में बह रही जीवनी शक्ति से है। आयाम से तात्पर्य उसका विस्तार और नियंत्रण है।[213] सामान्यावस्था में वायु का नासिका के माध्यम से आवागमन बिना किसी नियंत्रण के चला आ रहा है। इसका नियंत्रण ही प्राणायाम है। हठयोगियों के अनुसार यह प्राण नाड़ियों में मलावरोध के कारण अनियंत्रित रहता है। अतः प्रथमतः नाड़ी शोधन के माध्यम से इन अवरोधों को दूर कर प्राण एवं अपान को मिलाने वाली प्रक्रिया प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। जिससे सामान्यावस्था में अवरूद्धप्राय सुषुम्ना के मार्ग का भेदन होता है।

प्राणायाम के मूलतः दो प्रकार हैं। पहला, सहित जिसमें साधक पूरक, रेचक और कुम्भक के साथ इसका अभ्यास करता है। दूसरा, केवल जो सहित प्राणायाम के दीर्घ काल तक अभ्यास की गहनता में साधक पूरक, कुम्भक और रेचक के बिना ही प्राण धारण करने की क्षमता विकसित हो जाती है। जिससे वह लम्बे समय तक प्राण को धारण करने में सक्षम हो जाता है। तब योगी के अंदर स्वतः ही प्राण स्थिर हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप मन विषयों से रहित होकर चित्त की निश्चलता प्राप्त होती है।

### 2.5.5.1 हठयौगिक ग्रन्थों में कुम्भक का उल्लेख :-

कौलज्ञाननिर्णय के अंतर्गत अकुलवीरतंत्र 'ब' में पूरक, कुम्भक और रेचक का सम्मिलित अभ्यास ही प्राणायाम है।[214] इसके उपरांत ही प्राणजय की प्राप्ति होती है।

---

[212] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादि. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण, पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999. पृ. 283-84.

[213] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ.53.

[214] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड,

गोरक्षशतकम् के अनुसार पद्मासन में स्थित होकर बायीं नासिका से वायु का पूरक करते हुए दूध, दही से भरे हुए चन्द्रमण्डल (तालु प्रदेश में स्थित) का ध्यान करते हुए आनंद का अनुभव करें, यथाशक्ति कुम्भक का अभ्यास कर दाहिनी नासिका से शनैः-शनैः रेचक करें। दाहिनी नासिका से पूरक करते हुए नाभि में सूर्य मण्डल का ध्यान करते हुए कुम्भक के उपरान्त बायीं नासिका से रेचक करें। उपरोक्त प्राणायाम को बारह, चौबीस व छत्तीस मात्राओं के आधार पर क्रमशः अधम, मध्यम व उत्तम[215] कहा गया है।

सिद्धसिद्धांतपद्धति में अष्टांगयोग के अंतर्गत प्राणायाम से तात्पर्य प्राण की स्थिरता से है। जिसमें पूरक, वायु को अंदर लेना। कुम्भक, अंदर लिये गये वायु को यथाशक्ति रोक कर रखना।रेचक, वायु को बाहर निकालना है। उपरोक्त अभ्यास से संघटीकरण घटित होता है, जो प्राण और अपान का योग है।[216] जिसे प्राणजय के नाम से जाना जाता है।

वसिष्ठ संहिताके अनुसार भी प्राण और अपान का संयोग ही प्राणायाम है।[217] यह मुख्य रूप से सहित एवं केवल में विभक्त है। सहित, बायीं नासिका से पूरक, सोलह मात्रा के साथ करते हुए चन्द्रमा का ध्यान 'वं' बीज मंत्र के साथ। कुम्भक चौंसठ मात्रा तक एवं रेचक बत्तीस मात्रा के साथ करें। दाहिनी नासिका से पूरक करते हुए नाभि में 'रं' बीज मंत्र के साथ सूर्यमण्डल का ध्यान करते हुए कुम्भक एवं बायीं नासिका से रेचक करें।

उपरोक्त पूरक, कुम्भक और रेचक ओंकार के तीन वर्ण अ, उ, म से अभिन्न है। इसके साथ गायत्री के बाल, युवती एवं वृद्ध रूप का अकार, उकार एवं मकार के साथ प्रतिदिन त्रिकाल (सुबह, दोपहर एवं शाम) ध्यान करना चाहिए। प्राणायाम सिद्धि के अधम, मध्यम व उत्तम तीन प्रकार के लक्षणों का उल्लेख भी यहाँ किया गया है।

---

1934. पृ. 104.

[215] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. , पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ. 55.

[216] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवाद. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ.42.

[217] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009.पृ.82.

उपरोक्त सहित प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से केवल कुम्भक की सिद्धि होती है। जिसमें साधक के अन्दर पूरक एवं रेचक की गति शांन्त होकर वायु को धारण करने की शक्ति आ जाती है। अतः साधक को केवल कुम्भक सिद्ध होते तक सहित कुम्भक का अभ्यास करते रहना चाहिये। जिससे मन नियंत्रित होता है। जिस किसी विषय में लगाने से इच्छित लाभ प्राप्त होता है। बुढ़ापे के लक्षणों को समापन, नाद की उत्पत्ति[218] एवं मृत्यु पर विजय की प्राप्ति होती है।

हठप्रदीपिका में कुम्भक (प्राणायाम) सहित एवं केवल में विभक्त है। इन दोनों प्रकारों के पूर्व नाड़ी शोधन अनिवार्य है। जिसमें पूरक के साथ जालंधर बंध एवं रेचक के पूर्व उडिड्यान एवं मूलबंध के साथ अन्तः वायु को रेचन करने के निर्देश है।

सहित में सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी आदि आठ कुम्भकों[219] का विधि व लाभ के साथ विस्तृत उल्लेख है। सहित से तात्पर्य पूरक, कुम्भक और रेचक के साथ अभ्यास है। उपरोक्त कुम्भकों के क्रियाविधि में पूरक के उपरांत जालंधर बंध एवं रेचक के पूर्व मूल एवं उड्डियान बंध के साथ रेचक किया जाता है।

इन प्राणायामों के अभ्यास से वात, कफ, पित्त के दोषों का शमन होता है। देह निर्मल बनता है। त्रिदोषों में संतुलन, चित्त में अहलाद की उत्पत्ति, सुषुम्ना का मार्ग खुलता है, मन में शून्यता की अनुभूति होती है। सहित कुम्भक की निरंतरता में केवल कुम्भक सुषुम्ना द्वार के मलों का शोधन होता है जिससे कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।[220]

---

[218] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009.पृ. 89.

[219] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 54.

[220] वही, पृ.69.

## 2.5.6 मुद्रा :-

हठयौगिक ग्रन्थों में मुद्रा का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। इन अभ्यासों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ कृत कौलज्ञाननिर्णय उपरोक्त प्रकरण का आधार है। इस ग्रंथ के षष्ठ पटल में खेचरी मुद्रा का अभ्यास निर्दिष्ट है। जिसमें जिह्वा को तालुमूल के ऊपर स्थित गुहर में प्रवेश कराया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सहस्रार कमल से स्रावित अमृत रस को नाभि में स्थित सूर्य से नष्ट होने से बचाना है। यह अमृत खेचरी के सिद्ध होने पर सम्पूर्ण शरीर को पोषित करता हुआ सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने में सक्षम है।[221] इससे देह में विष का प्रभाव नहीं होता, बुढ़ापा आदि के लक्षण नहीं आते, बिन्दु का पतन नहीं होता, अन्ततः योगी मृत्युंजयी[222] हो जाता है। उपरोक्त विशेषताएँ खेचरी के छः मास तक निरन्तर अभ्यास के परिणाम स्वरूप प्राप्त होते हैं।

कालान्तर में उपलब्ध विभिन्न हठयौगिक ग्रन्थों में विभिन्न मुद्राओं का उल्लेख निरंतर बढ़ता रहा। सिद्धसिद्धांतपद्धति के षष्ठ उपदेश के अनुसार मुद्रा 'मुद्' 'मोदे' व 'रा' दाने धातु से मिलकर बना हुआ है। जो सामान्य अर्थों में शुभ एवं मंगलकारी है अर्थात् मोद आनंद उत्पन्न करने वाला है एवं विशेष अर्थ में जीवात्मा और परमात्मा की अखण्डता को व्यक्त करता है।[223]

गोरक्षशतकम् में महामुद्रा, नभोमुद्रा एवं जालन्धर, उड्डियान एवं मूल बंध के अभ्यासों का उल्लेख है। उपरोक्त अभ्यास शरीरस्थ प्राण का संतुलन, कुण्डलिनी का उर्ध्वगमन, सिद्धियों के साथ-साथ मृत्युभय से मुक्त करता है।[224]

हठप्रदीपिका के तृतीय उपदेश में मुद्राओं का उपदेश प्राप्त होता है। जिसका उद्देश्य कुण्डलिनी शक्ति का जागरण है। यह शक्ति ही तंत्र एवं योग का आधार है।

---

[221] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ. 17.

[222] वही, पृ.17.

[223] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 89.

[224] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ.50-52.

क्योंकि समस्त प्रकार की हठयौगिक अभ्यासों का उद्देश्य उसी को जागृत करना है। अतः आदिनाथ के द्वारा मृत्यु और बुढ़ापा को दूर करने वाली एवं इस शक्ति को जागृत कर सुषुम्ना में प्रवेश के उद्देश्य से दस मुद्राओं[225] का उपदेश किया गया है। जिसमें महामुद्रा से विभिन्न प्रकार के रोगों, कोष्ठबद्धता, चर्मरोग, वायुदोष दूर होते हैं एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है। महाबंध, देहस्थ विभिन्न नाड़ियों से प्राण को इड़ा एवं पिंगला में प्रवेश कराता है। महावेध, इसके अभ्यास से इड़ा और पिंगला दोनों सुषुम्ना में आकर मिलती है। जिससे अमनस्क (मन की विषयराहित्यता) की प्राप्ति होती है। खेचरी, सोममण्डल से स्रावित अमृत को नष्ट होने से बचाता है। उड्डियान, प्राण का ऊर्ध्वगमन करता है।

मूलबंध, बिन्दु (वीर्य) का ऊर्ध्वगमन एवं मल-मूत्र की अल्पता में सहायक है। जालंधरबंध, कंठ के रोगों को दूर कर सोममण्डल के स्राव को जठराग्नि प्रदेश तक आने से रोकता है जिससे वह नष्ट न हो। विपरीतकरणी, सहस्रार से स्रावित अमृत को नष्ट होने से बचाता है। वज्रोली, बिन्दु के ऊर्ध्वगमन एवं अपान वायु का नियंत्रण करता है। शक्तिचालन कुण्डलिनी का जागरण एवं मृत्यु भय से मुक्ति करने में सहायक है। उपरोक्त मुद्राओं में खेचरी एवं त्रिबंधों में उड्डियान विशिष्ट हैं।

शिवसंहिता के चतुर्थ पटल में मुद्रिका योग के अंतर्गत हठप्रदीपिका की भाँति दस मुद्राओं का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इन मुद्राओं के पूर्व साधक को योनिमुद्रा के अभ्यास का निर्देश है। जिसमें गुदा एवं लिंग के मध्य स्थान (सीवनी स्थान) का आकुंचन करते हुए साधक मूलाधार में अपने मन को लगाये एवं वायु का पूरक कर कामकला पीठ, सुषुम्णा के मूल में करोड़ों सूर्य एवं चन्द्रमा की उष्णता एवं शीतलता का ध्यान करें।[226] इसके ऊपर ही सूक्ष्म ज्ञानमयी परमकला, ज्योति रूप में विद्यमान है। मन एवं आत्मा दोनों का उसी परम कला के साथ संयुक्त कर चिंतन करना चाहिये।

---

[225] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.74.

[226] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ.166.

उपरोक्त तीनों मन, परमकला एवं आत्मा इसी सुषुम्णा मार्ग (ब्रह्म मार्ग) से ऊर्ध्वगमन करती है। यही ब्रह्ममार्ग स्वर्गानंद को प्रदान करने वाली अमृत को सदैव स्रावित करती रहती है। शिवरूप जीवात्मा उसी का पान करते हुए, अमृत के मूल स्राव स्थान कुलामृत (चंद्रस्थान) में लय हो जाता है। तदोपरांत संसार के सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

घेरण्ड मुनि ने तृतीय उपदेश में चण्डकपालि को पच्चीस मुद्राओं का उपदेश किया है। उपरोक्त हठप्रदीपिका में वर्णित दस मुद्राओं के अतिरिक्त नभोमुद्रा, योनिमुद्रा, ताडागी, माण्डुकी, शाम्भवी, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी, भुजंगिनी, पंच धारणा के अंतर्गत पंच तत्त्व, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश की धारणाएँ सम्मिलित हैं।[227] इन उपरोक्त मुद्राओं के अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। वात, पित्त, कफ दोषों में संतुलन, शारीरिक एवं मानसिक रोगों की निवृत्ति, अपान वायु का उर्ध्वगमन, बिन्दु (वीर्य) का संरक्षण, सिर प्रदेश में स्थित चन्द्रमण्डल से स्रावित अमृत का संरक्षण, कुण्डलिनी का जागरण, पंच तत्त्वों पर विजय प्राप्त होता है।

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना के अनुसार कुण्डलिनी का जागरण ही समस्त योगाभ्यासों का मूल उद्देश्य है। जिनमें मुद्रायें विशेष रुप से सहायक हैं। इसके इतर समस्त यौगिक साधनाएँ प्रयोजन रहित मानी गयी है। सद् चित्त् आनंद प्रदायक सुषुम्ना के द्वार पर स्थित सुप्त कुण्डलिनी विभिन्न प्रकार की मुद्राओं के अभ्यास से जागृत होकर ऊर्ध्वगमन करती हुई, षट्चक्रों एवं ब्रह्म,विष्णु एवं रूद्र ग्रन्थि का भेदन[228] करते हुए चित्त को विषय रहित कर काल का भक्षण कर लेती है।

आदिनाथ के द्वारा उपदेशित दस मुद्राएँ, महाशक्ति के जागरण और अष्टसिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ में हठप्रदीपिका के कुछ

---

[227] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे,एम.एल.संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. पृ.80.

[228] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला: कैवल्यधामश्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004. पृ. 341-46.

इतर लाभों के साथ मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। महामुद्रा के अभ्यास से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर सीधी होकर सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश कर जाती है। जिससे दोनों नासिका से श्वास-प्रश्वास का आवागमन निरूद्ध हो जाता है।

महाबंध, विभिन्न सिद्धियों को प्रदान करता है एवं प्राण को सुषुम्ना मार्ग से भ्रूमध्य में पहुँचाता है। महावेध, बुढ़ापा के कारण आने वाली झुर्रियों, सिर के सफेद बालों एवं शारीरिक कम्पन को दूर करता है। इस मुद्रा के अभ्यास से प्राण इड़ा और पिंगला नाडियों को छोड़कर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास से विपरीत परिस्थितियों में भी वीर्य का क्षय नहीं होता, रोग, ज्वर, बुढ़ापा नहीं आता, साधक दिर्घायु होकर अन्ततः मृत्यु को जीत लेता है। उड्डियान के अभ्यास से प्राण सुषुम्ना मार्ग में ऊपर उठने लगता है एवं सहस्रार तक पहुँच जाता है। वृद्ध साधक भी युवा जैसी शक्ति एवं स्फूर्ति महसुस करने लगता है।

मूलबंध के अभ्यास से अपान वायु, प्राण वायु के साथ मिश्रित हो जाता है, तब नाद की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार प्राण, अपान एवं नाद तीनों सुषुम्ना में प्रवेश कर जाते हैं एवं नाद हृदय के ऊपर बिन्दु के साथ मिलकर सहस्रार में चला जाता है। इस प्रकार यह बंध योग सिद्धि में सहायक है। मूलबंध के अभ्यास से प्राण एवं अपान के संयुक्त हो जाने से नाभि मध्य की अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। तब सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर ऊपर उठती है।

जालंधर बंध, रोगों से बचाता है। वृद्धावस्था एवं मृत्यु को समाप्त करता है। उपरोक्त तीनों बंध शरीर में कहे गये सोलह आधारों में श्रेष्ठ हैं। इन तीनों बंधों के अभ्यास से प्राण ब्रह्मरन्ध्र में चला जाता है। जिससे साधक के शरीर में प्राण स्थिर हो जाता है। प्राण के स्थिर होते ही योगी को आलस्यता, झुर्रियाँ, बाल का पकना, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि नहीं सताती। विपरीतकरणी, जठराग्नि को विशेष रूप से बढ़ाता है। चंद्रामृत को नष्ट होने से बचाकर सम्पूर्ण देह का पोषण करती है। बिन्दु के ऊर्ध्वगमन में विशेष सहायक है। वज्रोली का अभ्यास सिद्ध हो जाने पर साधक बिना ब्रह्चर्य के भी योग की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है क्योंकि अपान वायु नियंत्रित हो जाने से बिन्दु का पात नहीं होता।

इस बिन्दु के रक्षण से जीवन की रक्षा होती है। शरीर निरोगी एवं सुगन्धित हो जाता है। शक्तिचालनी के अभ्यास में कंद पीड़न अर्थात् कंदस्थान (नाड़ियों के उद्गम स्थान) पर विशेष प्रकार से दबाव दिया जाता है। जिससे कुण्डलिनी सुषुम्ना के मुख को छोड़कर ऊपर की ओर चली जाती है। साधक अष्टसिद्धियों का स्वामी होकर मृत्यु को भी जीत लेता है।

## 2.5.7 कुण्डलिनी शक्ति :-

कुण्डलिनी नाथसिद्धों की महत्वपूर्ण साधना है। यह कुण्डलिनी ही समस्त तंत्र और योग ग्रंथों का आधार है।[229] हठयोग में इसी शक्ति के जागरण से ही राजयोग की प्राप्ति संभव है। कुण्डलिनी, कुण्डल से बना हुआ है जिसका अर्थ वलयाकार या वृत्ताकार रूप में मानव देह के मूल में अवस्थित शक्ति से है। नाथ योगियों ने अपने हठसाहित्यों में इस महाशक्ति के स्थान, रूप, अवस्था आदि का विवरण विस्तार पूर्वक किया गया है।

कौलज्ञाननिर्णय के अंतर्गत अकुलवीरतन्त्रम् 'बी' में कौल साधना का उल्लेख है। यह साधना मूलतः दो तरह की हैं- प्रथमः कृतक और दूसरा सहज। प्रथमतः कुण्डलिनी का जागरण कृतक साधना[230] है, कृतक से तात्पर्य साधक के द्वारा की जाने वाली आसन, प्राणायाम, मुद्रा, मंत्र, प्रेय-प्रेरक भावनाएँ, धारणा, ध्यान आदि शामिल हैं। उपरोक्त साधना के उपरांत स्वतः ही उत्पन्न स्थिति को सहज[231] कहा गया है। जिसमें पिण्ड और ब्रह्माण्ड के बीच अभेदता स्थापित हो जाती है। योगी, परम चेतना के साथ एक हो जाता है। यह शिव-शक्ति, संसार-मुक्ति, बाह्याभ्यंतर से परे निरालंब, अव्यक्त स्थिति है।

सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार अनामा ब्रह्म से सृष्टिक्रम में पंच शक्तियों का विकास होता है। निजा आदि के साथ कुण्डलिनी अंतिम शक्ति है। इसी से समस्त आकाशादि भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति होती है। यह विश्वरूप है जिसके साधन से

---

[229] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.71.

[230] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.पृ.67.

[231] वही, पृ. 67.

सिद्धियों की प्राप्ति के साथ-साथ स्वरूप का भी ज्ञान होता है। इनके पंच गुणों को योगी के द्वारा जागृत किये जाने पर यह तेजोमयरूप में प्रतिबिम्बित होती है। महाशक्ति सम्पन्न होने के कारण प्रबलता के गुणों से युक्त, सामान्यावस्था में सृष्टि रचना में उन्मुख होने के कारण अधोमुखी एवं योगियों के द्वारा ऊर्ध्वगमन करने के कारण इसमें प्रोच्चलता के गुण विद्यमान होता है। जिससे साधक को अनश्वर सिद्धदेह की प्राप्ति होती है, तब वह जगत में प्रख्यात हो जाता है।

इस शक्ति के द्विविध रूप है। पहला, अप्रबुद्ध, यह कुण्डलिनी की सामान्य अवस्था है, जिसमें यह सांसारिक विषयों का विस्तार करती है। यह मोह, शोक, चिंता आदि का कारण है। अतः यौगिक दृष्टि से इसे अजागृत या अप्रबुद्ध कुण्डलिनी कहा गया है। दूसरा प्रबुद्ध है, योगियों के द्वारा जागृत किये जाने पर यह शक्ति ऊर्ध्वगमन करते हुए, समस्त कषायों, मानसिक संकल्पादि को नष्ट कर देती है तब यह प्रबुद्ध कहलाती है, जो अन्ततः, सहस्त्रदल कमल में मिल जाती है।

कुण्डलिनी का मूलस्थान मूलाधार है। इस स्थान पर यह इन्द्रियादि व्यापार में संलग्न होने के कारण स्थूल जगत व्यापार के कारण अधःशक्ति कहलाती है। मणिपूर स्थान में होने पर यह सूक्ष्म शक्ति सम्पन्न होने के कारण मध्याशक्ति कहलाती है। किन्तु योगियों के द्वारा मूलाधार का आकुंचन-प्रकुंचन करने, मूलबंध से यह ऊपर की ओर गमन करते हुए अधः, मध्य से ऊपर उठकर परमेश्वरी (कुण्डलिनी) शिव से एकाकार हो जाती है। तब योगी में द्वैत (मैं) का अस्तित्व समाप्त हो होते-होते जीवात्मा और परमात्मा, व्यष्टि और समष्टि चेतना की अखण्डता[232] का ज्ञान हो जाता है।

गोरक्षशतकम् के अनुसार नाभि के नीचे और लिंग मूलके ऊपर एक पक्षी के अण्डे के समान कंदयोनि स्थित है। जो सुषुम्ना से तन्तुवत छिद्र के साथ जुड़ी हुई है। इसी कंद के ऊपर शक्ति कुण्डलिनी आठ वलयों में ब्रह्म द्वार सुषुम्णा के मुख को आवृत्त कर सदैव स्थित रहती है।[233] यह शक्ति अपान, प्राण और अग्नि के साथ

---

[232] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक . सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 56-57.

[233] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित.गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति.पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013. पृ. 50.

संयुक्त होकर ऊर्ध्वगमन के साथ जागृत होकर सुषुम्णा मार्ग में प्रवेश कर जाती है।

हठप्रदीपिका के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति, मूलाधार में साढ़े तीन फेरे लिए हुए सर्पवत् नाड़ी कंद के ऊपर ब्रह्मपथ को ढ़ँक्कर सोयी हुई है। जो जागृत होने पर योगियों के लिए मोक्ष प्रदायक है। इसे ही नामांतर भेद से कुटिलांऽगी, ईश्वरी, शक्ति, कुण्डली, अरून्धति, बालरण्डा[234] आदि कहकर संबोधित किया जाता है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा का अभ्यास दृढ़ होने एवं गुरू के अनुग्रह से जागृत होने पर सुषुम्ना मार्ग मल रहित हो जाता है। तब यह शक्ति उस मार्ग में प्रवेश कर षट्चक्रों का भेदन करते हुए समस्त बन्धनों को खोलती हुई योगी को मुक्त कर देती है।

इस शक्ति के जागरण में मत्स्येन्द्रासन, सिद्धासन, पथ्याहार, मिताहार, ब्रह्मचर्य, कुम्भक, सूर्यभेदन, भस्त्रिका, महामुद्रा, महावेध, मूलबंध आदि का विशेष रुप से उल्लेख किया है। उपरोक्त अभ्यासों से यह उसी प्रकार हठात् उठकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है जिस प्रकार कुँजी(चाबी) से विशाल द्वार को हठात् खोल दिया जाता है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार आत्मशक्ति स्वरूप परदेवता रूप कुण्डलिनी भुजंग के सदृश साढ़े तीन फेरे लगाकर मूलाधार में स्थित है। इस महाशक्ति के सुप्तावस्था तक जीव का व्यवहार पशु सदृश बना रहता है,[235] तब तक अपने स्वरूप का ज्ञान होना संभव नहीं हो पाता। हठयोग की साधना से विशेष कर सूर्यभेदन के अभ्यास से जो समस्त प्राणों का आधार है के अभ्यास से देहाग्नि बढ़ती है, तब यह ऊपर की ओर गमन करती है।

ध्यान की तीन विधियों में से सूक्ष्म ध्यान के अभ्यास की निरंतरता में मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी अत्यंत कठिनाई से जागृत हो पाती है। जागृत हो

---

[234] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.115.

[235] दिगम्बर, स्वामी.घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018.पृ.104.

जाने पर यह अतिसूक्ष्म शक्ति, सूक्ष्म सुषुम्ना मार्ग से गमन करते हुए सामान्यतः अनुभव में नहीं आती और भ्रूमध्य स्थान पर लय हो जाती है। शाम्भवी मुद्रा के सिद्ध होने पर ही इसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म ऊपर उठने की अनुभूति बिरले साधक को हो पाती है।[236] तदोपरांत ही आत्मसाक्षात्कार संभव हो जाता है।

शिवसंहिता में कुण्डलिनी को विद्युतलता अर्थात् आकाश में चमकने वाली बिजली से तुलना की गयी है। जो साढ़े तीन फेरे लिए हुए गुदा एवं जनेन्द्रिय स्थान के मध्य, अधोमुखी योनि स्थान पर, कंद के ऊपर सुषुम्णा मार्ग में अवस्थित है।[237] यह सुषुम्ना मार्ग ब्रह्मन्ध्रपर्यंत स्थित है। इस शक्ति के ध्यान से विभिन्न प्रकार के रोगों से निवृत्ति मिलती है एवं सिद्धियों की प्राप्ति होती है। यह प्राणायाम के सिद्ध होने, महावेध, शक्तिचालनी, मूलबंध आदि मुद्राओं के अभ्यास एवं गुरू प्रसाद से जागृत होकर उर्ध्वगमन करते हुए समस्त चक्रों और ग्रन्थियों का भेदन कर शिवस्थान में लीन हो जाती है।

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, सद् चित्त् आनंद प्रदायक सुषुम्ना के द्वार पर स्थित सुप्त कुण्डलिनी, मुद्राओं के अभ्यास से जागृत होकर ऊर्ध्व की ओर गमन करती हुई षट्चक्रों एवं तीनों ग्रन्थियों (ब्रह्म, विषणु एवं रूद्र ग्रन्थि) का भेदन कर चित्त को विषय रहित कर देती है। तब सूर्य-चंद्र रूपी काल का भक्षण हो जाता है। यह महाशक्ति जिस मार्ग से ऊपर उठती है, वह मार्ग ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है। इसे ही शून्यपदवी, सुषुम्ना, महापथ, शाम्भवी, श्मशान, मध्यमार्ग आदि नामान्तर भेदों से भी जाना जाता है।

## 2.5.8 देहस्थ चक्र साधना :-

चक्र से तात्पर्य वृत्ताकार शक्ति केन्द्रों से है। जो सुषुम्ना मार्ग में अवस्थित होते हैं। वे सभी कुण्डलिनी के जागरण के साथ ही खिले हुए कमल की भांति योगियों को अनुभूत होती है। हठयौगिक ग्रंथों में इन चक्रों की संख्या कहीं षष्ठ तो

---

[236] दिगम्बर, स्वामी.घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. पृ.185-86.

[237] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहित. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ. 69.

कहीं अष्ट, नौ आदि प्रकारों में भी प्राप्त होते हैं। जैसे- कौलज्ञाननिर्णय में अष्टचक्रों का उल्लेख है। जो गुह्य स्थान, नाभि, हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरंध्र में विद्यमान हैं।[238]

प्रथम चक्र आठदल युक्त कमल के सदृश है, जिस पर ध्यान करने से क्रोध का शमन, दूर श्रवण, सर्वसिद्धि, वाचा सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है। द्वितीय चक्र आठ कमल दल युक्त है जिस पर तेज का ध्यान करने से मृत्यु भय से मुक्ति प्राप्त होती है। तृतीय चक्र(महा चक्र) पर ध्यान करने से समस्त तत्त्वों से मुक्ति मिलती है एवं बलित-पलित अर्थात् झुर्री आना, बाल का पकना श री र में कम्पन आदि का नाश होता है। चतुर्थ चक्र (शांति चक्र) के ध्यान से रोगमुक्ति, शांति एवं आनंद की अनुभूति होती है। पंचम चक्र (महापद्म) धूम्रवर्ण का है जिसके ध्यान से त्रिलोक को चलायमान करने की शक्ति आ जाती है। षष्ठ चक्र में तप्त स्वर्ण के प्रकाश का ध्यान करने से इच्छा सिद्धि, अष्ट सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है।

सप्त चक्र में पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश का ध्यान करने से सांसारिक कामना और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है। जरा और मृत्यु नाशक, परदेह में प्रवेश की शक्ति आ जाती है। आठवां चक्र (महाचक्र) के ध्यान से चारों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उपरोक्त चक्रों के ध्यान से मन, इन्द्रिय, बुद्धि आदि की मलिनता दूर होती है एवं योगी को सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। तब मन उन्मन की प्रक्रिया आरंभ होती है। उपरोक्त देह, मन, बुद्धि, चक्र आदि सम्मिलित रूप से कुलागम कहलाते हैं।[239]

सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपदेश (पिण्डविचार) के अंतर्गत नौ चक्रों[240] का उल्लेख है।

---

[238] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ.31- 34.

[239] वही, पृ.07.

[240] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 31-33.

ब्रह्मचक्र, इसका स्थान मूलाधार में है। जो त्रिकोणाकार भगमण्डल की तरह शोभायमान है। इसी के पास मूलकंद का स्थान है। साधक जब उसी स्थान पर अग्नि शिखा के सदृश शक्ति का ध्यान करता है तब सभी तरह की कामनाओं की पूर्ति होती है।

स्वाधिष्ठान चक्र, मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्वाधिष्ठान नामक द्वितीय चक्र है। इसके मध्य में मूंगे की तरह शिवलिंग का ध्यान करने से संसार के सभी प्राणी आकर्षित होते हैं। नाभिचक्र, इसका स्थान नाभि है। यह सर्पवत पंच वलयों में कुण्डल के आकार में स्थित है। इसके मध्य प्रातः कालीन उदित करोड़ों सूर्य सदृश कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करना चाहिये। जिससे योगी को सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है। यह मध्यमा शक्ति के रूप में भी विख्यात है। अनाहत चक्र, इसका स्थान हृदयाधार है। यह आकार में आठ दल युक्त पद्म के समान है। जो अधोमुखी होकर स्थित है। इस पद्म के मध्य (कर्णिका) में शिवलिंग सदृश ज्योति का ध्यान करने से योगी की सभी इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। कण्ठचक्र, यह चार अंगूल परिमाप वाला चक्र है। जिसके बायीं ओर इड़ा एवं दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी स्थित है। इन दोनों नाड़ियों के बीच में सुषुम्ना का ध्यान करने से संकल्पसिद्धि की प्राप्ति होती है।

तालुचक्र, इससे अमृत धारा निरंतर प्रवाहमान होता है। मुख खोलने पर घंटी की तरह लटका हुआ लिंग के आकार का मांसल भाग घण्टिका कहलाती है। इसके मूल में एक रन्ध्र स्थित है। जो खोखले शंख के समान खाली स्थान है। इसे ही दसवां द्वार कहा गया है। इस स्थान पर शून्य का ध्यान करने से योगी को चित्त लय की प्राप्ति होती है। भ्रूचक्र, दोनों भौहों के बीच में भ्रूचक्र का स्थान है। जो अंगूठे के आकार का है इसे ही ज्ञाननेत्र भी कहा गया है। इस स्थान पर दीपशिखा का ध्यान करने से कहे हुए वचन सिद्ध हो जाते हैं। ब्रह्मरन्ध्र चक्र, इसे निर्वाणचक्र भी कहा गया है। इसका आकार सूई के नोक से बने छिद्र के आकार का है। इस स्थान पर धूमशिखा के आकार का ध्यान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। आकाश चक्र, सोलह पंखुडियों वाले कमल के समान है ऊपर की तरफ मुख किये हुए स्थित है। जिसके मध्य में त्रिकोण आकार की उर्ध्वमुखी शक्ति है। इस

स्थान पर परमशून्यता का ध्यान करने से योगी की सभी प्रकार की इच्छाओं पूर्ति की सिद्धि प्राप्त होती है।

गोरक्षशतकम् में अष्टचक्रों[241] का उल्लेख है। प्रथमतः आधारचक्र , मेरूदण्ड के अंतिम स्थान (गुदा स्थान) में तप्त स्वर्ण के सदृश चार दल युक्त आधार पद्म स्थित है। इसी पद्म के केन्द्र स्थान में योनि का स्थित है। दृष्टि को नासिकाग्र पर लगाकर इस आधार पद्म में ध्यान लगाने से योगी सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

स्वाधिष्ठान चक्र , स्व का अर्थ प्राण एवं अधिष्ठान से तात्पर्य स्थान से है। यह चक्र लिंगमूल स्थान में स्थित होकर मणिक के समान शोभायमान है। दृष्टि को नासिकाग्र कर इस चक्र में ध्यान लगाने से योगी सभी पापों से मुक्त हो जाता है। मणिपूर चक्र , यह चक्र नाभि मण्डल में स्थित है। दृष्टि को उपरोक्त स्थान में रखते हुए योगी को इस चक्र में प्रातःकालीन सूर्य के समान दिव्य प्रकाश का ध्यान करने से योगी में समस्त जगत को प्रभावित करने की शक्ति आ जाती है।अनाहत चक्र , यह हृदय में स्थित है। जहाँ प्राण का स्थान है। नासिकाग्र दृष्टि रखकर इस स्थान में विद्युत के सदृश ध्यान से योगी ब्रह्ममय हो जाता है।

विशुद्ध चक्र, कंठ स्थान में स्थित है। जो अमृत का स्रोत स्थान है। योगी के द्वारा नासिका के अग्रभाग में दृष्टि लगाकर अमृत स्रोत का ध्यान करने से ब्रह्म के समान हो जाता है। आज्ञा चक्र, भ्रूमध्य स्थान में स्थित है। इस स्थान में दृष्टि नासिकाग्र कर मोती के समान स्निग्ध देवता पर ध्यान करने से योगी आनंद मग्न हो जाता है। इस प्रकार प्राण, आधार पद्म से उर्ध्वगमन करता हुआ आज्ञा चक्र से होते हुए महापद्म स्थान सहस्रार पर पहुँचकर तत्त्वामृत (अन्तता) को प्राप्त कर लेता है।

हठप्रदीपिका, प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर सूर्य एवं चंद्र नाड़ी से प्राण सुषुम्ना में चला जाता है। उसी निरालम्ब स्थान (सुषुम्ना) के आकाश में षट्चक्र[242]

---

[241] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ.65.

[242] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत.हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम,

का उदय होता है। उपरांत सभी भ्रूमध्य में जाकर विलीन हो जाते हैं। इसे ही खेचरी कहा गया है। अर्थात् तब योगी का चित्त आकाश के समान शून्य (विषय रहित) हो जाता है।

शिवसंहिता के पंचम पटल में षट्चक्रों का उनके नाम, दलसंख्या, वर्ण, निवास स्थान, रंग, देवी और उनके देवों के साथ विस्तृत उल्लेख किया गया है।[243] मूलाधार चक्र, यह चार दल युक्त आधार कमल है जो स्वर्ण के समान कांति युक्त है। इसे कुल चक्र अथवा स्वयम्भू लिंग भी कहा गया है। इसके प्रत्येक दल में व्, ष्, ष्, स् नामक चार वर्ण शुषोभित है। जिसके सिद्ध द्विरण्ड और देवी डाकिनी है। इसी पद्म के मध्य में योनिस्थान है जहाँ कुण्डलिनी स्थित है। उसके ऊपर, तेजप्रकाशयुक्त कामबीज सक्रिय है। इस चक्र के ध्यान से जठराग्नि प्रदीप्ति होती है।शरीर कान्तियुक्त हो जाता है। अरोग्यता, सर्वज्ञता, वायु एवं बिन्दु पर नियंत्रण, मन विजय एवं आकाश गमन आदि की सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

स्वाधिष्ठान चक्र, यह पद्म, लिंग के मूलस्थान में स्थित है जो रक्त वर्ण का है। जहाँ सिद्ध के रूप में बाल और देवी राकिणी वास करती है। इस कमल दल में ब्, भ्, म्, य्, र्, ल् नामक छः वर्ण भाषित होते हैं। इस चक्र के ध्यान से स्त्रियाँ मोहित होती है। रोगमुक्ति, निर्भयता, अष्टसिद्धियों की प्राप्ति, शरीर में रसों की वृद्धि, सुषुम्ना में वायु का संचार, सहस्त्रार से अमृत स्राव में वृद्धि आदि की प्राप्ति होती है।

मणिपूर चक्र, यह पद्म नाभि स्थान में स्थित है। इसके दलों की संख्या दस हैं। जिसके प्रत्येक दल में ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, नामक स्वर्ण के समान वर्ण शोभायमान हैं। इस पद्म के देवता रूद्र है जो सर्वमंगलदायक है एवं परमधार्मिका देवी लाकिनी वास करती है। इस चक्र के ध्यान से सुखों में निरन्तर वृद्धि होती है। इच्छाओं की पूर्ति, औषधियों का ज्ञान एवं भूमिगत खजाने का ज्ञान आदि की सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

---

स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.147.

[243] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999. पृ. 260-75.

अनाहत चक्र, यह हृदय स्थान में स्थित है। जो गहरे रक्तवर्ण का है। यह प्रसन्नता का मूलस्थान है। जिसके ऊपर बाणलिंग नामक तेज का प्रकाश विद्यमान होता है। इस चौथे कमल दलों में क्, ख्, ग्, घ्, ङ्.,च्, छ्, ज, झ्, ञ्, ट्, ठ् नामक बारह वर्ण शोभित रहते हैं। इस कमल में सिद्ध पिनाकी एवं देवी काकिनी अधिष्ठित हैं। इसके ध्यान से इस लोक एवं परलोक के इच्छित फलों की प्राप्ति होती है। अप्सराएँ आकर्षित होती है। योगी में भूत, वर्तमान एवं भविष्य को जान लेने की शक्ति आ जाती है। सूक्ष्म वस्तुओं को भी जान लेने वाला, आकाश गमन की शक्ति, खेचरी एवं भूचरी की सिद्धि आदि की भी प्राप्ति होती है।

विशुद्ध चक्र, यह पंचम पद्म कंठस्थान में स्थित है। जो स्वर्ण के समान कांतियुक्त है। इसे देवताओं का निवास स्थान कहा गया है। इसके दलों में षोड़श स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः शोभायमान हैं। इस पद्म में सिद्ध छागलाण्ड और देवी शाकिनी अधिष्ठित हैं। इसके ध्यान से योगी वेदों के रहस्यों को जानने वाला पण्डित हो जाता है। इस ध्यान से हृदय मन में लीन हो जाता है। तब उस देह की क्षति नहीं होती, वह योगीश्वर के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

आज्ञा चक्र, यह दो दलयुक्त पद्म भूरमध्य में स्थित है। इसे आज्ञा पद्म भी कहा गया है जिसका वर्ण शुक्ल है। इनके दोनों दलों में ह, क्ष नामक वर्ण शुशोभित है। इस पद्म के सिद्ध, महाकाल और अधिष्ठात्री देवी हाकिनी है। इस चक्र की चर्चा सभी तांत्रिक ग्रन्थों ने की है। इसके ध्यान से उपरोक्त सभी चक्रों के ध्यान का लाभ प्राप्त हो जाता है। परम सिद्धि दायक इस ध्यान से साधक शिव के समान हो जाता है।

सुषुम्णा, तालुमूल में ही सुषुम्ना नाड़ी अधोमुखी स्थित है। इसी सुषुम्ना के मध्य ब्रह्मरन्ध्र स्थित है इसे ही सरस्वती की संज्ञा प्रदान की गयी है। जो गंगा और यमुना रूपी क्रमशः इड़ा और पिंगला के मध्य में स्थित है। इसी त्रिवेणी तीर्थ पर ध्यान लगाने से साधक मुक्ति को प्राप्त करता है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार काकी मुद्रा में प्राण को पूरक कर उसे अपान से संयुक्त करने से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर हुँ और हंस मंत्र का जप करते हुए, षट्चक्रों[244] का भेदन कर जीव के साथ सहस्रार में स्थित शिव से संयुक्त होकर अनंत सुख, पूर्ण शांति एवं पूर्णानंद के साथ विहार करती है। तब योगी को अहं ब्रह्म के साथ परमानंद की अनुभूति होती है।

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना के अनुसार इड़ा और पिंगला के मध्य सुषुम्ना मार्ग आश्रयरहित स्थान के रूप में विद्यमान है। उसी में षट्चक्र[245] मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि समुदाय स्थित है। जो अन्ततः भ्रूमध्य (शिव स्थान) में समन्वित हो जाते हैं। तब निर्मल स्फटिक मणि के सदृश चित्त अपने मूल स्वरूप (वृत्ति अभाव रूप) में स्थिर हो जाती है। तब चित्त विषय शून्य होने के कारण खेचरी कहलाती है।

गोरखबानी के अनुसार स्वाभाविक रूप से अधः की ओर प्रवाहमान अपान को प्राण से संयुक्त कर देने पर दोनों की गति उर्ध्व हो जाती है। तब सुषुम्ना के मार्ग में सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर षट्चक्र[246] का भेदन करती हुई ऊपर बढ़ती है। तब रेतस को ब्रह्मरंध्र के द्वारा उसी प्रकार सोख लिया जाता है, जिस प्रकार लोहार के द्वारा रक्त तप्त लोहा पानी को अवशोषित कर लेता है।

तब योगी के द्वारा चंद्र और सूर्य के विपरीत स्वभाव (प्राण और अपान की स्वाभाविक गति) को एक कर लिया जाता है। उस समय योगी ब्रह्मविद् हो जाता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होकर षट्चक्रों के भेदन के परिणाम स्वरूप ब्रह्मरंध्र में सहस्रार से स्रावित चंद्रामृत का पान कर गोरखनाथ ने उस ब्रह्म प्रकाश को देखा और पूर्णानंद का अनुभव किया है।

---

[244] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018.पृ.100-105.

[245] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला: कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004.पृ.162.

[246] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. सम्पादक और टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, 2004.पृ.56-57.

## 2.5.9 प्रत्याहार :-

हठयौगिक अभ्यासों में प्रत्याहार एक महत्त्वपूर्ण अभ्यास के रूप में स्वीकृत है। जो दो स्वरूपों में प्राप्त होता है।

गोरक्षशतकम् की यह स्वीकार्यता है की नाभि में सूर्य उर्ध्वमुख होकर स्थित है और तालु प्रदेश में चंद्रमा अधोमुखी होकर विद्यमान है। इसी तालु प्रदेश से अमृत का स्राव निरंतर अधोभाग की ओर होता रहता है। जो नाभि प्रदेश में स्थित सूर्य और स्त्रीसंग से यह नष्ट होता रहता है। जो रोग, बुढ़ापा और मृत्यु का कारण बनता है।

अतः योगियों को नाभि प्रदेश को ऊपर एवं तालु प्रदेश को नीचे कर स्थित रहना चाहिये जिससे चंद्रामृत सूर्य के द्वारा नष्ट नहीं हो पाता। तब योगी का देह जरा आदि से मुक्त होकर मृत्युंजयी हो जाता है। यही गोरक्षशतकम् में प्रत्याहार[247] की साधना है। यह कालांतर के हठयौगिक ग्रंथों में विपरीतकरणी मुद्रा कही गयी है।

हठप्रदीपिका के अनुसार सोममण्डल से स्रावित अमृत को नाभि में स्थित सूर्य से रक्षण के लिये मस्तक को नीचे और पांवों को ऊपर की ओर निरालंब रखने से अमृत के नष्ट होने की प्रक्रिया टल जाती है।[248] इस अभ्यास को गुरू के निर्देशन में शनैः-शनैः बढ़ानी चाहिये। जिससे छः महीने के नियमित अभ्यास से बालों का सफेद होना, झुर्री, बुढ़ापा आदि के लक्षण दूर हो जाते हैं। इस अभ्यास को निरंतर तीन घंटे तक करने वाला योगी मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है।

सिद्धसिद्धांत पद्धति में प्रत्याहार से तात्पर्य चेतना से संचालित इन्द्रियों को उनके गंध, रस, स्पर्श आदि विषयों से पुनः-पुनः लौटाकर स्व में केन्द्रित करना ही प्रत्याहार[249] है। जो इन्द्रियों को विकार ग्रस्त हाने से रोकती है।

---

[247] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्.प्रथम आवृत्ति. श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे,2013.पृ.56-57.

[248] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, पुणे, 2017.पृ. 104.

[249] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ. 42.

वसिष्ठ संहिता के अनुसार स्वभावतः इन्द्रियाँ विषयों में विचरण करती है। उन्हें उन विषयों से बल पूर्वक वापस लौटाना प्रत्याहार है। जगत के समस्त जंघम स्थावर आदि को अपने आत्मा में ही अवलोकित करना प्रत्याहार है। वैदिक अथवा विहित कर्म शरीर एवं बाह्य साधनों के संयोग के द्वारा ही संपादित किया जाता है। उन समस्त नित्य-नैमित्तिक कर्मों को बिना बाह्य साधनों के मन के द्वारा आत्मा में अनुष्ठान करना भी प्रत्याहार कहा गया है।

देह में स्थित अट्ठारह मर्म स्थानों में वायु की धारणा कर उन अंग विशेष से वायु को उर्ध्वगमन के लिए खींचना। इसे ही योगविदों ने उत्तम प्रत्याहार[250] कहा है। जिससे प्राण उस ब्रह्मपद में चला जाता है। जहाँ से वह संचारित हुआ है। उपरोक्त सभी प्रत्याहार को ही परिभाषित करती हैं।

घेरण्ड संहिता के अनुसार मन, इन्द्रियों के माध्यम से निरंतर विषयों के संपर्क में आकर उनका चिंतन करते रहता है। इस मन को उन विषयों से विकार ग्रस्त होने के पूर्व स्व में स्थित करना ही प्रत्याहार[251] है। यह अभ्यास, साधना क्रम में आने वाली कामना, वासना, इच्छा, लोभ, आदि शत्रुओं को बढ़ने से रोकती है एवं मान-अपमान, अच्छी-बुरी, प्रिय-अप्रिय, सुगंध-दुर्गन्ध, अम्ल, मधुर, लवण, स्वाद आकर्षित-विकर्षित आदि के प्रति मन का प्रभावित नहीं होने से यह विचारों को दूषित नहीं करता उस समय प्राण क्षय की प्रक्रिया भी नहीं होती। तब प्राण संतुलित एवं संयमित होकर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में सक्षम बनता है।

शिवसंहिता के अनुसार योगी जब प्राण वायु को कुम्भक के द्वारा तीन घण्टे तक रोकने में सक्षम हो जाता है तब वह प्रत्याहारी कहलाता है। तदोपरांत आँख, कान, नाक, त्वचा आदि इन्द्रियों से उनके विषयों के साथ संयुक्त होने पर उन

---

[250] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता.परिवर्धित संस्करण. पुणे :श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009.पृ. 96.

[251] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, 2018. पृ. 125.

समस्त पदार्थों में एकमात्र आत्मा का ही चिंतन करने से इन्द्रियजय की प्राप्ति होती है।[252]

गोरखबानी (सबदी) अनुसार, दृष्टि को अवलोकन से, कर्ण को श्रवण से, नासिका को वायु से छिपाने अथवा अलग करने, इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों को उनके विषयों से विमुख करने से योगी अन्तः की ओर प्रवृत्त होता है और अंतिम में निर्वाण पद ही शेष रह जाता है।[253]

## 2.5.10 धारणा :-

सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार देह के बाहर और आभ्यन्तर दोनों ही स्थानों पर एक ही सर्वव्यापी, निजतत्त्व (आत्मा) स्थित है। ऐसी भावना का अन्तःकरण में धारण करना ही धारणा[254] है। वायु रहित स्थान में जिस प्रकार प्रज्ज्वलित दीपशिखा निश्चल बनी रहती है। उसी प्रकार स्व में प्रतिष्ठित आत्मा का ही केवल चिंतन करना ध्यान है।

वसिष्ठ संहिता में यम-नियम के अंतर्गत आने वाले अहिंसा, सत्य, आदि गुणों से युक्त मन की स्थिरता ही धारणा है। हृदय के अन्तराकाश के साथ बाह्याकाश का चिंतन करना धारणा है। जिसके प्रभाव से योगी में आकाश में विहार करने की सिद्धि आ जाती है। भूमि, आपः, तेज, वायु और आकाश का उनके क्रमशः लकार, वकार, रकार, यकार, हकार नामक पंच वर्णों एवं क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, महत्तत्त्व, परमात्मा नामक उनके देवताओं के साथ शरीर के अंग विशेष पांव से लेकर जानू तक पृथ्वी, जानू से लेकर गुदा तक जल, गुदामार्ग से हृदय तक अग्नि, हृदय से लेकर भौंहों तक वायु एवं दोनों भौहों के मध्य से लेकर कपालपर्यंत आकाश का स्थान है।

---

[252] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, पुणे. 1999. पृ. 119.

[253] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. सम्पादक और टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ. 47.

[254] शास्त्री द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 42.

उपरोक्त स्थानों पर उनके तत्त्व, वर्ण, देवता का पंच घटिका (दो घंटे) तक धारणा[255] करने से योगी को उपरोक्त तत्त्वों पर विजय की प्राप्ति होती है तब उन तत्त्वों से उस योगी को किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती। वह समस्त दुःखों से निवृत्त होकर जीवनमुक्त हो जाता है। गोरक्षशतकम् में पंच महाभूतों की धारणा[256] भी निम्नवत है[257]-

| **क्र.** | **तत्त्व** | **धारणा स्थान** | **तत्त्व का आकार** | **बीजमंत्र** | **रंग** | **धारणा का समय** | **देवता** | **परिणाम** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 01. | पृथ्वी | हृदय | चतुष्कोण | लं | पीत | 5घटिका | ब्रह्मा | पृथ्वी तत्त्व विजय |
| 02. | जल | कण्ठ | अर्द्धचंद्राकार | वं | श्वेत | 5घटिका | विष्णु | विषका पाचन |
| 03. | अग्नि | तालु प्रदेश | त्रिकोणाकार | रं | रक्तवर्ण | 5घटिका | रूद्र | अग्नि तत्त्व विजय |
| 04. | वायु | भ्रूमध्य | गोलाकार | यं | धूम्रवर्ण | 5घटिका (2 घंटे) | ईश्वर | आकाश गमन |
| 05. | आकाश | ब्रह्मरंध्र | निराकार | हं | वर्णहीन | 5घटिका | सदाशिव | मोक्ष प्रदायक |

घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय में मुद्रा प्रकरण के अंतर्गत पंच तत्त्वों की धारणा[258] का उल्लेख भी उपरोक्त गोरक्षशतकम् के भाँति ही प्राप्त होता है। जिसमें योगी के द्वारा दो घंटे के कुम्भक के साथ प्रत्येक तत्त्वों पर धारणा की जाती है जिस से पंच तत्वों पर योगी विजय प्राप्तकर लेता है।

---

[255] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009.पृ.100-103.

[256] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013. पृ. 59-62.

[257] वही, पृ. 59-62.

[258] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, 2018. पृ. 114-19.

## 2.5.11 ध्यान :-

हठयोग साधना में ध्यान एक महत्वपूर्ण अभ्यास के रूप में प्रसिद्ध है। गोरक्षशतकम् के अनुसार मन का किसी भी एक निश्चित तत्त्व पर स्थिर हो जाना ही ध्यान[259] है। जिसमें घ्राण, जिह्वा, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों एवं गंध, रस, रूप आदि तन्मात्राओं को शामिल किया गया है। इस ग्रंथ में ध्यान का उल्लेख षट्चक्रों के अंतर्गत वर्णित है। जिसमें मूलाधार से लेकर सहस्रार तक के ध्यान और उनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का उल्लेख है।

कौलज्ञाननिर्णय में हंसमंत्र के ध्यान[260] का उपदेश है, जिसमें योगी नासापुट, लिंगमूल, नाभि, हृदय,कण्ठ, ललाटस्थान में आवागमन कर रहे प्राण को देखता है और उस स्थान विशेष पर उस प्राण को स्थिर करता है। यह अभ्यास सर्वपाप, शोक, संताप, बंधन, कषाय, व्याधियों को नष्ट कर शुभाशुभ से रहित अष्टसिद्धियों एवं उन्मनी की प्राप्ति कराता है। यही मोक्ष प्रदायक[261] भी है।

वसिष्ठ संहिता के अनुसार अपने मन में आत्मस्वरूप (निज स्वभाव) का चिंतन ही ध्यान है। यह जगत की ओर होने पर बंधन एवं आत्म स्वरूप होने पर मोक्ष का उपाय बनता है। इस तरह इन्हें दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया हैं-

सगुण ध्यान,[262] मन में निज स्वरूप का चिंतन सगुण ध्यान है। यह पाँच प्रकार के हैं। अष्टदल युक्त हृदयकमल में पीत वस्त्र धारण किये हुए, चार भुजाओं वाले शंख, चक्र, गदाधारी। मुख पूर्णिमा के चांद की तरह, नेत्र कमल पत्र के समान गुलाबी, देह स्फटिक मणि के समान निर्मल एवं जिनके चारों ओर से

---

[259] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे,2013.पृ. 63.

[260] बागची प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय: . कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिसिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ. 15-16.

[261] वही, पृ. 42.

[262] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, पुणे, 2009. पृ. 105-10.

प्रकाश की दिव्य आभा निकल रही है। समस्त प्राणियों के हृदय में विद्यमान मैं वही ईश्वर हूँ।

हृदय में दिव्य प्रकाश युक्त ज्योति के समान स्वरूप वाला पद्म, जिसका नाल ज्ञान है। कंद महत्त तत्त्व है। सम्पूर्ण संसार के कारण स्वरूप कभी न बुझने वाली अग्निशिखा के मध्य स्थित परमेश्वर मैं ही हूँ।

देहमध्य में स्थित कंद से भ्रूमध्य तक उठा हुआ अव्यक्त स्वरूप सभी का कारण रूप आत्मा मैं ही हूँ। यह सभी ध्यानों में उत्तम है।

अष्ट कमल दल युक्त हृदय में अपने को एक बाल रूप में चिंतन करते हुए सिर में स्थिति, सोलह कमल दलयुक्त पूर्ण चन्द्रमा के किरणों से घिरा हुआ शिरसस्थ कमल से निरंतर हो रहे अमृत के स्राव में पूर्णरूप से भिगा हुआ, तृप्त, अक्षय, परमात्मा मैं ही हूँ।

सूर्यमण्डल में पद्मासन में स्थिति जगत के कारणरूप आत्म पुरूष जिसके नख, बाल, दाढ़ी आदि समपूर्ण शरीर सोने के समान हैं। अभयदाता, सर्वज्ञ, सर्व समपन्नता से परिपूर्ण सर्वजगत् का साक्षी मैं ही हूँ। इस प्रकार उपरोक्त सगुण ध्यान से योगी छः महिने में मृत्यु को जीत लेता है एवं एक वर्ष पर्यन्त तक इस ध्यान से जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

निर्गुण ध्यान,[263] में योगी ब्रह्म के सदृश स्वयं को सर्वत्र आकाश के समान विराट सर्वसाक्षी आदि और अन्त से रहित स्थिर, इन्द्रियों से परे, जिसका किसी के साथ तुलना नहीं किया जा सकता (अतुलनीय), पूर्णानंद, निरालम्ब ब्रह्म (आत्मा) का चिंतन ही निगुर्ण ध्यान है।

शिवसंहिता विभिन्न प्रकार के ध्यानों का उल्लेख करता है, जो मूल रूप से आलम्बन युक्त और आलम्बन रहित दो प्रकारों में विभक्त है। यह गृहस्थ सन्यासी आदि सभी के लिए  उपयुक्त है। आलम्बन युक्त ध्यान के अंतर्गत अमरत्व प्रदायक सुषुम्णा के अन्तः में स्थित चित्रा नाड़ी के ध्यान से योगी पाप मुक्त हो जाता है।

[263] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, पुणे, 2009. पृ. 104-05.

जीभ को तालु मूल में लगाकर कण्ठ कूप का ध्यान करने से साधक को भूख एवं प्यास पर विजय प्राप्त होता है। कण्ठ कूप के नीचे स्थित कूर्मनाड़ी पर ध्यान से चित्त में स्थिरता आती है। कपाल में रूद्राक्ष के छिद्र के समान आकृति का ध्यान करने से विद्युत के समान प्रकाशपुंज का दर्शन होता है। सिद्ध महात्माओं के दर्शन एवं उनके उपदेशों की प्राप्ति भी होती है। कपाल में शून्यता का ध्यान[264] करने पर मन चिदाकाश में विलीन हो जाता है। पद्मासन में स्थिर होकर नासिकाग्र पर ध्यान से मन संकल्प-विकल्प से मुक्त हो जाता है एवं खेचरी मुद्रा की सिद्धि प्राप्त होती है।

सिर के पीछे वाले हिस्से में ध्यान लगाने से साधक मृत्यु को जीत लेता है। षट्चक्रों के ध्यान[265]से प्राप्त भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धियों की प्राप्ति का उल्लेख उपरोक्त चक्र साधना प्रकरण के अंतर्गत उल्लेखित है। सहस्रार के योनि मण्डल के नीचे स्थित चन्द्रमण्डल के ध्यान से योगी जगत् में पूजनीय हो जाता है। शरीर के बाहर सिर के ऊपर सहस्रार स्थित है, यही कैलाश है। जहाँ अकुल स्वरूप शिव निवास करते है। जिसके ध्यान से योगी को शारीरिक, मानसिक आदि रोगों से मुक्ति मिलती है और चित्त से जगत विस्मृत हो जाता है। योगी विभिन्न शक्तियों एवं सिद्धियों का स्वामी हो जाता हैं। अन्ततः अन्तःशून्य में रमण करता हुआ ध्यान की निरंतरता में जगत् प्रपंच निवृत्त हो जाता है।

निरालम्ब ध्यान[266] इसे ही नामांतर भेद से राजाधिराज योग भी कहा गया है। उपरोक्त वर्णित सभी प्रकार के ध्यान आलम्बन युक्त हैं। जिसमें चक्र, स्थान, कल्पना एवं भावना आदि समावेशित हैं परन्तु राजाधिराज योग में साधक को एकान्त में मठ में सिद्धासन में स्थित होकर किसी भी स्थान, कल्पना एवं भावना से रहित सभी आलम्बनों को छोड़कर जीवात्मा परमात्मा एवं ब्रह्माण्ड आदि में मैं ही स्थित हूँ। इस प्रकार सदैव विद्यमान अपने आत्मा का

---

[264] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिवसंहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, 1999. पृ. 252-53.

[265] वही, पृ. 261-301.

[266] वही, पृ. 301-02.

ध्यान करना चाहिये। इससे स्वप्रकाश की जागृति होती है तब योगी सत्य ज्ञान को उपलब्ध होता है।

घेरण्ड ऋषि ने राजा चण्डकपालि को तीन प्रकार के ध्यान का उपदेश किया गया है। जो क्रमशः स्थूल, ज्योति और सूक्ष्म में विभक्त है। स्थूल ध्यान में योगी के द्वारा अपने हृदय में कल्पवृक्ष के नीचे विराजित देव रूप गुरू के स्वरूप का ध्यान करने का उपदेश है। जिनके चारो ओर समस्त प्रकार के रत्न, माणिक्य आदि विद्यमान हैं। चारों ओर सुगंधित पुष्प खिले हुए हैं। पक्षियों के मधुर स्वर गुंजरित हो रहा है। साथ ही सहस्रार में स्थित स्वर्णिम महापद्म के मध्य त्रिकोणाकार स्थान में ओंकार के मध्य, नाद-बिन्दु के बीच में ऊपर की ओर हंस युगल रूपी गुरू पादुका का ध्यान करने का उपदेश है। इस प्रकार उपरोक्त वर्णित स्थूल ध्यान[267]दो प्रकार के हैं। जिससे सद्गुरू का संरक्षण एवं मार्गदर्शन के साथ-साथ समस्त प्रकार के वैभव, ऐश्वर्य, शांति, आनंद, योग सिद्धि एवं आत्मानुभूति की प्राप्ति होती है।

ज्योर्तिध्यान, सुषुम्ना मार्ग में मूलाधार में स्थित सुप्त कुण्डलिनी के ऊपर में जीवात्मा दीपक की ज्योति के रूप में स्थित है। उसी तेजोमय, ब्रह्म रूप, जीवात्मा का ध्यान ज्योर्तिध्यान है। साथ ही भ्रूमध्य में मन के ऊर्ध्व में प्रणव रूप ज्योति विद्यमान है। इसे ही ज्योर्तिध्यान अथवा तेजोध्यान[268] है। जिससे योगी को सिद्धि और आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है। सूक्ष्मध्यान,[269] इस ध्यान में सूक्ष्म मार्ग सुषुम्ना से अतिसूक्ष्म कुण्डलिनी जागृत होने पर उर्ध्वगमन करती हुई भ्रूमध्य में आकर विलीन हो जाती है। जिसका अनुभव योगी को अभ्यास की निरंतर और भाग्य से ही शाम्भवी मुद्रा के साथ इस कुण्डलिनी पर ध्यान करने से संभव हो पाता है। इसे ही सूक्ष्म ध्यान कहा गया है। उपरोक्त तीनों ध्यानों में स्थूल ध्यान से सौ गुना श्रेष्ठ ज्योर्तिध्यान है एवं ज्योर्तिध्यान से भी सौ गुना श्रेष्ठ सूक्ष्म ध्यान है, जो आत्म साक्षात्कार के लिए अमूल्य साधन है।

---

[267] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. पृ. 179-85.

[268] वही, पृ.185-86.

[269] वही, पृ. 186-87.

## 2.5.12 समाधि :-

प्राण का चित्त में लय हो जाना ही समाधि है। जिस प्रकार नमक जल के साथ मिलकर एकरूप हो जाता है। उसी प्रकार प्राण चित्त में, मन का आत्मा में विलीन हो जाना ही समाधि[270] है।

कौलज्ञाननिर्णय में इसे ही नामान्तर भेद से लय, उन्मनी, समरसीकरण आदि कहा गया है। योगी में कुण्डलिनी के ऊर्ध्वगमन से चक्रों के जागरण से उत्पन्न नाद का ऊर्ध्वगमन ब्रह्मरन्ध्र पर्यंत होता है जहाँ क्रमशः भेरी, शंख, मृदंग, वीणा आदि नाद पर सूक्ष्मता से चित्त को लगाने से उसमें क्रमशः शून्यता[271] आती रहती है। तब योगी निश्चलता को प्राप्त होता है। इसके उपरांत स्वतः उत्पन्न सहज में किसी प्रकार के कुम्भक, ध्यान, धारणा आदि की आवश्यकता नहीं रह जाती।

यह अवस्था अकुलवीर[272] कहलाती है। जिसमें सभी प्रकार के बन्धनों, संकल्पों आदि से मुक्त अकुल(निर्लिप्तावस्था) कहलाता है, जहाँ किसी प्रकार का भाव-अभाव नहीं होता, शिव-शक्ति की अखण्डता[273] में स्थापित होकर योगी संसार-मुक्ति से परे समस्त जगत से एकाकार अव्यक्तावस्था में प्रतिष्ठित हो जाता है।

सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार सर्व तत्त्वों में समावस्था अथवा चित्त की निरूद्धावस्था ही समाधि[274] हैं। देह रूपी पिण्ड, परमात्म रूपी ब्रह्माण्ड के साथ संयुक्त होकर अभेदता को प्राप्त करता है इसे ही समरसीकरण कहा गया है। जिससे योगी का देह आरोग्यता, दिव्यता, सिद्धता को प्राप्त कर जीवनमुक्त[275] कहलाता है।

---

[270] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण.पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग,लोनावला, 2017.पृ.130.

[271] बागची प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः.कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.पृ. 51.

[272] वही, पृ.102.

[273] वही, पृ.64.

[274] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ. 43.

[275] वही, पृ.65.

गोरक्षशतकम् के अनुसार प्राणायाम की सिद्धता में प्राण, मन के साथ लीन हो जाता है एवं बारह दिनों तक योगी बिना पूरक रेचक के अपने स्थिर आसन में प्रतिष्ठित रहता है। तब उसे जीवात्मा और परमात्मा की अभेदता रूपी समाधि[276] में स्थित माना जाता है। यह अवस्था सभी प्रकार के आलम्बनों, तन्मात्राओं, बाधाओं, कर्मबन्धनों एवं काल से परे होता है। इस अवस्था में स्थित योगी किसी भी शस्त्र, मंत्र आदि से हानि रहित[277] हो जाता है।

वसिष्ठ संहिता के अनुसार जीवात्मा और परम आत्मा की अभिन्नता ही समाधि है। इसकी प्राप्ति, हृदयकमल के अन्तः में परमात्मा वासुदेव के ध्यान से, हृदय कमल में ही दीपशिखा के ही समान ज्योति स्वरूप ईश्वर के ध्यान से, अपनी आत्मा को परमपुरूष के रूप में अमृत से सराबोर आनंद मग्नता के ध्यान से एवं भ्रूमध्य में स्वर्णमयी ईश्वर के ध्यान से योगी को समाधि की प्राप्ति होती है, जो सभी प्रकार के संकल्प-विकल्प से रहित शून्यावस्था है जहाँ किसी प्रकार का भाव-अभाव नहीं है।[278] जिसमें आत्मा, परमात्मा के साथ अखण्ड रूप से प्रतिष्ठित रहता है।[279] यह आत्मा में सत्यता, शून्यता, अनंतता एवं निगुर्ण ब्रह्म के चिंतन से प्राप्त होता है।

हठप्रदीपिका के अनुसार आदिनाथ के द्वारा उपदिष्ट सवा करोड़ समाधियाँ है। इसे ही नामान्तर भेद से नादानुसंधान, राजयोग, परमपद, शून्याशून्य, निरालंब, अमनस्क, निरंजन, जीवनमुक्ति, सहजा, तुर्या[280] आदि नामों से भी संबोधित किया गया है। इनमें से नादानुसंधान[281] से प्राप्त समाधि उत्कृष्ट है जो आरम्भा, घटा, परिचया व निष्पत्ति नामक चार अवस्थाओं से गुजरता हुआ, विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों की स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्मोत्तर हो रही नाद के

---

[276] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति.पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013. पृ. 67.

[277] वही, पृ. 67-68.

[278] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, पुणे. 2009.पृ. 143.

[279] वही, पृ.113.

[280] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017.पृ.129.

[281] वही, पृ. 155.

साथ, आरंभ के तीन अवस्थाओं में स्थित ब्रह्म, विष्णु और रूद्र ग्रन्थियों का भेदन करते हुए शून्य, अतिशून्य और महाशून्य से शून्यातीत, शिवस्थान में प्राण लय हो जाता है, जिसमें इन्द्रियों का व्यापार समाप्त हो जाते हैं। योगी आरोग्यता, दिव्यता, सिद्धियों का स्वामी एवं ईश्वर के सदृश हो जाता है। इसे ही जीवात्मा, परमात्मा में, जीव, शिव में, शक्ति, शिव में, लय हो जाना कहा गया है।

इन अनुभूतियों को व्यक्त नहीं किया जा सकता किन्तु बाह्य जगत में इसका अनुमान करने के लिए योगी स्वात्माराम ने पानी में नमक का मिल जाना, पानी का दूध में मिल जाना, कपूर का अग्नि के साथ लय हो जाना, खाली घड़े के समान अंदर और बाहर से योगी शून्य और पूर्ण आनंद[282] में स्थिति आदि उपमाओं का दृष्टांत प्रस्तुत कर समझाने का प्रयास किया है।

शिवसंहिता, योगी के द्वारा निज आत्मा में ही अनंत सुख की अनुभूति को समाधि[283] कहा गया है। जिस अवस्था में समस्त दृश्य जगत् आत्मा में विलीन हो जाता है। उपरोक्त अवस्था नादानुसंधान के अंतिम चरण, निष्पत्ति अवस्था में देहस्थ प्राण योगी के वश में होने के कारण अंतःनाद में मन को लगाने से चित्त उस नाद में लीन हो जाता है। तब आज्ञाचक्र में समाधि घटित होती है। इसे लय के नामांतर से भी संबोधित किया गया है। जिसमें समस्त महाभूतों का प्रतिप्रसव होते-होते अविद्या भी परमपद में लीन हो जाती है। इसे ही कुण्डलिनी का अकुल (शिव) के साथ अभेदता[284] के नाम से जाना जाता है,तब योगी की समस्त वृत्तियाँ शांत हो जाती है और वह धीर एवं जीवनमुक्त के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

समाधि परमावस्था है, जो गुरू के मार्गदर्शन में यौगिक अभ्यासों की निरंतरता एवं गुरू कृपा से बडे कठिनता से प्राप्त होता है। समाधि के पूर्व मन में निर्मलता, देहात्ममय का त्याग, ज्ञान की प्राप्ति, आत्मस्वरूप में मन की स्थिरता

---

[282] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 152.

[283] महेशानंद, शर्मा. बाबूराम, सहाय. ज्ञानशंकर, बोधे. रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999. पृ. 22.

[284] वही, पृ. 269.

आदि की अनुभूति होती है। अन्ततः समाधि में प्रतिष्ठित होने से सभी प्रकार के शोक एवं संकल्प, ममत्व आदि समाप्त हो जाते हैं। तब योगी सत् चित्त आनंद स्वरूप, ब्रह्मरूप, नित्य मुक्तावस्था का अनुभव करता हुआ निर्लिप्त हो जाता है। ऋषि घेरण्ड ने समाधि[285] के उपरोक्त उल्लेख के साथ उनके छः प्रकारों की भी विस्तृत चर्चा की है।

ध्यानयोग समाधि, शाम्भवी मुद्रा में बिन्दुस्थान (भ्रमध्य) में आत्मा को ब्रह्ममय मानकर मन को उसी स्थान पर मिलाकर आत्मा को उस आकाश में एवं आत्मा में ही आकाश की विशालता को देखने से जो समाधि घटित होती है, इसे ही सदा आनंद दायक ध्यान योग समाधि कहा गया है।

नादयोग समाधि, योगी भ्रामरी प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर रेचक करते समय गुंजन हो रहे भ्रमरी के नाद को देह के बाह्य एवं अंन्तः दोनों स्थानों पर अनुभव करते हुए अपने मन को उस नाद में लगाता हुआ उसी में लीन हो जाता है। उस समय जो समाधि घटित होती है। इसे ही नादयोग समाधि कहा गया है।

रसानंद समाधि, खेचरी सिद्ध साधक अपनी जिह्वा को तालुमूल में स्थित गुहर में प्रवेश कराता है। जहाँ सभी प्रकार के रसों का स्वाद योगी अनुभव करता है। उस परम आनंद दायक रस में मन को लगाने से जो समाधि घटित होती है। उसे रसानंद समाधि कहा गया।

लययोग समाधि, योगी के द्वारा योनिमुद्रा में स्थित होकर स्वयं को शक्तिरूप एवं परमात्मा को परमपुरूष का अनुभव करते हुए शिव-शक्ति के एकरूपता के अनुभव की प्रगाढ़ता में जो समाधि घटित होती है उसे लययोग समाधि कहा गया है।

भक्तियोग समाधि, स्वयं के हृदय में अपने इष्ट का, श्रद्धा एवं विश्वास के साथ चिंतन करते हुए आनंदानुभव करने से साधक के शरीर में रोमांच होने

[285] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे, एम. एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. पृ. 192

लगता है एवं चक्षु से अश्रुपात होने लगता है। इस श्रद्धा की प्रगाढ़ता में जो समाधि लगती है। उसे भक्तियोग समाधि कहा गया।

मनोमूर्च्छा समाधि, योगी के द्वारा मनोमूर्च्छा प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर मन का विषयों से आलंबन रहित हो जाने से आत्मा के साथ लीन हो जाता है उस समय जो समाधि लगती है वह मनो मूर्च्छा समाधि कहलाती है।

गोरखबानी के अनुसार योगी को दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध में समाधि की अनुभूति नाद-बिन्दु के मेल से उत्पन्न अनहत नाद से प्राप्त होती है। जिसके उपरांत उस योगी के कर्म संस्कारों का क्षय हो जाता है, जिससे वह स्थिर निश्चल और आनंद में स्थित होता है।[286] तब योगी इस जगत के कार्यों को बिना किसी इच्छा के खेल के समान संपादित करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। उपरोक्त समाधि की प्राप्ति में गोरक्षनाथ के वचनों को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि अपने कर्म के प्रति सजगता एवं उसमें संतुलन के साथ योगी इसी जीवन में समाधि का अनुभव कर सकता है यही सहज समाधि[287] के रूप में प्रसिद्ध है।

## 2.6 हठयौगिक साधनाओं का उद्देश्य :-

हठयौगिक साधनाओं का उद्देश्य सिद्धदेह की प्राप्ति है, जिसके अंतर्गत मानव देह का विशेष महत्त्व है। नाथ सिद्धों ने विभिन्न स्थानों पर इसे ही परिपक्व करने की बात कही है, जो कि सामान्य अवस्था में वात, पित्त, कफ आदि के असंतुलन से मृत्यु के आधीन बना रहता है। अतीन्द्रिय ज्ञान का आधार देह ही है। अतः देहसिद्धि अत्यंत आवश्यक है। शरीर में इन्द्रियों की चंचलता का कारण प्राण ही है जो सामान्यावस्था में चित्त में अस्थिरता उत्पन्न करता है। यही आत्मिक उन्नति में बाधक है। नाथ योगियों ने यौगिक अभ्यासों से प्राणजय कर योगाग्नि के द्वारा देह को शुद्ध कर सिद्धदेह का उपदेश किया है।

---

[286] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. सम्पादक और टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ. 65.

[287] वही,पृ. 90.

देह सिद्धि के लक्षणों में देह की निर्मलता, रोग राहित्यता, जड़ता की समाप्ति, देह का कांतियुक्त होना, नयनों में तेज, मुख में सुंदरता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, प्राणजय, चित्त की स्थिरता आदि प्रसिद्ध है। उपरोक्त लक्षण बाह्य है।

आंतरिक लक्षणों में जिस देह में क्षुधा, तृष्णा, कामादि, जरा एवं मृत्यु व्याप्त नहीं होते, उसे ही शुद्ध देह कहा गया है उपरोक्त देह की प्राप्ति के लिए हठयोग में प्राणजय एवं रसायनादि का प्रयोग उल्लेखित है। जिसके सिद्ध हो जाने पर यह अमर देह के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। हठयोगियों के अनुसार सिद्ध देह की प्राप्ति शक्ति की दो विपरीत धाराओं प्राण शक्ति और चित्त शक्ति अथवा प्राण और अपान के मिलन के बिना संभव नहीं है।

जब प्राणायाम का अभ्यास आसन की स्थिरता मिताहार के अनुशासन व गुरू के निर्देशन में आरंभ किया जाता है, तब अभ्यास की निरंतरता में शक्ति के दो वक्र धाराएँ प्राण और अपान इन्द्रियों और विषयों से हटकर सरल पथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। यह क्षण दुर्लभ है। प्राण के सुषुम्ना में प्रवेश से साधक का इन्द्रियों और पंच प्राणों पर नियंत्रण संभव हो पाता है जिससे चंचल चित्त पर नियंत्रण स्थापित होने लगता है।

हठयोगियों के अनुसार इस अवस्था को ब्रह्मचर्य से ही पाया जा सकता है। बिन्दू (शुक्र) पर नियंत्रण के बगैर कुण्डलिनी का जागरण संभव नहीं और बिना कुण्डलिनी जागरण के सिद्ध देह की प्राप्ति असंभव है। प्राचीन समय से ही देह साधना का प्रयत्न चला आ रहा है। जिसमें तांत्रिक और कौलसाधना में प्रसिद्ध वीर साधना और कुल प्रक्रिया भी इस देह साधना अथवा काय साधना का ही प्रकार है। इसमें शरीर और मन का साधन सम्यक रूप से अनुष्ठित किये जाने पर पूर्णरूप से लाभ होता हैं। तब इस देह में काल का प्रवेश नहीं हो पाता एवं यह विकार रहित  होता है।

इस देह सिद्धि के भी दो प्रकार है। प्रथम में देह, बुढ़ापा और मृत्यु को प्राप्त नहीं होता जिसे अपर सिद्ध देह कहा जाता है। नाथ योगियों का कथन है की यह देह समस्त शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है, जिससे इसे लघु और विभू आदि रूप

में बदला जा सकता है। इसे मंत्रों, औजारों आदि अन्य किसी भी शक्तियों से नष्ट नही किया जा सकता और न ही मृत्यु भी इसे प्रभावित कर सकती है।

कौलज्ञाननिर्णय में भैरव ने देवी के प्रश्न पर प्रलयकाल में वज्रयोग[288] के प्रयोग का उपदेश करते हुए कहा है कि जिस देह में जरा-मरण, विषाद, हर्ष, मोह, रोग, मद, लोभ, चिंता आदि नहीं होती, वह योगी वज्रदेह प्राप्त कर स्वयं शिव होकर आकाशवत् हो जाता है  बाह्य जगत से कमल पत्र के समान अप्रभावित रहता हुआ योगीराज  के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

हठप्रदीपिका, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, हठरत्नावली में प्रसिद्ध समस्त हठयोगियों ने इसी सिद्धदेह को प्राप्त कर कालदण्ड से मुक्त हुए हैं। नाथ सिद्धों ने

इसी सिद्धदेह को ही आत्मा कहा है।[289] जिसे प्राप्त करने के लिए गुरू का संरक्षण सर्वोपरि है। हठप्रदीपिका वज्रोली के अभ्यास से देहसिद्धि की प्राप्ति का उल्लेख करता है जो भोग भोगते हुए भी मुक्तिदायक है।[290] केवली कुम्भक के सिद्ध होने पर प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश से आरम्भावस्था में ब्रह्मग्रन्थि (हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना टीका के अनुसार अनाहद चक्र में) के भेदन से आनंद का अनुभव एवं अन्तःशरीर में शून्यानुभव होता है। उस समय योगी को झण-झण की अनाहत ध्वनि सुनाई देती है तब उसका सम्पूर्ण हृदय में शून्यता का अनुभव होता है।  देह दिव्य, तेजस्वी, गंधयुक्त हो जाता है।

किन्तु उपरोक्त देह में मन पूर्णरूप से निर्विकार (वासना शून्य) नहीं हो पाता। उस समय मन को भी ब्रह्मरूप में परिणत करना होता है। जिसमें प्रणव साधना का आलम्बन लिया जाता है यही ब्रह्मोपासना है जिससे देह विशुद्ध चिन्मय स्वरूप में परिणत हो जाता है। इसे ही परसिद्ध देह कहा गया है तभी पूर्णसिद्धता समपन्न होती है।

---

[288] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता  मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934,पृ. 66-67.

[289] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरक्षनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ.126.

[290] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका. कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, पुणे, षष्ठम संस्करण. 2017.  पृ. 114.

उक्त कथन का संबंध नाथ योगियों में सिद्ध चर्पटनाथ पर दिख पड़ता है। वे एक रसेश्वर सिद्ध के रूप में भी प्रसिद्ध रहे है जो रसायन (अभ्रक और पारद) के प्रभाव से अपर सिद्धदेह की प्राप्ति तो कर चुके थे, किन्तु परसिद्धदेह का ज्ञान गुरू महासिद्ध गोरक्षनाथ से प्राप्त हुआ होगा। तभी रसेश्वर सम्प्रदाय से नाथ सम्प्रदाय में कालदण्ड से मुक्त योगी के रूप में प्रसिद्ध हुए। सिद्ध देह से योगी अपनी इच्छानुसार कहीं भी आवागमन कर अपने शिष्यों एवं जगत का हित कर सकने में सक्षम होते हैं उनका अधिकार क्षेत्र विशाल हो जाता है, किन्तु समस्त कार्य सम्पादनोपरान्त समस्त इच्छाओं की पूर्ति हो जाने पर इस देह को संकुचित कर परामुक्ति पद में प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ वह माया से संबंध विच्छेद होकर शक्तिस्वरूप चिदाकार में अवस्थित होता है।

हठयौगिक ग्रंथों में पिण्डसिद्ध, दिव्यदेह, जीवनमुक्त, सिद्धदेह आदि की चर्चा प्राप्त होती है। जैसे सिद्धसिद्धांतपद्धति में आत्मबोध, शुद्धावस्था स्वात्मजागृति का उल्लेख करता है। यह संकल्प-विकल्प, इच्छा आदि से रहित स्वाभाविक चित्तावस्था है, इसे ही मुक्ति कही गयी है।[291] वह अनामा ब्रह्म शक्तियुक्त परमेश्वर अनन्त शक्ति से सम्पन्न है, जो इस जगत के रूप में भी भाषित होता है।

उसी परमेश्वर की महाशक्ति कुण्डलिनी को सिद्धों ने प्रबुद्ध कर लिया है। जिसके प्रभाव से सामर्थवान नाथ सिद्ध जगत में प्रख्यात हुए हैं।[292] इन सिद्धों ने स्वदेह में प्रकाशित उस परमात्मा के आनंदानुभूति से व्यष्टि पिण्ड और समष्टि पिण्ड में अभिन्नता का अनुभव किया है। वे ही पिण्ड सिद्ध के रूप में चिरकाल तक प्रसिद्ध हैं।

वसिष्ठसंहिता के अनुसार निष्काम कर्मानुष्ठान, अमृतरूप ध्यान, परमात्मस्वरूप आत्मा का सोऽहम् और ओं मंत्र के साथ ध्यान, भ्रूमध्य से लेकर

[291] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2014, पृ. 51.
[292] वही, पृ. 66.

कपाल पर्यंत वायु के वर्ण यकार एवं देवता महत्तत्त्व का पाँच घड़ी तक धारणा करने वाला योगी जीवनमुक्त[293] हो जाता है।

## 2.7 नाथ साहित्यों में हठयोग का दर्शन :-

नाथ सिद्धों (योगियों) ने भारत की विभिन्न सम्प्रदायों की भाँति विभिन्न तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर अपने दर्शन प्रस्तुत नहीं किये हैं। इन सिद्धों की मान्यता है कि विभिन्न प्रकार के तर्कों एवं विवादात्मक विषयों में नहीं पड़ते हुए यौगिक साधनाओं में रत रहते हुए आध्यात्मिक अनुभूतियों को ही महत्त्व दिया जाना चाहिये।

इस प्रकार वे दर्शन और प्रतिवादों में तनिक भी विश्वास नहीं करते थे, किन्तु नाथ साहित्यों के साधनाओं, सिद्धांतों एव अनुभूतियों के आधार पर उनके दर्शन का अवलोकन किया जा सकता है। इनमें गोरक्षनाथकृत सिद्धसिद्धांत पद्धति महत्वपूर्ण है। जिसमें कहा गया है कि प्रलयकाल (कर्ता और कार्य की अनुपस्थिति) में अव्यक्त परमब्रह्म में वह शक्ति आश्रित होकर विद्यमान रहती है। उस परब्रह्म को अनामा कहा गया है, जो अव्यक्त है एवं सभी के कारण रूप, स्वयं अकारण है। जो अनादिकाल से स्वयं सिद्ध  है, जो मृत्यु से परे सिद्धों के परम लक्ष्य है। इसी अनामा में सिसृच्छा के कारण शक्तियाँ कार्य करती हैं, तब सृष्टि में विकास की प्रक्रिया आरम्भ होती है। ये शक्तियाँ निजा, परा, अपरा, सूक्ष्मा एवं कुण्डलिनी कहलाती हैं।

उपरोक्त शक्तियों के साथ अनामा में मानस अहलाद, कम्पन, सृष्टि निर्माण का अभिमान एवं वेदनशीलता की अभिव्यक्ति होती है। यहाँ उल्लेखित पंच शक्तियों में कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सहस्रार में नियोजित करना ही नाथ सिद्धों का परम उद्देश्य है। यह कुण्डलिनी सामान्यावस्था में अधोगति करने वाली एवं सांसारिक होती हैं किन्तु हठयोग की साधना से जागृत होने पर योगी को मुक्त कर देती है।

---

[293] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग, संपादित, वसिष्ठसंहिता, परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009. पृ. 110.

उपरोक्त पंच शक्तियों, निजा, परा आदि के मिलने से परपिण्ड शिव का आविर्भाव होता है। यहाँ पर शिव से अर्थ अनामा ब्रह्म से नहीं है, वरन सृष्टि के संचालक एवं संहारक उपाधियुक्त शिव से है। पंच शक्तियों के पंच देव संयुक्त होकर अनादिपिण्ड की उत्पत्ति करते हैं। अनादिपिण्ड से आदि पिण्ड की उत्पत्ति होती है। इसके क्रम में अनादिपिण्ड से परमानंद, परमानंद से प्रबोध, प्रबोध से चिदुदय, चिदुदय से चित्प्रकाश, चित्प्रकाश से सोऽहमभाव की उत्पत्ति होती है। उपरांत महाभूतों (महासाकार पिण्ड) की उत्पत्ति, महाभूतों की उत्पत्ति का कारण आद्यपिण्ड है। जिससे महाकाश, महावायु, महातेज, महासलिल, महापृथ्वी उत्पन्न होते हैं। महासाकार पिण्ड से क्रमषः शिव, शिव से भैरव, भैरव से श्रीकण्ठ, श्रीकण्ठ से सदाशिव, सदाशिव से ईश्वर, ईश्वर से रूद्र, रूद्र से विष्णु, विष्णु से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती हैं।

उपरोक्त देवों के द्वारा ही सृष्टि में सृजन, पालन एवं संहार आदि कार्य संपादित किये जाते हैं। प्रकृतिपिण्ड (शरीर) ब्रह्म के द्वारा महाकाशादि के अवलोकन से नर-नारी के रूप के समान प्रकृति पिण्ड उत्पन्न होते हैं। जिनमें सभी प्रकार के जीव वनस्पति आदि सम्मिलित हैं। पंच महाभूतों के गुणों से युक्त प्रकृति पिण्ड को ही शरीर कहा गया है। इसी देह में ही भूमि, जल, तेज, वायु एवं आकाश अवस्थित हैं एवं अन्तःकरण पंचक, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चैतन्य। दस प्रधान नाड़ियाँ, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि का उनके उत्पत्ति स्थान, प्रवाह आदि का विस्तार है। इस देह में ही इड़ा बायीं नासिका, पिंगला दाहिनी नासिका एवं सुषुम्ना तालु मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक स्थित होती है। इसी में ही प्राण, अपान, समान आदि दस वायुओं का स्थान है। प्राण एवं अपान का पूरक, रेचक एवं कुम्भक के अभ्यास से एक्य करना ही हठयोग है।

शरीर की उत्पत्ति नर एवं नारी के क्रमशः वीर्य एवं रज के संयोग एवं संयोग काल में मनोदशा, पुत्र एवं पुत्री की प्राप्ति, युगल संतान की उत्पत्ति के कारण से लेकर विभिन्न समयांतराल में गर्भ में उस जीव के अंगों, उपांगों, नख, बाल, त्वचा आदि के विकास एवं दसवें मास में गर्भ से जीव की उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख है। उत्पन्न शिशु के शरीर में सप्तधातुओं के नामों के साथ उनके

मात्राओं की चर्चा सूक्ष्म रूप में प्राप्त होता है साथ ही अस्थि के संधियों, रोमकूपों की संख्या तीन करोड़ पचास लाख तक होती है। इस प्रकार माता-पिता के रज और वीर्य, त्रिदोषों (वात, पित्त एवं कफ) एवं सप्त धातुओं आदि से बने इस शरीर का विस्तृत उल्लेख है। उपरोक्त हठयोग के दर्शन क्रम में अनामा ब्रह्म से लेकर मानव देह तक की उत्पत्ति में विष्व ब्रह्माण्ड की उपस्थिति को देखा जा सकता है।

## 2.6.1 पिण्डब्रह्माण्डवाद एवं परमतत्त्व का निरूपण :-

नाथयोगियों ने इस देह को भी अनश्वर माना है। इसी देह में ही विश्व के समस्त ब्रह्माण्ड, सात पाताल, जगत के संचालन में कार्यरत समस्त वर्ण, नवखण्ड, पर्वत, नदियाँ, ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, कीट पतंगे, दानव, सुख, दुःख, बंधन, मोक्ष आदि समस्त चराचर विद्यमान हैं। मानव देह विश्व ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधि है, अतः मुक्ति के लिए मूर्ति पूजा, तीर्थाटन, मंदिर निर्माण आदि साधन व्यर्थ है। स्वयं में स्थित उस परमब्रह्म, अनामा, अव्यक्त परमपद को योग्य सद्गुरू के संरक्षण में हठयौगिक साधनाओं से स्वकीय अनुभव के द्वारा जानना चाहिये। यह विद्वानों के द्वारा बताया नहीं जा सकता। ज्ञानियों के द्वारा समझाया नहीं जा सकता। न ही किसी तर्क का माध्यम लेकर खण्डन-मण्डन किया जा सकता है।

परमतत्त्व, इन्द्रियातीत, मन, बुद्धि, तर्क आदि गोचर जगत की विभिन्न मान्यताओं से अलग है। यह समाधि की उच्चतम अवस्था में अनुभव होता है जहाँ आत्मप्रकाश पूर्णरूप से प्रकट होता है। जिसमें व्यक्तिक चेतना का तादाम्य परम चेतना से हो जाता है। जहाँ मन का संकल्प-विकल्प भी बौने हो जाते हैं, बुद्धि आदि निश्चय नहीं कर सकती। सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिंतनशील विद्वानों के द्वारा भी संकेत मात्र भी नहीं दिया जा सकता। यह सभी प्रकार की उपाधियों से रहित, निर्विकल्प समाधि में स्वप्रकाश के रूप में अनुभव होता है।

परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए सद्गुरू का मार्ग-दर्शन ही केवल उपाय रूप है। इसे गुरू भी नहीं बता सकते इसीलिए इसे स्वसंवेद्य कहा गया है। अर्थात् जिसे स्वयं के द्वारा ही जाना जा सकता है। जिसे जानने के लिए कोई भी माध्यम

सहायक नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे जाना जाता है वह उपाधि रहित, निरालंब है।

## 2.6.2 कुण्डलिनी शक्ति और चक्र :-

अनन्त शक्तिमान परमेश्वर ही विश्व रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करते है। सिद्धों के अनुसार परापर स्वरूप शक्ति ही मानव देह में स्थित है। इस शक्ति कि जागृत करने वाले सिद्ध ही पिण्डसिद्ध के रूप में प्रसिद्ध है। यह शक्ति गुदामार्ग से दो अंगुल ऊपर एवं लिंगमूल से एक अंगुल नीचे चार अंगुल के परिमाप वाला समकोणाकार कंद का स्थान है। इसी कंद के ऊपर मध्यभाग में कुण्डलिनी का वास है। सामान्यावस्था में यह कुण्डलिनी सभी नाड़ियों के उद्गम स्थान में साढ़े तीन फेरे लिये हुए पूँछ को अपने मुख में दबाकर स्थित है।

यह सत्व, रज एवं तम की माता वाणी की देवी एवं विष्णु की स्वर्ण कांतियुक्त शक्ति हैं। यह लाल वर्ण युक्त कामबीज की प्रतीक हैं। इस कंद मध्य में स्थित सुषुम्ना, कुण्डलिनी एवं कामबीज तीनों सम्मिलित रूप से त्रिपुर भैरवी कहलाती है। उपरोक्त तीनों करोड़ों सूर्य एवं चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित है। क्रिया शक्ति एवं ज्ञान शक्ति के रूप में शरीर में ऊर्ध्व, अधः एवं मध्य में भ्रमणशील रहती हुई कभी सूक्ष्म रूप, कभी अग्निशिखा सदृश एवं कभी स्वयंभूलिंग के नाम से जानी जाती हैं। नामांतर भेद से यही व्योमालिनी, खेचरी, वामाख्या, ज्येष्ठा, रूद्रशक्ति, कामाख्या , कुटिलांगी, शक्ति, ईश्वरी अरून्धती कहलाती है।

मानव देह में कुण्डलिनी शक्ति प्रबुद्ध एवं अप्रबुद्ध दो रूपों में स्थित है। अप्रबुद्ध रूप में यह नाना प्रकार की चिंताओं, सांसारिक व्यापार, प्रपंच, निम्नगामी होकर कार्य करती है, परन्तु यह योग साधनाओं से जागृत होने पर उपरोक्त विकारों का त्याग करती हुई ऊर्ध्वगमन करने वाली शक्ति के रूप में प्रसिद्ध होती है। कुण्डलिनी शक्ति में ही सभी तत्वों का वास है। यह जगत की कारण रूपा है। यह शक्ति उर्ध्वगति करती हुई योगी को स्वयं के स्वरूप में

प्रतिष्ठित कर देती है। यह स्थान एवं शक्ति के अनुसार मध्य, ऊर्ध्व एवं अधः नाम के तीन भेद वाली है।

अधःशक्ति, इन्द्रियों की चंचलता एवं विभिन्न प्रकार के इच्छाओं की पूर्ति की चिंताओं के कारण यह शक्ति निम्नगामी होती है। अतः योगियों के द्वारा मूलाधार (गुदाद्वार एवं लिंग द्वार के मध्य स्थान) का आकुंचन करते हुए मूलबंध के अभ्यास से इसकी शक्ति ऊपर उठती है। इस मूलाधार से ही दृश्यमान जगत उत्पन्न हुआ है। अतः मूलबंध से इस अधःशक्ति को योगी द्वारा उर्ध्व किया जाता है। मध्यमा शक्ति कुण्डलिनी का स्वरूप चंचल स्वभावा होने के कारण जीवात्मा को भ्रमणशील बनाये रखती है। वह इसी मध्यमा शक्ति में स्थित होती है।

महासिद्धों के द्वारा इस शक्ति के स्थूल एवं सूक्ष्म दो भेद कहे गये । स्थूल एवं सूक्ष्म कुण्डलिनी, स्थूल रूप में यह शक्ति सांसारिक पदार्थों, भागों आदि स्थूल जगत में भ्रमण करती रहती है एवं उन्हीं पदार्थों को ही अपना स्वरूप समझती है। इसे ही स्थूल (साकार) कुण्डलिनी कहा गया है। सूक्ष्म कुण्डलिनी, योगी के द्वारा जब इस शक्ति को ऊपर उठाया जाता है, तब यह स्थूल से सूक्ष्म रूप में स्पांतरित होते हुए योगी को परमानंद प्रदान करने वाली सूक्ष्म एवं निराकार के रूप में प्रसिद्ध होती है। शक्ति की इन अवस्थाओं को सिद्धों ने जाना है। इस प्रकार सूक्ष्म रूप वाली विषय रहित पराशक्ति युक्त मध्यमा शक्ति कुण्डलिनी को सद्गुरू के मुख से जानना चाहिये। उर्ध्वशक्ति, यह उर्ध्वशक्ति सभी प्रकार के तत्वों से ऊपर होने के कारण नाना प्रकार के सिद्धियों को प्रदान करती है एवं परम-पद प्रदायक है।

सुषुम्ना मार्ग में ऊपर जाती हुई यह शक्ति ऊर्जा केन्द्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा का भेदन करती है तब ये सभी चक्र, कमल रूप में परिणत हो जाते हैं। मूलाधार से लेकर विशुद्धि पंचभूत के साथ तथा ऊपर आज्ञा चक्र चित्त (मन, बुद्धि अहंकार) के साथ संबंधयुक्त होता है। आज्ञा चक्र में हं कार बिन्दु युक्त और सः कार विसर्ग युक्त दो वर्ण होते हैं। जो द्विदल में विद्यमान होता है। कुण्डलिनी के जागृति से मूलाधार आदि दीवारें गिर जाती हैं।

विभिन्न प्रकार की मात्रिकाएँ (अ, आ, आदि) जो पद्मदलों में विद्यमान थी वे सभी गल जाते हैं। उपरांत नाद की उत्पत्ति होती है जो आज्ञाचक्र तक चलती है। आज्ञा चक्र में केवल बिन्दु की स्थिरता से शिव नेत्र भी खुल जाता है। यहाँ से एक मार्ग सहस्त्रदल में परमेश्वर की ओर और दूसरा ब्रह्मरन्ध्र (ब्रह्म) की ओर जाने का मार्ग है। यह ज्ञान अनुभव एवं इच्छा शील परम सत्ता (अनामा) की अभिव्यक्ति है जो अंततः उसी में विलीन हो जाती है।

## 2.6.3 समरसता :-

इसे समरसीकरण भी कहा गया है। जिसका अर्थ होता है। स्वपिण्ड का समष्टि पिण्ड में, अपरपिण्ड का शक्ति पिण्डों में एवं परपिण्ड का मूल कारण, अनामा (शिव) के साथ पूर्ण रूपेण एक हो जाना है। यह एक आदर्श स्थिति है। जिसमें जगत के पदार्थ और आत्मा के भेद मिट जाते है तब व्यक्त और अव्यक्त, आत्म और अनात्म, जीव और शिव में भेद लुप्त हो जाता है, तब योगी को सम्पूर्ण जगत में एकत्व, अभेदता एवं आनंदानुभूति होती है। इसी आनंद में निमग्न योगी शिव स्वरूप हो जाता है। यह प्रक्रिया मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी शक्ति का हठाभ्यास से सहस्त्रार में निपात करने से क्रमशः योगी के अंदर के सम्पूर्ण भेद मिटते-मिटते व्यष्टि पिण्ड एवं समष्टि पिण्ड दोनों में एकता स्थापित हो जाती है। यही तत्त्व और तत्त्वातीत सत्ता चित्त और अचित्त का एकीकरण है। यह भेद रहित अवस्था ही समरस होना है।

उपरोक्त सामरस्यता की प्रक्रिया केवल सद्गुरू के मार्गदर्शन प्राप्त होने पर मन की स्वाभाविक चंचलता दूर होती है। चित्तविश्रांति को प्राप्त करता है। उस समय आत्मा अपनी दीर्घ मोहनिद्रा से जाग जाती है। तब उसमें परमानंद और शुद्ध अनन्त गौरव अनुभव होता है। उस समय अभिन्नता एवं एकत्व की दिव्यता में द्वैतभाव विलीन हो जाता है। योगी में विराट चेतना के उदय से असीम तथा अखण्ड प्रकाश युक्त चैतन्य शक्ति से अखण्ड ज्ञान प्राप्त होता है। योगी का देह सिद्ध पिण्ड में परिणत हो जाता है। समरसता की उपलब्धि में दृश्य तथा अदृश्य का भेद लुप्त हो जाता है। एक ही सत्ता की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ दृष्टिगोचर होती है वही स्वयं अनन्त के प्रत्येक रूप में दिख पड़ता है।

## 2.6.4 द्वैताद्वैतविलक्षणवाद :-

नाथ सिद्धों की परम अनुभूति प्राचीन एवं मध्यकालीन अद्वैतवादी आगम मतों के अनुरूप है। अनामा शिव स्वयं चित् रूप है और उसकी शक्ति चित्त शक्ति । प्रलय काल में यही शक्ति अनामा (शिव) में अभेद रूप से स्थित होती है। परम शिव में सिसृच्छा होने पर परा, अपरा, निजा, सूक्ष्मा, कुण्डलिनी के रूप में शक्ति जगत में कार्य करती है। अतः यहाँ शक्ति जड़ नहीं है। वरन अनामा से अभेदात्मक संबंध है। सम्पूर्ण जगत शक्ति का ही स्फोट है, जो शिव के सृष्टि इच्छा के रूप में कार्य करती है। दोनों अग्नि और ताप की भांति अभिन्न है। इसी विलक्षणता को स्पष्ट करने के उद्देश्य से सिद्धों ने इसे द्वैताद्वैतविलक्षण कहा। यह द्वैतवाद और अद्वैतवाद, उपाधि रहित, संख्या अथवा किसी वाच्य पद से परे है, जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसे ही नाथ योगियों ने सहज कहा है।

## 2.6.5 सहजानंद :-

नाथ योगियों में सहज, परम तत्त्व के रूप में स्वीकृत है। जो शिव-शक्ति आदि से परे अव्यक्तावस्था है। वही चराचर जगत में व्याप्त है। मत्स्येन्द्रनाथ ने उस परम गुरू को प्रमाण किया है, जिनके मार्गदर्शन से सहजानंद को जाना है। जिसे जान लेने से योगी माया-जाल से मुक्त होकर बाह्याभ्यंतर दोनों में ही स्थिर हो जाता है। जल, थल, आकाश आदि सभी स्थान आनंद युक्त हो जाते है। वह योगी गुणातीत, सारयुक्त, शुद्ध, परम अमृत का पान करता है। उसे ही अकुलवीर कहा गया है। यह गुह्य ज्ञान सिद्धनाथ के द्वारा सर्वजनों के हितार्थ उपदेश किया गया है।

जिस तरह से सभी दिशाओं की नदियाँ अन्ततः सागर में विलीन हो जाती है। उसी प्रकार अकुलवीर में सभी धर्मों का समन्वय हो जाता है।[294] इसे सहज कहकर भी संबोधित किया गया है। सहज पंच ज्ञानेन्द्रियादि से परे, भावाभाव से

[294] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिसिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ. 84.

रहित सभी धर्मों का आधार है। जिससे स्वभाव, पूर्ण शांति में स्थिर हो जाता है। यह सभी प्रकार के आधारों से ऊपर है।

सहज में स्थित योगी के लिए सभी प्रकार के शरीराधार हृदय, कण्ठ, घण्टिका, तालु आदि नाद, नाभिचक्र, नासिकाग्र, ललाट, हृदय, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आगम, नाभिचक्र, कण्ठ, सिर, बिन्दु धारणा, नासिकाग्र ध्यान, पूरक, कुम्भकादि, प्रवेश-निर्गमन, मुद्रा धारणा, सूर्य-चंद्र, भाव-अभाव, बिन्दु साधना, पूरक आदि अभ्यास, बाह्य अथवा अंन्तः आदि किसी भी क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रह जाती।[295] योगी एकाकार, चराचर में अचल, निराभासता, निर्विकार, भेदरहित, तत्त्वातीत, शांत, निरंजन, सर्वज्ञ, कार्य-कारण मुक्त, भयातीत, निरालंब व्यापक व समत्व में स्थित हो जाता है। काष्ठ में अग्नि, पुष्प में गंध की भांति वह देह में ही विद्यमान है किन्तु देह से परे है। उसे जान लेने पर से योगी निरालंब[296] हो जाता है।

सहज, अस्ति-नास्ति, मन, बुद्धि, चिंता, काल, ब्रह्मा, रूद्र, शिव-शक्ति, सुख-दुःख, छाया, ताप, शीत-उष्ण, उदय-अस्त, सीमा, तीर्थ से परे है। माता-पिता, वर्ण, स्नान, जप, तीर्थ, धारणा, ध्यान, धर्म-अधर्म आदि सहज (अकुल) में वर्जित हो जाता है। उस योगी का पुनः जन्म नहीं होता वह परमानंद में रमण करता है, उसे ही सहजानंद[297] कहा गया है।

## 2.7 हठयोग पर विभिन्न विद्वानों के मत :-

**गोपीनाथ कविराज :-** हठयोग विद्या आदिनाथ से उद्‌भूत है, जिसके प्रमाण प्राचीन काल में भी प्राप्त होते है। लौकिक दृष्टि से महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ आदि सिद्धों ने मध्यकाल में इसे ही बहुप्रचारित एवं प्रसारित किया था।[298] नाथ योग साधना का चरम आदर्श प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत

---

[295] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिसिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ. 86-87.

[296] वही, पृ.100-03.

[297] वही, पृ. 92.

[298] तिवारी, हंसकुमार. अनुवादित. कविराज, गोपीनाथ. रचित. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2007. पृ.101-102.

के अद्वैतवादी आगम मतों के अनुरूप है, जो पतंजलि, परवर्ती बौद्ध मतों एवं शंकर के वेदांत से मूलतः भिन्न है।[299]

**राहुल सांकृत्यायान :-** बौद्ध धर्म में हुए परिवर्तन एवं विभिन्न प्रकार के तांत्रिक साधनाओं का कालांतर में इस धर्म पर स्वीकृति को मानते हुए हठयोग का बौद्धों पर प्रभाव स्वीकार करते है।[300] साथ ही नाथ योगियों के प्रसिद्ध मठों, साधनाओं आदि का उल्लेख करते हुए भारत के विभिन्न क्षेत्रों बिहार, महाराष्ट्र, बडौदा, तंजोर आदि तक विस्तृत हठयौगिक परम्पराओं की वंशावलियों की महत्ता प्रतिपादित की है।[301]

**डॉ. कल्याणी मल्लिक :-** मध्यकालीन भारतीय इतिहास में नाथ योगियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन योगियों में मत्स्येन्द्रनाथ और उनके योग्य शिष्य गोरक्षनाथ बहुप्रसिद्ध हैं। नाथ योगी अनंत शक्तिवान 'नाथ' के उपासक थे, जिनके आध्यात्मिक चमत्कारों की चर्चा भारत की संस्कृत, हिंदी, मराठी, गुजराती, उड़िया, बंगाली आदि भाषाओं में प्राप्त होती है।[302]

**जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स :-** ब्रिग्स ने योग की परम्पराओं का उल्लेख करते हुए वेदों, उपनिषदों, शैवागम, शाक्तागम, पतंजलि आदि का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए नाथ योगियों पर इनका प्रभाव स्वीकारते हुए इन्हें मूल रूप में शैव माना है।[303]

**हजारी प्रसाद द्विवेदी :-** नाथयोगी मूलतः योगमार्ग के अनुयायी हैं। जिन्होंने अपने साधना मार्ग को सिद्धमार्ग, योगमार्ग, अवधूत मार्ग, योगिनीकौल मार्ग[304] आदि नामों से पुकारा है। गोरक्षनाथ ने इस सम्प्रदाय की देहस्थ चक्रों आदि साधनाओं को, शैव सिद्धांत एवं काश्मीर शैव साधनाओं से हठयोग में

---

[299] अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी (मत्स्येन्द्र विशेषांक). गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर, जनवरी 1992. वर्ष-17. अंक-1-3, पृ.47.

[300] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्व-निबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड, 1937. पृ. 139.

[301] वही, पृ. 161.

[302] मल्लिक, कल्याणी. नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन ओ साधनाप्रणाली. कलकत्ता : कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1950. पृ.01.

[303] डब्लू. जी., ब्रिग्स. गोरखनाथ एण्ड द कन्फटा योगिज. कलकत्ता : वाई.एम.सी.ए. पब्लिशिंग हाऊस 1938. पृ. 272.

[304] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1910. पृ. 01.

व्यवस्थित किया और अपने प्रबल पुरूषार्थ से इस मार्ग के विभिन्न कुरीतियों का उन्मूलन कर दिया।[305]

**परशुराम चतुर्वेदी :-** हठयोग के महासिद्ध गोरक्षनाथ सर्वसमर्थ संगठनकर्ता के रूप में स्वीकृत है। नाथ योगियों की साधनाओं में सम्मिलित प्राणायाम, मंत्र, ध्यान आदि साधनाएँ इन योगियों के पूर्व मार्कण्डेय पुराण, अन्य पुराणों एवं उपनिषदों आदि में भी देखे जा सकते हैं।[306]

**धर्मवीर भारती :-** नाथ सम्प्रदाय में गोरक्षनाथ का स्थान अति विशिष्ट है। जिन्होनें इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया। जो साधनाएँ इस परम्परा में दिखायी पड़ती है, इनका शैव पाशुपत से घनिष्ट संबंध रहा है, जो अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही शैव सिद्धांत की परम्पराओं का निर्वहन करते हैं।[307]

**नागेन्द्रनाथ उपाध्याय :-** नाथ साहित्य भारत की नैतिकता एवं आचार का सजीव रूप हैं, जो वैश्विक मानव समाज को गोरक्षनाथ जैसे चारित्रिक आदर्शों की अति आवश्यकता है। जिन्होंने अपने समय में तथाकथित सिद्धांतों, प्रवृत्तियों, स्वेच्छाचार एवं अमर्यादित जीवन शैली को शुद्ध संयत और अनुशासित कर दिया। इस शैव सिद्धाचार्य की समीक्षा करने पर मालूम होता है कि हिंदी का संत समाज, सूफी समाज, विश्वव्यापक बौद्ध साहित्य से प्रभावित रहा है।[308]

**द्वारिका दास शास्त्री :-** वेषभूषा, प्रतीक, भस्म, त्रिपुण्ड, कर्णकुण्डल आदि के अवलोकन से नाथ सिद्ध शैव जान पड़ते है। जिन्होंने भारतीय आध्यात्मिक तत्त्व दर्शन का संरक्षण किया। भारत का समस्त साहित्य इन योगियों की महत्ता एवं विशेषताओं का उल्लेख करता है।[309]

---

[305] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1910. पृ. 97

[306] चतुर्वेदी, परशुराम. उत्तरी भारत की संत परम्परा. तृतीय संस्करण. इलाहाबाद : भारती भंडार लीडर प्रेस, 1972. पृ. 51-54.

[307] भारती, धर्मवीर, सिद्धसाहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 323.

[308] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ: नाथ साहित्य के परिप्रेक्ष्य में. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 07-08.

[309] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 01.

**आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी :-** नाथ योग सम्प्रदाय का आध्यात्मिक प्रभाव मध्यकालीन भारत के सभी भागों में छा चुका था। यह एक अद्‌भुत शक्तिशाली संगठन था । जिनके देश में प्रायः सर्वत्र सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित थे, जिनका अस्तित्व आज तक है।[310]

**व्रजवल्लभ द्विवेदी :-** हठयोग बीज रूप में कौलमत एवं पाशुपत योग में कृतक शाखा में प्राप्त होते है। जिसे गोरक्षनाथ ने व्यवस्थित रूप प्रदान किया। महाभारत के अनुसार उमापति शिव ही पाशुपत मत के प्रवर्तक हैं । वहीं कौलमत के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ मूलतः शैव हैं एवम् लौकिक सिद्धों की नामावलियों में प्रथम हैं।[311]

[310] अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी (मत्स्येन्द्र विशेषांक). गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर, जनवरी 1992. वर्ष-17. अंक-1-3, पृ. 50.

[311] द्विवेदी, व्रजवल्लभ. तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन. प्रथम संस्करण, भाग-प्रथम. वाराणसी : शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्, जंगमवाडी मठ, 2001. पृ. 215-17.

# अध्याय 3.

# सहजयान

प्रस्तावना

3.1 सहजयान

3.2 सहजयान, उत्पत्ति एवं विकास

3.3 सहजयानी सिद्ध

3.4 सहजयानी साहित्य

3.5 सहजयानी सिद्धों की साधनाएँ

3.6 सहजयानी सिद्धों की दार्शनिकता

3.7 सहजयान पर विभिन्न विद्वानों के मत एवं कार्य

# अध्याय 3.

# सहजयान

## प्रस्तावना :-

सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' से तात्पर्य उत्पन्न होना है। शब्दकोश में सहज शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ प्राकृतिक रूप से, साथ-साथ अथवा एक ही काल में उत्पन्न होना है। नामांतर भेद से इसे ही जन्मजात अथवा स्वभाव भी कहा गया है। तिब्बती भाषा में सहज शब्द सह= ह्लन चिग्, ज= क्येपा से मिलकर बना है। जिसका अर्थ साथ-साथ पैदा होना या उत्पन्न होना है।

सहजयान तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत आने वाला एक सम्प्रदाय है। जिसका विकास वज्रयानी सम्प्रदाय के उपरांत अथवा साथ साथ माना जाता है। सहजयान सम्प्रदाय में सहज, परमलक्ष्य है। प्रज्ञा-उपाय, वज्र-वाराही शून्यता-करूणा, पद्म-वज्र आदि का मिलित रूप है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में जिन साधनाओं, अभ्यासों आदि का माध्यम लिया जाता है, वे ही यान (साधन) के रूप में प्रसिद्ध है। इन सिद्धों ने इस सहज को अव्यक्त कहा है जिसे बताया या समझाया नहीं जा सकता। यह भावाभाव से परे संसार (भव) और निर्वाण के पार है। अनेक स्थानों में इन सहजीया सिद्धों ने इसे ही महामुद्रा साक्षात्कार, निर्वाण, परमपद आदि, भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है। यह सम्प्रदाय तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत माना जाता है, जो वज्रयानी शाखा से अलग होकर विकसित हुई थी।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में चौरासी सिद्धों की सूची में सहजयानी सिद्धों को देखा जा सकता है। इन सिद्धों में लूअिपा (लुईपाद), लीलापा, विरूपा, शबरपा, सरहपा, कण्डालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, कण्हपा, चौरंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तिलोपा, नरोपा, डोम्भीपा आदि प्रमुख सिद्धों के नामों का उल्लेख है। इनकी संख्या चौरासी कही गयी है। सिद्धों की रचनाएँ संस्कृत, मिश्रसंस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्राप्त होता है। इनमें चर्यापद, दोहाकोशगीति,

चर्यागीति और संस्कृत ग्रंथ आदि प्रमुख माने जाते हैं जिनमें लुईपाद रचित चर्यापद, चर्याचर्यविनिष्चय, शांतिपा रचित हेवज्रपंजिका मुक्तावली, कृष्णपादरचित, हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला, डाकार्णव, सहजाम्नायपंजिका, हेवज्रतंत्र, नरोपाकृत वज्रयानी अनुत्तरयोगतंत्र, तिल्लोपाद रचित दोहाकोष, सेकोद्देशटीका, साधनमाला, गुह्येन्द्रतिलकतंत्रम्, चर्यागितिकोश, हेरूकवज्रतन्त्रटीका, हेवज्रपंजिका, योगिनीसंचारटीका, चक्रसंवरतंत्रविवृति, अमृतकणिका, कालचक्रतंत्रम्, षडंगयोग आदि सहजयानी ग्रंथों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

इन सहजयानी सिद्धों ने उपरोक्त रचनाओं के साथ-साथ वज्रयान के महत्वपूर्ण ग्रंथों को भी अपने साधनात्मक आधार के रूप में भी स्वीकार किया है। इन सिद्धों ने गुरू को विशेष महत्त्व देते हुए उनके द्वारा उपदिष्ट साधनाओं को अपने ग्रंथों में वर्णित किया है जिनके अवलोकन से वज्रासन, देहस्थ विभिन्न नाड़ियों का उल्लेख, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रा साधना, प्रज्ञोपाय, बिन्दु साधना, चाण्डाली योग, देहस्थ चक्र, सहजानंद एवं निर्वाण का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके दर्शन एवं प्रमाणों का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि इन्होंने इस जगत को चित्त से ही उत्पन्न माना है जो न तो सत् रूप है और न ही असत् रूप।

सहजयानी सिद्धों के अनुसार ललना और रसना के मिलन की प्रगाढ़ता में प्रज्ञोपाय साधना से बोधिचित्त का मध्यमार्ग से ऊर्ध्वगमन होने से मन और प्राण में क्रमशः स्थिरता आते-आते समस्त सांसारिक ज्ञान एवं पंचमहाभूत भस्मिभूत हो जाते हैं। उपरांत इसी देह में सत्य ज्ञान का उदय होता है। वही सहज है, जो संसार और निर्वाण के परे परमावस्था है। इसे ही सहजानंद भी कहा गया है। इन सिद्धों की साधनात्मक ग्रंथों का प्रकाशन प्रथमतः भारतीय विद्वानों में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने किया एवं इन सिद्धों की सूची प्रथमतः राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत की गयी जो तिब्बत के सुदूर बौद्ध मठ सस्कय विहार से प्राप्त किया गया था। साथ ही इन क्षेत्रों में डॉ. प्रबोधचंद्र बागची, गोपीनाथ कविराज, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. शशिभूषण दास गुप्त, डॉ. द्विजराम

यादव, डॉ. व्रजवल्लभ द्विवेदी, डॉ. धर्मवीर भारती, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, काशीनाथ न्यौपाने आदि विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन सिद्धों की रचनाओं पर भारतीय पुरातत्व एवं भाषा के विभिन्न विद्वानों एवं पाश्चात्य के विभिन्न विद्वानों ने भी महत्वपूर्ण रूचि दिखलाते हुए विभिन्न रचनाओं का प्रकाशन कर इस क्षेत्र में विशेष योगदान दिया।

## 3.1 सहजयान :-

सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' से तात्पर्य उत्पन्न होना है।[312] शब्दकोश में सहज शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ प्राकृतिक रूप से, साथ-साथ अथवा एक ही काल में उत्पन्न होना है। नामांतर भेद से इसे ही जन्मजात अथवा स्वभाव[313] भी कहा गया है। तिब्बती भाषा में सहज शब्द सह= ह्लन चिग्, ज= क्येपा से मिलकर बना है। जिसका अर्थ साथ-साथ पैदा होना या उत्पन्न होना है।

सामान्य अर्थों में किसी वस्तु और उसके गुण का साथ-साथ होना स्वाभाविक है। यह उस वस्तु का आंतरिक गुण है। वस्तु का गुण के साथ और गुण का वस्तु के साथ संबंध स्वाभाविक है। जैसे सूर्य के साथ गर्मी का संबंध अथवा चंद्र के साथ शीतलता का संबंध है। यहाँ पर सूर्य के साथ गर्मी का संबंध सहज, स्वाभाविक (प्राकृतिक) है। यह किसी के द्वारा प्रदत्त अथवा बाद में आयी हुई नहीं हैं, वरन् साथ-साथ ही उत्पन्न हुए हैं व उनका अस्तित्व भी साथ-साथ ही हैं।

सहजयान तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत आने वाला एक सम्प्रदाय है। जिसका विकास वज्रयानी सम्प्रदाय के उपरांत अथवा साथ-साथ माना जाता है। सहजयान सम्प्रदाय में सिद्धों ने सहज को प्रज्ञा-उपाय, वज्र-वाराही शून्यता-करूणा, पद्म-वज्र आदि का मिलित रूप माना है, जो साथ-साथ उत्पन्न होते हैं। बौद्ध धर्म अथवा सम्प्रदायों के विभिन्न शाखाओं के अंत में यान शब्द का प्रचलन

---

[312] कृष्णनाथ. बौद्ध निबन्धावली. (दर्शन). प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1997. पृ. 84.

[313] दीक्षित कृष्णकांत. उपाध्याय, सूर्यनारायण. संकलनकर्ता. बृहत् शिक्षार्थी हिंदी-हिंदी शब्दकोश, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012. पृ.1293.

आम है। जैसे- तंत्रयान, वज्रयान, सहजयान आदि यान का अर्थ सरल शब्दों में एक ऐसा माध्यम होता है, जो किसी व्यक्ति, वस्तुओं आदि को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचाने के लिए जिस माध्यम की सहायता ली जाती है, उसे यान कहा जाता है। जैसे जलयान, वायुयान आदि उसी प्रकार तांत्रिक बौद्ध परम्पराओं में यान का अर्थ साधन से है, जो किसी निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति में सहायक हो।

सहजयान में सहज एक परमलक्ष्य है। उस लक्ष्य की प्राप्ति में जिन साधनाओं, अभ्यासों का माध्यम लिया जाता है वे ही यान (साधन) हैं। सहजयानी सिद्धों ने इस सहज को अव्यक्त कहा है, जिसे बताया या समझाया नहीं जा सकता। जिसे किसी भी माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। सहज, भाव अथवा अभाव से परे है। संसार (भव) और निर्वाण के पार है। सहजयानी सिद्धों ने इस शब्द को अनेक स्थानों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है। जो प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, सूर्य-चंद्र, कमल-कुलिश, स्त्री-पुरूष, भव-निर्वाण, आलि-कालि, मणि-पद्म आदि का सम्मिलित रूप हैं।

उपरोक्त सूर्य-चंद्र आदि की प्रगाढ़ता में सहज तत्त्व उदित होता है। जो अद्वय स्वरूप है। ऊपर प्रतीकों में भले ही दो की अभिव्यक्ति हो रही हो, परंतु मूलतः वे एक ही है, दोनों अभिन्न हैं। इनमें उपरोक्त दोनों एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। उपरोक्त प्रज्ञा-उपाय आदि युग्म एक-दूसरे के पूरक है।

प्रज्ञा के बिना उपाय और उपाय के बिना प्रज्ञा व्यर्थ है। दोनों के संयोग से ही सहज की प्राप्ति संभव हो पाती है। सहजयानी सिद्धों ने इस सहज को विभिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न नामों जैसे महामुद्रा साक्षात्कार, महासुख, निर्वाण, सुखराज[314] आदि भी कहा गया है। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय, भाव-अभाव आदि लुप्त हो जाते हैं, अर्थात् निर्विकल्प अवस्था ही सहज है। इस अवस्था में मन का किसी भी विषय से सम्बन्ध नहीं रहता अर्थात् मन का विषय रहित विचार शून्यता की अवस्था है। मन की उपस्थिति में संकल्प-विकल्प का उधेड़बुन

[314] कविराज, गोपीनाथ.भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007. पृ.87.

चलता रहता है, किन्तु मनोलय हो जाने से यह खसम अर्थात् आकाश के समान व्यापक हो जाता है। जहाँ शून्यता विद्यमान है, वही महासुख का वास है।

सिद्धों ने इस सहज को स्वभाव कहा है, एवं जगत को भी स्वभाव से ही उत्पन्न माना है। कोई यहाँ कर्ता नहीं, इस बात का ज्ञान होना ही महामुद्रा की प्राप्ति है। यह अवस्था काल के अतीत है। सिद्धों ने इसकी प्राप्ति के क्रम को भी व्यक्त किया है। इस क्रम में क्रमशः चार आनंदों की चर्चा हैं, जिसमें सहज आनंद अंतिम व पूर्ण आनंदावस्था है। सहजसाधना की अवस्था में प्रथमतः आनंद फिर परमानंद उसके उपरांत विरमानंद अंतिम में सहजानंद अथवा सहज की प्राप्ति होती है। यहाँ आनंद और परमानंद राग युक्त, विरमानंद विराग युक्त है, वहीं सहजानंद राग और विराग से परे भाव और अभाव, संसार एवं निर्वाण से परे की अवस्था है।

सहज, कर्मकाण्ड, मंत्र, मण्डल, पूजा, भावना आदि से परे की स्थिति है। काय्, वाक् एवं चित्त आदि के माध्यम से इसे समझाया जाना संभव नहीं है। यह भावाभाव से परे शून्यावस्था है। यह न आदि है न ही मध्य और न ही अंत। इसमें न तो अपना अस्तित्त्व है, और न ही पराये का, न इसे जन्म कहा जा सकता है, और न ही मृत्यु। यह न ही भव है, और न ही निर्वाण। इसे कई स्थानों पर सिद्धों ने महासुखराज कहकर पुकारा है। गुरू का सहजयानी परम्परा में विशेष महत्त्व दिखाई पड़ता है। इसे एक मात्र उसी के संरक्षण, मार्गदर्शन से ही जाना जा सकता है। गुरू का स्वरूप ही प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा का मिलित रूप है एवं उसका उपदेश ही मौनमुद्रा है।

मौनमुद्रा के विषय में सिद्धों का कथन है कि जिसे बताया अथवा समझाया न जा सके इसकी अनुभूतियों तक इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त आदि की पहुँच नहीं होती।[315] तब यह कैसे सम्भव है कि इसे व्यक्त किया जा सके। इसकी साधना सहजयानी परम्परा में ही प्रचलित है। अनुभवशील सिद्धों ने अपनी रचनाओं में सहज की साधना, अनुभूति एवं दर्शन आदि को दोहों, पदों व गानों आदि के रूप

[315] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007. पृ. 88.

में व्यक्त किया है। जिन्हें चर्यापदों, दोहाकोशों एवं सहजयानी ग्रंथों आदि में अवलोकन किया जा सकता है। सिद्धों के अनुसार संसार का स्वभाव भी सहज है। इस सहजावस्था की प्राप्ति में जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है, वह सहज मार्ग है। इस मार्ग से उस सहज को जिन्होंने प्राप्त कर लिया वे, सिद्ध हो गये और वे सहजयानी सिद्ध कहलाये। इस प्रकार सिद्धों के समूहों को सहजयानी सम्प्रदाय कहा जाने लगा।

सहज, सहज कहा गया है जो नैसर्गिक है। परंतु  इसकी प्राप्ति में साधनाओं की सहायता आवश्यक है। सिद्धों ने इसकी प्राप्ति के लिए मार्ग बताते हुए कहा है कि उस महासुख की अभिव्यक्ति स्थान उष्णीष कमल[316] में है। जहाँ तक बिन्दु साधना (ब्रह्मचर्य) की साधना से ही पहुँचा जाना संभव है। उस उष्णीष स्थान पर मध्यपथ से ही पहुँचा जा सकता है।

सिद्धों ने इस मार्ग के पथिकों को सावधान करते हुए कहा है कि केवल दाहिनी अथवा बायीं मार्ग का अनुसरण करने वाले महासुख में रमण नहीं करते और न ही उन्हें सहज की प्राप्ति होती है। वरन् मध्यमार्ग से दाहिनी एवं बायीं क्रमशः ललना एवं रसना का संतुलन करते हुए बिन्दु के ऊर्ध्वगमन से उष्णीष कमल तक क्रमशः साधना की प्रगाढ़ता में ही पहुँचना संभव हो पाता है, जो महासुख अथवा सहज का स्थान है।

यह मार्ग दुरूह है। इसे ही सिद्धों ने कई स्थानों पर अवधूती नाम से पुकारा है। साथ ही कहा है कि यह मार्ग सामान्यावस्था में अवरूद्ध है, जहाँ दाहिनी और बायीं मार्ग अर्थात् ललना एवं रसना आकर मिलती है।

ललना एवं रसना के मिलन स्थान पर ही अवधूती में संचार होता है एवं अवरूद्ध प्राय मार्ग क्रमशः ललना एवं रसना के मिलन की प्रगाढ़ता से पथ सरल हो जाता है। इसी पथ में चार प्रमुख निर्माण, धर्म, सम्भोग एवं महासुख चक्र अवस्थित हैं। अतः इस अवधूती को ही आनंद का स्थान, शून्यपथ, वज्रपथ, अद्वयमार्ग आदि से भी संबोधित किया गया है।

---

[316] द्विवेदी, मुकुन्द. संपादित. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. वाल्यूम 5. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.पृ. 112.

सिद्ध कृष्णपादाचार्य ने इस अवधूती को 'बोधिचित्त का वहन करने वाली महासुखप्रदायिका[317] कहा है। इन ललना एवं रसना को अनेक स्थानों पर इन सिद्धों ने क्रमशः प्रज्ञा एवं उपाय, चंद्र-सूर्य,[318] पद्म-वज्र, स्त्री-पुरूष, वामाशक्ति एवं दक्षिण शक्ति आदि नामों से पुकारा है। उपरोक्त वज्र-पद्म के संयोग से बोधिचित्त (बिन्दु) को वज्रपथ पर स्थिर करने में समर्थ होकर ब्रह्मनाड़ी में बिन्दु को परिचालित कर दृढ़ और स्थिर कर सके वे ही परमयोगी है। उन्होंने ही धर्म का वास्तविक स्वरूप जाना है। इन्द्रियसुख में निमग्न लोग उस तत्त्व ज्ञान को जान नहीं पाते।

बोधिचित्त ही सभी प्रकार के सिद्धियों का मूल है। इसके पतित होने पर समस्त सिद्धियों से वंचित होना पड़ता है। देह में कंकालदण्ड ही मेरूगिरी है, उसके मध्य में स्थित शून्यनाड़ी ही गिरीगह्वर है, इसे ही नामांतर भेद से आकाश कहा गया है, यहाँ पहुँचते ही बोधिचित्त स्थिर हो जाता है। यह प्राण और अपान[319] के स्थिर होने से ही संभव हो पाता है। प्राणापान ही शुक्ल और कृष्ण पक्ष का सूचक हैं। जिनमें क्षीणता और वृद्धि क्रमशः जारी रहती है इसीलिए दोनों काल का सूचक है। शून्यमार्ग ही एक मात्र काल से मुक्त करने का मार्ग है। प्राण और अपान को ही ललना और रसना कहा गया है।

उपरोक्त ललना, रसना एवं अवधूती सहजयानी ग्रंथों में विभिन्न नाड़ियों में प्रधान है। जिनमें अवधूती विशिष्ट है। यह ललना और रसना नाड़ियों के मध्य स्थित है।[320] अवधूती का ही अशुद्ध रूप ललना और रसना है। वज्रजाप के द्वारा दोनों का शोधन नाड़ी शुद्धि का ही नामांतर है। अवधूती मार्ग से उष्णीष कमल तक पहुँचे हुए गुरू को वज्रधर की संज्ञा दी गयी है। जो सदैव सहज में रमण करते हैं। जिनका स्थान उष्णीष कमल के पद्म दल के मध्य है।

---

[317] महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिकायोगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. प्रथम कल्प. प्रथम पटल /13. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थानम्, सारनाथ, 2006.

[318] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007. पृ. 88.

[319] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय सस्कृति और साधना. चतुर्थ संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2009. पृ. 267.

[320] महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम कल्प. प्रथम पटल/13. प्रथम संस्करण केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, वाराणसी. 2006.

सहज की चर्चा चौरासी सिद्धों की रचनाओं व उनकी प्रसिद्धियों में सम्मिलित हैं। सिद्धों की परम्परा, साधना, रचना एवं अनुभूतियों का संग्रह स्थान प्रधान रूप से तिब्बत का तंग्युर क्षेत्र है,परन्तु इन सिद्धों एवं उनकी साधनाओं का सम्बन्ध तिब्बत से पूर्व भी भारत के कामरूप, बंगाल, विक्रमशिला, बिहार, उड़ीसा आदि में प्रचलित व प्रसिद्ध रही हैं।

## 3.2 सहजयान, उत्पत्ति एवं विकास :-

महात्मा बुद्ध के निर्वाण उपरांत अनुयायिओं द्वारा उनके उपदेशों को आदर्श मानकर उसी के अनुरूप चलकर ही निर्वाण की प्राप्ति संभव होने की मान्यता पर विश्वास रखने वालों को थेरवादी कहा गया। जिसमें विभिन्न नीति, नियमों का पालन करना अनिवार्य होता था। इस पर भिक्षुओं के एक दूसरे समुदाय की स्वीकृती उपरोक्त थेरवादियों के विपरीत थी। उनकी मान्यता थी कि लक्ष्य बुद्धत्त्व की प्राप्ति है। यह वर्ग संघ के कड़े नियमों के खिलाफ थे, जो स्वतंत्र विचार रखते थे। जिनकी साधनाओं में कड़े नियमों की अपेक्षा थोड़ी सरलता थी, जिसे महायानी (महासांघिक शाखा) शाखा कहा गया। महासांघिकों की मान्यता थी कि बुद्ध के मूल उपदेशों की अनुपालना से निर्वाण की प्राप्ति में कई जन्मों का समय लग सकता है। स्वयं महात्मा बुद्ध को कई जन्मों के उपरांत निर्वाण की प्राप्ति हुई थी, परंतु तंत्र मार्ग से इसी जन्म में ही निर्वाण की प्राप्ति संभव है।

साथ ही थेरवादी संघ के नियम आदि, समाज के सभी वर्गों, सम्प्रदाय, उम्र आदि के लिए अनुकूल नहीं बैठ रहा था। महायानी शाखा ने समय के साथ-साथ, अपने साधना पद्धतियों को समाज के अनुकूल किया, जिससे गृहस्थों, सैनिकों, स्त्रियों और जन सामान्यों में इस तंत्र साधनाओं की स्वीकृती बढ़ने लगी। इस प्रकार बौद्ध धर्म मूलतः दो शाखाओं, थेरवाद (स्थवीरवाद) और महायान दो भागों में विभाजित हो गया। इन्हें क्रमशः हीनयान और महायान के नाम से भी जाना जाता है। महायानी साधकों ने महात्मा बुद्ध के मूल उपदेशों पर विश्वास करने वाले साधकों को स्थवीरवादी अथवा हीनयान कहा और वही अपने मार्ग को महायान नाम दिया इन दोनों यानों के कई नाम प्राप्त होते हैं। इन्हें ही क्रमशः कठिनयान और सहजयान के नाम से भी जाना जाता था।

किमुर के अनुसार सहजयान का प्रयोग सर्वप्रथम नागार्जुन ने किया था।[321] किमुर द्वारा संपादित नागार्जुन के दशभूमिविभाषा शास्त्र में यह कहा गया है कि कठिन मार्ग वह मार्ग है, जिससे निर्वाण की प्राप्ति अधिक दिनों के साधना के उपरांत प्राप्त होता है, परन्तु सहजमार्ग से विश्वास, भावना एवं श्रद्धा के बल पर शीघ्र ही निर्वाण तक पहुँचा जा सकता है।

नागार्जुन ने अनेक भविष्यत् बुद्धों का नाम लेते हुए अमिताभ बुद्ध का विशेष रूप से उल्लेख किया है। साथ ही कहा गया कि जो अमिताभ बुद्ध का नाम लेगा वह निर्वाण को प्राप्त करेगा। इस प्रकार नाम का जप, नाम का स्मरण, नामगायन को बाताते हुए इसे ही सहजमार्ग कहा गया। इस तरह किमुर की मान्यता है कि महायानी सम्प्रदाय के प्रवर्तक नागार्जुन ने सहजयान की नींव रखी।

महायानी तांत्रिक परम्परा ने यह भी स्वीकार किया है कि बुद्ध ने स्वयं एवं उनके बोधि अवतारों ने तंत्रों की शिक्षा साधकों के योग्यताओं के आधार पर प्रदान की थी। ये उपदेश सारनाथ, धान्यकटक आदि स्थानों में स्वीकार किये गये थे। बौद्ध धर्म परम्परा में महायान के अंतर्गत तांत्रिक साधना विधियों, समाधि, ऐंद्रजालिक सिद्ध, देवी, देवताओं की कल्पना आदि आचार ललितविस्तर, लंकावतार, तथागतहुह्यक, दशभूमीश्वर, गुह्य समाज तंत्र आदि ग्रंथों में अवलोकन किया जा सकता है। जिससे बौद्ध धर्म के विभिन्न यानों में तंत्र साधनाओं का विकास होते चला गया। धर्मसंग्रह के अनुसार यान तीन हैं- श्रावकयान, प्रत्येक बुद्धयान और महायान, महायान के अंतर्गत दो नय प्रज्ञापारमितानय और मंत्रनय आते हैं। वही मंत्रनय के अंतर्गत वज्रयान का संबंध गहरा है।[322] हरप्रसाद शास्त्री के द्वारा प्रथमतः प्रकाशित किये गए सहजयानी सिद्ध सरोहवज्र व कृष्णपादाचार्य के रचनाओं का उल्लेख करते हुए बताया गया कि सहजयान सम्प्रदाय, वज्रयान के समकालीन था।[323]

---

[321] कृष्णनाथ. बौद्ध निबन्धावली. (दर्शन). प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ 1997. पृ. 92-93.

[322] वही,पृ.86.

[323] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार -राष्ट्र भाषा -परिषद्, 2007.

वज्रयानी सम्प्रदाय का, मंत्रयान से अधिक निकटता दिख पड़ती है। वज्रयान में मंत्रों का प्रयोग, मण्ड़लों का निर्माण, यंत्र निर्माण, कवच बनाना, हस्तमुद्राओं आदि कर्मकाण्डों की चर्चा है, परंतु सहजयान में इन मंत्र, मण्डल आदि कर्मकाण्डों की उपेक्षा की गयी जिससे क्रमशः उनकी उपयोगिता कम होने लगी। वज्रयानी साधनाओं में अवलोकितेश्वर पूजा का विधान भी शामिल था। जिनमें अवलोकितेश्वर के हाथों में रखे शंख, चक्र, गदा व कमल आदि के साथ मूर्ति के भाव भंगिमा को मुद्रा रूप में स्वीकार किया जाता था, परंतु सहजयानी सिद्धों के मध्य इसका स्वरूप बदलने लगा था।

कालांतर में सहजयानियों ने स्त्रियों को संगीनी के रूप में अपनाते हुए पुरूष की शक्ति के रूप में स्वीकार कर इन्हें मुद्रा की संज्ञा देने लगे। वज्रयानी एवं सहजयानी चौरासी सिद्धों की प्राप्त चित्रावलियों में उनके साथ स्त्रियों का चित्र भी प्राप्त होता है। सहजीया सिद्ध वज्रयान की कठिन साधनाओं की अपेक्षा सरल, सहज नैसर्गिक जीवन को महत्त्व देते थे। इन सिद्धों की साधनाओं और लेखों में वज्र तत्वों का स्थान क्रमशः सहज तत्वों ने ले लिया था।

सहजयानी चौरासी सिद्धों की रचनाओं, हस्तलिपियों, साधना, लिपि, भाषा, दर्शन आदि पर भारतीय और पश्चात्य विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य कर इन सिद्धों पर महत्वपूर्ण प्रकाश ड़ाला है। विभिन्न प्रमाणों एवं समकालीन सिद्धों की रचनाओं, उनके भाषा शैली आदि के आधार पर, इन सिद्धों का काल निर्धारण नौवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी मध्य स्वीकार किया जाता है। भारत में सर्वप्रथम सहजयानी सम्प्रदाय की रचनाओं और उनकी साधनाओं पर कार्य करने वाले महामहोपाध्याय हरप्रसाद के अनुसार, सहजयान सम्प्रदाय नौ वीं से तेरहवीं शताब्दी में अपने चरम पर था।[324]

---

पृ. 84.

[324] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 369.

## 3.2.1 वज्रयान व सहजयान सम्प्रदाय में अंतर :-

सर्वसामान्य की सुविधा एवं उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए महायान साधनात्मक दृष्टि में दो नय पारमितानय और मंत्रनय में विभक्त हो गया। मंत्रनय में तांत्रिक साधनाएँ विकास पाने लगी एवं कालांतर में इसमें वज्रकाय, गुह्य साधनाओं का विकास होने से इसे, वज्रयान नाम दिया जाने लगा। इस प्रकार मंत्रनय के अंर्तगत वज्रयान सहजयान व कालचक्रयान सम्प्रदाय विकसित होने लगा वज्रयानी शाखा मंत्रयान के निकट है। जिनमें मंत्र, मण्डल, धारणी, मूर्ति, आदि कर्मकाण्ड़ों को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, परंतु सहजयानी सिद्धों ने वज्रयान की इस कड़े नियमों सिद्धांतों के स्थान पर अपने साधनात्मक तत्वों की शब्दावलियों में सहज को अधिक स्थान प्रदान किया है, जैसे सहजमार्ग, सहजकाय, सहजसुख आदि

सहजयानी सिद्धों ने वज्रयान की बाह्याचार का विरोध अपने लोक रचनाओं, कविताओं, दोहों, पदों में भी किया है। इस प्रकार वज्रयान से ही कठिन कर्मकाण्ड आदि को अस्वीकार करते हुए बौद्ध साधुओं का एक दल उठ खड़ा हुआ, इसे ही शशिभूषण दास गुप्त ने योगियों का एक दल कहा है।[325] जिन्होंने अपने को सहजमार्गी कहा। इनमें लुईपा, सरहपा, जालंधरिपा, तिलोपा, शबरपा, कान्हुपा, नरोपा, शांतिपा आदि सहजयानी सिद्धों के चर्यापदों, चर्यागीतियों, दोहाकोशों और उनकी अन्य रचनाओं में देखा जा सकता है। जिनमें क्रमशः वज्र शब्दों के स्थान पर सहज शब्दों ने स्थान ले लिया।

बौद्ध तंत्रों की साधनाएँ मुख्यतः क्रिया, चर्या, योग एवं अनुत्तर योग मिलाकर चार भागों में विभक्त मानी जाती हैं। तांत्रिक बौद्ध परम्परा में सहजयान सम्प्रदाय अनुत्तरयोग तंत्र के अंतर्गत आती है।

---

[325] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 367.

## 3.3 सहजयानी सिद्ध :-

सहजयान की साधना के उपरांत प्राप्त सिद्धियों के कारण इन्हें सहजयानी सिद्ध कहा जाने लगा। इन सिद्धों की संख्या चौरासी मानी जाती हैं। जिनकी चित्रावली सहित सूचना सर्वप्रथम राहुल सांकृत्यायन ने अपने तिब्बत यात्रा के दौरान सस्क्य विहार, तिब्बत से प्राप्ति के उपरान्त प्रस्तुत की थी।[326] इन सिद्धों को मध्यकालीन भारतीय साधना में प्रमुखता से गिना जाता रहा है।

प्राथमिकता एवं प्रसिद्धि के आधार पर इनके नाम क्रमशः लुईपाद (लुहिपा), लीलापा, विरूपा, शबरपा, सरहपा, कण्डालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, कण्हपा, चौरंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तिलोपा, नरोपा, डोम्भीपा आदि। इनकी परम्परा का आरंभ भारत के मध्यकालीन इतिहास के अंतर्गत आता है, जो तिब्बत, नेपाल आदि में क्रमिक विकास पाते रहे हैं। इनमें से आरंभ के आदि सिद्धों में लुहिपा (लुईपा), सरहपा, जालंधरिपा, कृष्णपाद आदि भारतवंशी हैं। इसकी जानकारी वर्णरत्नाकर, सस्क्य सूची, हठयौगिक हठप्रदीपिका आदि से प्राप्त होते हैं।

इन ग्रंथों में वर्णरत्नाकर व हठप्रदीपिका दोनों संस्कृत में प्राप्त होते हैं। सहजयानी सिद्धों का यह सम्प्रदाय समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों आदि से आते थे। जिनमें सम्प्रदायगत भेद नहीं थे। इनकी साधनाएँ कामरूप, बंगाल, वाराणसी, उड़ीसा, बिहार, महाराष्ट्र, तिब्बत, नेपाल, श्रीपर्वत आदि स्थानों पर प्रचलित थी। ये भ्रमणशील हुआ करते थे, और कभी अकेले तो कभी संघ में हुआ करते थे। उपरोक्त सभी सिद्ध समकालीन नहीं रहे, किन्तु इनमें से चौरासी बहुप्रसिद्ध थे। इनके उपरांत भी सिद्धों की परम्परा प्रचलन में थी।

## सिद्ध लूअिपा (लुईपाद) :-

लूहिपा के विभिन्न नामों अथवा ध्वन्यन्तरों में लुईपाद, लुयीपा, रोहितपाद, लोहितपाद आदि प्राप्त होते हैं। तिब्बती बौद्ध विहार सस्क्य सूची में

---

[326] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 44.

चौरासी सिद्धों में लूहिपा का स्थान प्रथम है।[327] तिब्बत के महासिद्धों में लुईपाद का नाम प्राप्त होता है। मुनिदत्त ने तिब्बती सिद्धों की चर्चापदों का संकलन किया था, एवं उन पर इनकी संस्कृत में टीकाएँ भी प्राप्त होती हैं। डॉ. धर्मवीर भारती ने मुनिदत्त के एक श्लोक का संदर्भ देते हुए लुईपा को चौरासी सिद्धों में प्रथम माना है।[328]

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री लुईपाद का काल नौ वीं शताब्दी बताते हुए, इन्हें सहजिया मत का प्रचारक मानते हैं। साथ ही चर्याचर्यविनिश्चय को आधार बनाते हुए सिद्धों में प्रथम माना है। उपरोक्त शास्त्री जी के कथन के समान ही विनयतोष भट्टाचार्य भी तांत्रिक पीठ उड्डियान का संदर्भ देते हुए इन्हें, सिद्धों में प्रथम माना है।[329]

तिब्बती सिद्धों की चार्यापदों एवं दोहाकोशों पर कार्य करने वाले इतिहासकार प्रबोधचंद्र बागची ने लुईपाद और मत्स्येन्द्रनाथ को अभिन्न माना हैं। तेन्जुर (तंजोर) के स्रोतों में इन्हें बंगाली के साथ महायोगीश्वर एवं योगिनीसंचर्या के प्रवर्तक माना जाता है। नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने लुईपाद को बौद्ध सिद्धों में प्राचीन एवं प्रभावशाली सिद्ध कहा है। लुईपाद, दारिकपाद एवं डोम्बिपा के गुरू एवं शबरीपा के समकालीन थे। राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बती स्रोतों से सिद्धों के गुरूओं एवं उनके शिष्यों की परम्परा की सूची प्रस्तुत की है, जिसमें लुयीपा के शिष्यों में वज्रघंटापा, कच्छपा, जालंधरपा, कान्हुपाद, गुह्यपा, विजयपा, तिलोपा, नरोपा आदि का क्रमशः उल्लेख है,[330] साथ ही राहुल सांकृत्यायन ने अनेक स्थानों पर लुईपाद को सिद्धों में प्रथम, महिमाशाली एवं प्रसिद्ध सिद्ध नाम से संबोधित कर उल्लेख किया है।

---

[327] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937, पृ.144 क .

[328] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 25.

[329] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 77.

[330] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2009.पृ. 25

तिब्बती स्रोतों में इन्हें किसी सिंहल प्रदेश के राजा का मंझला पुत्र कहा गया है। जो राज्याभिषेक होने के उपरांत सब छोड़कर भिक्षुक हो गए एवं शमशान में डाकिनी साधना एवं केवल मछली के आँतों का आहार लेते हुए, तांत्रिक साधना सम्पन्न कर सिद्धियों की प्राप्ति की ।

## सरहपाद :-

सरहपाद को ही नामांतर भेद से राहुलवज्र, सरोरूहपाद, सरोजवज्र, राहुलभद्र आदि से संबोधित किया गया है।[331] तारानाथ ने भी इन्हें महा आचार्य, महाब्राह्मण आदि नामों से पुकारा है। तिब्बती स्रोतों से प्राप्त चौरासी सिद्धों में इनका स्थान छठवें नम्बर पर प्राप्त होता है।[332]

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सरह (सरहपा) नाम से प्रसिद्ध होने के पूर्व राहुलभद्र एवं सरोरूहवज्र के नाम से जाने जाते थे जो एक भिक्षु थे। तिब्बती स्रोतों के आधार पर इनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था, वे वेदों एवं बौद्ध धर्म के जानकार थे एवं दोनों उपासना पद्धतियों का अभ्यास भी करते थे।

इनके द्वारा किये जा रहे तांत्रिक बौद्ध साधनाओं के कारण उस क्षेत्र विशेष के ब्राह्मणों द्वारा उस देश के राजा को सूचित कर ब्राह्मणत्व की परीक्षा लेने का आग्रह किया गया। सरह के द्वारा उस कठिन परीक्षा मे सफल होने पर राजा ने स्वयं दीक्षित हुए तब रानी एवं प्रजा आदि भी दीक्षित हुए।

राहुल सांकृत्यायन ने सरहपाद का संबंध नालंदा विश्वविद्यालय से भी माना है, सरहपाद ने नालंदा की द्वार परीक्षा उत्तीर्ण की थी एवं हरिभद्र को गुरू बनाया था। इनके के विषय में यह ज्ञात होता है कि परम्परागत बौद्ध धर्म की साधनाओं का विरोध कर तांत्रिक साधनाओं की ओर उन्मुख हुए थे।

---

[331] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 88.

[332] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ.144 ख.

दक्षिण भारत में श्रीपर्वत प्राचीन काल से ही तांत्रिक साधनाओं के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। इनके उन स्थानों में जाने एवं साधनाओं के अभ्यासों की भी चर्चा प्राप्त होती है। नालंदा से बाहर इन्होंने तांत्रिक साधनाओं के अनुरूप एक कन्या का साथ लिया एवं महामुद्रा साधना से सिद्धि की प्राप्ति हेतु निकल पड़े थे।

नालंदा से उड़ीसा एवं महाराष्ट्र क्षेत्र में भ्रमणशील रहते हुए योग की साधनाएँ, किसी स्त्री सन्यासिनी से प्राप्त होने की भी चर्चा है। तांत्रिक साधना केन्द्र कामरूप से भी इनका संबंध जोड़ा जाता है। इनके शिष्यों में प्रधान रूप से शबर एवं नागार्जुन आदि का नाम लिया गया है। इन्हें हेवज्रतंत्र का उद्धारक एवं प्रचारक कहा गया है इनके शिष्य नागार्जुन ने गुह्य साधनाओं का भारत के दक्षिणी भागों में प्रचार-प्रसार किया था।

तिब्बती स्रोतों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर  बारह साल के अभ्यास के उपरांत भी चित्त की स्थिरता प्राप्त नहीं होने पर इनकी पत्नी ने पर्वत, वन आदि में जाकर वैराग्य की साधना की अपेक्षा चित्त के स्वभावगत साधनाओं को करते हुए सिद्धि लाभ करने की सलाह दी थी।[333] सरहपाद की रचनाओं में दोहाकोशनाम चर्यागीति, दोहाकोश उपदेशगीति एवं दोहाकोशगीति प्रसिद्ध है।[334] इनमें भी दोहाकोश चर्यागीति की प्रसिद्धि अधिक है।सर्वप्रथम सरोजवज्रकृत दोहाकोश का संपादन हरप्रसाद शास्त्री के द्वारा बौद्ध गान ओ दोहा में प्रकाशित किया गया था।[335]

---

[333] कृष्णनाथ, बौद्ध निबन्धावली (दर्शन), वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1997 पृ.107–108.

[334] वही, पृ.109.

[335] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण, पटना : बिहार -राष्ट्र भाषा -परिषद्, 2007. पृ.83.

## जालंधरपाद :-

जालंधरपाद के नामान्तरों में जालंधरि, जालंधरिपाद, जालंधरिपा[336] आदि प्राप्त होता हैं। इनकी सहजयानी सिद्ध के रूप में प्रसिद्धि है। इनका जन्म स्थान नगरकोट कहा गया है। वर्तमान समय में ज्ञात कांगड़ा ही पूर्व काल में नगरकोट के नाम से प्रसिद्ध रहा है। जहाँ वज्रेश्वरी देवी का मंदिर एवं उनके स्त्रोत्र की भी चर्चा प्राप्त होती है।[337] इनके शिष्यों में कृष्णपाद, गोपीचंद्र, भर्तृहरि, बुद्धज्ञानपाद, तांतिपा, छोटे विरूप आदि के नाम प्राप्त होते हैं।[338]

सिद्धों की सूची में जालंधरपा का स्थान छियालीवें नंबर पर प्राप्त होता है।[339]ये तांत्रिक साधना सम्पन्न सिद्ध माने जाते हैं। तांत्रिक बौद्ध परम्पराओं में बौद्ध कापालिक साधनाओं से जालंधरपाद का घनीष्ट संबंध रहा है, ये हेरूक साधना सम्पन्न तथा डाकिनी द्वारा हेवज्रतंत्र में दीक्षित होने के उपरांत महामुद्रा सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध थे। इनकी चर्चा तिब्बती किवदन्तियों, नाथ साहित्यों, बंगाल की लोकगीतों एवं काव्यों में भी देखा जा सकता है, साथ ही नेपाल, मालवा, बिहार, बंगाल, रामेश्वरम् आदि स्थानों में जाने एवं समय बिताने का भी पता चलता है।

पैग-साम-जान-जैन के अनुसार इनकी चर्चा प्राचीन सिद्धों की सूची में भी प्राप्त होती है। इनके शिष्यों में कृष्णपाद, इन्द्रभूति, लक्ष्मींकरा पद्मसंभव, भर्तृहरि, गोपीचंद, मैनामती, कम्बलपाद, ज्ञानगुप्त, धर्मकीर्ति (टीकाकार) आदि प्रसिद्ध माने जाते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव एवं विभिन्न विद्वानों के कथनों के प्रमाणों के

---

[336] उपाध्याय, नागेंद्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 16-18.

[337] रिनपोछे, सम्दोड्. द्विवेदी, व्रजवल्लभ. वसन्ततिलका. दुर्लभ बौद्ध ग्रंथ शोध योजना. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1990. पृ.16.

[338] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009, पृ.17.

[339] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद : 1937,पृ.144 ठ.

आधार पर टीकाकार धर्मकीर्ति का काल नौ वीं शताब्दी स्वीकार किया गया है।[340]

जालंधरपाद के विषय में तिब्बती स्रोंतों के आधार पर राहुल सांकृत्यायन का कथन है की नगरभोग नामक स्थान में इनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। बंगाल में मैनामती द्वारा पुत्र राजा गोपीचंद की दीक्षा के प्रसंग में इन्हें हाड़ीपा कहा गया है। संत ज्ञानेश्वर रचित 'योगिसंप्रदायविष्कृति' में इन्हें राजा पुरू के वंशज एवं क्षत्रिय कुल[341] में उत्पन्न माना गया है।

## सिद्ध कृष्णपाद :-

सहजयानी सिद्ध कृष्णपाद के विभिन्न नामों में कण्हपा, कृष्णवज्र, कृष्णवज्रपाद, कृष्णाचार्य, कानफा, कान्हूपा, कानपा,[342] सिद्धाचार्य, पण्डिताचार्य, उपाध्याय, मण्ड़लाचार्य आदि नामों से संबोधित किया गया है। कैंब्रिज विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में रखी, हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला नामक ग्रंथ की एक हस्तलिपि में इसके कर्ता पंडिताचार्य कान्हपाद उल्लेखित है।

चौरासी सिद्धों में इन्हें सबसे ज्यादा ग्रंथों के रचनाकार, कवि एवं विद्या के धनी माना गया है। इनकी दो शिष्या कनखला और मेखला बहुप्रसिद्ध हैं। इन्होंने कृष्णपाद की चर्यापद आदि रचनाओं पर टीकाएँ लिखी थी। तेरहवीं चर्यापद में इन्हें पंड़िताचार्य कहकर संबोधित किया गया है। जिसमें काण्हपा के कापालिक साधनाओं एवं अनुभूतियों की चर्चा है जहाँ स्वयं को इन्होंने जालंधरिपा का शिष्य कहा है। बौद्ध चर्याओं को अपनाने के कारण इन्हें चर्याव्रती[343] भी कहा गया है।

---

[340] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.पृ.21.

[341] वही, पृ. 19.

[342] द्विवेदी, मुकुंद. संपादित. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. भाग-6. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013. पृ. 93.

[343] रिनपोछे, सम्दोड्. द्विवेदी, व्रजवल्लभ. वसन्ततिलका. दुर्लभ बौद्ध ग्रंथ शोध योजना. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1990. पृ. 15.

सुनीति कुमार चटर्जी का कथन है कि चर्यापद संख्या छत्तीस के रचयिता एवं जालंधर शिष्य कृष्णाचार्यपाद एक ही है।[344] कृष्णपाद के मूलनिवास के बारे में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार तिब्बत के तेंजुर से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर पन्द्रह स्थानों पर कृष्णपाद को भारतवंशी कहा गया है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार इनका जन्म कर्नाटक देश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। विनयतोश भट्टाचार्य के अनुसार उड़ीसा में ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ था। उपरोक्त सभी कथनों के अनुसार भी कृष्णपाद भारतवंशी माने गये हैं।

सोमपुरी विहार में आचार्य कृष्णपाद का जालंधर द्वारा अभिषेक किये जाने की सूचना प्राप्त होती है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है की इन्हें आध्यात्मिक साधनाओं के दीक्षा मिली होगी अतः स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि जालंधरपाद ही कृष्णपाद के गुरू थे। तारानाथ एवं नागेन्द्रनाथ के अनुसार कृष्णपाद का संबंध कंदली क्षेत्र के वामाचारी साधनाओं से जरूर रहा है।[345] जहाँ उनके अनुयायियों के उपस्थिति की भी चर्चा है।

अध्ययन के आधार पर जालंधरपाद से दीक्षा के उपरांत प्राप्त कुछ आध्यात्मिक शक्तियों की प्राप्ति एवं आगे की प्रगति के लिए जालंधरपाद द्वारा अपने शिष्य तांतिपा के पास भेजने की भी जानकारी प्राप्त होती है। चौरासी सिद्धों में लुईपा, सरह, शबर, जालंधर के साथ प्रसिद्ध थे एवं तिब्बत में बाद के चौदह विशेष प्रतिनिधियों में भी इनकी प्रसिद्धि थी।[346] राहुल सांकृत्यायन के द्वारा दी गयी वज्रयानी सिद्धों की सूची में नाम के अंत में 'पा' नामक विशेषण के साथ इनका स्थान सत्रहवां है।[347] तंत्र की चार प्राचीन पीठों में जालंधरपीठ का नाम महत्वपूर्ण है, जो कामरूप आदि के बाद चौथा है। उपरोक्त पीठों में जालंधरिपा का सम्बन्ध जालंधर पीठ से अवश्य रहा होगा। वही जालंधरिपा,

[344] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 12.

[345] वही, पृ. 14-16.

[346] वही, पृ.16.

[347] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ.144 ड.

कृष्णपाद के गुरू माने गये हैं। अतः कृष्णपाद का सम्बन्ध जालंधरपीठ से भी जोड़ा जाता है।

कण्हपा के दोहाकोश की पाडुलिपि सबसे पहले हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल से प्राप्त हुई थी जिसका काल नेपाली संवत् 1027 (1907ई.) है। जिसके साथ उनके शिष्या के रूप में प्रसिद्ध मेखला की टीका भी प्राप्त हुई थी। जिसे शास्त्री जी ने बौद्ध गान ओ दोहा में प्रकाशित कराया था। इस दोहाकोश की तन्जूर में रखी सुरक्षित तिब्बती रूपांतरण को आधार रखते हुए, शाहिदुल्ला ने इसे संशोधित करने का प्रयास अपने 'ल शा मिस्तीक्स' में किया है। कण्हपा के एक अन्य दोहाकोश गुह्येन्द्रतिलक यंत्र के पाठान्तरों को उल्लेख करते हुए कलकत्ता संस्कृत सीरीज से प्रकाशित किया है,जिसमें बत्तीस छंद, सत्ताईस दोहे और चार समचतुस्पदियाँ शामिल हैं।

## सिद्ध शान्तिपा :-

इन्हें शान्ति और रत्नाकरशान्ति, शांतिपा आदि नामों से जाना जाता है। इनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था एवं मगध के निवासी थे। इनकी शिक्षा विक्रमशिला और उदन्तपुरी बिहार में मानी जाती हैं। जहाँ महापण्डित जितारि से इन्होंने विद्या पायी थी एवं साथ ही नरोपा से अभिषेक लेकर विद्या ग्रहण किया था। ये त्रिपिटक आदि ग्रंथों के जानकार थे एवं इनके द्वारा वज्रयान व सहजयान पर ग्रंथ भी लिखे गये थे।[348] हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार दसवीं शताब्दी में शान्ति नाम से एक प्रख्यात पण्डित उपस्थित थे। विक्रमशिला के छः द्वार पण्डितों में एक माने जाते हैं। ये व्याकरण, तर्क शास्त्र आदि के विद्वान माने जाते थे एवं महामुद्रा सिद्ध भी थे। इन्होंने मालवा प्रदेश में योग की साधनाएँ की थी।

राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत चौरासी सिद्धों की चित्रावली में इनका स्थान बारहवाँ है।[349] इनके समकालीनों में महाचार्य जितारि, नरोपा, कुदालिपा

[348] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 86.

[349] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ.144 ग.

आदि सिद्ध शामिल थे। इनके गुरू परम्परा की दो सूचनाएँ है। एक स्रोत के अनुसार कुक्कुरीपा, पद्मवज्र, तिल्लोपा, नरोपा उपरांत शान्तिपा आते हैं। दूसरे एक अन्य स्रोत के अनुसार, ये दीपंकरभद्र, आनन्दगर्भ, थगन के उपरांत आते हैं। इनके शिष्यों में कुदालिपा और श्रद्धाकर प्रसिद्ध हैं। इनका हेवज्रपंजिकामुक्तावली नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है।

## शबरपा :-

इन्हें शबर नामक जाति में उत्पन्न होने के कारण शबरीपा, शबरी, शबरेश्वर[350] आदि नामों से जाना जाता है। सिर पर मयूरपंख धारण कर हिरणों का शिकार किया करते थे।

शबर ने पर्वत पर निवास कर अधिक समय व्यतीत किया था। ये सरह और नागार्जुन (शून्यवाद के प्रवर्तक नागार्जुन से इतर) दोनों के शिष्य थे एवं मैत्रीपा के गुरू थे। इन्हें कनिष्ठ सरह भी कहा गया है। एक तिब्बती स्रोत के अनुसार, अवलोकितेश्वर इनके गुरू थे।[351] लोकी और गुणी नामक दो बहनें इनकी पत्नियाँ थी जिन्हें डाकिनी पद्मावती तथा ज्ञानवती भी कहा गया है। राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत चौरासी सिद्धों की चित्रावली में इनका स्थान पाचवाँ है।[352] शबर ने वज्रयोगिनी साधना नामक एक पोथी लिखी थी। कृष्णपाद ने इन्हें बड़े ही आदर के साथ पुकारते हुए इनका स्थान उष्णीष कमल की कर्णिका (परमावस्था) में स्थित माना है।

## विरूवापाद :-

इन्हें विरूप, विरवपा[353], विरूपाक्ष आदि नामांतर भेदों से जाना जाता है। इन्होनें शिक्षा नालंदा बिहार में प्राप्त एवं ये दक्षिण के सोमपुरी मन्दिर में भिक्षुक

---

[350] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001. पृ. 83.

[351] वही पृ. 84.

[352] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ.144 ख.

[353] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001.पृ. 80.

थे। इनके गुरूओं में जयदेव, लक्ष्मींकरा तथा वज्रयोगिनी मानी जाती हैं। इन्हें स्वयं डाम्बी हेरूक तथा अवधूतीपा का गुरू माना गया है।

दक्षिण भारत के श्रीपर्वत जाकर आचार्य नागबोधि से यमान्तक साधना ग्रहण किया एवं वाराही साधना के साथ-साथ महामुद्रा की सिद्धि प्राप्त की थी। राहुलसांकृत्यायनके द्वारा प्रस्तुत चौरासी सिद्धों की चित्रावली में इनका स्थान तीसरा है।[354] इनकी साधना में मद्यपान एवं संघ के विपरीत अन्य तांत्रिक साधनाओं की भी सूचना है। नालंदा से योगसाधना[355] के लिए अनिश्चित स्थान जाने की भी सूचना मिलती है।

उपरोक्त सिद्धों के साथ अन्य सहजयानी सिद्धों में लीलापा, कन्डालीपा मीनपा, गोरक्षपा, चौरंगीपा, वीणापा, तन्तिपा, चमरिपा, नागार्जुन कर्णरिपा, नारोपा, दारिक्पा, कालपा, धोम्भिपा, कर्मरिपा, कुकुरिपा, धर्मपा, महीपा, भूसुकुपा, इन्द्रभूति, चर्पटीपा, मेखला, कनखला आदि के नामों का उल्लेख है। जिनमें पुरूष के साथ साथ स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं।[356]

## 3.3.1 सहजयानी सिद्धों की प्रमुख विशेषताएँ :-

सहजयानी सिद्धों की साधनाओं में तंत्र की साधनाएँ समाविष्ट थीं, जो अनुभूति परक थी। इन्होंने अपने पूर्व परम्पराओं के निवृत्ति मूलक एवं दुःखवादी सिद्धातों एवं दर्शन के विपरीत प्रवृत्तिमूलक एवं मानवीयता का समर्थन करते हुए नवीन सिद्धातों की व्याख्या की। जिनका लोकमानस के साथ निकटता से संबंध था। आवश्यकता के अनुरुप इनके अपने पूर्वागत परम्पराओं पर विरोधी स्वर भी दिख पड़ते हैं जब सरहपा थेरवादी और महायानी सिद्धांतों की सीमाओं को अमान्य करते है और सहज तत्त्व को अपने प्रत्येक साधना, सिद्धांत और दर्शन में समावेशित करते हैं। निर्वाण को गौण मानते हुए जगत की मिथ्यता को

[354] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ.144 क.

[355] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 82.

[356] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ.144 क-प.

अस्वीकार करते हुए प्रज्ञोपाय अनुष्ठान से प्राप्त सहजानंद[357] को अपने साधनाओं का चरम लक्ष्य मानते हैं। साथ ही कालांतर के सिद्धों ने विभिन्न प्रकार के आडम्बरों आदि पर अपने पुर्व परम्परों के ऊपर निर्भयता से ओजपूर्ण व्यंग भी किया है, जो सहज व रोचक है।

सरहपा ने कर्मकाण्ड में रत रहने वाले, दीपक जलाने वाले, सिर मुण्डन कराने वाले, यज्ञ के धुएँ से नेत्र दोष उत्पन्न करने वाले बाह्याचार आदि को व्यर्थ बताते हुए मिथ्यावादी घोषित किया है।

वैराग्यपूर्ण जीवन के स्थान पर रागयुक्त होकर गृहिणी को मुद्रा के रूप में वरण कर, प्रवृत्तिमूलक साधनाओं से तत्त्वज्ञान प्राप्ति का आदर्श भी प्रस्तुत किया है।[358] सिद्ध तिलोपा का कथन है, विष को विधि पूर्वक सेवन करने से सेवन करने वाला विष के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। आर्यदेव का कथन है कि जिस प्रकार कर्ण में जल के चले जाने से वह कष्टप्रद हो जाता है, किन्तु अंदर गये हुए जल को कर्ण में पुनः जल डालकर निकाले जाने पर उस कष्ट से मुक्ति मिलती है।

काँटा लग जाने से जिस प्रकार उसके कष्ट को काँटा से ही दूर किया जाता है। उसी प्रकार राग में लिप्तता को राग से ही निकालना संभव है। अग्नि में दाहकता होने पर भी तैल से सिक्त हुई वर्तिका में लगी आग अंधकार का नाश करती है, उसी प्रकार राग युक्त साधना में प्रज्ञोपाय योग से अविद्या रूपी अंहकार का नाश हो जाता है। इस प्रकार राग से महाराग का परिशोधन कर भव का उपभोग करते हुए विषयासक्ति से पार होकर अद्वय में प्रतिष्ठित हुआ जाता है।

इन सिद्धों ने जातिभेद भाव को अस्वीकार करते हुए सभी जातियों व वर्गों के जिज्ञासु स्त्रियों व पुरूषों को दीक्षित किया था। साथ ही निम्नवर्गीय स्त्रियों जैसे चण्डाली डोम्बी, रजकी, शूद्र आदिवर्गों कीस्त्रियों को भी साधनाओं में सहायिका संगिनी के रुप में अपनाया था। महामुद्रा साधना से प्राप्त सहज की प्राप्ति होने पर वे बाह्यानुष्ठानों, आचारों, कर्मकाण्ड आदि का विरोध भी करते थे। पांडित्य ज्ञान की अपेक्षा सिद्ध अनुभूति संपन्न ज्ञान को अधिक महत्त्व देते थे।

---

[357] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 232.
[358] वही, पृ. 233.

## 3.4 सहजयानी साहित्य :-

सिद्धों की रचनाएँ संस्कृत, मिश्रसंस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्राप्त होती हैं। इनमें चर्यापद, दोहाकोशगीति, चर्यागीति और संस्कृत ग्रंथ आदि प्रमुख माने जाते हैं।

दोहाकोश दोहों का ऐसा समूह हैं, जो चतुष्पदियों की कडवक शैली में हैं। चर्यापद, सिद्धों के द्वारा आचरित साधनाएँ हैं। दोहाकोश और चर्यापद दोनों में सिद्धों के द्वारा अपनी साधनाओं, शिक्षाओं, अनुभूतियों आदि को गूढ़ रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त रचनाएँ समूहों में प्राप्त होते हैं जो विभिन्न सिद्धाचार्यों के द्वारा भिन्न-भिन्न समय पर लिखा गया होगा एवं संकलनकर्ताओं द्वारा इन्हें एक साथ संकलित किया गया होगा ।

लुईपाद रचित चर्यापद, चर्याचर्यविनिश्चय, शांतिपा रचित हेवज्रपंजिका मुक्तावली,कृष्णपादरचितहेवज्रपंजिका योगरत्नमाला, डाकार्णव, सहजाम्नायपंजिका, हेवज्रतंत्र, नरोपाकृत वज्रयानी अनुत्तरयोग तंत्र, तिल्लोपाद रचित दोहाकोश, सेकोद्देश्यटीका, साधनमाला, गुह्येन्द्रतिलकतंत्रम्, चर्यागितिकोश, हेरूकवज्रतन्त्रटीका, हेवज्रपंजिका, योगिनीसंचारटीका, चक्रसंवरतंत्रविवृति, अमृतकणिका, कालचक्रतंत्रम्, षडंगयोग आदि सहजयानी ग्रंथों के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन सहजयानी सिद्धों ने उपरोक्त दोहाकोश, दोहागीति, चर्यापदों के साथ-साथ वज्रयान के महत्वपूर्ण ग्रंथों को भी अपने आधार ग्रंथों के रूप में भी स्वीकार किया है।

## दोहाकोश :-

सर्वप्रथम हरप्रसाद शास्त्री ने अपने नेपाल यात्रा के दौरान प्राप्त दोहाकोशों को 'बौद्धगान ओ दोहा' में प्रकाशित किया। जिसमें सहजयानी सिद्ध सरहपा के एक सौ बारह छन्दों का दोहाकोश एवं इस पर संस्कृत में लिखी गयी अद्वयवज्र की टीका सहजाम्नाय पंजिका भी शामिल थी।[359] इसकी पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि इसे उदयभद्र नामक विद्वान ने स्थिरमति नाम के किसी पंडित के

[359] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 21.

लिए लिपिबद्ध किया गया था। सरहपा के दोहों की दूसरी हस्तलिपियाँ सिद्ध तिलोपा के पाडुलिपिा के साथ हेमचंद्र शर्मा के संग्रह में सुरक्षित मानी जाती हैं।

सरहपा के तीसरे दोहाकोश की पाडुलिपि प्रबोधचन्द्र बागची को दरबार लाइब्रेरी, नेपाल से प्राप्त हुई थी। जिसमें उपरोक्त हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्रकाशित दोहों के साथ दो नये दोहाकोशों के अंश भी प्राप्त हुए थे, जिसके किसी एक की पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिलिपि, स्थविर प्रथमगुप्त ने परमोपासक रामवर्मा नामक किसी व्यक्ति के लिए किया था। जिसमें नेपाली संवत् 221(1101ई.) उल्लेखित है। यह अब-तक ज्ञात पांडुलिपियों में सबसे प्राचीन मानी जाती है। सरह के अन्य खंडित एवं स्फुट दोहों को मुनिदत्त की संस्कृत टीका में एवं बाद के विद्वान बेंडेल आदि के सुभाषित संग्रह आदि में भी देखा जा सकता है।

## दोहागीति :-

विनयतोश भट्टाचार्य ने संपादित अपने साधनमाला में बुद्ध कपाल साधन में योगिनियों द्वारा संपन्न की जाने वाली साधनाओं में उपलब्ध अपभ्रंश दोहागीति का उल्लेख किया है। जिसे प्रबोध चन्द्र बागची तथा सुकुमार सेन के द्वारा पाठ संशोधन कर प्रकाशित किया गया। प्रबोधचन्द्र बागची ने अपने पास सुरक्षित हेवज्रतंत्र की पाडुलिपियों में से दो एवं क्रिया सुमुच्चय की पाँच दोहागितियों को उपरोक्त दोहाकोश के साथ प्रकाशित कराया गया था। सुकुमार सेन के अनुसार इन दोहा गीतों को तांत्रिक साधनाओं में गाने का विधान था[360] अतः इसे दोहागीति कह दिया गया। ये बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है, अतः इन्हें अपौरूषेय भी कहा गया है।

## चर्यापद :-

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के द्वारा इन चर्यापदों का संग्रह प्रथमतः 1907 में 'बौद्ध गान ओ दोहा' नाम से प्रकाशित किया गया। जिनमें सहजयानी सिद्धों के पचास पद संग्रहीत थे। इनके अंतर्गत चर्यापद, दोहाकोश, सहजाम्नाय

[360] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 24.

पंजिका आदि शामिल थे। उपरोक्त पद संग्रह का नाम शास्त्री महोदय ने चर्याचर्यविनिश्चय रखा था। पंडित विधुशेखर शास्त्री ने इन चर्यापदों के संकलनकर्ता एवं संस्कृत टीकाकार मुनिदत्त के टीका के श्लोक का आधार लेते हुए इसे आश्चर्य-चर्या कहा। वही इन रचनाओं के तिब्बती रूपांतरण के आधार पर प्रबोधचन्द्र बागची ने इन चर्यासंग्रहों को चर्यागीति कोश कहा।

शास्त्री महोदय ने उक्त चर्यापदों के पाडुलिपियों का परीक्षण करने के उपरांत इनका काल बारहवीं शताब्दी स्वीकार किया। वहीं प्रसिद्ध विद्वान राखलदास बनर्जी द्वरा संपादित श्रीकृष्णसंकिर्तन नामक ग्रंथकी भूमिका में इन चर्यापदों के भाषाओं का परीक्षण करते हुए चौदहवीं शताब्दी के बाद की रचना मानी है।

उपरोक्त चर्यापदों को शास्त्री महोदय के द्वारा प्रकाश में लाये जाने के विभिन्न विद्वानों का ध्यानाकर्षण इस ओर होने लगा तदोपरांत इन विद्वानों ने इन चर्यापदों के विभिन्न तिब्बती रूपांतरणों को ढूँढा एवं उन पाठों का संशोधन कर प्रकाशित किया जिनमें प्रबोधचन्द्र बागची ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'जर्नल आफ डिपार्टमेंट आफ लेटर्स' के खण्ड तीस में प्रकाशित कराने के साथ ही उपयोगी टिप्पणियाँ भी दी गयी।

मणीनन्द्र मोहन बसु ने इन चर्यापदों की बाँग्ला छाया के साथ महत्पूर्ण टिप्पणियाँ प्रस्तुत की। इसी क्रम में सुकुमार सेन के द्वारा 'इंडियन लिंग्विस्टिक्स' खण्ड दसवां में ओल्ड बगाली टेक्स्ट्स के नाम से चर्यागीति, वज्रगीती आदि का संग्रह किया। राहुल सांकृत्यायान ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्हें इन सिद्धों की चित्रावली प्रथमतः प्राप्त हुई थी। इसके साथ ही इन्होंने इन सिद्धों के रचनाओं पर नेपाली बौद्धों में प्रचलित चचो चर्यागीतियों को अपने पुरात्व-निबंधावली में प्रकाशित किया । साथ ही इन सहजयानी सिद्धों की साधनाओं के विभिन्न पक्षों पर गोपीनाथ कविराज ने 'भारतीय साधना की धारा खण्ड द्वितीय', धर्मवीर भारती ने 'सिद्ध साहित्य', नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने 'बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य' में, काशीनाथ न्यौपाने के द्वारा हेवज्रतन्त्रम् एवं कालचक्रतन्त्रम् पर हिंदी अनुवाद के साथ अन्य विभिन्न विद्वानों ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया है।

## हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला :-

हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला सहजयानी सिद्धों की साधनाओं का परिचय कराने वाला महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके रचनाकार सिद्ध कृष्णपाद माने जाते हैं। कृष्णपाद कवि, आचार्य, पंड़ित आदि के रूप में प्रतिष्ठा रही है। हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला की पाण्डुलिपि, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, लंदन से प्राप्त हुई है। इसका काल 1199 ई. है। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है की कृष्णपाद वर्तमान मगध शासक, गोविन्दपाल के शासनकाल में उपस्थित थे।

उपरोक्त ग्रन्थ हेवज्रतंत्र की टीका है जो मातृतंत्र के अंतर्गत आता है, इसके दो कल्प है। प्रथम कल्प में ग्यारह एवं दूसरे कल्प में बारह पटल हैं। इस प्रकार पूरा ग्रंथ तेईस पटलों में विभक्त हैं। इस ग्रंथ के अनुसार 'हेवज्र' प्रज्ञोपायात्म है, जहाँ हे का अर्थ करूणा अथवा उपाय एवं वज्र को शून्यता अथवा प्रज्ञा की संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार हेवज्र प्रज्ञोपाय शून्यता-करूणा, पद्म-वज्र, सूर्य-चंद्र आदि की साधनाओं के विषय में उपदेश प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ है। इसमें में हेरूक, प्रधान देव उपाय के रूप और प्रज्ञा, वाराही के रूप में स्वीकृत हैं। इस तरह हेरूकवाराही के संयुक्त रूप को ही हेवज्र कहा गया है।

### प्रथम पटल :-

हेवज्रतंत्रम् की टीका हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला के प्रथम कल्प के प्रथम पटल को भगवान् वज्रधर द्वारा वज्रसत्व को उपदेश किया गया है। उस स्थान पर अनेक बोधिसत्व और वज्र योगिनियाँ उपस्थित हैं। इस प्रकार हेवज्रतंत्र प्रज्ञोपायात्मक, शून्यता-करूणा स्वभावा, धर्मसम्भोगकाय संवृति परमार्थ स्वभावा है।

इस पटल में पन्द्रह योगिनी स्वभावा नाड़ियों का उल्लेख है, इनमें से ललना, रसना और अवधूती तीन प्रमुख हैं। जो बोधिचित्त का वहन करने वाली और सहजानंद प्रदायिका हैं। ये तीनों क्रमशः काय, वचन और चित्त संग्राहक है। ललना आलि और रसना नाड़ी को कालि कहकर संबोधित किया गया है। इन्हें ही

क्रमशः अ-कारादि सोलह वर्ण युक्त स्वर और क-कारादि चौंतीस वर्ण युक्त व्यंजक के साथ ए-व, चंद्र-सूर्य, प्रज्ञा-उपाय भी कहा गया है।

इसी पटल के श्लोक इक्कीस में ही चार प्रमुख चक्रों की चर्चा है। प्रथम निर्माणचक्र यह योनि स्थान में स्थित है। इसे ही कायचक्र की भी संज्ञा दी गयी है। जिसमें दलों की संख्या चौंसठ हैं। इनके मध्य के स्थित आठ दलों में अ,क,च,ट,त,प,य,षाः वर्ण उपस्थित है। इस चक्र का आकार 'अ' के समान है। यह पृथ्वी तत्त्व के समान स्वभाव वाला है। ललना नाड़ी बायीं नासिका से और रसना दाहिनी नासिका से संबद्ध माना गया है।

दोनों नासिका से प्राण वायु का पूरक, कुम्भक और रेचक का अभ्यास क्रमशः ओं आः और हूँ मंत्रों के साथ करने के निर्देश है। इसे ही वज्रजाप कहकर पुकारा गया है, जिसका चौबीस घंटे में चार बार अभ्यास किया जाना चाहिये। इस अभ्यास से ही सूर्य-चंद्र नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है। इनके शुद्धावस्था में इन्हें क्रमशः आलि और कालि कहा गया है। आलि और कालि की शुद्धता से क्रमशः बोधि चित्त वहा (अवधूती) की शुद्धि होती है। इसके परिणाम स्वरूप नाभि में प्रज्ञा (चण्डाली अग्नि) नाम की जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

इस अग्नि को ही महा रागानल कहकर संबोधित किया गया है। इससे ही पंच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, इन्द्रियों के विषय संस्कार, अहंकार आदि जल कर नष्ट हो जाते हैं। यह अग्नि मणिशिखर से स्रावित बिन्दू रूप चंद्र रस (सोम रस) को भी जला देती है जिससे रागयुक्त महासुख ज्ञान का उदय होता है।[361]

**धर्मचक्र :-**

यह हृदय स्थान में स्थित है। इसे ही वाक् चक्र कहकर भी पुकारा गया है। हृदयकमल आठ दल युक्त 'हूँ' आकार की अधोमुखी कमल है। इनके दलों में

[361] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित, हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम कल्प, 1/31. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006.

य,र,ल,वाः आ, ई, ऊ, ऐ वर्ण विद्यमान हैं। इस चक्र का स्वभाव जल तत्त्व वाला है।

**सम्भोगचक्र :-**

यह चक्र कण्ठ स्थान में स्थित है। इसे ही चित्त चक्र की भी संज्ञा दी गयी है। इस चक्र में कमल दलों की संख्या सोलह हैं। इसका आकार 'ओं' के समान है, जो कण्ठ में उर्द्धमुखी होकर स्थित है। इसके दल कमलों में अ, इ, उ, ए वर्ण विद्यमान हैं। इस चक्र का स्वभाव अग्नि तत्त्व से युक्त है।

**महासुखचक्र :-**

यह चक्र मूर्धा में स्थित है। यह काय वाक् और चित्त तीनों से परे है। इसमें बत्तीस दल युक्त कमल है। इसका आकार 'हं' के समान है। जो अधोमुख होकर स्थित है। इस चक्र का स्वभाव वायु तत्त्व से युक्त है।

## हेवज्रपंजिका मुक्तावली :-

यह ग्रंथ हेवज्रतन्त्रम् पर लिखी गयी महत्वपूर्ण टीका है। जिसके रचनाकार सिद्ध शांतिपा है। यह मुख्य रूप से दो कल्पों में विभाजित हैं। प्रथम कल्प में ग्यारह और द्वितीय में बारह पटल हैं। हेवज्र का अर्थ निरूपण करते हुए 'हे' को उपाय एवं 'वज्र' को प्रज्ञा कहा गया है। इस प्रकार यह टीका प्रज्ञोपायात्मक ज्ञान का उपदेश करता है। इस ग्रंथ में वज्रधर भगवान् है, जिसके द्वारा बोधिसत्त्वों और वज्रयोगिनियों को हेवज्र का उपदेश किया है।

प्रथम पटल में बत्तीस प्रधान नाड़ियों में ललना, रसना और अवधूती विशिष्ट हैं। ललना  प्रज्ञा और रसना नाड़ी उपाय स्वभावा है। उपरोक्त दोनों ही क्रमशः आलि-कालि, प्रज्ञा-उपाय, सूर्य-चंद्र, स्वर और व्यंजन के प्रतीक हैं। वहीं अवधूती अतिविशिष्ट है, जो प्रज्ञा-उपाय से परे दोनों के मध्य स्थित है।

शिरोमध्य में महासुख का स्थान है, जहाँ से बोधिचित्त का स्राव[362] होता रहता है। देह में स्थित क्रमशः चार प्रकार के निर्माण, धर्म, सम्भोग एवं महासुख चक्रों में क्रमिक रूप से चौसठ, आठ, सोलह एवं बत्तीस दल युक्त पद्म स्थित हैं। इन चारों चक्रों की देवियाँ क्रमशः लोचना, मामकी, पाण्डुरा एवं तारणी हैं, जिनका बीजमंत्र क्रमशः एकारेण, वंकारेण, मकारेण एवं याकारेण हैं। इसे ही संक्षेप में एवंमया कहा गया है। इसी पटल में आनंद के चार स्तरों आनंद, परमानंद, विरमानंद एवं सहजानंद की चर्चा है जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।

द्वितीय पटल में मन में तत्त्व का चिंतन एवं जगत प्रपंच के निवारणार्थ मंत्र का उपदेश किया गया है। जिसमें देवताओं के बीजमंत्रों के साथ वशीकरण, मारण, उच्चाटन, स्तम्भन आकर्षण[363] आदि सिद्धिदात्री मंत्रों आदि विधानों की चर्चा की गयी है।

चतुर्थ पटल में हेवज्रादि देवताओं को भावना क्रम से ज्ञानरूपी जल का अभिषेक कर वासनादि मलों के प्रक्षालन करने के उपायों की चर्चा है।

पंचम पटल में दृश्यमान जगत की सत्ता के अनस्तित्वता एवं इन्द्रियज्ञान को अवास्तविक बताते हुए केवल द्वय शून्यता की स्थिति स्वीकार कर हेरूक व चण्डाली, रजकी, नटी आदि के साथ पूजन के विधान का उल्लेख है। बुद्ध के पंचकुल की चर्चा करते हुए बुद्ध को ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उपाधि दी गयी है।

षष्ठपटल को चर्यापटल कहा गया है, जिसमें योगी के लिए विभिन्न प्रकार लोकोत्तर चर्याओं को करने का विधान है। जिससे शीघ्रता से बोधि की प्राप्ति हो सके जिसके अंतर्गत कर्ण कुण्डल धारण करना, कटि में मेखला, व्याघ्रचर्म का वस्त्र धारण करना, पैरों में नूपुर बाँधना, गले में अस्थियों की माला धारण करना आदि की चर्चा है। योगियों के लिए साधना के उद्देश्य से वृक्षमूल, श्मशान, निर्जन

---

[362] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिकामुक्तावली. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, वाराणसी, 2001. पृ. 16-17.

[363] वही, पृ. 16-17.

स्थानों का उल्लेख करते हुए इन्हें अपयुक्त माना गया है। गुरू के निर्देशन में वज्रकन्या को ग्रहण कर उपयुक्त साधना करने से शीघ्र ही बोधि की प्राप्ति का उल्लेख है।

सप्तपटल में विभिन्न प्रकार के हस्त मुद्राओं से स्वागत, त्रिशुल, अभिषेक आदि का संकेतों की चर्चा करते हुए बुद्ध को नाथ की उपाधि दी गयी है। साधना हेतु प्रसिद्ध पीठ एवं उपपीठ के अंतर्गत जालंधर, उड्डियान, पूर्णागिरी, कामरूप का नामोल्लेख है एवं उपक्षेत्रों में गोदावरी, हिमाद्री आदि शामिल हैं।

अष्टपटल में चक्रमण्डल की चर्चा करते हुए निर्वाण प्राप्ति के विभिन्न चरण, चक्रों में स्थित योगिनी को नैरात्म्य कहा गया है। प्रज्ञोपाय को व्यक्त करते हुए पंद्रह स्वरों के समूह को आलि, चन्द्र स्वभावा और चौंतीस व्यंजनों के समूह को कालि सूर्य, स्वभावा कहा गया है। आनंद के चार स्तरों में आनंद को किंचित सुख, परमानंद को पूर्व से अधिक, विरमानंद को विराग युक्त एवं सहजानंद[364] को पूर्णानंद कहा गया है जिसमें द्वयता रहित, शून्यता की अनुभूति होती है। इसे स्वयं के द्वारा ही जाना जा सकता है। अतः इसे स्वसंवेद्य कहा गया है।

नौवें पटल में विशुद्धि की चर्चा करते हुए इन्द्रिय, मन, बुद्धि से विषय और विषयी ग्राह्य-ग्राहक के रूप में अविशुद्ध मानते हुए तथता को ही व्यापक और विशुद्ध माना गया है।

दसवें पटल में अभिषेक के विधियों का उल्लेख करते हुए मण्डल निर्माण, शिष्य का मण्डल में प्रवेश, चार प्रमुख आनंद, गुरू पूजन एवं प्रार्थना आदि का उल्लेख है।

ग्यारहवें पटल में नासिका से निःश्वसन को रेचक, श्वसन को पूरक, पूरित वायु को रोकना, कुम्भक[365] एवं निश्चलस्थिति को प्रशान्त कहा गया है। उपरोक्त अभ्यासों को क्रमिक रूप से करने से भ्रांति, संशय आदि के नष्ट होने एवं अन्य लाभों की चर्चा है।

---

[364] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001. पृ. 89.

[365] वही, प्रथम कल्प/11, पटल/3.

द्वितीय कल्प के प्रथम पटल में विभिन्न प्रकार के मण्डलों के निर्माण, विशेष प्रयोजनार्थ मारण, वशीकरण, शांति आदि के लिए निर्मित कुण्डों में होमकार्य एवं उन पर दिए जाने वाले आहुतियों का उल्लेख हैं।

द्वितीय पटल में प्राणियों के कुशल-अकुशल आदि अव्याकृत कर्म से मुक्ति के उपाय की चर्चा है।

तृतीय पटल में अनादिकाल से संचित क्लेश आदि की निवृत्ति के लिए उपाय के रूप में नैरात्म्या योग अथवा हेरूक भावना आदि योग का उल्लेख है। यहाँ नैरात्म्य का अर्थ स्त्री शक्ति से है एवं भगवान् हेवज्र है। महामुद्रा सिद्धि, राग को ही बंधन और मोक्ष का मार्ग कहते हुए विपरीत भावना की साधना एवं चार आनंदों की पुनः चर्चा की गयी है।

तृतीय पटल में वज्रधर ने योगिनियों को हेवज्र का उपदेश करते हुए श्रेष्ठ सुख (संवर), आचार्य, गुह्य, प्रज्ञा, अभिषेक, सन्ध्याभाषा एवं आनंद के चार प्रकारों की चर्चा की है। महासुख[366] की प्राप्ति को ही परम उद्देश्य कहा गया है। योगी को भौतिक एवं वैचारिक आदि सभी दृष्टि से सुख और दुःख को त्यागकर कर यथासंभव सम्यक् भाव का अभ्यास करने आदि का उल्लेख हैं।

चतुर्थपटल में डाकिनियों को भगवान् ने विभिन्न प्रकार के कुल देवियों के मुद्राओं में डोम्बी-राग मुद्रा, शबरी-मोहमुद्रा, डाकिनी- ईषर्या मुद्रा, आदि का उपदेश किया है, जो साधक को सिद्धि आदि प्रदान करती है। तीन प्रमुख नाड़ियों, ललना, रसना, अवधूती को नैरात्म्ययोगिनी कहते हुए बुद्ध के तीन कायों निर्माण, धर्म, सम्भोग को क्रमशः नाभि, हृदय और कण्ठ में स्थित मानते हुए चतुर्थ काय महासुख काय को शिरस्थ[367] में व्यवस्थित मानते हुए इस पटल को सर्वतंत्रमुद्रणपिण्डार्थ नाम दिया गया है।

पाँचवें, छठवें, सातवें एवं आठवें पटल में मण्डल निर्माण, मंत्र आदि से प्राप्त विभिन्न सिद्धियों, भगवान् के द्वारा हेवज्रपट के निर्माण, सर्वमनोरथों की पूर्ति

[366] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. द्वितीय कल्प/3 पटल/6-8.प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001.

[367] वही, प्रथम कल्प/4, पटल/52-55.

करने वाले भोजन, देवियों को महामुद्रा, वैभाषिक, योगाचार, माध्यमिक सिद्धांतों के उपरांत मंत्रनयों का उपदेशके बाद अंत में हेवज्रतंत्र की शिक्षा का उपेदश किया है।

नौवें एवं दसवें पटल में हेरूक की भावना, बुद्ध की करूणा, कामना रूपी जगत प्रपंच, जगत से पार होने हेतु भावना, मंत्र जप के लिए स्फटिक, रक्तचंदन, आदि की माला, वशीकरण आदि सिद्धियों की प्राप्ति आदि की चर्चा है।

ग्यारहवें एवं बारहवें पटल में वैरोचन, रत्नसंभव, अमिताभ, सत्त्व, वज्रसत्त्व, कुल की चर्चा, विश्वनारियों को प्रज्ञा[368] (देवी) कहकर संबोधित किया गया है।

## 3.4.1 सिद्धों की रचनाओं के संकलनकर्ता :-

अद्वयवज्र सहजयानी सिद्धों की रचनाओं मान्य टीकाकार माने जाते हैं। जो तंत्र, मंत्र के आचार्य थे। इनकी प्रसिद्ध रचना अद्वयवज्रसंग्रह में मण्डल, मंत्र, अभिषेक आदि पूजा पद्धतियों की विस्तृत चर्चा है। इन्होंने ही सहजयानी सिद्धों की तंत्र, बाह्याचार, मंत्र ध्यान, समाधि विरोधी रचनाओं की संस्कृत में टीकाएँ की थी।[369]

इन सिद्धों की साधनाएँ, अनुभूतियाँ और उपदेश आदि का संकलन सुदूर तिब्बत के बौद्ध विहारों और ग्रंथालयों में संग्रहित माना जाता है। जिनके प्रथम संकलनकर्ता मुनिदत्त को माना गया है, जिन्होंने इन रचनाओं की टीकाएँ संस्कृत में की थी। उपरांत विभिन्न विद्वानों के द्वारा इन ज्ञानपोथियों को विभिन्न भाषाओं में प्रचारित-प्रसारित किया गया इन चर्यापदों का प्रथमतः प्रकाशन महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के द्वारा किया गया।

---

[368] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम कल्प /12 पटल/3.प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001.

[369] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001.पृ. 366.

इन चर्यापदों पर सिद्धों के नाम उनकी रचना संख्या के आधार पर अकारादि क्रम में निम्नवत हैं- आर्यदेव, ककणपा, कम्बजाम्बरपा, काण्हपा, कुक्कुरीपा, गुडुरीपा, चाटिलपा, जयनन्दीपा, डोम्बीपा, ढेंढण्पा, तन्त्रीपा, ताडकपा, दारिकपा, धामपा, विरूपा, वीणापा, भद्रपा, भुसुकुपा, महिधरपा, लुईपा, शबरपा, शान्तिपा, सरहपा।

उपरोक्त सिद्धों में सबसे अधिक कण्हपा की तेरह, भुसुकुपा की आठ, सरहपा की चार, कुक्कुरीपा की तीन। लुईपा, शबरपा, शान्तिपा की दो-दो एवं अन्य सभी सिद्धों की एक-एक रचनाओं का संकलन किया गया। जिनकी संख्या पचास मानी जाती है, जिनमें से कुछ की पांडुलिपियाँ खो गयी है, तो कुछ अनुपलब्ध माने गये हैं।

## 3.5 सहजयानी सिद्धों की साधनाएँ :-

### 3.5.1 वज्रदेह (सहज देह) की प्राप्ति :-

सिद्धों ने इस शरीर को केवल भौतिक संपदा न मानते हुए अन्तः में स्थित गूढ़ आध्यात्मिक अनुभूतियों को स्वीकार करते हुए महासुख का आधार मानते हुए वज्रदेह से तात्पर्य उस देह से है, जो सुगठित, बलयुक्त, स्वस्थ, रोगरहित एवं हीरे के समान कठोर, मजबूत हो जो किसी भी स्थिति में नष्ट न हो अर्थात् अमर देह की प्राप्ति करना है।

उपरोक्त लक्षणों वाले वज्रदेह अथवा सहज देह की प्राप्ति के लिए इस देह में स्थित सम्पदाओं को जानना अत्यंत आवश्यक माना गया जिससे इसे वज्र के समान अक्षुण्ण रखा जा सके। अतः इन सिद्धों ने शरीरस्थ नाड़ी, प्राण, बिन्दु, चित्त, स्कन्ध, धातु, इन्द्रिय, विषय, कर्मेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों आदि को सम्मिलित किया।[370]

सहजयानी सिद्धों की धारणा है कि उपरोक्त सम्पदाओं से बने इस देह को जानकर ही वज्रजाप आदि साधनाओं के द्वारा वज्रदेह प्राप्त किया जा सकता है।

[370] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 203.

अतः इन्होंने मानव देह की मातृगर्भ में उत्पत्ति से लेकर उस जीव के जगत में बाहर आने तक का उल्लेख विस्तार पूर्वक किया हैं।

उपरोक्त संपादाओं में स्कन्ध के अंर्तगत रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और ज्ञान आते हैं। धातु (महाभूत) के अंतर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और विज्ञान हैं। इन्द्रियों में नेत्र, कान, जीह्वा, नाक, काय और मन हैं। विषय में गंध, रस, रूप, स्पर्ष, शब्द एवं धर्म का समावेशित हैं।

कर्मेन्द्रियों में मुख, हाथ, पैर,गुदा,लिंग शामिल हैं एवं इनके कार्य क्रमशःकथन, ग्रहण, गमन, मल, मूत्र और शुक्र शामिल हैं।[371] पिता के शुक्र से, उत्पन्न मानव देह में अस्थि, मज्जा, नाड़ी, बाल और रोम निर्मित होते हैं तथा माता के रज से रक्त, मांस और त्वचा का निर्माण होता है।

उपरोक्त सभी प्रकार के सम्पदाओं का आश्रय स्थान (कारण) चित्त है जो कि बिना किसी कारण के स्वतः ही उत्पन्न है। यही संसार का बीज है। चित्त ही भव (समस्त प्रकार के दुःखों का समूह) और निर्वाण (मुक्ति) का सेतू है। गुरू साधक को देह की महत्ता स्पष्ट करते हुए उपदेश करता है की इसी देह में ही सभी प्रकार के अनुष्ठानों को सम्पन्न किया जाना चाहिये। इसी देह में ही बुद्ध अपनी शक्तियों के साथ वास करते हैं। सिद्ध कृष्णपाद इस देह को नगर की संज्ञा देते हुए कापालिक योग से संम्पन्न होकर विहार करने का उपदेश किया है।

सरहपा ने इस देह को ही नौका का रूपक देकर प्रज्ञोपाय योग से जगत रूप सागर से पार हुए है और अन्य सभी को उपदेश करते हुए कहा है की इसी देह में ही सूर्य-चंद्र, गंगा-यमुना, प्रयाग, वाराणसी आदि विद्यमान हैं। इसके जैसा अन्यत्र तीर्थ नहीं। पीठ-उपपीठ आदि सभी इसी में अवस्थित हैं।

अद्वयवज्र ने इस शरीर को ही समस्त आश्रयों का आधार स्वीकार करते हुए तीर्थाटन को व्यर्थ बताया है। हेवज्रतंत्रम् ने इस देह में स्थित महासुख के वास को स्वीकार किया है। प्रज्ञोपाय योग से साधक का देह जब तथागत स्वभाव वाला हो जाता है तब यह धर्मकाया कहलाता है, तब योगी काया में रहते हुए भी

[371] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999.पृ. 202.

इससे अलग हो जाता है। इसी में विद्यमान बोधिचित्त केउर्ध्वगमन से शक्ति केन्द्र जागृत हो जाते हैं तब योगी अशरीरी बुद्ध[372] हो जाता है, उसका देह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। जिसका कभी भी क्षरण नहीं होता, वही सिद्ध के रूप में विख्यात हो जाते हैं।

## 3.5.2 सहजयानी साधना में नाड़ी का स्वरूप :-

सिद्धों ने मानव देह को वज्रदेह की संज्ञा देते हुए इसमें विस्तृत नाड़ियों की अह्म भूमिका का उल्लेख किया है। ये नाड़ियाँ सम्पूर्ण शरीर को जोड़े रखती हैं। सहजयानी ग्रंथों में इन्हें 'वहा' कहकर संबोधित किया है। देह में नाड़ियाँ प्राण का वहन करती हैं।

शरीर के सम्पूर्ण स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की नाड़ियाँ व्याप्त हैं, जो उस अंग विशेष में कार्य करती हुई अंग विशेष में रक्त, पित्त, श्लेष्मा, शुक्र आदि का वहन करने के साथ-साथ मलों के निष्कासन का कार्य भी करती हैं। कई स्थानों पर इनकी संख्या इनकी विशिष्टता के अनुसार, अलग-अलग कही गयी हैं। सिद्धों ने प्रमुख नाड़ियों को योगिनी कहकर सम्बोधित किया है, जो बोधिचित्त का संवहन करती है।

कुछ स्थानों में सम्पूर्ण शरीर के नाड़ियों और उप नाड़ियों को मिलाकर इनकी संख्या 3,50,00,000 मानी गयी हैं, तो कुछ स्थान में छोटी-बड़ी नाड़ियों को मिलाकर इनकी संख्या 72,000 कही गयी है।

हेवज्रतंत्र एवं इस पर कृष्णपाद की टीका हेवज्रपञ्जिका योगरत्नमाला में बत्तीस प्रमुख नाड़ियों की चर्चा हैं, जिन्हें बोधिचित्त 'वहा' कहा गया है। सहजयानी ग्रंथों में बोधिचित्त का अर्थ शुक्र है।

[372] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968.पृ. 204-05.

उपरोक्त ग्रन्थ में बत्तीस नाड़ियाँ उनके स्थान व कार्य के अनुसार निम्नवत हैं[373]-

| क्र. | नाड़ियों के नाम | स्थान | कार्य |
|---|---|---|---|
| 01. | अभेद्या | सिर में | नाखुन और दाँतों में |
| 02. | सूक्ष्मरूपा | सिर में शिखा स्थान | रोम और बालों में |
| 03. | दिव्या | दाहिने कान में | अंग विशेष के मलों का निष्कासन |
| 04. | वामा | पीठ में | - |
| 05. | वामनी | बायीं कान में | - |
| 06. | कूर्मजा | भ्रूमध्य | अस्थि मलों का निष्कासन |
| 07. | भावकी | आँख के बाहरी हिस्से में | - |
| 08. | सेका | दोनों कंधों में | - |
| 09. | दोषा | आँख के कोटर में | - |
| 10. | महाविष्टा | सीने में | पित्त का वहन |
| 11. | मातरा | नाभि में | - |
| 12. | शबरी | नाक के अग्रभाग में | आँतों के मलों का वहन |
| 13. | शीतदा | मुख में किनारे के तन्तुओं में | - |
| 14. | ऊष्मा | कण्ठ में | पेट की ओर |
| 15. | प्रवणा | हृदय में | हृदय के मलों का निष्कासन |
| 16. | हृष्टवदना | मूत्राशय में | - |
| 17. | स्वरूपिणी | लिंग प्रदेश | कफ का वहन |
| 18. | सामान्या | गुदा क्षेत्र | - |
| 19. | हेतु दायिका | दोनों जंघाओं में | रक्त का वहन |

[373] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 226-38.

| | | | |
|---|---|---|---|
| 20. | वियोगा | - | पसीने का वहन |
| 21. | प्रेमणी | पैर के अंगुलियों में | मेद का वहन |
| 22. | सिद्धा | पैर के ऊपरी हिस्से में | - |
| 23. | पावकी | अंगूठों में | - |
| 24. | सुमना | घुटनों में | - |
| 25. | त्रिवृत्ता | हृदय मध्य से नेत्र में | नेत्र से देखने का कार्य |
| 26. | कामिनी | हृदय मध्य से कान में | कर्ण से सुनने का ज्ञान |
| 27. | गेहा | हृदय मध्य से नासिका | नासिका से शब्द ज्ञान |
| 28. | चण्डिका | हृदय मध्य से जीभ | जीभ से रस ज्ञान |
| 29. | मारदारिका | हृदय मध्य से त्वचा | त्वचा से स्पर्श ज्ञान |
| 30. | ललना | नाभिसेचार अंगुल नीचे मेरूदण्ड़ के बायें भाग से | - |
| 31. | रसना | नाभि से चार अंगुल नीचे मेरूदण्ड़ दाहिने भाग से | - |
| 32. | अवधूती | ललना और रसना नाड़ियों के मध्य से मेरूदण्ड़ में | - |

उपरोक्त बत्तीस नाड़ियाँ ऊर्ध्वगमन करने वाली एवं महासुख प्रदायिका हैं। इनमें भी ललना, रसना और अवधूती तीन प्रमुख हैं,[374] जो नाड़ीत्रय के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये देह में गुह्य, नाभि, हृदय, कंठ, सिर के मध्य तक विस्तारित हैं।

शरीर के नाभि प्रदेश से लगभग चार अंगूल नीचे बायीं तरफ से ललना और दाहिनी तरफ से रसना का उद्गम स्थान है। दोनों नाड़ियाँ ऊपर आकर नाभि प्रदेश में मिलती हैं।

[374] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. पृ.8.

फिर उनका प्रसार ऊपर के तरफ होते हुए दाहिनी दिशा से रसना और बायीं दिशा से ललना आकर कण्ठ में पुनः मिलती हैं। पुनः ऊपर उठती हुई नासिका में आकर मिल जाती हैं। ललना नाड़ी का संबंध बायीं नासिका से और रसना नाड़ी का संबंध दाहिनी नासिका से है। आगे ये दोनों ऊपर आकर ललाट स्थान पर सहजयानियों के महासुख स्थान से जुड़ी हुई होती है।

उपरोक्त तीनों नाड़ियाँ को ही योगिनी नाड़ी कहकर संबोधित किया गया है। इन तीनों से ही सम्पूर्ण नाड़ी समूह जुड़ी होती हैं एवं मूल रूप से समपूर्ण नाड़ियों का आधार अवधूती है जो स्तम्भवत सभी को आधार प्रदान करती है।

## ललना नाड़ी :-

यह नाड़ी नाभि से चार अंगुल नीचे कंदस्थान से उत्पन्न होती है। यह शरीर के बायीं दिशा से वृक्क, नाभि, हृदय से होते हुए सभी इन्द्रियों से जुड़ी हुई होती है, परंतु इसका मुख्य सिरा बायीं नासिका में आकर खुलता है। इसका ऊपरी सिरा प्राण से और निचला सिरा अपान से जुड़ा हुआ होता है।

इस प्रकार यह प्राण और अपान दोनों से संबंध रखती हुई बह्मरन्ध्र से भी जुड़ी होती है। इसका निचला सिरा स्त्री और पुरूष दोनों में मूत्र को बाहर निकालने का कार्य करती हैं अतः इसे अधोगामी नाड़ी भी कहा जाता है। कुछ स्थानों पर इसे बायीं नासिका से निकलकर शरीर के बायीं दिशा से नाभि तक मानी जाती है। यह वायु को नासिका से प्रवेश कराती है अतः यह प्रवेश मार्ग भी कहलाती है।

हेरूक तंत्र के अनुसार, ललना धनुष के आकार की है, जो गर्दन से आरंभ होकर नाभि में वाम दिशा में प्रवेश करती है। यह प्रज्ञा स्वभावा है जो चंद्र के गुणों का वहन करती है। यह स्त्री तत्त्व का प्रतिनिधि है जो शुद्ध रूप में आलि कहलाती है। यही अक्षोभ्य बोधिचित्त का वहन करती है।

उपरोक्त बत्तीस नाड़ियों की सूची में क्रमांक एक अभेद्या से लेकर ऊष्मा तक के नाड़ी समूह ललना से संबंधित होते हैं। सहजयानी सिद्धों ने ललना को ही

प्रज्ञा, चंद्र, शून्यता, आलि, वाम, चंद्र, ए, स्त्री, नारी, वज्रकन्या, दुहिता, स्वर, नैरात्मा स्वभाव, कमल, पद्म, रज, गगन, डोम्बी, रजकी, स्त्री जन्नेन्द्रिय आदि नामों से संबोधित किया है। यही आलि के अर्थ में अ से आरंभ होने वाले स्वर माला का प्रतिनिधि है। सिद्धों ने इसे ही रात्रि का प्रतीक माना है। इससे ही सोम का स्राव होता है। यह श्वेत वर्ण की है, जो शरीर में श्वसन का कार्य सम्पन्न करती है एवं शुक्र का वहन करती है। यह अवधूती से जुड़ी रहती है।

## रसना नाड़ी :-

रसना नाड़ी का उद्गम नाभि से चार अंगुल नीचे कंदस्थान से हुआ है। यह शरीर के दाहिनी दिशा से वृक्क, नाभि, हृदय से होते हुए शरीर के सभी इन्द्रियों से संपर्क स्थापित करता हुआ दाहिनी नासिका में खुलता है। इसका ऊपरी सिरा प्राण से और निचला सिरा अपान से जुड़ा हुआ होता है। यह प्राण और अपान दानों से संबंध रखते हुए बह्मरन्ध्र से जुड़ा हुआ होता है।

इस नाड़ी का निचला सिरा स्त्रियों में गर्भाष्य के दुषित रक्त और पुरूषों में मल के निष्कासन का कार्य करता है। यह उर्ध्वमुखी नाड़ी है जो नाभि से होती हुई दाहिनी नासिका में खुलती है। यह वायु को शरीर से बाहर निकालने का कार्य करता है। शुद्ध होकर कालि कहलाता है। यह उपाय स्वभावा एवं पुरूष गुण वाला है। संसार के सभी पुरूष वर्ग रसना स्वभावा है। सहजयानी सिद्धों ने रसना को कुछ स्थानों पर बुद्ध स्वभाव युक्त भी कहा है। यह रक्त का संवहन करता है।

उपरोक्त बत्तीस नाड़ियों में से क्रमांक पन्द्रह, प्रवणा से लेकर सुमना तक की नाड़ी समुह रसना नाड़ी से संबंधित होती है। इसे ही सूर्य, पुरूष, उपाय, कालि, दक्षिण, व्यंजन, वं, मणि, शुक्र, कुलिश, मेघ, नर, वज्रपुरूष, युवक, भगवान आदि नामों से पुकारा गया है। कालि से तात्पर्य 'क' वर्ण से आरंभ होने वाली व्यंजन समुह से है, जिसे सहजयानी सिद्धों ने दिन का प्रतीक माना हैं। यह नाड़ी श्वेत वर्ण वाली है जो रज का वहन करती है।[375] यह अवधूती से जुड़ी होती है।

[375] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 215-16.

## अवधूती :-

शरीर में विस्तारित सभी नाड़ियों में अवधूती प्रधान नाड़ी है, जो ललना और रसना के  मध्य खम्बा (स्तम्भ) के समान स्थित होता है। यह सहजसुख प्रदायक मार्ग है जो मेरूदण्ड में स्थित है। इसे ही सुमेरू पर्वत कहकर पुकारा गया है। इसके अन्दर बंकनाल (गहरी खाई) है। सुमेरू के ऊपर आकाश का स्थान है। यह सभी ललना, रसना आदि सभी नाड़ियों के साथ-साथ शरीरस्थ चक्रों को भी आधार प्रदान करती है। यही सहजयानी साधना में वज्रदेह का आधार है। जो वर्णहीन होती है।

सामान्य अवस्था में इस अवधूती का मार्ग अवरूद्ध प्रायः होता है। इस अशुद्धता के कारण इनकी गति सांसारिक हो जाती है एवं अधोगामी होकर शक्ति का क्षय करती रहती है। चर्यापद, दोहाकोश, चर्यागीति आदि में अवधूती को विभिन्न रूप में परिभाषित किया गया है।

अवधूती संधा भाषा के रूप में प्रयुक्त है जिसे स्पष्ट बताया नहीं जा सकता। किन्तु जागृत होने पर यह अनादिकाल से चली आ रही प्रकृति के प्रभावों को निवृत्त कर भव बंधनों से मुक्त कर योगी को अहर्निश जागृत कर देती है। क्लेशादि पापों को समाप्त करने के सामर्थ्य के कारण ही इसे अवधूती कहा गया है साथ ही देहमध्य में स्थित होकर महासुख को धारण करने के कारण अवधूती[376] कहलाती है।

चर्यापदों में इसके परिशुद्धा और अपरिशुद्धा नामक दो अवस्थाओं की चर्चा है। इसकी अपरिशुद्धता के कारण अपान वायु निग्मगामी होकर साधक के शुक्र को नष्ट कर देती है। जिससे देहस्थ शक्ति क्षय होती है। जिससे चित्त में चंचलता उत्पन्न होती है, तब साधक काल का वशीभूत होकर नष्ट हो जाता है। सिद्ध कृण्हपा ने अवधूती की इसी अपरिशुद्ध अवस्था को मार ड़ालने (नियंत्रित) का उपदेश किया है। अवधूती की परिशुद्धावस्था को सिद्ध कण्हपा डोम्बी कहकर

[376] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001. पृ. 138.

संबोधित किया है, यही निरात्म योगिनी[377] भी है, जो प्रज्ञोपाय साधना में बोधिचित्त का वहन कर ऊर्ध्वगमन कराती है।[378]तब काल पर विजय प्राप्त होता है। यह तभी संभव हो पाता है, जब प्राण का निरोध साधक वज्रजाप से कर लेता है। उस समय प्राणापान की सामान्य क्रियाऐं निश्चल हो जाती है। तब अवधूती मार्ग से बोधिचित्त का ऊर्ध्वगमन संभव हो पाता है। अवधूती ही विशुद्ध अवस्था में शून्यपथ, अद्वयमार्ग, आनंद स्थान आदि नामों से पुकारा गया है।

सहजयान में ललना और रसना दोनों नाड़ियाँ विशुद्ध रूप से अवधूती कहलाती है परंतु जब तक इनमें अशुद्धियों की उपस्थिति होती है ये क्रमशः ललना और रसना नामक दो अलग-अलग शक्ति धाराओं के रूप में शरीर में स्थित होती है किन्तु मलिनता के जाते ही अद्वय अवधूती हो जाती है। इसे ही मध्य पथ अथवा सरल पथ भी कहा गया है जो विशुद्धावस्था में वक्र न होकर सीधी हो जाती है। यही महासुख स्थान तक सीधी रेखा में स्थित है।

साधना की प्रगाढ़ता में अवधूती ग्राह्य-ग्राहक अर्थात् ललना और रसना के गुणों से परे हो जाती है, इसे ही शून्य कह दिया गया है। सहजयानी सिद्धों के अनुसार तभी एक्य लाभ अथवा निरंजन पद संभव हो पाता है। शून्यपथ ही परमपद का आधार है। जिससे होकर प्रज्ञोपाय अद्वय रूपी बोधि चित्त ऊष्णीष कमल में पहुँचता है।[379] जिसके उपरांत साधक महासुख से सराबोर हो जाता है।

## अवधूती का स्वरूप और जागृति :-

अवधूती का आकार केले के फूल के सदृश होता है। जिस प्रकार केले का पुष्प तने से ऊपर बढ़ते हुए आगे जाकर नीचे की ओर लटक जाता है। उसी प्रकार यह मूलकंद से निकलकर ऊपर की ओर गति करते हुए अधोमुख होकर स्थित होती है। इसका सबसे ऊपरी सिरा 'हूँ' वर्ण की आकृति के समान एवं इसका सबसे निचला सिरा 'अ' वर्ण की आकृति के सदृश होता है। इसके ऊपरी सिरे में

---

[377] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 14.

[378] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ.132.

[379] भारती, अमृता. बसवरेड्डि, बी ईश्वर. राजीव, रस्तोगी. संपादित. नाड़ी-तंत्र एवं प्राण. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, 2012. पृ. 219.

शुक्र की सूक्ष्म मात्रा एवं निचले सिरे में रक्त (रज) की सूक्ष्म मात्रा की उपस्थिति होती है। मध्य भाग में महाप्राण वायु स्थित होता है जिसका आकार अहं के सदृश है।

अवधूती की जागृति प्रज्ञा और उपाय के संयोग से ही संभव है। इन्हीं को नामान्तर भेद से सूर्य-चंद्र अथवा कमल-कुलिश का योग कहा गया है। जागृत होने पर इसका स्वरूप जलती हुई दीप शिखा की अग्नि के समान अनुभव होता है। यह वज्रवाराही स्वभावा है। जागृत होने पर सबसे निचले चक्र गुह्य चक्र से उर्ध्वगमन करती हुई ऊष्णीष कमल तक पहुँच जाती है। सूक्ष्मशरीरगत सभी चक्र अवधूती में ही आश्रित रहते हैं।[380]

साधना से मध्य नाड़ी अवधूती में दाहिनी एवं बायीं नाड़ी, ललना और रसना की प्रगाढ़ता की वृद्धि निरन्तर बनी रहती है। इस निरंतरता में ललना और रसना का स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं रह जाता। दोनों अवधूती में मिल जाती है। इसमें भी शुद्धता का क्रम जारी रहता है। अवधूती की यह अवस्था डोम्बी कहलाती है। जिससे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश युक्त विषयों का समूह जलकर नष्ट हो जाते हैं। इससे पूर्व ललना-रसना अथवा सूर्य-चंद्र नामक शक्ति की दो धाराओं का एक-दूसरे के विपरीत भूमिका बनी रहती है। इनके आपस में वज्रजाप के द्वारा संयोग होने के पूर्व प्राणिक शक्ति की सक्रियता मध्यपथ अवधूती में न होकर विषयों में आसक्त हैं, वह शक्ति की वक्र गति कहलाती है।

चाण्डाली शक्ति (रागाग्नि) के नाभि में जागरण के उपरांत ही मार्ग, वक्र न होकर सीधा हो जाता है। यह पंचस्कन्धों (पंचमहाभूतों) के विषय जाल को नष्ट करती हुई ऊर्ध्वगति करती है। जिसमें वासना, क्लेशादि भस्म हो जाते हैं। इसे ही चण्डग्नि अथवा चंडाली[381]कहा गया है।

उर्ध्वगमन करती हुई यह अग्नि अव्यक्त रूप में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक के शरीर में मन व पवन की गति स्थिर हो जाती

---

[380] नेगी, ठाकुरसेन. ग्रंथकार. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999.पृ. 29.

[381] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 218.

है। चित्त की इस स्थिरावस्था को सहजयानियों ने आकाश की संज्ञा दी है एवं गुरू रूप वज्रधर कहकर पुकारा है, जो रागाग्नि के अव्यक्तावस्था के उपरांत उत्पन्न होता है।

सहजयानी साधना में संवृत्ति बोधिचित्त (बिन्दु) का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है। बिन्दु से ही वर्णों (अक्षरमाला) की उत्पत्ति होती है। चंद्र (ए) और सूर्य (वं) के मध्य ही बिन्दु स्थित है। सिद्धों की इस साधना में बिन्दु (वीर्य) का संरक्षण परमावश्यक है। बिना बिन्दु की स्थिरता के विषयाशक्ति, वासना, कामना आदि पर विजय प्राप्त नहीं किया जा सकता।

सामान्यावस्था में क्षरणशील बिन्दु को संवृत्ति बोधि चित्त कहा गया है। जो सांसारिक है, एवं रजस गुण प्रधान जिसमें प्राण की चंचलता से अस्थिर बना रहती है। जिससे अन्तःशक्तियाँ अधोगामी होकर नष्ट होती रहती है। इस मार्ग से सहजावस्था की प्राप्ति संशय पूर्ण है। जिससे सामान्य जन महासुख से वंचित हो जाते हैं।

सिद्धों के द्वारा प्राप्त सहजसुख का आधार ब्रह्मचर्य है। जो शुक्र (बोधिचित्त) के नियंत्रण से ही संभव हो पाता है। इसे ही नामांतर भेद से प्राण की स्थिरता का प्राप्त होना कहा गया है। बिन्दु की स्थिरता के उपरान्त उसका चालन करने से अवधूतीका (मध्य नाड़ी) जागती है, तब प्राण के साथ संयुक्त होकर चंद्रस्वरूपा बोधिचित्त अधोगति के लक्षणों को त्याग कर ऊर्ध्वगमन कर सुमेरू शिखर (मेरूदण्ड़) जा पहुँचती है, जहाँ काल का प्रवेश नहीं है, वहाँ केवल महासुख की आनंदानुभूति होती है। जहाँ सब कुछ उस सहज आनंद में विलीन हो जाता है।

इसे ही शून्यावस्था अथवा नैरात्मा कहा गया है। इस क्रम में अवधूती अवस्था में द्वैत भाव, चाण्डाली अवस्था में रागाग्नि के शुद्ध होने से अद्वैत भाव एवं अवधूती के विशुद्ध हो जाने पर डोम्बी रूप में यह भव निर्वाण से परे सहजानंद प्रदायक है, इसे ही सिद्धों ने अद्वय कहा है।

इसी क्रम में निर्माण चक्र, हृदय चक्र, संभोग चक्र और ललाट चक्र महासुख चक्र के क्रमशः जागरण से रसों की अभिव्यक्ति होती है। जिससे क्रमशः आनंद,

परमानंद, विरमानंद आदि का उदय होता है, और अंततः योगी सहजानंद में प्रतिष्ठित हो जाता है। जिससे उष्णीष कमल में सहजसुख या महासुख की अनुभूति होती है। इसे ही नामांतर भेद से बोधि की प्राप्ति कहा गया। जहाँ नाद और बिंदु एकाकार हो जाते हैं।

सहजयानी सिद्धों ने सहज को अनुत्तर कहा है अर्थात् जिसे बताया जाना असम्भव है। श्वास-प्रश्वास की गति निश्चल हो जाती है। इस अवस्था में मन, इन्द्रिय आदि का अस्तित्व नहीं रह जाता अर्थात सहजानंद, इन्द्रिय, प्राण, मन आदि से परे की अवस्था है। सहजयानी सिद्धों के अनुसार, यह निर्वाण की अवस्था है। इसके प्राप्ति के बाद जन्म लेना और मृत्यु होना रूक जाता है। सहजीया सिद्धों ने इसे ही ज्ञानमुद्रा कहकर संबोधित किया है।

सहज वैराग्य का पथ नहीं वरन् राग की साधना है। इस साधना में सिद्धों ने देह को वृक्ष और चित्त को अंकुर की संज्ञा देते हुए कहा है कि देह रूपी वृक्ष को विषय रस से  सींचा जाता है। तब अंकुर रूपी चित्त विकसित और विस्तारित होकर आकाश के समान सहज फल प्रदान करता है। राग ही बंधन और मुक्ति का कारण है। वीर वही है, जो इस पथ से गमन करते हुए राग को निर्वाण का माध्यम बना लेता है।

सहज की प्राप्ति ही पूर्णसिद्धि है। यहीं चित्त की पूर्ण विश्रांति है। इसे ही नामांतर भेद से निर्वाण, महासुख, सूखराज, महामुद्रा, साक्षात्कार आदि से पुकारा गया है। जहाँ वाच्य-वाचक, ज्ञातृ-ज्ञेय और भोक्तृ-भोग्य भाव नहीं रहता। सहजयानी सिद्धों के अनुसार, जहाँ ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों उपस्थित हैं, वहाँ विकल्पजाल है। इसे भेदकर निर्विकल्प पद की उपलब्धि ही सहज अवस्था है। यह चरम आनंद की अवस्था है, उसे ही महासुख कहा गया है। वह सहज है इसलिए कारणहीन और सदा उदित है। इस अवस्था को पाये बिना जरा-मरण का त्याग नहीं होता। श्वास-प्रश्वास की गति जब तक बनी हुई है, तब तक संकल्प-विकल्प का ही आवागमन है। जिसके कारण भ्रांति का विकास रूकता नहीं। वायु के स्थिर होते ही संकल्प जाल कट जाते हैं।

ज्ञानमुद्रा की प्राप्ति से विकल्पजाल, मिथ्याज्ञान और कर्तापन का अभिमान लुप्त हो जाता है। कर्ता कोई नहीं स्वभाव ही संकल्प का जड़ है। यही बोध ही शुद्ध बोध है, इसे ही सहजयानी सिद्धों ने ज्ञानमुद्रा कहा है। इस बोध के उदय होते ही निर्विकार, निरंजन पद की प्राप्ति हो जाती है। यही परमार्थ है और सभी का मूल स्वभाव भी। सहजावस्था संसार और निर्वाण दानों के मध्य की मुक्त दशा है। चित्त के संस्कार के कारण ही बाह्य और अंतर जगत में भिन्नता दिखलाई पड़ती है। यही असहजता ही भव है। संसार है। द्वैत को जन्म देती है। जब सहज का ज्ञान हो जाता है, तब भव और निर्वाण समान हो जाते है। जिसे सहजयानी सिद्धों ने अद्वय कहा है।

## 3.4.3 सहजयानी साधनाओं में आसन :-

सिद्धों ने सहजावस्था की प्राप्ति के लिए देह को विशेष महत्व देते हुए इसे मुख्य कायसंपदा कहकर पुकारा है। यह समस्त प्रकार के साधनाओं का आधार है। शरीर के वज्र के समान बलिष्ट, सुगठित, निर्मल व रोग रहित होने पर ही आगे की साधनाओं को सम्पादित किया जा सकता है, जो आसन, प्राणायाम, बिन्दु के स्थिर होने से ही वज्रदेह (अक्षुण्ण) में परिणित किया जा सकता है। सिद्धों ने आसनों की चर्चा चण्डाली योग साधना के अंतर्गत आरंभिक साधनाओं में रक्षाचक्र के अंतर्गत की हैं।

रक्षा चक्र का अर्थ है, जो क्लेशादि दोषों से रक्षा करता हो। ठाकुर सिंह नेगी ने नरोपा के षड्ंग योग के अंर्तगत सात तरह के आसन विधियों की चर्चा की है जो शरीर को स्थिरता प्रदान करती है। इनमें सिद्धासन (वज्रासन), पद्मासन आदि सम्मिलित हैं। उपरोक्त आसनों का अभ्यास करते हुए सिद्धों ने इसे बुद्ध आसन कहकर संबोधित किया है। महामुद्रा शास्त्र से आसन[382] की सात विधियों की भी चर्चा प्राप्त होती है।

[382] नेगी, ठाकुरसेन. ग्रंथकार. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 383.

## 3.4.4 सहजयानी सिद्धों की वज्रजाप साधना :-

जिससे जीव जीवित है, जो समस्त नाड़ियों में व्याप्त है वही प्राण जीवन का आधार है। यही महाशक्ति है। चित्त और प्राण के बीच की घनिष्टता से सिद्ध परिचित थे। चित्त में उठने वाली वृत्तियों का आधार प्राण ही है, अतः चित्त रूपी उच्चश्रृंखल पशु को प्राण रूपी स्तम्भ से ही बांधना संभव हो सकता है। अन्यथा चित्त पर नियंत्रण दुरूह विषय है। इसलिए वज्रयानी साधकों ने भी अपनी साधनाओं में प्राण नियंत्रण पर विशेष बल दिया था। प्राणायाम के अभ्यास से ही सहजयानी सिद्ध प्राण पर नियंत्रण स्थापित करते थे।[383]

सेकोद्देश्य टीका के अनुसार, दक्षिण और वाम नाड़ी के रूप में प्रसिद्ध रसना और ललना मार्ग में प्रवृत्त प्राण को निरोध कर मध्यमार्ग (अवधूती) में प्रवृत्त करना चाहिए। यह अभ्यास पूरक, कुम्भक और रेचक से सम्पन्न होता है। जिससे सूर्य, चंद्र और राहु स्वभाव की क्रमशः रसना, ललना और अवधूती का योग हो जाता है। इसे ही प्राणायाम[384] कहा गया है।

प्राणायाम अभ्यास के पूर्व इन प्राणों के विभिन्न प्रकारों, उत्पत्ति, स्थिति, स्वरूप एवं उनके कार्यों आदि का भी विस्तृत विवरण इन सिद्धों के ग्रंथों से प्राप्त होते हैं। इनमें पांच मुख्य प्राण के अंतर्गत प्राण, अपान उदान, समान और व्यान आते हैं।

## प्राण :-

प्राण देह में महीन रोमछिद्रों से लेकर ऊर्ध्व और अधः सभी भागों में व्याप्त होता है, एवं सभी नाड़ियों के मूल मध्य स्थान पर आश्रित होने के कारण सभी मुख्य प्राणों और उपप्राणों का मूल कहा गया है। यह एक दिन-रात में 21600 वायु उत्पन्न करता हुआ सक्रिय रहता है। इसे चित्त अथवा क्लिष्टमनस् की भी संज्ञा दी गयी है। यह अक्षोभ्य, आकाशनाथ स्वभाव में स्थित माना गया है।

---

[383] नेगी, ठाकुरसेन. ग्रंथकार. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 265.

[384] वही, पृ. 256. *ततः प्राणायामो नाम ललनारसनावामदक्षिणमार्गनिरोधः।*

आकार में 'अ' के समान आकाश धातु स्वभाव वाला होता है, तथा कर्म और ज्ञान वायु के अपकर्षण होने पर निर्विकल्प रूप में स्थित होता है। देह में अन्य स्थानों में प्रवृत्त हो जाने पर लक्षण के रूप में उन्माद, मूर्च्छा अन्यथा मृत्युभय होता है। यह रंगहीन आकाश के सदृश होता है। जीवनकाल में यही सभी प्रकार के स्मृतियों का उत्पादन करता है एवं मृत्युकाल में हृदय में परिनिवृत्त हो जाता है।

**अपान :-**

यह नाभि के अधोभाग में संचरित होता है। जो तीन नाड़ी समूहों के द्वारा पिण्ड के आकार में शंखिनी नाड़ी के आभ्यन्तर स्थित माना गया है। इसकी आकृति 'लृ' आकार की है। जिसका स्वरूप महासुख ज्ञानधातु है। पंच धातुओं में पृथ्वी धातु के स्वभाव वाला है।[385] इसका मुख्य कर्म मूत्र, मल, शुक्र, शोणित आदि रस धातुओं का संकलन व निष्कासन करना है, किन्तु देह के अन्य स्थानों में प्रवृत्त हो जाने के कारण अधोभाग के व्याधियों का कारण माना गया है।

**समान :-**

यह वायु रोहिणी नामक नाड़ी से उत्पन्न माना जाता है, जो हृदय के सम्मुख भाग में स्थित होता है। इसका एक भाग फुफ्फुस में जाता है। यह, वायु धातु स्वभाव वाला होता है,जो आकार में 'इ' अक्षर के समान है। इसका कार्य मुख्य रूप से खाये हुए अन्न का पाचन कर शरीर का पोषण करना[386] एवं कषाय रसों का परित्याग करना है।

**उदान:-**

यह हृदय के ऊपर दक्षिण भाग के स्तन नाड़ीदल एवं हस्तिजिह्वा नाड़ी से होते हुए कण्ठ स्थान में स्थित होता है जो पंच धातुओं में अग्नि स्वभाव वाला एवं 'ऋ' अक्षर के आकार का है। हस्त और पाद आदि के द्वारा विभिन्न प्रकार के गमन-आगमन करना, मुख से संगीत गायन आदि इनके मुख्य कृत्य हैं। देह के अन्य

---

[385] नेगी, ठाकुरसेन. ग्रंथकार. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 272.

[386] वही, पृ. 273.

स्थानों में प्रवृत्त होने पर इससे सिर चकराना, मिर्गी रोग आदि ऊर्ध्व व्याधि उत्पन्न होते हैं।

व्यान :-

यह वायु हृदय के दाहिने भाग में स्थित रसना नाड़ी से संयुक्त होकर पिंगला नाड़ी के आभ्यन्तर से संचारित होता है तथा देह के सभी ग्रन्थियों में व्याप्त रहता है।[387] यह अप् धातु (जल) के स्वभाव वाला एवं 'उ' अक्षर के आकार वाला है। इसका मुख्य कृत्य बल का प्रसार, संकोचन तथा प्रक्षेपण आदि है। देह में अन्य स्थानों में प्रवृत्त होने पर इससे हर्ष, मृत्यु आदि व्याधियाँ उत्पन्न होती है।

उपरोक्त पाँच वायुओं के साथ-साथ पाँच उप वायुओं के नाम एवं कार्य आदि की भी चर्चा है। जिसमें प्रथमतः नाग वायु[388] दाहिने बाहुमूल के नाड़ी दलों के साथ संचारित होता है, जो ज्ञानधातु स्वभाव एवं आकाश के समान 'आ' आकार वाला है। जिसका एक भाग दोनों नेत्र में जाता है। इसका मुख्य कृत्य रूप ग्रहण करना व देह को लावण्य प्रदान करना है।

कूर्म वायु, हृदय के पीछे स्थित जया नाड़ीदल में संचारित होता है। यह वायु धातु स्वभाव वाला तथा 'ए' आकृति वाला है। इसका एक हिस्सा दोनों कर्णों में धँसा होता है। इसका मुख्य कार्य, शब्द ग्रहण करना, हाथ-पैर आदि का प्रस्फुरण आदि हैं।

कृकर वायु, यह बायीं बाहुमूल के नाड़ीदल अलम्बुषा से संचारित होता है। अग्निधातु स्वभाव वाला, तथा 'आर्' अकार का है। जिसका एक भाग नासिका में स्थित होता है। जिसका मुख्य कृत्य, गंध को ग्रहण करना, क्रुध एवं क्षुब्ध होना है।

देवदत्त वायु, यह हृदय के बायी दिशा में स्थित इड़ा नाड़ी तथा मेष नाड़ी से संचारित होता है, जो जल धातु के स्वभाव वाला एवं 'ओ' की आकृति का है।

---

[387] नेगी, ठाकुरसेन. ग्रंथकार. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 274.

[388] वही, पृ. 269-276.

जिसका एक भाग जिह्वा में स्थित होता है। मुख्य कार्य रस ग्रहण करना एवं जम्हाई लाना आदि है।

धनंजय नामक वायु, यह देह में बायीं ओर स्थित स्तन की कुहू नामक नाड़ी में संचरित होता है। यह पृथ्वी धातु स्वभाव वाला और 'आल्' अक्षर के आकार का है। जिसका एक हिस्सा उपजिह्वा के मध्यभाग एवं रोमकूपों में स्थित होता है। मुख्य कार्य स्पर्श के द्वारा विभिन्न संवेदनाओं मृदु, तीक्ष्ण आदि को ग्रहण करना। स्वेद अंश धातु को बाहर निकालना इत्यादि है।

इस प्रकार प्राण को विशेष महत्त्व देते हुए इन सिद्धों ने जगत के चित्त रूपी बीज के अंकुरण रूपी प्रपंच के शमन के लिए प्राणायाम रूपी साधन को स्वीकार करते हुए प्राण संयमन की साधना को वज्रजाप कह कर भी संबोधित किया है, जो पूरक, कुम्भक और रेचक के अभ्यास पूर्ण होते है। पूरक में श्वास को अन्दर भरना, कुम्भक में अन्दर लिये हुए श्वास को अपनी क्षमतानुसार रोककर रखना एवं रेचक में श्वास को बाहर निकालने का अभ्यास शामिल है। इस अभ्यास में सिद्धों ने मन्त्रों को आवश्यक माना हैं। पूरक में 'ओं कुम्भक में आः और रेचक में हूं मंत्रों के जाप का विधान है।

उपरोक्त अभ्यास से प्राण-अपान का संयोग होता है तब महाप्राण, महासुख चक्र स्थान में पहुँचकर सहजसुख प्रदान करता है। इनके लिए प्राणायाम[389] (वज्रजाप) आवश्यक है। प्राणायाम साधनाओं में श्वास को तीन बार बाहर निकालने और फिर लंबी गहरी श्वास लेकर रोकने और सहजता से श्वास छोड़ने के निर्देश प्राप्त होते हैं। प्राणायाम की एक विधि में निम्न चरणों को अपनाने की बात कही गयी हैं-

श्वास को अंदर ले जाते समय नासिका और रोमछिद्रों से पाँच रंगों के प्रकाश अंदर प्रवेश कर रहे है और इन प्रकाश से सम्पूर्ण शरीर प्रकाशित होने की भावना करनी चाहिये एवं श्वास को बाहर निकालते समय पाँचों रंगों के प्रकाश से सम्पूर्ण संसार प्रकाशित होने की भावना की जाए।

---

[389] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 263-266.

श्वास को अंदर भरते हुए पंच प्रकाश किरणों के भावना के उपरांत 'हूँ' बीजमंत्र से सारा शरीर के अनुप्राणित होने की भावना और श्वास बाहर निकालते समय 'हूँ' बीजमंत्र से सारा जगत अनुप्राणित होने की भावना की जानी चाहिये।

श्वास अंदर लेते हुए सम्पूर्ण शरीर में प्राण के संचार और विस्तार की भावना और छोड़ते समय प्राण का सम्पूर्ण जगत में प्रसारित होने की भावना करनी चाहिये।

इस प्रकार उपरोक्त तीनों प्रक्रियाओं को एक समय में सात-सात बार करने एवं एक दिन में तीन बार में इक्कीस प्राणायाम[390] करने के निर्देश हैं। इस प्रकार प्राण नियंत्रण की साधना का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

## 3.4.5 मुद्रा साधना :-

सहजयानी साधना में मुद्रा का विशेष स्थान है। इन सिद्धों ने योगी को बोधिचित्त एवं योगिनियों को प्रज्ञा, महामुद्रा, ज्ञानमुद्रा के साथ सहजसुन्दरी नाम से भी संबोधित किया है। इसे ही शक्ति, साधिका, वज्रकन्या, युवती, पद्म के साथ-साथ कई स्थानों पर योनि का भी प्रतीक माना है।

हेवज्रतंत्र में मुद्राओं की संख्या पाँच बतायी गयी है। जिनमें डोम्बी, नर्ती, रजकी, ब्राह्मणी और चण्डालिनी।[391]मुद्रा, यौवन से परिपूर्ण, वृहद नेत्रों वाली, सुन्दर मुखाकृति एवं लम्बे केशों वाली है। जो कृष्णवर्ण, रक्तनेत्रा, महारौद्रा है, जिसने अपने हस्त में कर्तरी, कपाल आदि धारण कर रखा है। जो कटी में मेखला धारण करती है एवं शवारूढ़ है।[392]

साधक के द्वारा उस मुद्रा का गुरू के निर्देशानुसार ग्रहण कर साधना का विधान है, जो गुह्य है। इस ज्ञान का प्रकाशन सभी के लिए आवश्यक नहीं है। मुद्रा साधना के पूर्व साधक को चार अभिषेक साधनाओं से गुजरना आवश्यक था उपरांत वह साधक महामुद्रा साधन प्रणाली में दीक्षित किया जाता था। दीक्षा के

---

[390] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 385.
[391] न्यौपाने, काशीनाथ. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी :इण्डियन माइंड, 2012. पृ. 44.
[392] वही, पृ. 64.

उपरांत वह कपाली अथवा चर्यावर आदि नामों से पुकारा गया है। दोहाकोश में चार मुद्राओं के अंतर्गत कर्म, धर्म, ज्ञान एवं महामुद्रा का उल्लेख प्राप्त होता है। चर्यापदों में भी कर्म, ज्ञान एवं महामुद्रा का उल्लेख प्राप्त होता है।

महामुद्रा, भगवती, प्रज्ञा, दीर्घ, वर्तुल आदि से परे वर्णों से रहित, कमलदल के आकार वाली, अचंचला, मनोरमा, सुखावहा एवं भगवान के सदृश है। अद्वयवज्र ने उपरोक्त मुद्राओं में से समयमुद्रा को सर्वोत्तम माना है। इस प्रकार मुद्रा का स्वरूप सहजयानियों ने सम्वृत प्रज्ञा के रूप में संगिनी स्त्री[393] से लेकर महासुख प्रदान करने वाली अन्तः शक्ति तक को उल्लेखित किया है। सहजयानी ग्रंथ श्रीसम्पुट में भगवान् बुद्ध को देहस्थ चार प्रमुख चक्रों, निर्माण, धर्म, सम्भोग एवं महासुख चक्र में क्रमशः लोचना, मामकी, पाण्डरा एवं तारा के साथ मुद्रा रूप में सम्भोग[394] करते हुए बताया गया है।

योगी के द्वारा उस प्रज्ञा रूप स्त्री को वरण करने के उपरांत आलिंगन, चुम्बन आदि साधनाओं का विधान है। इन मुद्राओं का चयन अधिकांशतः सहज उपलब्ध निम्नवर्ग की जातियों की स्त्रियों से किया गया है। तभी उनके नामों में कैवर्ती, चाण्डाली, रजकी, नर्तकी,[395] वेश्या, ब्राह्मणी आदि का नाम आता है, जिनकी आयु बारह से बीस वर्ष के मध्य होनी चाहिये, किन्तु इनके पीछे सिद्धों की आध्यात्मिक साधनाओं से संबंधित गूढ़ सांकेतिक शब्दावलियों का भी प्रयोग होता रहा है। इन साधनाओं में साधक की विशेषताओं को बतलाते हुए कहा गया है कि वह आसक्ति, क्षुब्धता, मोह, द्वेष आदि से रहित होना चाहिए अन्यथा वह साधक साधना से च्युत (गिरकर) होकर बंधन[396] में आ जाता है।

उपरोक्त विशेषताएँ योगी की ही हो सकती है। जिसका इस मुद्रा-मैथुन साधना में शुक्र क्षरित नहीं होता साथ ही मुद्रा के स्खलित रज को कुम्भक प्राणायाम के द्वारा आकर्षित कर लेता है। इसी से उस योगी की काय, वाक एवं

---

[393] न्यौपाने, काशीनाथ. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी :इण्डियन माइंड, 2012. पृ. 66.

[394] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. , इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 220.

[395] वही, पृ.221.

[396] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. , इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 221.

चित्त की वज्रता प्राप्त होती है। उपरोक्त साधना दुरूह रास्तों से होकर गुजरती है एवं इस मार्ग में सफल योगियों को ही सिद्ध कहा गया है।

सेकोदेश्य टीका में मण्डल, अभिषेक, चक्र साधना आदि बाह्य साधनाओं की गौणता सिद्ध करते हुए कहा गया है कि गुरू के निर्देशन में तथागत की निर्माण काय में योगी और मुद्रा के क्रमशः बिन्दु और रज का युग्म नियोजित होता है। तब योगी बाह्य अनुष्ठानों से मुक्त हो जाता है। अतः सिद्ध कण्हपा का कथन है कि होम, जप, मंत्रादि अर्थहीन है। तरूणी महामुद्रा से संयुक्त होने से ही बोधिज्ञान संभव है।

गोपीनाथ कविराज ने अभिषेकों के प्रकारों में पूर्वसेक, उत्तरसेक एवं अनुत्तरसेक का उल्लेख करते हुए बाह्य मुद्रा की आवश्यकता केवल उत्तरसेक की साधना में ही आवश्यक माना है। पूर्वसेक में तो इसकी आवश्यकता होती ही नहीं साथ ही अंतिम अनुत्तरसेक में भी बाह्य मुद्रा आदि की आवश्यकता नहीं रहती। वहाँ आंतरिक शक्ति को ही मुद्रा[397] के रूप में स्वीकार्य किया गया है। यही साधक की शक्ति, अद्वय योग की साधिका एवं उत्तम सिद्धि प्रदान करने वाली है। साधक के द्वारा इस विद्यारूपा मुद्रा के साथ सदैव संग रहने के लिए विद्याव्रत लिये जाने का विधान है।

कुक्कुरीपाद ने अपने चर्यापद में परिशुद्ध अवधूती नाड़ी को बहु नाम से संबोधित करते हुए उसे जागृत कर ऊर्ध्वगति कराने की ओर संकेत किया है। वही विरूवापाद ने इस मध्यशक्ति को शुण्डिनी संबोधित किया है जो बोधिचित्त का उर्ध्वगमन कर महासुख प्रदान करती है। यही महामुद्रा, कालरहिता, योगिनी, वज्रवनिता, शुक्रवहा एवं बत्तीस नाड़ियों में प्रधान है,[398] किन्तु यही अपरिशुद्धता के कारण योगी के शुक्र को नष्ट कर महासुख से च्युत् कर देती है। अतः कृष्णपाद इसके अपरिशुद्धता को समाप्त कर वरण करते हुए कहते है कि यह नौका के

[397] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001. पृ. 294.

[398] वही, पृ. 297.

समान भवसागर से पार ले जाने वाली है। शबरपाद ने इसे कही गृहणी तो कहीं नैरात्मा, ज्ञानमुद्रा एवं सहजसुन्दरी[399] आदि रूपों में उल्लेख किया है।

### 3.4.6 चण्डाली शक्ति का जागरण:-

यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त नाड़ियों के जाल समूहों से प्राण को मध्य से ऊर्ध्व खींचने की क्रिया है। देह में चण्डाली शक्ति का जागरण योगसाधना के अंतर्गत ललना और रसना के संयुक्त होने से आरंभ होती है। जिसमें साधक वज्रजाप से बिन्दु का शोधन कर प्राण के परिशोधित अवस्था में उसे ऊपर उठाता है। यह सामान्य प्रक्रिया नहीं है, इस शक्ति का जागरण वीर ही कर सकने में सक्षम होते हैं। देहस्थ समस्त नाड़ियाँ ललना, रसना और अवधूती में आश्रित होते हैं। चण्डाली शक्ति के जागरण से समपूर्ण अंग-प्रत्यंग में प्राण के साथ अतिसूक्ष्म रूप में संयुक्त बिन्दु शक्ति का संचार होता है।

इस साधना में साधक सिद्धासन, पद्मासन, ब्रह्मचर्य, वज्रजाप, धारणा, मुद्रा साधना, ध्यान आदि की सूक्ष्म अभ्यासों से गुजरते हुए दिर्घाभ्यास में प्राण और अपान की घनिष्टता से यह शक्ति उद्‌बुद्ध होती है।

साधक के द्वारा सर्वप्रथम इस अभ्यास के आरंभ करने के पूर्व गुरू की प्रार्थना, पंच ध्यानी बुद्धों की पूजा उपरांत पद्मासन में स्थित होकर दोनों हाथों को नाभिमूल के अधः स्थिर कर अवधूती नाड़ी को ऊपर की कसता (सिकोड़ता) है, ठुड्डी को कण्ठ के नीचे स्थापित करता है। जीभ को तालु पर रखते हुए दृष्टि नासिकाग्र कर देह में बाहर और भीतर से शून्यता का अनुभव करता हुआ उसी शून्यता को क्रमशः नाभि, हृदय, कण्ठ और सिर पर देखता है। यह प्रक्रिया तब तक की जाती है जब तक साधक देहस्थ सम्पूर्ण अंगों एवं उपांगों में शून्यता का अनुभव न कर ले।

उपरांत देहमध्य में स्थित मध्य नाड़ी अवधूती का प्रत्यक्षीकरण किया जाता है। यह नाड़ी नाभि मूल अथवा गुह्य चक्र से आरंभ होकर ऊपर दोनों भौंहों

---

[399] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001. पृ.298.

के मध्य में पहुँचकर नीचे की ओर झुकी हुई है, जो आकृति में रस्सी के सदृश होती है। यह अन्तः में लाल तथा बाह्य सफेद वर्ण लिए हुए है। इसके बायीं ओर ललना और दाहिनी ओर रसना नाड़ियाँ स्थित होती है, जो अवधूती के साथ ऊपरी शिखर नासिका तक वक्र दिशा में जाते हुए ललना बायीं और रसना दाहिनी नासिका से जुड़ी होती है।

ये दोनों क्रमशः प्रज्ञा और उपाय स्वभाव वाले होते हैं। साधक को मध्य भाग में स्थित अवधूती के शीर्ष को नीलवर्ण का तथा ललना और रसना को क्रमशः सफेद और लाल वर्ण के साथ देखना चाहिये।

उपरोक्त तीनों नाड़ियों का स्पष्ट बोध हो जाने के उपरांत साधक क्रमशः ललाट, कण्ठ, हृदय तथा नाभि चक्रों को देखता है। निमार्णकाय में स्थित, नाभिचक्र जिसके नाड़ी दलों की संख्या चौंसठ हैं। यह ऊर्ध्वमुख, छतरी के तीलियों की तरह चौंसठ नाड़ियों से संबद्ध होती है। वही हृदय चक्र, धर्मकाय से संबंधित है, जिसकी आठ तिलियाँ अधोगामी छतरी की भांति आठ नाड़ियों से संबद्ध होती है। संभोगकाय में स्थित कण्ठ चक्र की सोलह नाड़ीदल, सोलह ऊर्ध्वमुखी नाड़ियों से जुड़ी होती है। महासुखकाय में स्थित ललाट चक्र की बत्तीस नाड़ीदल अधोमुखी होकर बत्तीस अधोमुखी नाड़ियों से जुड़ी होती हैं।

ये बत्तीस नाड़ियाँ महासुख प्रदायिका कहलाती है, जो साधक के द्वारा मर्माहत होने पर सम्पूर्ण वासना, क्लशादि को नष्ट कर महासुख प्रदान करती है। उपरोक्त चारों चक्रों से निकलने वाली नाड़ियाँ सम्पूर्ण देह में फैली होती है जिनका भीतरी रंग लाल तथा बाहरी रंग सफेद होता है एवं अंदर से सभी शून्य होती हैं। उपरोक्त चारों चक्र, मध्यपथ अवधूती में ही होती हैं।

उपरोक्त चार चक्रों के अतिरिक्त विमल प्रभा के अनुसार, दो और चक्र स्थित माने गये हैं। पहला गुह्य चक्र[400] जो नाभि के नीचे स्थित है, जिसमें शुक्र धातु के स्वभाव वाले बत्तीस नाड़ीदल स्थित है। दूसरा सिर में स्थित ऊष्णीष

[400] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, 1999. पृ.354.

चक्र[401] है, जिसमें महायाम स्वभाव वाले चार चक्र स्थित हैं। साधक अपने देह में इन चक्रों को देखता है। इस प्रकार साधक को पिण्डरूप सम्पूर्ण देह में स्थित विभिन्न नाड़ियों की स्थिति रंग आदि का ज्ञान हो जाता है।

प्राणायाम पूर्व साधना, साधक को दोनों नासिका से समान मात्रा में वायु के आवागमन का परीक्षण कर इस साधना को करने का विधान है। किसी नासिका से वायु की समान मात्रा के आवागमन नहीं होने पर उस नासिका को ऊपर रखते हुए आसन पर लेट जाना चाहिये तब बंद नासा छिद्र खुल जाता है। उस समय साधक को दाहिनी नासिका बंदकर बायीं नासिका से, शनैः-शनैः दीर्घ निःश्वसन कर, लघु श्वसन करना चाहिये। इस प्रक्रिया को तीन बार दोहराना चाहिये। उपरांत दाहिनी नासिका से इसका अभ्यास करना चाहिये। दोनों नासिकाओं से अभ्यास पूरा हो जाने पर दोनों नासिकाओं से उपरोक्त अभ्यास को तीन बार दोहराना चाहिये। पश्चात हर बार लम्बी और गहरी श्वास-प्रश्वास का अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास के दौरान श्वास छोड़ते समय पुनः-पुनः रोग, शोक, चिंता आदि बाधाएँ दूर हो रही हैं, ऐसी भावना करनी चाहिये। उपरोक्त अभ्यास साधक को दिन भर में एक अथवा दो बार करना चाहिये। अन्यथा अभ्यास की अधिकता से हानि की संभावना होती है।

प्राणायाम साधना, साधक को अपने मेरूदण्ड को सीधा रखते हुए, कम्बल के ऊपर आसन स्थिर कर दोनों नासिका से वायु को पूरक कर नीचे नाभिचक्र की ओर हल्का दबाव ड़ालते हुए क्षमतानुसार श्वास को रोक कर रखना चाहिये। श्वास छोड़ने की संवेदना होने पर लघु श्वास अंदर भरकर पुनः कुम्भक करना चाहिये। पुनः श्वास छोड़ने की संवेदना होने पर सिर को ऊपर उठाते हुए, शनैः-शनैः रेचक करना चाहिये। तब निश्चल होकर शांत स्थिर बैठना चाहिये।

प्राणायाम के एक अन्य अभ्यास में पूरक, कुम्भक और रेचक क्रमशः ओं, हूं और आः मंत्रों के साथ करने का निर्देश है।[402]उपरोक्त प्राणायाम के अभ्यास से

[401] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, 1999. पृ.354.
[402] वही, पृ. 356.

ललना और रसना नाड़ियों में प्रवाहित प्राण निरोध होकर शून्यपथ अवधूती में संचारित होता है।

साधक को प्राणायाम दौरान पूरक करते समय पंच तत्त्वों के रंगों को मिश्रित हुआ देखना चाहिये। कुम्भक के समय मध्य नाड़ी अवधूती में प्राण के संचार को एवं रेचक के समय मध्यनाड़ी में प्राण के चक्कर को महसूस करते हुए बिन्दु (शुक्र) सूक्ष्मता में विलीन होकर मध्य नाड़ी से होता हुआ ललाट चक्र तक पहुँचता हुआ अवलोकन करना चाहिये।

प्राणायाम साधना में साधक की उन्नति का अनुमान कुम्भक में लगे समय के अनुसार जाना जाता है। यदि साधक बिना किसी तनाव के दो मिनट तक कुम्भक कर लेने के क्षमता का विकास हो जाने पर वह निम्नतम, चार मिनट तक कुम्भक कर लेने वाला साधक समान्य तथा छः मिनट तक कुम्भक करने वाले को उच्चतम साधक माना गया है। प्राणायाम का अभ्यास योग्य गुरू के निर्देशन में ही किया जाना चाहिये। अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि की संभावना अधिक होती है।

### 3.4.6.1 चण्डाली योग की उच्च साधनाएँ:-

चण्डाली साधना में साधक को चण्डाली के प्रज्वलित ज्वालाओं को नाभि, हृदय, कण्ठ, एवं ललाट प्रदेश में देखते हुए सम्पूर्ण देह में व्याप्त नाड़ियों में उस अग्नि का अवलोकन करना चाहिये।

दूसरी अभ्यास विधि के अनुसार, साधक देहाग्नि को बढ़ाने वाले आसनों का अभ्यास करें, जिससे यह अग्नि प्रज्ज्वलित हो उपरांत पद्मासन में स्थित होकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर कुम्भक का अभ्यास करते हुए, प्राण को नीचे की ओर ले जाकर पेट को घुमायें इसे पुनः-पुनः दोहराना चाहिये। जिससे यह प्रज्ज्वलित हो जाए, इस अग्नि के प्रज्ज्वलित होने पर साधक को नाभि चक्र में इसे ध्यान के अभ्यास से स्थिर करना, परिमित भोजन, बिन्दु का संरक्षण करना चाहिये तथा इस अग्नि को अभ्यास की गहनता से अवधूती नाड़ी में प्रवेश कराना चाहिये।

साधक वाम ऐड़ी को गुदा प्रदेश के ऊपर अच्छी तरह से स्थापित कर आसन में स्थिर बैठ जाए। इस अभ्यास से बिन्दु का अधो स्त्रवण रूकता है। उपरांत मटर के सदृश आकृति, श्वेत प्रकाश युक्त बिन्दु को ललाट में देखे एवं नाभि में प्रज्ज्वलित चण्डाग्नि को देखते हुए यह भावना करें कि इस अग्नि के ताप से बिन्दु पिघल रही है एवं नीचे की ओर स्त्रावित होते हुए आनंद उत्पन्न कर रही है। कुम्भक के अभ्यास से यह चण्ड अग्नि सम्पूर्ण देह में ऊष्णता एवं आनंद के साथ व्याप्त हो जाती है। साधक को उस अग्नि के साथ संयुक्त हुए बिन्दु को देखते हुए गुह्य प्रदेश का आकुंचन करते हुए प्राण को ऊपर की ओर खींचना चाहिये एवं कुछ समय के लिए प्रबुद्ध चित्त पर ध्यान करना चाहिये।

देह में चण्डाग्नि के जागृत होने पर विभिन्न प्रकार के आनंदों का अनुभव होता है। जैसे आनंद और मृदुता, शरीर के किसी अंग में आनंद की संवेदना का विकास, सम्पूर्ण देह में ताप तथा आनंद का अनुभव, रागानंद (कामसक्ति) की संवेदना और आनंद[403] आदि होने पर प्रमुख तीन नाड़ियों ललना, रसना और अवधूती तथा चार मुख्य चक्रों के अभ्यासों से इसे अन्तः आनंद परमानंद में बदला जाता है किन्तु बिन्दु के अत्यधिक चंचलता के कारण साधक इस आनंद को रोक नहीं पाता

अतः इस सामान्य आनंद को परमानंद में परिवर्तित करने एवं बिन्दु की स्थिरता बनाये रखने हेतु साधक को विभिन्न आसन, बंध आदि का अभ्यास कर बिन्दु को स्थिर तथा ऊर्ध्वगमन कराया जाता है।

**अद्वय का विकास,** गुरू के निर्देशन में साधक चण्डाग्नि साधना से उत्पन्न विभिन्न आनंदों को नाड़ी, प्राण, बिन्दु, चक्र आदि में अवलोकन करता हुआ अंततः उस आनंद को चित्त में देखता है। उपरांत सभी प्रकार के वस्तुओं में शून्यता का दर्शन करता हुआ आनंद को उस शून्यता से संयुक्त कर उसी में विलय कर देता है। इस साधना की गहनता से साधक में समाधि घटित होती है, इस समाधि की

[403] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, 1999. पृ. 369-371.

स्थिरता में चित्त शून्यता को ही प्रदीप्त करता है।[404] तब सभी प्रकार के विचार, संकल्प-विकल्प आदि शून्य हो जाते हैं। साधक क्रमशः आनंद, परमानंद, विरमानंद को पार करता हुआ सहजानंद में स्थित हो जाता है। उस समय वह साधक सिद्ध हो जाता है। अंदर के समस्त भेदाभेद समाप्त हो जाते हैं। इसे ही सहजयानियों ने अद्वय कहा है।

## 3.4.7 बिन्दु साधना:-

बिन्दु चित्त का ही मूर्तरूप है। साधक को इस साधना में शुद्ध, चमकते हुए पारदर्शी स्वरूप में दोनों भौहों के मध्य बिन्दु को देखना होता है। यह प्रक्रिया प्राणायाम के समय की जाती है, जब साधक के द्वारा वायु पूरित की जाती है, उस समय बिन्दु को अवधूती मार्ग से आरोहण करते हुए, दोनों भौहों के मध्य में पहुँचते हुए देखना चाहिये और कुम्भक के समय दोनों भौहों के मध्य स्थित बिन्दु पर ध्यानस्थ होना चाहिये।

रेचक करते समय पुनः भ्रूमध्य की ओर बिन्दु के आरोहण को देखना चाहिये। उपरोक्त अभ्यास को प्रवीणता की प्राप्ति तक पुनः-पुनः दोहराना चाहिये। अभ्यास की स्थिरता प्राप्त हो जाने पर प्रथमतः कण्ठचक्र में बिन्दु के स्रवण को देखना चाहिये। तदन्तर इसे हृदयचक्र व नाभि चक्र में देखना चाहिये। प्राणायाम के अभ्यास में पुनः पूरक करते समय बिन्दु को अधः चक्रों में, कुम्भक के समय नाभि चक्र में बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करे एवं रेचक करते समय दोनों भौहों के मध्य बिन्दु का अवलोकन करना चाहिये। अंन्ततः साधक दोनों भौहों के मध्य स्थित, स्थिर बिन्दु पर ध्यानस्थ होता है।

चण्डाली योग की साधना में साधक प्रथमतः पद्मासन अथवा सिद्धासन में स्थिरता प्राप्त करता है। पश्चात प्राणायाम का अभ्यास करता है जिससे दोनों नासिका से प्राण का आवागमन संतुलित हो जाता है। उस समय ललना, रसना और अवधूती तीनों नाड़ियाँ नाभि में जाकर संगठित होती हैं। चण्डाली, दीपक की लौ की सदृश निरालंब एवं वृत्ताकार रूप में स्थित होती है। यह लाल, भूरा,

[404] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, 1999. पृ.372.

उष्ण एवं तंरग की भांति होती है, जो सम्पूर्ण देह में ऊष्णता और आनंद को प्रेषित करती है। साधक कुम्भक करते समय चण्डाली के उपरोक्त स्वरूप पर ध्यान करता है। कुम्भक से प्राणवायु चण्डाग्नि को प्रेरित करता है, एवं रेचक करते समय वह वाष्पित होकर अवधूती के शीर्ष तक गमन करती है।

साधना की गहनता में भी इसकी गति को जानना सरल नहीं होता है। इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु की क्रमशः दृढ़ता, आर्द्रता, तप्तता, प्रवहणशीलता के गुण सन्निहीत रहता है। कृष्णपाद ने चाण्डाली की व्याख्या करते हुए कहा है कि क्लेश, वासना, पंच स्कन्ध, पंच महाभूतात्मक प्रकृति, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि को जलाकर नष्ट कर देने के कारण यह चण्डाली कहलाती है। नाभि में प्रज्ज्वलित यह शक्ति प्रज्ञास्वभावा होने के कारण आलि[405] कहलाती है। इसका बीजाक्षर अंकार है, देह में इसका स्थान वाम भाग (वाम नाड़ी) है। वज्रसत्व अथवा उपाय का बीजाक्षर हूँकार है, देह में इसका स्थान दक्षिण भाग (दक्षिण नाड़ी) है। गुरू के उपदेश से ही दोनों मध्यनाड़ी से संयुक्त होते हैं, तब यह चण्डाली जागृत होकर साधक को महासुख प्रदान करती है।

सेकोद्देश्यटीका के अनुसार चण्डाली नाभि में प्रज्ज्वलित होकर स्थित होती है एवं उर्ध्वगति करते हुए कामनाओं, वासनाओं, विषयों, सांसारिक ज्ञानादि को जलाती हुई ललाट स्थान में स्थित चंद्रमण्डल में प्रवेश कर जाती है। तब चंद्रमण्डल से अमृत का स्त्राव कण्ठ, हृदय, नाभि और गुह्य पद्मों में होने लगता है। उस समय साधक को परमानंद की अनुभूति होती है। तब देह वज्रमणि बन जाता है।

## 3.4.8 सहजयानी सिद्धों की चक्र साधना :-

सहजयानी सिद्धों की साधनाओं में देहस्थ चक्रों की स्थित, आकार, वर्ण, पद्मदलों आदि का विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है। इनके ग्रंथों, चर्यापदों एवं उनकी टीकाओं आदि से यह ज्ञात होता है कि इनकी साधनाओं में कही छः तो

[405] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, 1999. पृ. 363.

कहीं चार चक्रों का उल्लेख किया गया है। सिद्ध काण्हपा मेरूदण्ड को सुमेरू के रूप में संबोधित करते हुए उसके शिखर को नैरात्म्या (सहजसुन्दरी) कहकर संबोधित करते हैं।

सिद्ध शबरपा भी इसी शिखर के कमलदल की कर्णिका में वज्रधर के रूप में शोभायमान है। इसी सुमेरू शिखर के आधार में कन्दरा है, जहाँ नाभिकमल में बोधिचित्त (शुक्र) स्थित है। इसी में ही कालाग्नि का भी निवास है। यह प्राण के निरोध होने पर ऊर्ध्वमुखी होकर प्रकाश के साथ उपाय रूपी बोधिचित्त, प्रज्ञा से एकाकार होने के लिए ऊपर की ओर गतिमान हो जाता है।

मेरूदण्ड के चार स्थानों नाभि, हृदय, कण्ठ तथा मूर्धा में क्रमशः निर्माणकाय, धर्मकाय, सम्भोगकाय तथा सहजकाय अवस्थित हैं। उपरोक्त चारों ही बुद्ध के चार काय के रूप में प्रसिद्ध है, जिनमें चक्र स्थित हैं। इन पद्म दलों में बीजाक्षर भी अंकित हैं। श्रीसम्पुट तन्त्रानुसार नाभि, हृदय, कण्ठ तथा ऊष्णीष कमल में क्रमशः'ए', 'व', 'म', 'या' बीजाक्षरों का अंकन है। जिनमें पृथ्वी, जल, पावक व समीर नामक भूतों के वास स्थान है। लोचना, मामकी पाँडरा व तारा इन चक्रों की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। जो क्रमशः मैत्री, करूणा, मुदिता एवं उपेक्षा की गुणों से सम्पन्न हैं।

महासुख चक्र अथवा उष्णीष कमल में चन्द्रमा की सोलह कलाएँ विद्यमान है जो द्विगुणित होकर बत्तीस पद्मदल युक्त हो जाती हैं। जो मूलतः आलि तथा कालि स्वभाव की हैं। इन्हें ही सूर्य-चंद्र अथवा प्रातः और रजनी का प्रतीक माना गया है। इन्हें ही हेवज्रतंत्रम् व उसकी योगरत्नमाला टीका में महासुख प्रदान करने वाली नाड़ियाँ (वहा) कहा गया है। जिनके मध्य में ग्राह्य-ग्राहक विवर्जित अवधूती विद्यमान होती है। इसी स्थान पर ही महासुख का वास है। सिद्ध भुसुकुपा ने इसे ही पद्मवन (नलिनीवन) कहकर संबोधित किया है जहाँ चित्त पूर्ण विश्रांति को प्राप्त करता है। इसी ऊष्णीष कमल से अमृत की वर्षा होती है जिससे सिद्ध सहजानंद में निमग्न हो जाता है।

सहजयानी सिद्ध कृष्णपाद रचित हेवज्रतंत्र टीका योगरत्नमाला और सिद्ध शांतिपा रचित हेवज्रतंत्रटीका मुक्तावली में चार चक्रों की चर्चा प्राप्त होती है वहीं कुछ ग्रंथों कालचक्रतंत्रटीका, वज्रमालातंत्र आदि में छः चक्रों[406] का भी उल्लेख मिलता है। जिनमें उपरोक्त चार चक्रों (निर्माण, धर्म, कण्ठ और ललाट) के साथ गुह्य चक्र और उष्णीष चक्र सम्मिलित हैं।[407] चारों चक्रों के दलों की संख्या क्रमशः चौसठ, आठ, सोलहऔर बत्तीस है, ये नाभिचक्र (निर्माण चक्र), हृदयचक्र (धर्मचक्र), कण्ठचक्र (सम्भोग चक्र), और .ललाट (महासुख चक्र) के नाम से प्रसिद्ध हैं। उपरोक्त क्रम से चारों चक्र नीचे से ऊपर की ओर स्थित होते हैं। नाभिचक्र, यह नाभि प्रदेश की ओर सीधा स्थित होता है, और यही से उत्पन्न होता है। नाभि की नाड़ियों के मर्माहत् होने से जागृत होता है। यह मध्य नाड़ी से संविभक्त होता है। इस कमल के चौंसठ दल होते हैं।[408] सिद्ध कण्हपा ने अपरिशुद्ध नैरात्मा को इस चौंसठ पंखुडियों वाले कमलदल पर नृत्य करते हुए चित्रित किया है। जो वासना का परिचायक है। इसके दक्षिण भाग की तीस नाड़ियाँ रसना नाड़ी से एवं बायीं भाग की तीस नाड़ियाँ ललना नाड़ी से संबंधित होती हैं।

उपरोक्त सभी नाड़ियाँ पृथ्वी तत्व से उत्पन्न होती है। इसे जागृत अवस्था में निर्माण चक्र कहा गया है। हृदय चक्र, हृदय प्रदेश में स्थित होता है। यह मनोवैज्ञानिक धर्मों को उत्पन्न करता है। हृदय की नाड़ियों के मर्माहत होने पर जागृत होता है। यह आठ दल युक्त चक्र है। इसे धर्मचक्र[409] के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। इस चक्र की सभी नाड़ियाँ वायु धातु से उत्पन्न होती हैं।

कण्ठ चक्र, यह देह के कण्ठ भाग में स्थित है। इसके द्वारा अन्नपान का संभोग होता है। स्थान विशेष में स्थित नाड़ियों का आकार चक्र सदृश होने के कारण कण्ठ के साथ चक्र जोड़ा गया है। उसके मर्माहत होने पर स्वप्नावस्था में

---

[406] न्यौपाने, काशीनाथ,. अनुवादक. कालचक्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : साधना प्रेस, 2013. पृ.179.

[407] भारती, अमृता. बसवरेड्डि, बी, ईश्वर. राजीव, रस्तोगी. संपादित. नाड़ी-तंत्र एवं प्राण. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली, केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, 2012. पृ. 222.

[408] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. 1कल्प/1पटल, श्लोकक 23. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. *निमार्णचक्रे पद्म चतुः षष्टिदलम्।*

[409] वही, 1कल्प/1पटल, श्लोकक 23.*धर्मचक्रे अष्टदलम्।*

यह संभोग चक्र[410] के रूप में उदित होता है। इसमें सोलह नाड़ियाँ (नाड़ी दल) होते हैं। इनमें सोलह संक्रांति दल वायुओं का संचार होता है। जो उपाय-प्रज्ञा के युगद्ध में स्थित होते हैं। कण्ठ चक्र के सभी नाड़ियों की उत्पत्ति अग्नि धातु से होती है।

ललाट चक्र, मूर्धा में स्थित होता है। यह बिंदु (शुक्र) से अवलंबित होता है, जो महासुख का आधार है। इसके मर्माहत होने पर सहजसुख उदित होता है। इसके उदय होन से ललाट चक्र में स्थित सोलह बाह्य और सोलह आभ्यांतर मिलाकर नाड़ियों की संख्या बत्तीस हैं।[411] इनमें से सोलह आभ्यन्तर वाली नाडियों से बिंदु का और सोलह बाह्य वाली नाड़ियों से रक्त का प्रवाह होता है। ये दोनों प्रज्ञोपाय क्रम में स्थित होते हैं। ललाट चक्र की समस्त नाड़ियाँ 'अप्' धातु से उत्पन्न होती हैं।

**3.4.9 सहजानंद :-** सहज तत्व को सहजयानी सिद्धों ने परम लक्ष्य स्वीकार किया है। जिसे वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त से परे गुह्य है। किन्तु इसे प्रतीक के रूप में प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा,संसार-निर्वाण, चंद्र-सूर्य, आलि-कालि, मणि-पद्म कमल-कुलिष, स्त्री-पुरूष आदि के मेल से उत्पन्न माना है। इसे ही सिद्धों ने आदि बुद्ध और आदि प्रज्ञा कहा है,[412] जो आदिकाल से अस्तित्व में थे। उपरोक्त प्रतीकों के अनुसार सहज दो का मिलित रूप है परंतु, मूलरूप से एक है। यही अद्वय है।

उपरोक्त युगल के बिना संसार से पार होना या संसार और निर्वाण में समान दृष्टि प्राप्त करना असम्भव है। उपाय और प्रज्ञा का सामरस्य ही सहज है। सहज को प्रतीक रूप में हेरूक देवता और वाराही देवी को आलिंगन करते हुए, चित्रित किया गया है। जिसमें हेरूक उपाय और वाराही प्रज्ञा का प्रतीक हैं। यही महासुख है, और निज स्वभाव भी, सहज की प्राप्ति के बाद संसार और निर्वाण

---

[410] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. 1कल्प/1पटल, श्लोकक 23. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. *संभोगचक्रे षोडषदलम्*।

[411] वही, *महासुख चक्रे द्वात्रिंशदलम्*।

[412] डी, भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012. पृ. 129.

दोनों समान हो जाते हैं और साधक निर्विकल्प पद में प्रतिष्ठित हो जाता है, यही सहज है।

सिद्ध सरहपा ने चित्त को संबोधित करते हुए कहा है कि - हे चित्त उस स्थान पर तुम्हें पूर्ण विश्रान्ति की प्राप्ति होगी जहाँ रात-दिन, जीवन-मृत्यु नहीं है, वहाँ केवल पूर्णानंद है। पूर्ण विश्रान्ति है, वहीं सहज है। *जहि मण पवण न संचरइ रवि शशि णाहिँ पवेस। तहिँ बढ चित्त विसाम करू सरहें कहिअ उएस।।*[413] उपरोक्त दोहे में सहजयानी सिद्धों ने प्रज्ञोपाय की गहनता में प्राप्त सहज को व्यक्त किया है जहाँ चित्त की पूर्ण विश्रांति है। मूलतः इनके अभ्यासों में प्राण साधना से ही सहज तक पहुँचा जाता है। जब वज्रजाप संपन्न होता है तब देहस्थ नाड़ियों से प्राण ललना और रसना में पहुँच जाता है, एवं मिलन की प्रगाढ़ता में वह अवधूती में खिंच जाता है। जिससे प्राण नियंत्रित हो जाता है। जिसके प्रभाव से मन का कार्य स्थगित हो जाता है। तब अच्छे-बुरे, सही-गलत, संसार- निर्वाण में कोई भेद नहीं रह जाता। चित्त स्थिर हो जाता है। यही चित्त का मूल स्वभाव है।

यह चित्त की स्थिरावस्था है। सहजयानी सिद्ध सरह उसी का उपदेश कर रहे है। सिर्फ प्रज्ञा या उपाय से बुद्धत्व लाभ नही होता इसके लिए दोनों का साम्य या अभिन्नता चाहिए। उस अवस्था में भोग और मोक्ष दोनों समान हो जाते है।

सिद्धों ने सहजानंद की उपलब्धता के लिए जोर देकर कहा है कि इसकी अनुभूति इसी देह में ही सम्भव है। वह तत्त्वातीत इसी देह में ही उपस्थित है।[414]परन्तु जो इसकी प्राप्ति के लिए शास्त्र, मूर्ति, बाहर की यात्रा करते हैं, वे इसे जान नहीं पाते और आवागमन का खण्डन नहीं हो पाता।

जब तक सहज[415] की प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक ललना और रसना नाड़ियों में प्राण अपना कार्य करता रहता है, जो स्वकेंद्रित और कर्तापन से युक्त

---

[413] यादव, डॉ. द्विजराम. वज्रयानी सिद्ध सरहपाद. कलकत्ता : हिंदी भवन विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1981. पृ. 90.

[414] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ.113.

[415] डी,भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012.पृ. 130

होता है। यह अभिमान का मूल कारण है जिससे संकल्प-विकल्प की उत्पत्ति होती है। अन्ततः संस्कारों का निर्माण क्रम आरम्भ हो जाता है, परन्तु जब सहजावस्था की प्राप्ति होती है तब यह सत्य ज्ञान होता है की इस जगत में कर्ता कोई नहीं है। सांसारिक सभी कार्य अपने स्वभाव से उत्पन्न होते है और स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। कर्तापन केवल मिथ्या मात्र है।

सिद्धों के अनुसार, सहजावस्था की अभिव्यक्ति ऊष्णीष अर्थात् सबसे ऊपर स्थित कमल पर होता है। इस पथ में ब्रह्मचर्य(बिन्दु) की स्थिरता आवश्यक है। जिनके नाड़ियों में नियंत्रण नहीं है। उनका ब्रह्मचर्य स्थिर नहीं होता, तब उनका प्रयास व्यर्थ हो जाता है। सामर्थवान बिन्दु को स्थिर कर, उनका चालन कर, ऊपर उठाने और मध्यपथ अवधूती से गमन कराते हुए, उस महासुख स्थान, ऊष्णीष कमल तक पहुँचा कर परम पुरूषार्थ से पूर्णानंद को जानता है।

अवधूती के बायें या दाहिने जाने से महासुख की प्राप्ति संभव नहीं है, सामान्य व्यक्ति इन्हीं बायें अथवा दाहिने मार्ग में गमन करते हुए, महासुखावस्था से वंचित रह जाते हैं। इन सिद्धों ने कई स्थानों पर मध्य पथ को अवधूती के नाम से पुकारा है। केवल, ललना अथवा रसना नाड़ी का पथ साधक को सांसारिक विषयों में आसक्त कर देती है, जिससे साधना, मार्ग में बाधा उत्पन्न होने के कारण फलित नहीं होती। अन्ततः साधक महासुख स्थान से दूर होता जाता है, इसीलिए इन सिद्धों ने सामान्य जागतिक जनों को महासुख से वंचित कहा है।

सहज क्रमशः सामान्य आनन्दों से होता हुआ अन्तिम में प्राप्त होता है, जो निम्नवत हैं- आनंद, आलिंगन[416]चुम्बन आदि से प्राप्त सुख के रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो राग युक्त है। परमानंद और विरमानंद क्रमशः ज्ञान सुख और समागम सुख की भांति है, जो वैराग्य की साधना है किन्तु अंतिम में सहजानंद राग और विराग दोनों से परे अव्यक्तावस्था[417] है। इसे ही महासुखावस्था भी कहा गया है। गुह्य, निर्माण, धर्म, संभोग चक्र के उपरांत

[416] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 219.

[417] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम कल्प/1पटल, श्लोक 28. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. *आनन्दाः परमानन्दो विरमानन्दः सहजानन्दश्चेती।*

ऊष्णीष कमल में उत्पन्न होता है, और बत्तीस प्रमुख नाड़ियों से होते हुए, संपूर्ण देह को पूर्ण आनंद में निमग्न कर देता है।

## 3.4.10 सिद्धों की कापालिक साधना :-

सहजयानी सिद्धों में सरहपा कृत हेवज्रतन्त्रम् और उनकी टीका कृष्णपाद द्वारा लिखित योगरत्नमाला, सिद्ध शांतिपा की मुक्तावली एवं चर्यापदों आदि में कापालिक साधनाओं के विस्तृत विधानों का उल्लेख प्राप्त होने से यह कहा जा सकता है कि इन सिद्धों की साधनाओं में उपरोक्त साधनाएँ सम्मिलित थीं।

सिद्ध कृष्णपाद की माने जाने वाली अन्य रचनाओं वसन्ततिलकम्, वज्रावली आदि रचनाओं में भी इसके प्रमाण देखे जा सकते हैं। कान्हुपाद ने चर्यापद संख्या दो, चर्यागीतिकोष संख्या ग्यारह में स्वयं को कापालिक[418] नाम से ही संबोधित किया है।

इनके प्रसिद्ध शिष्यों में कनखला और मेखला का नाम प्रसिद्ध है, जिन्होंने इनकी रचनाओं की टीका लिखी थी। टीकाकार ने कापालिक की परिभाषा देते हुए बताया है कि जो महासुख के बीज को अन्तः में पालता है, वही कापालिक है।[419]

सिद्धों की रचनाओं के संकलनकर्ता और इन रचनाओं के टीकाकार मुनिदत्त ने भी सिद्ध दउडीपाद की साधनाओं में कापालिक तत्वों का समावेश मानते हुए कालांतर के विभिन्न सिद्धों की साधनाओं में भी इन तत्वों को स्वीकार करते हैं। इन सिद्धों में बौद्ध कापालिक देवता हेरूक के बुद्धकपाल[420] की उपासना स्वीकृत थी। तंजुर आदि में सुरक्षित हस्तलिपियों से यह ज्ञात होता है की सिद्ध सरहपा का संबंध बुद्धकपाल  से था। कपाल को नारी व वज्र को पुरूष का प्रतीक माना गया है।

---

[418] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009, पृ. 208.

[419] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. किताब महल, इलाहाबाद, 1968. पृ. 274. *कम् महासुखम् पालयति इति कपाली।*

[420] वही, पृ.271.

कापालिक साधनाओं के अंतर्गत शमशान में निवास कर साधना करना, देह में भस्म लपेटना, सिर में जटा अथवा मुण्डित सिर रहना, मुद्रा का संग, ललाट में त्रिपुण्ड धारण करना, अस्थिमाला व रूद्राक्ष पहनना, मुण्डमाला धारण करना, मुद्रा अर्थात वज्रकन्या[421] का संग करना, हाथों में खड्ग धारण, हाथों में नर कपाल, कर्णकुण्डल,[422] मेखला, नाड़ी साधना, प्रज्ञोपाय साधना चक्र साधना आदि शामिल थे।

हेवज्रतंत्रम् एवं उसकी टीका योगरत्माला एवं मुक्तावली में बत्तीस नाड़ियों का नामोल्लेख मिलता है जो बोधिचित्त का वहन करती हैं। ये महासुख प्रदायिका भी है। इनमें ललना, रसना और अवधूती नामक तीन प्रधान नाडियों का भी विस्तृत उल्लेख है। चक्र साधना के अंतर्गत निर्माण, धर्म, सम्भोग व महासुख चक्रों एवं उनके पद्मदलों की चर्चा है। नाद-बिन्दु साधना, वीर साधना का उल्लेख करते हुए इन्होंने अपने उपास्य देवता हेवज्र को वीर कहकर संबोधित किया है।

सिद्धों ने जगत को मिथ्या न मानते हुए प्रज्ञा और उपाय से युक्त माना है। प्रज्ञा को चंद्र, आलि शून्यता तथा उपाय को सूर्य, कालि, करूणा आदि संज्ञा प्रदान की है। इस साधना में शुक्र को संरक्षित कर उर्ध्वगमन कर निर्माण चक्र में धारण करने का विधान है जो अन्नमयकोश का सार रूप है। इससे ही कालांतर में अद्वय की प्राप्ति संभव हो पाती है। तब योगी अपने देह रूपी पिण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन कर पाता है।

उपरोक्त साधना गुरू के निर्देशन में ही संभव है। इन साधनाओं का पशु भाव से मुक्त होकर दिव्यभाव में प्रतिष्ठित होना है। यह अद्वय साधना में नैरात्म्या के साथ संयुक्त होकर दिव्यता को अनुभूत करने की उत्तम साधना है। जिससे साधक के विषय समूह, अहंकार आदि नष्ट हो जाते हैं साधना का यह क्रम क्रिया, चर्या, उत्तर व अनुत्तर से सम्पन्न होता है। अन्त में जिस ज्ञान का उदय होता है

---

[421] न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : इंडियन माइंड, 2012. पृ. 50. *वज्रकन्यामिमां गृह्या चर्यां कर्तुं विबुध्यते।।*

[422] वही, पृ. 64. *चक्री कुण्डलकण्ठी च हस्ते रूचक मेखला।*

उसे ही अनुत्तर योग कहा गया है, अर्थात् जिसकी अभिव्यक्ति शब्दों से संभव नहीं है।

### 3.4.10.1 सिद्ध कृष्णपाद की कापालिक साधनाएँ :-

सहजयानी सम्प्रदाय में कापालिक साधना के तत्व हमें सिद्ध कृष्णपाद (कण्हपा) के चर्यापद से प्राप्त होते हैं। हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संपादित 'बौद्ध गान ओ दोहा' के चर्यापद क्रमांक दस में स्वयं को कापालिक संबोधित करते हुए उन साधनाओं की अनुभूतियों को भी अपने पदों में भी व्यक्त किया है।

इन पदों में साधक के वीर भाव से दिव्य भाव की साधनाओं के स्तरों की चर्चा है। इन्होंने प्रज्ञोपाय साधना के अंतर्गत डोम्बी शब्द का प्रयोग किया है। डोम्बी अपरिशुद्ध अवस्था में मध्य नाड़ी अवधूती शक्ति ही है, जो शुद्ध वासना अथवा कामना शक्ति के रूप में जानी जाती है, सामान्यावस्था में सांसारिक कार्यों में नष्ट होती रहती है। डोम्बी का स्थान नाभि में है। सहजयानी सिद्धों ने इसी नाभि स्थान पर निर्माण चक्र की संकल्पना की है। इस चक्र में चौंसठ दल युक्त कमल है। जिस पर यह नृत्य करती रहती है, यही अपरिशुद्धावस्था में सांसारिक विषयों में रमण करती हुई सामान्यजनों के बोधि चित्त (शुक्र) को नष्ट कर देती है।

कृष्णपाद, कापालिक हैं, जो इस डोम्बी (अशुद्ध अवधूती शक्ति) को शुद्ध कर विशुद्ध अवधूती शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने का सामर्थ्य रखते हैं। जिससे बोधिचित्त (शुक्र) की गति निम्नगामी (सांसारिक) नहीं होती, और नष्ट होने से बच जाती है। जिसके बोधिचित्त, गति करती हुई अपने मूल स्थान महासुख स्थान में पहुँच जाती है।

डोम्बी की शुद्ध अवस्था ही नैरात्मा बोधिचित्त नाम से पुकारा गया है। जिसके ऊर्ध्वगमन से पंचमहाभूत उस रागाग्नि से शुद्ध हो जाते हैं। यह रागाग्नि नाभि में वज्रजाप के द्वारा ललना और रसना के संयुक्त होने से प्रदीप्त होती है। इस डोम्बी का वास्तविक स्थान महासुख स्थान (ऊष्णीष) में है, जो सहजयानी सिद्धों में सबसे ऊपर अवस्थित है। उसी स्थान को डोम्बी की कुटिया कह कर

सम्बोधित किया गया है, जो इसका मूल स्थान है। इस चर्यापद में अवधूती को छोड़कर अन्य नाड़ियों को ब्राह्मण बटुक की उपाधि दी गयी है, जो सामान्य सांसारिक और क्षणिक सुख लिप्त होते हैं। इन नाड़ियों की पहुँच भी उस महासुख तक नहीं है। कान्हुपाद, सांसारिक विषयों और क्षणिक सुखों का त्याग कर विशुद्ध अवधूती शक्ति डोम्बी (नैरात्मा) का संग किया है। इसकी शुद्धता एवं अशुद्धता दोनों स्वरूपों के कारणों के जानकार कान्हुपाद ने कहा है कि यह डोम्बी जिस नाव से ऊर्ध्वऔर अधोगमन करती है। वह शून्यमार्ग अवधूती है।

कृष्णवज्रपाद ने अपनी रचना चर्यागीतिकोश के चर्यापद संख्या अट्ठारह में कापालिक साधना से अवधूती के साथ संयोग कर काय, वाक् और चित्त नामक तीन भुवनों को पार कर लिया है एवं सिद्ध देह की प्राप्ति कर चित्त की चंचलता को स्थगित कर दिया है। जिनमें सांसारिक जन स्वयं को सुखी मानते हैं, किन्तु कृष्णपाद ने विशुद्ध डोम्बी का संगकर परमार्थिक अथवा सच्चे सुख को जान लिया है।

कापालिक साधना से आनंद, परमानंद, विरमानंद को पार करते हुए महासुख में लीन हो गये है। इस साधना में इन्होंने डोम्बी के दो स्वरूप की चर्चा की है। एक में वह अपरिशुद्ध अवस्था में है, जिसे कुटिलांगी कहा गया है। दूसरी इसकी परिशुद्धावस्था है। अपरिशुद्धावस्था में यह विषययुक्त, सांसारिक व भटकाने वाली है, जो सामान्यजनों को अपनी ओर आकर्षित करती है। जिससे वे सभी महासुख को प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं, और वे इस अपरिशुद्ध शक्ति के प्रभाव से विषय जाल में बंध जाते हैं। यह डोम्बी का अवास्तविक रूप है परंतु कापालिक योगी[423] कृष्णपाद डोम्बी के सच्चे स्वरूप परिशुद्धावस्था को जानते हैं। उन्होंने इसके लिए समाज के द्वारा स्वीकृत विभिन्न प्रकार के ताने-बाने, नीति, नियम आदि का त्याग कर दिया है।

[423] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 33- 34.

डोम्बी का अपरिशुद्ध रूप, चित्त को चंचल कर देता है। क्योंकि मन और प्राण भी इसी चंचलता को धारण करते हैं। जिससे शक्ति (शुक्र) क्षय होती है। डोम्बी के इस अपरिशुद्ध रूप से न केवल मानव वरन् देव, असुर आदि भी प्रभावित है। वे सभी अपने शक्तियों का ह्रास किये जा रहे है। अतः कान्हुपाद ने डोम्बी के इस अपरिशुद्धता के प्रति सतर्क रहते हुए उसके शुद्ध स्वरूप को जानने की बात कही है।

कापालिक साधनाओं के प्रतीक रूप का वर्णन करते हुए उन्होंने पैरों में नुपूर पहन लिया है। कानों में मुद्रा को धारण किया है। शरीर में भस्म का लेपनकर गले में मुण्डों की माला धारण कर रखी है। उपरोक्त प्रतीकों में कृष्णपाद ने वज्रजाप के द्वारा स्वर और व्यंजन ललना और रसना को शुद्धकर पैरों में धारण किया है। दिन-रात रूपी काल को अपने कानों में कुण्डल बना लिया है, अर्थात् काल के प्रभाव से मुक्त हो चुके हैं।

चक्र भेदन से राग और द्वेष को भस्म की तरह शरीर में मर्दन किया हुआ है अर्थात् जगत से अप्रभावित रहते हैं। निर्भय होकर अपने गले में नरमुण्डों की माला को धारण किये हुए अविद्या जनित सांसारिक संबंधों का त्याग कर निर्भय हो चुके हैं। वज्रजाप से अपने श्वास-प्रश्वास को मार ड़ाला है अर्थात प्राण को जीत लिया है। इस प्राण की चंचलता से इन्द्रियों की चंचलता का गहरा संबंध है। जिससे विषयासक्त साधक भव में पड़ता है, परंतु कापालिक कृष्ण ने इसे अपने वश में कर लिया है।

कृष्णपाद ने युगनद्ध साधना से अविद्या रूपी संसार से पार कर महासुख प्राप्त किया है। जिससे इनकी प्रतिष्ठा वज्रधर के रूप में उष्णीष कमल में स्थिर हो चुके हैं। बोधिचित्त कामना, इच्छा, वासना आदि के कारण चंचलता को प्राप्त होकर अशुद्धता को प्राप्त होती है। जिससे डोम्बी मलिन हो जाती है।

चित्त की अचंचलता ही डोम्बी का शुद्ध स्वरूप है। जिससे उसमें इच्छा आदि की उत्पत्ति नहीं होती इस अवस्था में डोम्बी अपने विषयों से अविरत रहती है। डोम्बी के इस शुद्ध स्वरूप को कृष्णपाद भी धारण करना चाहते है।

जिसे सामान्य जन लोकलज्जा के ड़र से छोड़ देते हैं। किंतु सिद्ध कृष्णपाद ने डोम्बी की प्राप्ति के लिए सांसारिक सुखों और लोकलज्जा का त्याग कर कापालिक हो गये हैं। अपने कापालिक स्वरूप को बताते हुए कहते है कि उन्होंने कानों में कुण्डल, चक्र और गले में कन्ठी माला धारण कर अपरिशुद्ध डोम्बी को मार ड़ालना चाहते हैं।[424] क्योंकि डोम्बी का यह रूप साधक को महासुख से अलग कर नष्ट कर सांसारिक बना देती है।

गुरू निर्देश और साधना के बल से कन्हपा ने इस पर विजय प्राप्त किया है। वहीं डोम्बी के परिशुद्ध रूप में होने से ही बोधिचित्त का उर्ध्वगमन संभव हो पाता है और यह डोम्बी साधक को उस महासुख स्थान पर प्रतिष्ठित कर देती है। जिससे सभी तरह के द्वैत भाव विलुप्त हो जाते हैं। साधक दिव्य रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसे अद्वय अथवा महासुख कहा गया है। यही सहज है।[425]

सामान्यजनों के द्वारा इसके वास्तविक स्थान महासुख को प्राप्त नहीं कर पाने के कारण वे इसका उपहास करते हैं। क्योंकि सामान्य अवस्था में यह अपने वास्तविक स्वरूप, परिशुद्धावस्था में नहीं होती है। वज्रजाप के द्वारा रागाग्नि के उदय और क्रमशः इसकी गहनता  से ही इसके स्वरूप को जाना जा सकता है। यह सामर्थ्य केवल कापालिक कृष्णपाद ने अर्जित की है, जो डोम्बी को अपने से अलग नहीं होने देते है, अर्थात महासुख में निरंतर रत हैं। इसे ही उन्होंने कामचण्डालिनी कह कर पुकारते हुए इसकी परिशुद्धावस्था की प्रशंसा की है। इसके संगति से सांसारिक आवागमन निरूद्ध हो जाता है।

## 3.4.11 सहजयानी साधना में तत्त्व चिंतन :-

सहजयानी बौद्ध सिद्धों ने अपनी रचनाओं में भिन्न-भिन्न स्थानों में बाह्य और आभ्यंतर की दृश्यमानता को अभिन्न मानते हुए, दोनों को अद्वय कहा है। अर्थात् बाह्य और आभ्यंतर की एकता प्रतिपादित करते हुए, कहा है कि उपरोक्त दोनों में भेद देखना भ्रांन्ति है। सिद्ध सरहपा ने चित्त को ही अन्तः और बाह्य

---

[424] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 33.

[425] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 203.

दोनों स्थानों पर एक मानते हुए, इसे कारणहीन (निरालम्ब) माना है। सिद्ध तिलोपा ने निर्मल चित्त के स्वभाव को ही संसार और निर्वाण में अभेदता के रूप में स्वीकार किया है वही स्वयं के द्वारा निर्मित कल्पना जाल एवं मोहपाश के कारण उत्पन्न भेद दृष्टि ही भवमुद्रा[426] है, जो वास्तविक नहीं होती है।

सिद्धों के अनुसार, यह जगत भूत, स्कन्ध, इन्द्रिय, आयतन से निर्मित है। सिद्ध लुईपा इस देह को तरूवर और इन्द्रियों को इस तरूवर की पंच शाखाओं के रुप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि इसी में अशुद्ध चित्त काल के वशीभूत होकर भ्रमण करता रहता है।[427] सिद्ध सरहपा ने इस संसार को रूप, वेदना, संस्कार, संज्ञा आदि स्कन्ध और धातुओं से निर्मित भ्रांतिरूप माना है। सिद्ध कण्हपा पंच महाभूतों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को समस्त जगत का बीज मानते हैं।

उपरोक्त पंच स्कन्ध, भूत, इन्द्रियादि विषयों आदि का विस्तार से उल्लेख करते हुए सिद्धों ने इस जगत को सांवृत्तिक रूप में सत्य माना है, किन्तु यह परमार्थिक रूप से  सत्य नहीं है। यहाँ जीव अशुद्ध चित्त रूप मत्स्य, हिरण, कीट पतंगों आदि की भांति अज्ञानतावश भटकते हुए अपना जीवन सत्यानुभूति के पूर्व समाप्त कर लेते हैं।

पंचमहाभूतों से बने इस जगत को सहजयानी सिद्धों ने अपनी रचनाओं में विशेष रूप से उल्लेख किया है। सिद्ध सरहपा ने इनमें से चार महाभूतों क्षिति, जल, वायु और हुताशन का नामाल्लेख करते हुए आकाश तत्व को इन चारों तत्वों से विशिष्टता प्रदान करते हुए उसकी गणना सभी धर्मों में व्याप्त शून्यता (नैरात्मा) के रूप में की है जो सर्वव्यापी[428] है। सिद्ध काण्हपा ने इस जगत को पंच महाभूतों से निर्मित माना है। आचार्य वसुबन्धु ने महाभूतों को स्पष्ट करते

---

[426] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 160.

[427] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 01.

[428] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ.162.

हुए इसके आधार रूप में उपस्थित भव और इसकी सर्वव्यापकता होने से महा नामक विशेषण जोड़ा है। इस प्रकार महाभूत भव रूप है जो सर्वव्यापक है।

इन्द्रियाँ एवं उनके विषयों का उल्लेख करते हुए चर्यापदों में सिद्धों ने इन्हें पंचमहाभूतों के ही आश्रित माना हैं। सिद्ध काण्हपा के अनुसार पंच इन्द्रियों में क्षिति से गंध, जल से रस, वायु से स्पर्श, हुताशन से रूप एवं आकाश से शब्द संबंधित हैं। इन्हें क्रमशः नासिका, जिह्वा, त्वचा, नेत्र एवं श्रोत्र इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है, वहीं मन षड्इन्द्रिय रूप में वर्णित हैं। काण्हपा की भाँति तिलोपा के शिष्य सिद्ध नरोपा ने भी उपरोक्त इन्द्रियों एवं उनके विषयों का उल्लेख किया है। आचार्य बसुबन्धु ने इन्द्रियों को विज्ञान की अधिष्ठात्री माना है।

आयतन की चर्चा चर्यापदों एवं दोहाकोशों दोनों में प्राप्त होता है जिसका अर्थ होता है, निवास स्थान। नासिका के द्वारा पुष्प के गन्ध को ग्रहण करने पर नासिका को इन्द्रिय आयतन एवं पुष्प जहाँ से गंध की उत्पत्ति होती है, उसे गन्ध आयतन कहा गया। इस प्रकार षड्इन्द्रिय आयतन, षड् रूप, रस, स्पर्श, श्रोत्र आदि आयतन एवं इससे प्राप्त षड्ज्ञान को मिलाकर इनकी संख्या अट्ठारह हैं। इन्हें धातु भी कहा गया है। जिसके द्वारा जगत को धारण किया जाता है।

अतः उपरोक्त पंच स्कन्धों के अंतर्गत रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान, क्षिति, जल आदि पंचमहाभूत, घ्राण, चक्षु, त्वचा आदि इन्द्रियाँ एवं गंध, रूप, स्पर्श आदि इनके  विषय इनके आयतन आदि से निर्मित मायारूप जगत (दृश्यमान जगत) चित्त का ही बीज रूप है। अतः चित्त एवं बाह्य जगत में कोई भी अंतर नहीं है, किन्तु जब चित्त रूप में विज्ञान चंचल होकर दृश्यमान जगत में विविध रूपों की कल्पना करने लगता है तब सहजज्ञान की उपलब्धि में बाधा उत्पन्न होती है। चित्त के बद्ध तथा मुक्त दो रूप हैं।[429] यह संकल्पों एवं कर्मों के द्वारा विषयासक्त होकर वृक्ष की शाखाओं की भांति पुष्प और फलों आदि के रूप में विस्तार लेता है, एवं संसार में ही उलझता रहता है, वहीं संकल्प-विकल्प

[429] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 165-66.

आदि इच्छाओं के परित्याग करने पर अर्थात् प्रज्ञायुक्त कर्म से निरालम्ब चित्त मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार लुईपा, सरहपा एवं काण्हपा आदि सिद्धों ने चित्त को बद्ध होने पर भव तथा मुक्त होने पर निर्वाण का बीज रूप कहा है। भव-निर्वाण युगन्द्ध रूप में माने जाते हैं। सरहपा इस अचेतन मन को निर्बोध पशु की संज्ञा देते हुए जप, धारणा, ध्यान आदि को अस्वीकार करते हुए निज को पहचानने का उपदेश करते हैं। जो अनुत्तर योग की प्राप्ति कराने में सक्षम है।

सिद्धों ने सत्य के दो स्वरूपों की चर्चा की है। प्रथमतः इस जगत को सांवृत्तिक सत्य कहा है, जिससे इसका ज्ञान होता है। जिसका वास चित्त में अविद्या के रूप में होता है, किन्तु पारमार्थिक सत्य चित्त में शून्यता का उदय है, जहाँ इन्द्रियादि विषय लुप्त हो जाते हैं। मन के विनिर्मुक्त हो जाने पर गमनागमन समाप्त हो जाता है। सहजयानी सिद्ध नागार्जुन ने सर्वज्ञान के विनाश को ही निर्वाण कहा है, जहाँ न कुछ उत्पन्न होता है और न ही विनाश को प्राप्त होता है। जहाँ न ही कुछ प्राप्त होता है और न ही कुछ खोता है। न कुछ शाश्वत है और न ही कुछ उच्छिन्न है। यह उदय-अस्त से रहित है। इसे तथता-स्वभाव के नामा से भी संबोधित किया गया है। सिद्ध कोकण्पाद ने तथता-स्वभाव की योगपरक व्याख्या के साथ नाद के साथ विषयों की विलिनता से उत्पन्न शून्यता का उल्लेख किया है।

**सहज (शून्यता)**, बौद्ध सिद्धों ने अपनी रचनाओं में प्रायः शून्यता का उल्लेख किया है, जो खसम अर्थात् आकाशवत् सर्वत्रव्याप्त है।[430] इस दशा में चित्त से इन्द्रियादि विषयों के लुप्त हो जाने से त्रिभुवन शून्य निरंजन में प्रवेश होता है जहाँ ग्राह्य-ग्राहक, भावाभाव आदि की द्वयता आदि से विवर्जित ज्ञान होने के कारण इसे तथता-ज्ञान भी कहा जाता है। यही परमार्थ भी है। सरहपा ने इसे ही जानने का आग्रह किया है। सिद्ध तिलोपा ने जिसे फल के रूप में आस्वादन किया है, किन्तु अगोचर होने के कारण व्यक्त करना संभव नहीं है।

---

[430] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ.168.

उपरोक्त शून्य भी शून्य, अतिशून्य, महाशून्य तथा सर्वशून्य मिलाकर चतुर्विध रूप में हैं।[431] प्रथम शून्य आलोक ज्ञान प्रज्ञा है, जहाँ चित्त में संकल्पादि के दोष उपस्थित रहते हैं। अतः इसे परतन्त्र स्वभावा माना गया। इस शून्य को स्त्री रूप में अभिव्यक्ति करते हुए प्रज्ञा, वाम, चन्द्र, कमल आदि नामों से पुकारा गया है। द्वितीय, अतिशून्यता है, जिसमें चित्त पूर्वकथित प्रकृतियों से आच्छादित होता है। किन्तु इसमें आलोक का अभाव होता है, इसे उपाय, दक्षिण, सूर्यमण्डल, वज्र आदि नामों से संबोधित किया गया है।

तृतीय शून्य को महाशून्य नाम दिया गया है जिसमें प्रथम और द्वितीय शून्य आलोक-आलोकभाष, प्रज्ञा-करूणा के युगन्द्ध से उदित होता है। इसे आलोकपलब्धि कहा गया है। इसे परिनिष्पन्न स्वभावा माना गया है, किन्तु इसमें भी अविद्या की आंशिकता बनी रहती है। इन दोषों से भी मुक्त होने पर सर्वशून्यता का उदय होता है। इसे ही आदि-अंत, गुणदोष, भावाभाव आदि से रहित सहज[432] कहा गया।

प्रज्ञोपाय, सहजयानी सिद्धों की साधनाओं में इस शब्द की बाहुल्यता है। क्योंकि इसी साधना से ही परमार्थ रूप सहज उत्पन्न होता है, जो समस्त वेदनाओं, वासनाओं, सुखदुःखादि दोषों से रहित है। उपरोक्त दोष तो शून्यता की तीसरी अवस्था तक समाप्त हो जाती है। उपरांत सहज है, चूंकि प्रज्ञोपाय का युगनद्ध सिद्धों की साधनाओं की मूलभिति है। इसे विभिन्न स्थानों पर भगवान्-भगवती, वज्रधर-नैरात्मा, कुलिष-कमल, चन्द्र-सूर्य, उपाय-प्रज्ञाआदि के साथ-साथ स्त्री-पुरूष, लिंग-भग के प्रतीक के रूप में भी मैथुनपरक[433] व्याख्या की गयी।

उपरोक्त प्रज्ञोपाय को परमतत्त्व तथा उसकी शक्ति को परमशक्ति का ही रूप माना गया। चर्यापदों में प्रज्ञा गगन रूप में है, जहाँ मेघरूपी उपाय प्रवेश

---

[431] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 173-74.

[432] सांकृत्यायन, राहुल. संपादित. सिद्ध सरहपाद रचित. दोहा-कोश.(हिंदी छायानुवाद सहित). चतुर्थ संस्करण. पटना: बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, 2009.पृ.10-11.

[433] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ.182-88.

करता है। प्रज्ञा शून्यता तो उपाय नानात्मक रूप में वर्णित है। दोनों के समागम से ही महासत्त्वों की उत्पत्ति संभव है। प्रज्ञोपाय योग में प्रतिष्ठित साधक का चित्त सहजोन्मुख होता है। सिद्धों ने विभिन्न स्थानों पर इन्हें ही वीर अथवा परम सुरत वीर कहकर संबोधित किया है। प्रज्ञोपाय रूप युगनद्ध ही तथागत है। इसी की उपासना विहित है।

यही महासुख, अद्वय, सहज, स्वसंवेद्य आदि नामों से प्रसिद्ध है, जो भावाभाव, भव-निर्वाण आदि-अंत से रहित सहज नैरात्म्यज्ञान है। सहजयानी सिद्धों ने इस सहज को ही सहज स्वरूप, सहज ज्ञान, सहजसुन्दरी, सहज काया, सहज तत्त्व आदि के रूप में विस्तृत उल्लेख किया।

## 3.4.12 सहजयान में गुरू का महत्व :-

सहजयानी साधना महात्मा बुद्ध के मूल उपदेशों से इतर दिख पड़ती है। सिद्धार्थ को जहाँ स्वयं के अभिज्ञान से बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी वहीं सहजयानी सिद्धों ने अपनी साधना में गुरू के निर्देशों को अनुपालनीय मानते हुए, विशेष महत्व दिया है। इन सिद्धों ने अपनी साधना में गुरू को विशेष महत्त्व देते हुए कहा है कि सहज की प्राप्ति गुरू के उपदेश से ही संभव है। उसका स्वरूप प्रज्ञा और उपाय का मिलित रूप है,[434] शून्यता और करूणा की मिलित मूर्ति है,जहाँ प्रज्ञा का लक्षण निःस्वभाव और उपाय का लक्षण स्वभाव युक्त है एवं मौन मुद्रा ही श्री गुरू का उपदेश है।

गुरू का चयन कर लेने के उपरांत साधक के द्वारा मुद्रा का वरण किया जाता है। यहाँ मुद्रा से अभिप्राय स्त्री से है। जो साधक की शक्ति रूप है। जिसके साथ गुरू के निर्देशन में साधना में गति प्राप्त होती है। एकमात्र गुरू का उपदेश ही सहज को पाने का उपाय है। उसी के निर्देशन में ही महासुख की अभिव्यक्ति ऊष्णीष कमल में होती है। गुरू[435] ही साधक को जगत प्रपंच से निकालता है। उसका वचन साधना में पतवार वत है। इसीलिए सिद्ध सरहपा ने गुरू को परम

---

[434] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् 2007. पृ. 88. *सदगुरू शिष्ये रतिस्वभावेन महासुखं तनोति।*

[435] डी., भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012. पृ. 75.

गूढ़ सत्य को प्रकाशित करने वाला कहा है।[436] सिद्ध तिलोपा ने कहा है कि परम सत्य अगम अगोचर है, किन्तु गुरू की कृपा से सभी संभव हो जाते है।

सहज साधनाओं से जिन्होंने वज्रधर अवस्था को प्राप्त कर लिया है, वे महासुख कमल की कर्णिका में स्थित हैं। वज्रधर का स्वरूप ही गुरू का स्वरूप है, जो ज्ञान, मन और इन्द्रिय पथ के माध्यम से प्राप्त होते हैं, वह सहज नहीं है। क्योंकि देह, वाक् और चित् उसे ग्रहण नहीं कर सकते। वह तो त्रिकालाबाधित, पथहीन एवं सदा उदित है, उसे केवल गुरू ही प्रदर्शित कराते हैं। साधक तो अज्ञानी बालक की भाँति होता है, जो जगत रूपी नदी में बहता चला जा रहा है किन्तु गुरू के वचन हृदय में प्रवेश कर जाने पर ही इच्छित फल हस्तगत हो सकता है।

उसी के द्वारा प्राप्त बोध से ही प्राण का निरोध और चित्त विश्रांत होता है। गुरू का वचन ही भवसागर से पार होने के लिए पतवार के समान है। लुईपा ने समस्त ज्ञान की प्राप्ति में गुरू को ही प्रमुख माना है। शबरपा जो हिरणों का शिकार कर जीवन व्यतीत करते थे, उन्होंने रूपक शैली में गुरू के वचनों को धनुष बनाकर बोधिचित्त रूपी बाण का, अनुसंधान कर भव और निर्वाण को पार कर लिया है। सिद्ध कण्हपा ने भव रूपी विशाल वृक्ष को वज्ररूपी कुठार से उन्मूलन गुरू के निर्देशन में किया है।

गुरू का नाम बड़े आदर से लेते हुए उन्हें वरगुरूपाद, श्रीगुरूनाथ,[437]वज्रधर आदि कहकर संबोधित किया गया है, उसी की शिष्य के द्वारा वंदना करनी चाहिये[438] शिष्य जब गुरू के निकट बालक की भाँति सहज चित्त से रहता है, तभी उसकी कृपा प्राप्त होती है। तब सहज उल्लास का अनुभव होता है किन्तु गुरू वही हो सकता है जो प्रज्ञोपाय साधना में  निष्णात् हो एवं जो सहज को जानता हो।

---

[436] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 195.

[437] वही, पृ.196.

[438] न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : इंडियन माइंड, 2012. पृ.151.

## 3.5 सहजयानी सिद्धों की दार्शनिकता :-

### 3.51 जगत विचार :-

सहजयानी सिद्धों की दार्शनिकता को देखने पर यह ज्ञात होता है की इन्होंने दृश्यमान जगत को मिथ्या (अवास्तविक) बताते हुए, इन्द्रियजन्य ज्ञान को अस्वीकार्य किया है। देह को मुक्ति का मूल माध्यम मानते हुए, काय साधना स्वीकार्य है। तीर्थ सेवन, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड आदि को अस्वीकार कर शास्त्रीय विवेचना को महत्त्व नहीं देते हुए शुद्ध अनुभूतजन्य विषयों आदि पर ही अपने मतों को विभिन्न कविताओं, रचनाओं, दोहाकोश, गीतों के रूप में प्रस्तुत किया है।

सिद्ध लुईपाद चौरासी सिद्धों में प्रथम स्थान रखते हैं। जिन्होंने इस देह को वृक्ष की संज्ञा देते हुए इसके पंच स्कन्ध, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान को शाखाएं स्वीकार करते हुए चित्त की चंचलता से मानव देह का काल के वशीभूत होकर नष्ट हो जाने की बात कही है अतः चित्त के प्रपंच से उत्पन्न सुख-दुःख से प्रभावित हुए बिना योग्य गुरू शरण प्राप्त कर महासुख की अनुभूति प्राप्त करने का उपदेश किया है। इसी महासुख की अनुभूति को ही सहजयानियों ने विभिन्न स्थानों पर निर्वाण कहा है। चूंकि, यह स्थिति सभी दिशाओं से परे है, इसे समझाया अथवा बतलाया जाना संभव नहीं अतः इसे ही शून्यता भी कह दिया गया है। इसी का निर्देश करते हुए लुईपाद ने कहा है कि चित्त को इन्द्रियादी विषयों से हटाकर शून्य में लगाना चाहिए।इससे प्राप्त गहन अनुभूति का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि वह परम स्थिति भाव-अभाव से परे है। जो प्राण की स्थिरता में कुम्भक समाधि से संभव हो पाया है। यह भाव-अभाव की स्थिति से परे अवर्णनीय है।

चर्यासंग्रह में राग विभास के कथनानुसार, उस परमावस्था को सुना नहीं जा सकता हैं और न ही बताया जा सकता है। यहाँ घृणा, मोह, शौच, पवित्रता, राग, द्वेष हैं यहाँ न शून्य है और न ही उपस्थिति है,वहाँ विशुद्ध रूप से सहज है।[439]

[439] डे., भक्ति. संपादित. चर्यासंग्रह. प्रथम संस्करण. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडीज, सारनाथ, 2012.पृ.130.

भुसुकपा ने इस दृश्यमान जगत को अवास्तविक एवं अस्थिर मानते हुए नदी की भांति प्रवाहमान एवं केवल प्रतिभासित (प्रतिबिम्ब) कहा है। उपरोक्त कथन को सिद्ध करने के लिए रज्जु में सर्प दिखाई देना, रेगिस्तान में पानी का भ्रम होना, रेत से तेल निकालना, आकाश में फूल खिलना आदि विभिन्न प्रकार के उद्धरणों को प्रस्तुत किया गया है।

जगत के इस वास्तविकता का अनुभव नहीं होने के कारण सामान्यजन अविद्या के प्रभाव से इसे सत्य मान बैठते हैं और कामनाओं के साथ जीवन को समाप्त कर लेते हैं। अतः भुसुकपा कहते है कि सद्गुरू के सानिध्य में वासनाओं का क्षय होकर इस प्रतिभासित जगत से मुक्ति मिलती है। तब वास्तविक ज्ञान का उदय संभव हो पाता है।

सिद्ध चाटिलपाद ने जगत की नश्वरता एवं गतिशीलता को नदी के प्रवाहमान जल से संबद्ध कर समझाने का प्रयास किया है कि जिस प्रकार नदी में जल का प्रवाह निरंतर बना रहता है, उसी प्रकार यह भासमान जगत भी गतिशील है। यही इसकी नश्वरता एवं अस्थिरता का कारण है, किन्तु यह जगत, चित्त की विशुद्धता नहीं होने पर भयंकर जलप्रवाह के समान स्थिर दिखाई पड़ता है, जो वास्तव में नहीं है।

प्रसिद्ध सहजयानी सिद्ध कण्हपा प्रतिभासित जगत को चित्त की उपज स्वीकार कहते हुए उसी के विभिन्न कल्पनाओं आदि विकल्पों का परिणाम माना है। साथ ही कहा है की पंच स्कन्धों  के परे चित्त की शून्यता ही परमसुख का घोतक है किन्तु सामान्यजन इसी पंच स्कन्धों को ही सबकुछ मानकर परमानंद से वंचित रह जाते हैं।

मृत्यु के उपरांत भी हमारा परमानंद सहज रूप विद्यमान होता है जो सर्वव्यापी एवं शाश्वत है। सहजसुख के अनुभव को साक्षा करते हुए कहा है कि इस अवस्था में न ही हम सोए हुए होते है, और न ही जागृत। चेतना की पूर्ण उपस्थिति में स्थित कण्हपा ने इसे सहजनिद्रा कहकर संबोधित किया है। कण्हपा

मानों हाथी की तरह उन्मत्त होकर सहज नामक नलिनी वन में प्रवेश कर निर्विकल्पावस्था[440] में स्थित है।

भुसुकपा ने कहा है कि निज में उत्पन्न सहजावस्था की अनुभूति होते ही इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के विषय जाल मानों लुप्त हो गये हैं और अपूर्व पूर्ण उल्लास[441] का अनुभव हो रहा है। जैसे पूर्ण चन्द्रमा उदित होकर अपना प्रकाश प्रसारित कर रहा हो।

### 3.5.2 सहज देह:-

बौद्ध सिद्धों ने अपनी साधना में देह को वज्र के समान किसी भी परिस्थितियों से अप्रभावित रखने हुए इसी में ही उस परमतत्त्व की अनुभूति करने की बात स्वीकार की है। इसी देह में ही बुद्ध का वास है। जिसे अज्ञानी जान नहीं पाते की इसी में ही बुद्ध के साथ भगवती नैरात्मा निवास करती हैं और हम उसे बाह्य अनुष्ठान के माध्यम से बाहर खोजते फिरते हैं। सिद्ध कण्हपा ने इसी देह रूपी नगर में कापालिक योग के द्वार विहार का वर्णन किया है। वही सरहपा काया रूपी नौका के खेवनहार मन को प्रज्ञोपाय योग से विशुद्ध करने की बात करते हैं।

यह देह सभी साधनों में श्रेष्ठ है। जिसमें गंगा-यमुना, सूर्य-चंद्र, वाराणसी, प्रयाग, पीठ, उपपीठ, धर्मक्षेत्र आदि विद्यमान है अतः तीर्थाटन, बाह्यानुष्ठान आदि निरर्थक कार्य छोड़ देने चाहिये। महासुख का वास इसी देह में ही है किन्तु वह देह नहीं है। जो पवन के निरोध, मेरूदण्ड में बोधिचित्त के उर्ध्वगमन करता हुआ कमल से (प्रज्ञा) योग करता है। तब अमृत वर्षा संभव हो पाती है। उपरोक्त सभी का आधार देह ही है।

### 3.5.3 चित्त :-

सिद्धों की साधना का केन्द्रबिन्दु चित्त है। इसे ही भगवान, जगत का बीज रूप आदि नामों से अभिहित किया गया है। इसकी चंचलता ही काल में प्रवेश है।

---

[440] चतुर्वेदी, परशुराम. बौद्धसिद्धों के चर्यापद. प्रथम संस्करण. वाराणसी : भारतीय विद्या प्रकाशन, 1969. पृ. 66.
[441] वही, पृ.67.

अतः इसे संकल्प विकल्पादि जालों से मुक्त कर सहज में प्रतिष्ठित करना ही उद्देश्य है। इसके दो रूप है। पहला संवृत्त और दूसरा सहज। संवृत्त रूप में चित्त चंचल होकर सांसारिक कार्यों में लिप्त रहता है। इसे ही सिद्धों ने भव-निमज्जित कहा है।

कण्हपा के अनुसार, यह शुक्रद्रवाकार बोधिचित्त को नष्ट करने वाला है। जिससे साधना में विघ्न उत्पन्न होता है, और साधक कालाग्नि में नष्ट हो जाता है। वहीं चित्त के सहज रूप में साधक प्रज्ञोपायात्मक योग से शुक्रद्रवाकार बोधिचित्त को रज से युक्त कर देने पर यह वज्ररूप में संकल्पादि से मुक्त होकर सहज हो जाता है जो भव-बन्धन से मुक्त होता है।

### 3.5.4 देहस्थ चक्र और आनंद :-

सिद्धों ने शरीरस्थ नाभिप्रदेश, हृदय, कण्ठ एवं मस्तिष्क में निर्माणकाय, धर्मकाय, सम्भोगकाय एवं चतुर्थ महासुखकाय की चर्चा करते हुए इन स्थानों में क्रमशः निर्माण चक्र, धर्म चक्र, सम्भोग चक्र और महासुख चक्र एवं उनके पद्म दलों, उनके देवियों, बीजमंत्रों के साथ विस्तृत उल्लेख किया हैं।

उपरोक्त चार कायों में स्थित शक्ति के विशुद्धता के अनुरूप् उसे चण्डाली, नैरामणि, नामों से संबोधित करते हुए, चतुर्थकाय महासुखस्थान में इसे नैरात्म्य (सहजसुन्दरी) कहकर संबोधित किया है। उपरोक्त चारों कायों में अनुभूत आनंद के चार स्तरों का उल्लेख करते हुए, निर्माणकाय में शुद्ध आनंद, धर्मकाय में परमानंद, सम्भोगकाय में विरमानंद एवं महासुखकाय में सहजानंद[442] की उत्पत्ति माना है। जो पूर्णानंद का स्थान है।

### 3.5.5 सहजयानी साधना में प्रमाण :-

तांन्त्रिक बौद्ध परम्पराओं के पूर्व सम्प्रदायों महायान, वज्रयान, मन्त्रयान आदि की मान्यताओं को अस्वीकार करते हुए आगम, मन्त्र, मूर्तिपूजा, ग्रन्थ प्रमाण, ब्राह्मणों, वेदपाठी पंड़ितों को विकल्प जाल युक्त अविद्या से ग्रसित

[442] नेगी, ठाकुरसेन. ग्रंथकार. वज्रयानी अनुत्तरयोग. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 521.

अभिमानी संबोधित करते हुए तर्क को व्यर्थ माना हैं।[443] सिद्धों के अनुसार, सहज परम अनुभूति है। जिसे ग्रन्थों के अध्ययन से अथवा तर्कों से नहीं जाना जा सकता। उसे अद्वय में स्थित गुरू के माध्यम से ही जाना जा सकता है।

सहज को जानने वाले ही गुरू हो सकते है। उसे ही वज्रधर की संज्ञा दी गयी है। स्वसंवेद्य[444] (स्वयं के द्वारा अनुभूत ज्ञान) इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि से परे है। यह अतीन्द्रिय ज्ञान ही प्रमाण के रूप में स्वीकृत है। जिसे व्यक्त करना संभव नहीं है।

सहजयानी सिद्धों ने सिद्धत्व की प्राप्ति के लिए कठोर एवं दुष्कर नियमों को अस्वीकार करते हुए सहज रूप में उपभोग की वस्तुओं का सेवन कर उस परमावस्था को पाने के सिद्धांत को स्वीकारा है। इसी क्रम में इन सिद्धों की विभिन्न प्रकार की साधनाओं में गुरू के निर्देशन में सहज उपलब्ध स्त्रियों (विशेष कर निम्नजाति की) को महामुद्रा के रूप में वरण किया जाता था, जिनमें ये महामुद्राएँ उन साधकों की सहचरी एवं योगिनियों के रूप में उनके साधनाओं को पूर्णता प्रदान करने में सहायक के रूप में प्रसिद्ध थी।

साधक वज्रजाप पूर्ण कर यह प्रज्ञोपाय की साधना करता था, जो ब्रह्मचर्य पर आधारित थी। सिद्धों ने स्थान-स्थान पर  बिन्दु को बोधितचित्त कहकर संबोधित किया है। जिसे मध्यमार्ग अवधूती से उष्णीष कमल तक पहुँचाया जाता था। तब साधक काय, वाक, चित्त से परे अव्यक्त महासुख में लीन हो जाता था, वही सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध माना जाता था।

## 3.5.6 अनुत्तर योग :-

यह लौकिक अथवा सामान्य सिद्धियों से परे आध्यात्मिक अनुभूती है। जिसे बताया नहीं जा सकता अतः यह अनुत्तरित है। जिसे सिद्धों ने अपने ही देह में प्रयोपाय योग में लीन हो जाने पर इसकी प्रगाढ़ता में इसकी सिद्धि प्राप्त की है।

---

[443] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2009. पृ. 113.

[444] वही, पृ.114.

इसे ही तत्त्वज्ञान कहा गया है। जिसके प्राप्ति के उपरांत कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इसे ही सहज के नाम से भी संबोधित किया गया है। इसकी उपलब्धि ही पूर्णता की उपलब्धि है। इसे ही नामान्तर भेद से महासुख कहा गया है।

सिद्ध कण्हपा ने अनुत्तर की इस उपलब्धि को रूपक के रूप में कहा है कि वह नैरात्मा सहजसुन्दरी से व्याह रचाने जा रहे हैं। जिसमें विभिन्न प्रकार के नाद रूप सहनाई, ढोल, नगाड़े आदि से सारा आकाश गूँज उठा है। मन, पवन में लीन होकर पालकी बन गया है। कण्हपा ने इस विवाह से अनायास ही अनुत्तर योग महासुख की प्राप्ति कर ली है। जिससे चित्त समरस होकर सहज में स्थित हो गया है। जहाँ जरा-मरण का भय नहीं है।

भुसुकुपा ने भी चित्त रूपी मणि का शून्यता में समरस होकर अभेदता की प्राप्ति कर ली है किन्तु इन अनुभूतियों को व्यक्त करना असंभव है। क्योंकि यह इन्द्रिय, मन, चित्त से पार है। गुरू भी इसे समझा नहीं सकते। सिद्धों ने इस परम अनुभूति को भव-निवार्ण, सुख-दुःख, आरंभ-अंतिम आदि से भी अलग कहा है। इसे केवल निज के द्वारा ही जाना जा सकता है।

## 3.5.7 सहजयानी साधना में प्रतीकात्मक रहस्यवाद :-

सहजयानी सिद्धों की चर्यागीति कोश, दोहाकोश एवं उनके अन्यान्य ग्रंथों में साधनाएँ एवं उच्च अनुभूतियाँ आदि को प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जहाँ एक ही शब्द  कहीं उपमा तो कहीं प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। जो रहस्यात्मक, गूढ़ एवं लोक व्यवहार के विभिन्न रूपकों के रूप में शामिल हैं। किन्तु प्रतीकों को सामान्य अर्थों में नहीं लिया जा सकता।

इनमें इन्होंने अपने पूर्व सम्प्रदाय वज्रयान के मूर्ति, मण्डल, जप आदि कर्मकाण्डों का खण्डन करते हुए, अन्तर साधना, गुरु उपदेश आदि साधनात्मक निर्देशों का समावेश किया है। ये अभिव्यक्तियाँ प्रतीक पद्धति एवं संधाभाषा अर्थात् कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट रूप में है, जिन्हें समझने के लिए इनकी विभिन्न रचनाएँ एवं उनकी टीकाएँ आदि सहायक हैं।

प्रबोधचन्द्र बागची के द्वारा सम्पादित, चर्यागीतिकोश में चर्यापद संख्या प्रथम में सिद्ध लुईपा ने इस देह और मन को तरू अर्थात् वृक्ष एवं उनकी पाँच इन्द्रियों को शाखाओं के रूप में व्यक्त किया है। तेन्तुली और कुम्भीर नामक प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करते हुए क्रमशः बोधिचित्त और कुम्भक समाधि को व्यक्त किया गया है।[445] यहाँ तेन्तुली का अर्थ इमली से है। साधना मार्ग में अपक्व साधक की गति इमली की तरह टेढ़ी हो जाती है, जो बोधिचित्त (शुक्र) के पतन का प्रतीक है। वहीं कुम्भीर को मगर की संज्ञा दी गयी है। जिसका तात्पर्य यह है की बोधिचित्त को कुम्भक समाधि से सहजयानी चक्र साधना में सबसे ऊपर स्थित उष्णीष कमल तक पहुँचाया जाता है। यह बोधिचित्त मगर की भांति अधःस्थान, गुह्य चक्र से उत्थित होकर ऊष्णीष कमल तक पहुँच जाता है।

चर्यापदों में कृष्णपाद ने बाह्य जगत रूपी विषयों से चित्त को अप्रभावित रखते हुए सरोवर रूपी देह को नष्ट होने से बचाने की बात कही है। क्योंकि अपरिशुद्ध चित्त रूपी हिरण विषयासक्त होकर अज्ञान रूपी निलय के कारण शिकारी रूपी विषयों के प्रभाव से मारा जाता है। इसलिए कापालिक कृष्णपाद ने नगर रूपी विषयों का त्याग कर दिया है।

सहजयानी सिद्ध शबरपाद ने अपने एक चर्यापद में प्रतीकों का प्रयोग करते हुए संध्याभाषा में नैरात्मा सहजसुन्दरी के साथ प्रणयाभिसार को व्यक्त करते हुए कहा है कि शबरी पूर्ण यौवन से परिपूर्ण युवती है, जिसने अपने कर्णों में कुण्डल धारण कर रखा है। जो ऊर्ध्वपर्वत शिखर पर निवास करती है। वह स्थान घने वनों से आच्छादित है एवं उन वृक्षों की डालियाँ आकाश का स्पर्श करती हैं।

सहजसुन्दरी शबरी पर शबर उन्मत्त हैं। शबर को आश्वासन देती है कि वह उसकी गृहणी बनेगी। इस पर मुनिदत्त ने अपनी टीका में प्रयुक्त साधनात्मक प्रतीकों को व्यक्त करते हुए कहा है की शबर पर्वत शिखर का प्रतीक, मेरूदण्ड का उन्नत शिखर है। विषयों से प्रभावित चित्त ही लोलुप्तावस उन्मत्त हो उठता है।

---

[445] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 128.

शबर की गृहणी रूपी स्त्री, ज्ञानमुद्रा का प्रतीक है, जो वन रूपी देह में क्रियाशील है।

अज्ञान रूपी तम से प्रभावित उस वन रूपी देह में उनकी डालियाँ, इन्द्रियाँ हैं। उसी सहजसुन्दरी नैरात्मा अवधूती (परिशुद्ध चित्त) के साथ शबर महासुख का अनुभव करता है[446] अर्थात् सहज आनंद की अनुभूति चित्त के परिशुद्धावस्था में ही संभव है। जो सहजयानी सिद्धों के अनुसार उष्णीष कमल अर्थात् महासुख चक्र में घटित होती है।

सिद्ध ढेण्ढणपाद ने बन्ध्या गाय का उदाहरण देकर यह समझाने का प्रयास किया है कि जिस प्रकार गाय के बन्ध्या हो जाने से प्रसव नहीं होता और न ही उससे दूध आदि की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार नैरात्मा सहजसुन्दरी अवधूतिका से बोधिचित्त के ऊर्ध्वगमन से विषय रूपी जगत का विस्तार नहीं हो पाता एवं योगी सहजसुख की प्राप्ति करता है।

नैरात्मा, सिद्धों ने चार धातुओं के अंतर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु को स्वीकृत करते हुए, पंचम धातु के रूप में नैरात्मा का उल्लेख किया है। यह काम, रूप व अरूप के उपरांत चतुर्थ है। जिसका स्थान गगनमण्डल पर है, यही उत्पत्ति और लय का स्थान है। अवधूतिका से बोधिचित्त के ऊपर कि ओर गमन होने से नैरात्मा, सहजानंद में लीन होकर पूर्णानंद युक्त हो जाती है। नैरात्मा को ही नामांतर भेद से ज्ञानमुद्रा, प्रज्ञा, सहजसुन्दरी, डोम्बी, शबरी, हरिणी, गाय, गृहिणी व दारी आदि नामों से संबोधित किया गया है।

गोपीनाथ कविराज ने सहजयानी सिद्धों की नैरात्म्य साधना को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त माना है। प्रथम नैरात्म्य साधना में क्लेशादि की निवृत्ति तो हो जाती है किन्तु इस अवस्था में द्वैतभाव एवं शुद्ध वासना बनी रहती है। उपरांत धर्म नैरात्म्य साधना में शुद्ध वासना की भी निवृत्ति होने पर, ज्ञाता और ज्ञेय समरस हो जाने से पूर्ण नैरात्म्य कहलाती है।

---

[446] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001.पृ. 133.

सिद्धों ने विभिन्न स्थानों पर इस ज्ञानमुद्रा को महामुद्रा, वज्रकन्या, युवती, पद्म आदि नामों से पुकारा हैं। वज्रकन्या, शून्यता की प्राप्ति में सहायक है, जिसके साथ वज्रधर महासुख क्रीड़ा करते हैं। जिसे सांकेतिक रूप से कमल-कुलिश अथवा वज्र-पद्म का मेल भी कहा गया है। हेवज्रतंत्र की टीका योगरत्नमाला में सिद्ध कृष्णपाद ने इस प्रज्ञा को जननी, रजकी, नर्तकी, डोम्बी, दुहिता आदि सांकेतिक नामों से संबोधित किया है।

अवधूतिका, बौद्ध सिद्धों ने स्थान-स्थान पर अवधूती की महत्ता प्रतिपादित की है। ललना और रसना नाड़ियों के मध्य में स्थित होने के कारण इसे ही मध्यमार्ग, निर्वाणमार्ग, ग्राह्य-ग्राहक से वर्जित, महासुख का आश्रय स्थान आदि कहकर संबोधित किया गया है, जो सहज आनंद को प्रदान करने वाली है। इसे ही गृहणी, नायिका, वधू आदि नामों से भी पुकारा गया है। सहज साधना में यही केवल ग्रहण करने योग्य होने के कारण गृहणी है, जिसमें विलीन हुए बिना परमार्थ का बोध असंभव है। इसे ही वरण करने के उद्देश्य से कण्हपा ने बारात सजायी है। यही काल रुपी दिवस और रात्रि के मध्य से पार ले जाने में समर्थ है।

इसी प्रकार चित्त के लिए ब्राह्मण, चोर, सिंह। देह के लिए वन, वृक्ष। रूपादि विषयों के लिए नगर, श्वास को ससुरा, वायु के लिए सर्प, सूर्य और चंद्रमा के लिए पड़ोसी, काय, वाक् और चित्त को तीन भुवन, अविद्या के लिए भग, निर्माणचक्र के लिए नाभिस्थान, सम्भोगचक्र के लिए कण्ठस्थान, जगत के लिए पिटारी आदि प्रतीकों को उपयुक्त मानकर अपनी रचनाओं में प्रयुक्त कर चीजों को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है।[447]

सिद्धों के द्वारा प्रयुक्त एवं प्रस्तुत भाषा गूढ़ अर्थ लिए हुए होती थी, जो मंत्रों की भांति दिव्य गुह्य और परम अर्थ उत्पादक माना जाता है, जिसे सामान्यावस्था में समझना सरल नहीं है। इसे ही संधा भाषा कहा गया जो साधनाओं, अनुभूतियों एवं जनमानस को उपदेश के उद्देश्य से इन प्रतीकों को प्रयुक्त किया गया था।

---

[447] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001.पृ. 138.

चर्यापदों में प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकों में एक वीर[448] शब्द है। दोहाकोश में कहा गया है कि जिसने चित्त-वज्र-प्रज्ञोपाय योग से महाराग साधना से विराग को नियंत्रित कर लिया वही सुरत वीर है। वही ऊष्णीष चक्र में नैरात्म्य सुंदरी महामुद्रा के साथ उपभोग करता है। उसे ही अद्वय ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत भुसुकुपा ने बंगाली कहा है। जिन्होंने गृहणी के रूप में चण्डाली का वरण किया है।

कपाली, कपाली से अर्थ कापालिक साधना से है। सिद्ध कण्हपा उस नैरात्म्य सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए नग्न कापालिक बने हुए है एवं इसके लिए सांसारिक संबंधों एवं भोगों का भी त्याग कर दिया और अस्थियों की माला धारण कर योगी हो गये हैं।

चाण्डाली, इनके विभिन्न नामान्तरों में शबरी, वधू, सहजसुन्दरी, गृहिणी, डोम्बी, मातंगी, योगिनी, पद्मनी, कमलिनी आदि शब्दावलियों का प्रयोग किया गया है। वास्तव में मणिमूल में ललना और रसना नाड़ियों में वज्रजाप के उपरांत शुद्धता की प्रगाढ़ता में चण्डाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है, जो साधक में अवधूतिका(मध्यम मार्ग) के द्वारा उसका ऊर्ध्वगमन करता है। यह ज्ञान रूप है।

मेरूशिखर, मेरू से तात्पर्य मेरूदण्ड से है एवं उसके शिखर पर विद्यमान ऊष्णीष कमल है। सिद्ध शबरपा ने इसी मेरूशिखर पर निवासरत अपनी नायिका शबरी बालिका के सौंदर्य का वर्णन करते हुए, इसे ही महामुद्रा या नैरात्मा कहा है, इसी कारण सिद्ध ने अपने को शबर कहा है।

## 3.6 सहजयान पर विभिन्न विद्वानों के मत :-

**महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री :-** सहजयानी सम्प्रदाय के प्रवर्तक लुईपा (लुईपाद) हैं।[449] जिन्होंने सहजीया मत का प्रचार-प्रसार किया था। जो नौवीं से तेरहवीं शताब्दी मध्य तक अपने चरम पर था।

---

[448] डी., भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012. पृ. 115.

[449] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 369.

**गोपीनाथ कविराज :-** सहज-सम्प्रदाय के प्रकाशित ग्रंथों के आलोचना से यह समझ में आता है कि जिस पथ पर आगम और सिद्धमार्ग का उद्भव हुआ है, वह भी उसी मार्ग का ही प्रदर्शक है। इस सम्प्रदाय में सहज की प्राप्ति ही पूर्णता है। इसे ही महासुख, महामुद्रा साक्षात्कार आदि नामों से पुकारा गया है। जहाँ समस्त विकल्प जाल समाप्त हो जाते हैं।[450]

**राहुल सांकृत्यायन :-** सहजयानी सिद्धों ने अपने समय में धर्म, आचार एवं दर्शन आदि पर क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किये जिनमें वे अच्छी-बुरी रूढ़ियाँ, पाखंड, विश्वास आदि को अस्वीकार किया। साथ ही वज्रयान की बाह्य साधना पर विजय पाने एवं सामान्य जनमानस को समझाने के लिए कविताओं का सहारा लिया।[451]

**हजारी प्रसाद द्विवेदी :-** द्विवेदी जी ने सहज साधना पर अपने व्याख्यानों के माध्यम से प्राचीन भारत के ज्ञान परम्परा शैवों, नाथों, बौद्धों की सहज अवस्था की गंभीरता, सहजीया सिद्धों की दार्शनिकता तथा भक्तिकालीन कवियों पर सहज का प्रभाव और उसके गूढ़ शब्दों का सरल विवेचन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि बौद्ध धर्म में कालान्तर में तन्त्र की साधनाओं के प्रवेश से शैवों एवं शाक्तों के शिव और शक्ति तत्त्वों की भाँति प्रज्ञा और उपाय का उल्लेख प्राप्त होता है।[452] सहज शब्द के विषय में डाँ. द्विवेदी का कथन है कि सहज 'ह' हठयोग से एवं 'ज' जपयोग से आया हुआ है। सहज साधना में हठयोग एवं जपयोग की साधनाएँ शामिल हैं।[453]

---

[450] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय संस्कृति और साधना. प्रथम व द्वितीय खण्ड. चतुर्थ संस्करण. बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2009. पृ. 256.

[451] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्व निबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ. 160.

[452] द्विवेदी, मुकुंद. संपादित. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली. सं. 05. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.पृ. 111.

[453] वही, पृ. 113.

**शशिभूषण दास गुप्त :-** सहजीया सिद्धों की साधनाएँ देह को अनुचित कष्ट दिये मानव स्वभाव से सहज (निज) का साक्षात्कार करना है। जिस मार्ग में यौन यौगिक, रागवृत्ति आदि क्रियाएँ सम्मिलित हैं।[454]

**नागेन्द्रनाथ उपाध्याय :-** सहजयान अन्तःसाधना है जिसे दिव्य भाव की साधना का मार्ग कहा जाता है, जो वज्रयान की बाह्य साधना से पार है। जहाँ भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय, अपना-पराया आदि का अंतर नहीं रह जाता अर्थात् वहाँ दृष्टि सम हो जाती है।[455]

**धर्मवीर भारती :-** सिद्धों की चर्यापदों तथा दोहों में प्रतिपादित सिद्धांतों का विवेचन करने पर यह प्रतीत होता है कि ये हिन्दू साधना से प्रभावित थे एवं उनका अनुसरण करते थे, साथ ही इन सिद्धों ने कई स्थानों पर अपने बौद्ध परम्परा का भी अनुसरण किया है।[456]

**रामधारी सिंह दिनकर :-** सहजयानियों का दार्शनिक सिद्धांत यह है कि इस सृष्टि का आरम्भ बोधिचित्त से हुआ है, जिसका कोई कारण नहीं है। बोधिचित्त शून्यता और करूणा के समन्वित प्रतीक है। शून्यता प्रज्ञा (महाज्ञान) है जो निश्चल और निवृत्ति मूलक है, एवं करूणा उपाय है जो गतिशील और प्रवृत्ति मूलक है। जिसके भीतर प्रज्ञा और उपाय के भेद मिट गये हो उस साधक को ही सिद्ध कहा गया।[457]

**कृष्णनाथ :-** सहज, सिद्ध साहित्य और साधना का अति महत्वपूर्ण परिभाषिक शब्द है। यह वस्तु- गुण, चन्द्र-सूर्य, मणि-पद्म, संसार-निर्वाण आदि का मिलित रूप है। यह गुह्य है जो भाषा विश्लेषण से समझा नहीं जा सकता।

---

[454] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001. पृ.370 -71.

[455] वही, पृ. 378.

[456] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955. पृ. 06.

[457] दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय. तृतीय संस्करण. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2017. पृ.179-80.

प्रज्ञा बिना उपाय, बंधन है और उपाय बिना प्रज्ञा, बंधन है। उपरोक्त दोनों का मेल अद्वय है, वही मोक्ष है।[458]

**व्रजवल्लभ द्विवेदी :-** वज्रयान, सहजयान व कालचक्रयान की विशेषताओं को देखने पर यह ज्ञात होता है कि ये विधिनिषेध, भक्ष्याभक्ष्य, गम्यागम्य आदि को दुराग्रह मात्र मानते हुए इस देह की पूजा करने का उपदेश देते हैं। इसमें आंतरिक द्रव्यों का उपयोग करते हुए पीठ, उपपीठ आदि की इसी देह में ही उपस्थिति स्वीकार करते हैं। तीर्थाटन, पाषाण पूजा, पट, मूर्ति स्थापना के अपेक्षा शरीर में ही स्थित महासुख (अद्वय) की उपासना की वरीयता देते हैं।[459]

## सहजयान पर विभिन्न विद्वानों के कार्य :-

समय-समय पर भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इनकी रचनाओं की संस्कृत, तिब्बती अनुवाद और टीकाओं पर कार्य कर उनके दार्शनिकता, साधना, लिपि, भाषाआदि पर महत्वपूर्ण कार्य किये इनमें प्रथमतः महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री आधुनिक समय में सहजयान पर कार्य करने वाले विद्वानों में प्रथम माने जाते हैं। जिन्होंने नेपाल यात्रा के दौरान कुछ सिद्धों की रचनाओं का अवलोकन किया था। जिसे शस्त्री जी पुरानी बंगला लिपि में लिखित पोथी मानते थे। पुनः नेपाल की यात्रा कर सहजयान की चार महत्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन कर 'बौद्ध गान ओ दोहा' के नाम से 1916 ई. बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता से प्रकाशित किया गया। जिसमें चर्याचर्यविनिश्चय, सरोजवज्रकृत-दोहोकोश, कृष्णपादाचार्यकृत दोहोकोश एवंडाकार्णव शामिल थे। जिससे इस कार्य ने विभिन्न विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित किया था, इसी क्रम में डॉ. बागची बीसवीं शताब्दी के प्रमुख इतिहासकारों में से एक थे जिन्होंने लुईपाद, सरह, तिल्लोपाद सिद्धों के दोहाकोशों, चर्यापदों का सम्पादन कर 1938 में कलकत्ता संस्कृत सीरीज से प्रकाशित किया। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी तिब्बती यात्रा के दौरान प्राप्त चौरासी सिद्धों की सूची छाया चित्रों के साथ प्रस्तुत किया गया था,

---

[458] कृष्णनाथ, बौद्ध निबंधावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केंद्रिय उच्च तिब्बती संस्थान, सारनाथ, 1998. पृ. 85.

[459] द्विवेदी, व्रजवल्लभ.तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन. भाग-2. प्रथम संस्करण. वाराणसी : शैवभारती-शोधधप्रतिष्ठानम्, जंगमवाडी मठ, 2001. पृ. 685-86.

जो तिब्बत की सस्कय विहार नामक बौद्ध मठ से प्राप्त हुए थे। उनके द्वारा तिब्बत से प्राप्त सरह की दोहा-कोश, हिंदी छायानुवाद सहित तिब्बती अनुवाद को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया गया था। जो बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित है।

पाश्चात्य विद्वानों में सर्वप्रथम ब्रिअन होगसन ने तांत्रिक बौद्ध पोथियाँ खोजी थी, एवं युजेन बुरनुफ ने इन्हें पहली बार प्रकाशित किया इसके बाद डेनियल राइट ने नेपाल से प्राप्त पोथियों को खोज निकाला उपरांत बेडले और हरप्रसाद शास्त्री को ज्ञात हुआ था। बेडले ने सहजीया सिद्धों की रचनाओं में सरहपा के पदों और मुक्तकों का संपादन किया और प्रथमतः 68 दोहों का भी प्रकाशन कराया। शास्त्री जी ने इन सिद्धों की रचनाओं पर कार्य कर इनका प्रकाशन 'बौद्ध गान ओ दोहा' में किया। डाँ. मोहम्मद शहिदुल्ला, सहजयानी सिद्धों सरह और कान्ह के चर्यापदों (तेंजुर के तिब्बती अनुवाद के अनुसार) व दोहोकोशों का संपादन कर 'ल शाँ मिस्तीक्स'नाम से पेरिस से फ्रेंच भाषा में 1928 में प्रकाशित किया था।

प्रोफेसर हर्बर्ट वी. गुंथर, तिब्बती अनुवाद और टीका के आधार पर सिद्धों के दोहोकोश वचर्यागीति का अध्ययन कर 'द रॉयल सांग आँव सरह' का संपादन किया और 1969 में यूनिवर्सिटी आँव वाशिंगटन से प्रकाशित कराया था। विनयतोष भट्टाचार्य ने बौद्ध धर्म में तंत्र का प्रवेश, महायानी साधना, वज्रयान व सहयानी सिद्धों के ग्रंथों गुह्यसमाज तंत्र, साधनमाला आदि पर विस्तार से महत्वपूर्ण लेख प्रस्तुत किये हैं, जो क्रमशः 1925, 1928, 1931 में बड़ौदा से प्रकाशित हुए थे।

शांति भिक्षु शास्त्री ने डॉ. प्रबोध चंद्र बागची से मिलकर सहजयानी सिद्धों के रचनाओं के संस्कृत टीकाकार, मुनिदत्त की संस्कृत टीका, संस्कृत छायानुवाद, व चर्यागीतिकोश का संपादन कर 1956 में विश्वभारतीय शांतिनिकेतन, कलकत्ता से प्रकाशित किया गया। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के द्वारा 'भारतीय संस्कृति और साधना', धर्मवीर भारती - 'सिद्ध साहित्य', नागेन्द्रनाथ

उपाध्याय द्वारा रचित 'बौद्ध अपभ्रंश साहित्य' और 'बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य', द्विजराम यादव का 'वज्रयानी सिद्ध सरहपाद',कृष्णनाथ का 'बौद्ध निबंधावली', ठाकुर सिंह नेगी का 'वज्रयानी अनुत्तर योग' आदि रचनाएँ सहजयानी सिद्धों की साधनाएँ, रचना, दर्शन और उन पर आये हुए प्रभावों आदि पर महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती है।

# अध्याय 4.

# हठयोग का सहजयान पर प्रभाव

## प्रस्तावना :-

हठयोग दो वर्णों ह + ठ से मिलकर बना है। जिसका अर्थ शक्ति की दो धाराओं से हैं। सामान्यावस्था में ये धाराएँ एक दूसरे के विपरीत कार्य व्यापार को सम्पादित करती है किन्तु गुरू के द्वारा उपदिष्ट साधना मार्ग का अनुसरण करने से इन दोनों धाराओं को एक्य किया जाता है, इन धाराओं को ही नामांतर भेद से इड़ा-पिंगला, सूर्य-चंद्र, गंगा-यमुना आदि नामों से संबोधित किया जाता है।

दोनों शक्ति धाराओं का योग ही हठयोग है। जिससे भेदाभेद आदि मिट जाते हैं और योगी सहज में रमण करता है, जो मुक्ति का ही नामांतर है। ये साधनाएँ नाथ योगियों अथवा नाथसिद्धों के बीच प्रचलित है। इनके मत को योगमार्ग, अवधूतमार्ग, सिद्धमार्ग कौलमार्ग आदि नामों से भी जाना जाता है।

सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' का अर्थ उत्पन्न होना है। वस्तु और उसके गुण का एक साथ होना ही सहज है। सहजयानी सिद्धों ने सहज को ही नामांतर भेद से प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, सूर्य-चंद्र, स्त्री-पुरूष आदि कहकर भी संबोधित किया है। उपरोक्त दोनों की मिलन की प्रगाढ़ता में भेद समाप्त हो जाते हैं और साधक सहज में प्रवेश कर जाता है, जो निर्वाण का ही नामांतर है।

नाथ और सहजयानी दोनों सम्प्रदायी सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हैं। मध्यकालीन भारतीय एवं तिब्बती स्त्रोतों से प्राप्त सूचियों वर्णरत्नाकर, सस्कय विहार, हठप्रदीपिका आदि में दोनों सम्प्रदायी मिश्रित रूप में शामिल हैं किन्तु इन सिद्धोंमें प्रथम नाम मत्स्येन्द्रनाथ का ही प्राप्त होता है, इन्हीं का तिब्बती संस्करण लूअिपा (लुहिपा) है, जो सहजयानी सिद्धों में आदि सिद्ध हैं। नेपाली बौद्धों के मध्य भी मत्स्येन्द्र अवलोकितेश्वर के रूप में पूजित एवम् प्रसिद्ध हैं।

# अध्याय 4.

## हठयोग का सहजयान पर प्रभाव

प्रस्तावना

**4.1 हठयोग एवं सहजयान**

**4.2 नाथ एवं सहजयानी सिद्धों की परम्परा के आधार पर**

**4.3 नाथ एवं सहजयानी सिद्धों के साधनात्मक विधियों के आधार पर**

**4.4 नाथ एवं सहजयानी सिद्धों के साहित्यों के आधार पर**

**4.4 नाथ एवं सहजयानी सिद्धों के दर्शन के आधार पर**

**4.5 विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर**

काश्मीर शैव परम्परा के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार मत्स्येन्द्र ने ही स्वउपार्जित ज्ञान को आनंद, अवलि, योगी, प्रभु, बोधि, पाद में बाँट दिया था। सहजयानी सिद्धों की नामावली में 'पाद' नामक सम्बोधन शब्द की बहुलता है।

मत्स्येन्द्र कृत कौलज्ञाननिर्णय में अपने पूर्व की सिद्धों की परम्पराओं का उल्लेख किया है। जिनके नामों के अंत में भी पादान नामक विशेषण प्राप्त होते हैं। नवनाथों की सूची प्रस्तुत करने वाली सूची में सहजयानी प्रसिद्ध सिद्ध जालंधर एवं उनके प्रमुख शिष्य कानिफा भी शामिल हैं। इन सूचियों में भी मत्स्येन्द्र का स्थान प्रथम और गोरक्षनाथ दूसरे स्थान पर प्रतिष्ठित हैं।

ब्रह्मानंदकृत हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में बंगाल के प्रसिद्ध नाथ सिद्ध और सहजयानी सिद्ध गोपीचंद के साथ-साथ सोलहवीं शताब्दी में तिब्बत में प्रसिद्ध लेखक और सहजयानी साधक तारानाथ नाथों की सूची में सिद्ध के रुप में शामिल किया हैं। साथ ही दोनों सम्प्रदायों में उनके साधनात्मक विधियाँ भी समान है। नाथ साधना में जहाँ आसन, प्राणायाम, कापालिक साधना, मुद्रा, कुण्डलिनी जागरण, देहस्थ चक्र, सहजानंद आदि का वर्णन हैं, वहीं सहजयान में नामांतर भेद से बुद्धासन, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रासाधना, चाण्डाली जागरण, देहस्थ चक्र एवं सहजानंद आदि समान हैं। इनके दर्शन भी नाथ योगियों से मिलते हैं।

सहजयान के पूर्व तांत्रिकबौद्धपरम्पराओं की समीक्षा करने पर उपरोक्त साधनाएँ कम ही मेल रखती है। सहजयान की उत्पत्ति की अस्पष्टता विभिन्न सहजयानी ग्रंथ दोहाकोष, चर्यापद, हेवज्रतंत्र, एवं उनकी संस्कृत की टीकाओं का काल एवं उनमें वर्णित साधनाएँ, नाथ सिद्धों के बाद ठहरती है एवं इनका नाथ साधना से गहरा संबंध दिख पड़ता है। इस प्रकार सहजयानी सिद्धों ने नाथ साधनाओं का ही अनुसरण कर अपनी साधनाओं को बौद्ध शब्दावलियाँ देते गये। विभिन्न विद्वानों ने भी भिन्न-भिन्न संदर्भों एवं साधना, दर्शन आदि के आधार पर नाथ सिद्धों का सहजयान पर प्रभाव स्वीकार किया है।

## 4.1 हठयोग एवं सहजयान :-

हठयोग दो वर्णों ह+ठ से मिलकर बना है। जिसका अर्थ शक्ति की दो धाराओं से हैं। सामान्यावस्था में ये धाराएँ एक दूसरे के विपरीत कार्य व्यापार को सम्पादित करती है, किन्तु गुरू के द्वारा उपदिष्ट साधना मार्ग का अनुसरण करने से इन दोनों धाराओं को ऐक्य किया जाता है। ये साधनाएँ नाथ योगियों अथवा नाथसिद्धों के बीच प्रचलित हैं। इनके मत को योगमार्ग, अवधूतमार्ग, सिद्धमार्ग[460] कौलमार्ग आदि नामों से भी जाना जाता है।

नाथ साहित्य के अंतर्गत गोरक्षनाथ कृत मानी जाने वाली सिद्धसिद्धांतपद्धति में हठ शब्द को परिभाषित करते हुए कहा गया है, कि ह से तात्पर्य सूर्य और ठ से तात्पर्य चंद्र से है इन दोनों का योग होना ही हठयोग[461] है। देहस्त प्राण और अपान ही क्रमशःसूर्य और चंद्रमा से संबंधित है। सामान्य अर्थों में सूर्य एवं चंद्र, काल के प्रतीक माने जाते हैं। एक, दिन का प्रतिनिधि है तो दूसरा रात का, दोनों ही काल के सीमाओं में हैं।

नाथ योगियों ने सूर्य और चंद्र के नामान्तर विभिन्न शब्दावलियों का प्रयोग किया है। जैसे प्राण और अपान, इड़ा और पिंगला, शिव-शक्ति, वाम-दक्षिण आदि। गोपीनाथ कविराज 'हठ' शब्द को तंत्र से आया हुआ स्वीकारते हैं।[462] नाथ सिद्धों का शैव एवं शाक्त तंत्र से घनिष्ट संबंध रहा है। इन योगियों की मान्यता है कि समान्यावस्था इस जगत में उपरोक्त दोनों शक्तियों में विषमता में बनी रहती है, यही विषमता ही इस संसार के विकसित होने का कारण है। जैसे सूर्य के उदय होने से चंद्रमा की दृश्यता क्षीण हो जाती है एवं चंद्र के उदय होते-होते सूर्य की दुश्यता प्रायः समाप्त हो जाती है। नाथ योगियों ने इन विषमताओं को ही संसार की संज्ञा दी है।

---

[460] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. उत्तरप्रदेश : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1950. पृ. 01,

[461] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ.27.

[462] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007. पृ. 85.

हठयोगियों की दृढ़ मान्यता है कि यह देह ही विश्व ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। इस शरीर में ही सूर्य एवं चंद्र विद्यमान है। सूर्य रूप में प्राण एवं चन्द्र के रूप में चित्त शक्ति कार्य करती है। जहाँ सूर्य का स्थान नाभि एवं चंद्र का स्थान मस्तिष्क है। नाथ साहित्यों के कथनानुसार सोममण्डल से स्त्रावित अमृत का नाभि में स्थित सूर्य के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। जो बल एवं बिन्दु के क्षय का कारण बनती है। इसी से ही प्राण एवं अपान में विषमता आती है। तब योग सिद्धि में बाधा उत्पन्न होती है। प्राण का प्रवेश सुषुम्ना में नहीं हो पाता और कुण्डलिनी का जागरण संभव नहीं हो पाता। तब सिद्ध देह प्राप्ति नहीं हो पाती अर्थात् घट रूपी शरीर योगाग्नि से पक्व नहीं हो पाता।

नाथ योगियों ने इसी सूर्य एवं चंद्र की विषमता को साम्यता में स्थापित करने के लिए हठयौगिक साधनाओं का उपदेश किया गया हैं- जिनमें आसन, नाड़ीशोधन, मुद्रा, नाद-बिन्दु साधना, कुण्डलिनी का ऊर्ध्वगमन, नादानुसंधान, षट्चक्रों का जागरण आदि सम्मिलित हैं। बिन्दु को सिद्ध कर उसे ऊपर उठाते हुए कुण्डलिनी के जागरण से चक्र भेदन कर सिद्धदेह (जीवनमुक्त) प्राप्त कर लेते हैं। यही ह और ठ की एकता का सूचक है, जिसका मूल उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है।

सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ हैं। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' का अर्थ उत्पन्न होना[463] है। शब्दकोश के अनुसार सहज शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ प्राकृतिक रूप से, साथ-साथ अथवा एक ही काल में उत्पन्न, जन्मजात[464], एक सा, स्वभाव आदि हैं। तिब्बती भाषा में सहज शब्द सह= 'हलन चिग्', ज= 'क्येपा' से मिलकर बना है। जिसका अर्थ साथ साथ पैदा होना या उत्पन्न होना है। सहजयान सम्प्रदाय में सिद्धों ने प्रज्ञा-उपाय, वज्र-वाराही शून्यता-करूणा, पद्म-वज्र आदि के मिलित रूप को ही सहज कहा है। सामान्य अर्थों में किसी वस्तु और उसके गुण का साथ-साथ होना स्वाभाविक है। यह उस वस्तु का आंतरिक गुण है। वस्तु का गुण के साथ और गुण का वस्तु के

---

[463] कृष्णनाथ, बौद्ध निबन्धावली.(दर्शन). प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1997. पृ.84.

[464] दीक्षित, कृष्णकांत. उपाध्याय, सूर्यनारायण. संकलनकर्ता. बृहत् शिक्षार्थी हिंदी-हिंदी शब्दकोश. नई दिल्ली : कमल प्रकाशन, पृ.1293.

साथ संबंध सहज है। जैसे सूर्य के साथ गर्मी का और चंद्र के साथ शीतलता का संबंध है।

यहाँ पर सूर्य के साथ गर्मी का संबंध सहज, स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक है। यह किसी के द्वारा दी गयी अथवा बाद में आयी हुई नहीं हैं, वरन् साथ-साथ ही उत्पन्न हुए हैं, व उनका अस्तित्व भी साथ-साथ ही है। सहजयान तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत आने वाला एक सम्प्रदाय है। जिसका विकास वज्रयानी सम्प्रदाय के उपरांत अथवा साथ साथ माना जाता है।

तांत्रिक बौद्ध परम्पराओं में यान का अर्थ साधन से है जो किसी निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति में सहायक है। इस सम्प्रदाय में सहज एक परमलक्ष्य है, उस परमलक्ष्य की प्राप्ति में जिन साधनाओं, अभ्यासों को माध्यम लिया जाता है, वे ही यान हैं। सहजयानी सिद्धों ने इस सहज को अव्यक्त कहा है, जिसे बताया या समझाया नहीं जा सकता। जिसे किसी भी माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह भाव अथवा अभाव से परे है। संसार (भव) और निर्वाण के पार है।

सिद्धों ने इस सहज को अनेक स्थानों में इसे ही भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा हैं, जैसे- प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, सूर्य-चंद्र, कमल-कुलिश, स्त्री-पुरूष, भव-निर्वाण, आलि-कालि, मणि-पद्म आदि के मिलित रूप है। उपरोक्त सूर्य-चंद्र आदि की प्रगाढ़ता में ही सहज तत्त्व उदित होता है, जो मूलरूप से अद्वय स्वरूप है। इनमें दानों एक साथ ही उत्पन्न होते है। जिन नामों से इसे व्यक्त किया गया है। इनके प्रतीकों में भले ही दो की अभिव्यक्ति हो किन्तु मूलतः वे एक ही हैं।

उपरोक्त प्रज्ञा-उपाय आदि युग्म एक-दूसरे के पूरक है। प्रज्ञा के बिना उपाय और उपाय के बिना प्रज्ञा व्यर्थ हैं। दोनों के संयोग से ही सहज की प्राप्ति संभव है। सहजयानी सिद्धों ने इस सहज को विभिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न नामों जैसे महामुद्रा साक्षात्कार, महासुख[465], निर्वाण, सुखराज आदि कहा है। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय, भाव-अभाव, आदि लुप्त हो जाते हैं अर्थात निर्विकल्प

[465] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007. पृ.87.

अवस्था ही सहज है। इस अवस्था में मन का किसी भी विषय से सम्बन्ध नहीं रहता अर्थात मन का विषय रहित, विचार शून्यता की अवस्था है।

मन की उपस्थिति में संकल्प-विकल्प का उधेड़बुन चलते रहते हैं। मनोलय हो जाने से इसे सिद्धों ने खसम अर्थात् आकाश के समान कहा है, जहाँ शून्यता विद्यमान है, वहीं महासुख का वास है। सिद्धों ने इस सहज को स्वयं का स्वभाव कहा है एवं जगत को भी स्वभाव से ही उत्पन्न माना है। कोई यहाँ कर्ता नहीं, इस बात का ज्ञान होना ही महामुद्रा की प्राप्ति है। यह कालातीत है।

सिद्धों ने सहज की प्राप्ति के क्रम में नाड़ी, आसन, वज्रजाप, मुद्रा साधना, चण्डाली शक्ति, निर्माण, धर्म आदि देहस्थ चक्र एवं क्रमशः चार आनंदों में सहज आनंद को अंतिम और पूर्ण आनंदावस्था कहा है, जो इसे प्राप्त कर लेता है वह कालदण्ड से मुक्त होकर सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

हठयोग तथा सहजयान की उपरोक्त विवरणों से यह ज्ञात होता है कि हठयोग में वर्णित शिव-शक्ति, इड़ा-पिंगला, चंद्र-सूर्य की ही भांति सहजयानी सिद्धों ने सहज को वज्र-वाराही, प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, स्त्री-पुरूष आदि के मिलित रूपों के समान ही  प्रस्तुत किया है।

प्रज्ञा और उपाय इनके पूर्व परम्पराओं में तो विद्यमान थे किन्तु कालांतर में इन सहजयानी सिद्धों ने उपाय को प्रज्ञा के वर के रूप में व्यक्त कर जो नाथसिद्धांतों के समान ही शिव-शक्ति समान ही स्वीकृति प्रदान की वहीं इनके पूर्व सम्प्रदायों में इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।[466] नाथ सिद्धों ने इच्छा शक्ति तथा क्रिया शक्ति दोनों को शिव-शक्ति के समान ही अभेद[467] माना है। गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धांत पद्धति शिव-शक्ति को चन्द्रमा और चन्द्रिका, अग्नि और ताप की भांति एक मानते हुए कुलाकुल (शिव-शक्ति) की अभेदता[468] को स्पष्ट करता है।

---

[466] भारती, धर्मवीर. सिद्धसाहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955. पृ.184.

[467] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिसिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.पृ. 02.

[468] शास्त्री,  द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ.52.

नाथ सिद्धों ने जहाँ इस देह को विश्वब्रह्माण्ड का प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करते हुए सृष्टि के समस्त पदार्थों की उपस्थिति का इस देह में विद्यमानता को प्रकट करते हुए हठसाधना से प्राप्त सिद्धदेह की प्राप्ति का उल्लेख किया है, जो जन्म और मृत्यु से परे है। वहीं सहजयानी सिद्धों ने इस देह में विद्यमान तीर्थ, पीठ, उपपीठ, सूर्य-चंद्र वाराणसी आदि को व्यक्त करते हुए वज्र देह की प्राप्ति का उल्लेख किया है, इसे ही नामांतर भेद से सहज देह कहा गया। जिसका हर परिस्थितियों में क्षय नहीं हो सकता।

जिस प्रकार नाथ योगियों ने सहजानंद की साधना की प्राप्ति में आसन (सिद्धासन पद्मासन) प्राणायाम, मुद्रा, बिन्दु साधना, कुण्डलिनी जागरण, देहस्थ मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञा तथा सहस्त्रार चक्रों की साधना, वीर साधना, नादानुसंधान आदि को सहायक माना है। उसी प्रकार सहजयानी सिद्धों ने आसन (वज्रासन, सिंहवज्रासन, पद्मासन) वज्रजाप प्राणायाम, मुद्रा साधना, बिन्दु रक्षा, चण्डालर का जागरण, देहस्थ निर्माण, धर्म, सम्भोग तथा महासुख चक्र, वीर साधना आदि से प्राप्त सहजानंद का उल्लेख किया है, जो मूलतः नाथसिद्धों की ही साधनाओं का विकसित रूप है।

## 4.1.1 सहजयान के विकास की अस्पष्टता :-

तांत्रिक बौद्ध परम्परा में सहजयानी सम्प्रदाय के उद्भव एवं विकास का उल्लेख प्राप्त नहीं होता किंतु तांत्रिक बौद्ध परम्परानुसार महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरांत बौद्ध धर्म स्थवीरवाद तथा महासांघिक में विभाजित हो चुका था। स्थवीरवाद में जहाँ संघ के नीति, नियम आदि अनुशासनों की अधिकता होने के कारण समाज के सभी वर्गों के लिए इस मार्ग पर चल पाना दुरूह कार्य था। वही महासांघिक (महायान) ने स्थवीरवादियों के दुरूह एवं कठिन नियमों की अपेक्षा समाज के विभिन्न वर्गों के अनुकूल साधनाओं को समावेशित कर श्रद्धा और भावना के बल पर नाम स्मरण करते हुए बुद्धत्व प्राप्ति

के लिए नये विधियों को बौद्धधर्म में प्रवेश दिया। इसे ही किमुर ने सहजयान की उत्पत्ति का सेतु मानते हुए सहजयान के प्रणेता नागार्जुन[469] को माना है।

उपरोक्त कथन में सहजमार्ग का उपदेश है, सहजयान नामक सम्प्रदाय का नहीं। सहजयानी सिद्धों की साधना ग्रंथों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि नामजप, मंत्र जप, नामस्मरण की अपेक्षा हठयोग की प्राणशक्ति तथा चित्त शक्ति (सूर्य-चंद्र) के समान प्रज्ञोपाय साधना से सहज की प्राप्ति का उपदेश किया है।

नाथ सिद्धों की साधनाओं का उद्देश्य सर्वकुलों से मुक्त कर अकुल हो जाना है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धारणा, ध्यान, कुण्डलिनी तथा चक्रों का जागरण आदि समस्त साधनाएँ कुल के ही अंतर्गत शामिल हैं, उपरोक्त साधनाओं के उपरांत योगी का चित्त सभी प्रकार के कुल साधनाओं एवं सर्व संकल्पों से रहित हो जाता है।[470]इसे योगियों ने स्वसंवेद्य (स्वयं को स्वयं से जानना) कहा है।

सहजयानी सिद्धों की रचनाओं के टीकाकार अद्वयवज्र ने प्रथमतः सिद्ध सरह के दोहा टीका को सहजाम्नाय नाम दिया। इस प्रकार सहज एक साधना पद्धति है। चर्यापद में काव्यात्मक रूप में भगवती नैरात्मा को संसार रूपी नदी से पारे ले जाने वाली खेवनहार के रूप में प्रयुक्त किया गया है, जो बोधिचित्त को उष्णीष कमल तक पहुँचाने के साधना की ही उपमा है।[471] इन सिद्धों के अनुसार भी सहज हठयोग के द्वारा प्रज्ञा-उपाय की सामरस्यता स्थापित कर समस्त अनुष्ठानों से मुक्त होना है।

## 4.2 नाथ एवं सहजयानी सिद्ध परम्परा के आधार पर :-

भारतीय इतिहास में मध्यकालीन युग की यौगिक साधनाएँ बहु प्रसिद्ध हैं। इन साधनाओं से सिद्धता प्राप्त नाथ सिद्धों एवं सहजयानी सिद्धों की नामावलियों को विभिन्न यौगिक, तांत्रिक, साम्प्रदायिक, ऐतिहासिक आदि ग्रंथों में स्पष्टतः अवलोकन किया जा सकता है।

---

[469] कृष्णनाथ, बौद्ध निबन्धावली. ( दर्शन). वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1997. पृ. 93.

[470] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, 1934,पृ.115.

[471] भारती, धर्मवीर. सिद्धसाहित्य, इलाहाबाद : किताब महल, 1955. पृ.150.

## 4.2.1 नाथ सिद्ध :-

यहाँ नाथ सिद्धों से तात्पर्य हठयौगिक साधनाओं से प्राप्त सिद्धदेह धारी अलौकिक शक्ति सम्पन्न योगियों से हैं। जिन्होंने आदिनाथ से हठविद्या प्राप्त कर जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लिया है तथा कालदण्ड की सीमा से पार जा चुके हैं। इन सिद्धों में आदिनाथ (शिव) के उपरांत लौकिक दृष्टि से मत्स्येंद्रनाथ महासिद्ध के रूप में बहुप्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित कौलज्ञाननिर्णय में पुरातन काल द्वापर, त्रेता, कलयुग से चली आ रही सिद्धों व योगिनियों में श्रीविश्वपादान्, श्रीश्वेतपादान्, श्रीमछेन्द्रपादान्, श्रीविंध्यपादान्, श्रीमहेन्द्रपादान्[472], श्रीचन्द्रपादान् एवं महापूज्य लाकिनी, शाकिनी, याकिनी आदि का विस्तृत उल्लेख है। नाथ सिद्धों का कथन है कि तंत्र के उपदेष्टा नाथ ही हैं जिसमें शाक्ततंत्र, कापालिक आदि सम्प्रदाय शामिल हैं।

नाथ सिद्धों के कथनानुसार उपरोक्त कापालिक मत उनके द्वारा ही उपदिष्ट है। हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचना नाथ सम्प्रदाय में शाबर तंत्र से उद्धृत कापालिक आचार्यों की सूची प्राप्त होती है। जिसमें प्रथम सिद्ध आदिनाथ का नाम आता है एवं अन्य सिद्धों के नामों के अंत में भी नाथ शब्द जुड़ा हुआ है।[473] प्रसिद्ध हठयौगिक ग्रंथ हठप्रदीपिका में नाथ महासिद्धों में कापालिक सिद्ध भी शामिल हैं।[474]

घरेण्ड संहिता में भी ऋषि घेरण्ड के पास राजा चण्डकापालिक, मुक्ति की इच्छा से घटस्थ योग का ज्ञान लेने उपस्थित होते हैं।[475] कापालिक साधना प्राचीन शैव साधनाओं के अंतर्गत शामिल रहा है, इसी का ही पुष्कल प्रभाव तांत्रिक बौद्ध परम्परा पर पड़ा था, जिसमें सहजयानी सिद्धों में सरहपाद, कंबलपाद, जालंधरिपा और कण्हपा की अपभ्रंश और संस्कृत रचनाओं में

---

[472] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, 1934.पृ. 28-29.

[473] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथसम्प्रदाय. संस्करण. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010. पृ. 04.

[474] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017,पृ. 03.

[475] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे,एम.एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018. पृ. 01-02.

कापालिक साधना के प्रमाण स्पष्टतः दिख पड़ते हैं। जालंधरिपा नाथ सिद्धों में जालंधनाथ के रूप में एवं उनके शिष्य कृष्णपाद,कणेरीनाथ के रुप में प्रसिद्ध रहे हैं।

उपरोक्त सभी तंत्रानुयायी सम्प्रदाय अंततः आंतरिक साधना के रुप में कुण्डलिनी जागरण का ही अनुसरण करते हैं, जो की मूल रुप से नाथ योगियों की ही मूल साधनाहै। यही अवधूतमार्ग[476] है, अतः इसीलिए नाथ सिद्धों ने तंत्रानुयायियों को नाथ मार्गी कहा है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा इन योगियों के प्रचलित साधना मार्गों के विभिन्न नामों का उल्लेख किया गया है। जिनमें से एक नाम सिद्ध-मत भी है। सिद्धसाहित्य के लेखक धर्मवीर भारती का मानना हैं, कि नाथों ने अपने मत को सिद्धमत या सिद्धमार्ग ही कहा है, किन्तु कालान्तर में नाथ शब्द शैव सम्प्रदायी योगियों में एवं सिद्ध शब्द सहजयानी बौद्ध सिद्धों के लिए प्रचलित हो गया।

नाथ सिद्धों की सूची प्रस्तुत करने वाले विभिन्न ग्रंथों में कौलज्ञाननिर्णय, सिद्धसिद्धांतपद्धति,महार्णवतंत्र,हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना,हठप्रदीपिका[477], वर्णरत्नाकर[478] योगीसम्प्रदायाविष्कृति,[479] गोरक्षसिद्धांत संग्रह[480] आदि प्रमुख हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने विभिन्न स्रोतों से नाथों की सूची प्रस्तुत करने वाले ग्रंथों के संकलन एवं अध्ययन के उपरान्त बहुप्रसिद्ध नौ नाथों की सूची प्रस्तुत की है। जिसमें क्रमशः मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ, कृष्णनाथ, (कणेरीनाथ) चौरंगी, चर्पटनाथ, भर्तृहरिनाथ, गोपीचंदनाथ, गहिनीनाथ (गैनीनाथ) शामिल हैं।[481]

---

[476] द्विवेदी, मुकुंद. संपादित. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. भाग छठवां. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013. पृ. 22-23.

[477] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 3-4.

[478] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथसम्प्रदाय. संस्करण. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010. पृ. 29-31.

[479] शास्त्री, द्वारका प्रसाद. सिद्धसिद्धांतपद्धति. संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. भूमिका पृ. 41-43.

[480] वही, पृ. 41-43.

[481] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरक्षनाथ, नाथ सम्प्रदाय के परिपे्रक्ष्य में. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ.11.

उपरोक्त नाथसिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ का संबंध कामरूप (कामाख्या) से रहा है। अतः नाथयोगियों (सिद्धों) द्वारा उक्त कथन सत्य जान पड़ता है कि सिद्ध कौलमत नाथों के द्वारा उपदिष्ट है। मत्स्येन्द्रनाथ कौलमार्ग के प्रवर्तक माने जाते हैं। नाथ संप्रदाय में प्रसिद्ध नौ नाथों से पूर्व त्रिपुरा मत के प्राचीन आचार्यों ने भी अपने को नाथ अनुयायी ही कहा है।

उपरोक्त आचार्यों में दत्तात्रेय,[482]परशुराम, उमानंदनाथ आदि प्रमुख हैं। प्रसिद्ध हठयौगिक ग्रंथ हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में आसन प्रकरण के अंतर्गत स्वात्माराम ने वसिष्ठ आदि मुनियों के द्वारा उपदिष्ट आसनों का अनुसरण किया है। इस ग्रंथ की प्रसिद्ध टीका हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में योगी ब्रह्मानंद ने वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य,दत्तात्रेय,मार्कण्डेय[483] आदि मुनियों एवं योगियों के ग्रंथों से संदर्भ प्रस्तुत करते हुए महासिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ,गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ[484] आदि सिद्धों का नामोल्लेख किया है। इस प्रकार नाथ सिद्धों की साधना और परम्परा प्राचीन जान पड़ती है।

## 4.2.2 सहजयानी सिद्ध :-

सहजयानी सिद्धों से तात्पर्य बौद्ध तांत्रिक सम्प्रदाय सहजयान के सिद्धों से हैं। जिनमें लुअिपा (लुहिपा), लिलापा, विरूपा, डोम्भीपा, शबरीपा, सरहपा, कंकालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, चौरंगीपा, शान्तिपा, जालंधरपा, कान्हुपा, चर्पटी, भर्तृहरिआदि चौरासी सिद्ध बहुप्रसिद्ध हैं। प्रथमतः इनमें से चौबीस सिद्धों के नामों की सूची को हरप्रसाद शास्त्री ने अपनी रचना, 'बौद्ध गान ओ दोहा' में प्रस्तुत किया था किन्तु राहुल सांकृत्यायन को प्रथमतः चौरासी सिद्धों के नामों की सूची चित्रों के साथ चीन की सीमा से लगे तिब्बत के 'सस्क्य बौद्ध विहार' से प्राप्त हुई थी, जिसमें लूअिपा[485] (लुहिपा) प्रथम सहजयानी सिद्ध हैं। इनमें

---

[482] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथसम्प्रदाय. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010. पृ. 05.

[483] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला: कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004.पृ. 376.

[484] वही, पृ. 30-31.

[485] सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्व निबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937.पृ. 144'क'.

सहजयानी सिद्ध कृष्णपाद (कान्हुपाद) जालंधरिपा के शिष्य थे। जिन्हें चौरासी बौद्ध सिद्धों में सबसे ज्यादा पदों के रचनाकार माना जाता है।

सिद्धों की प्रसिद्ध रचनाओं में से चर्यापद में स्वयं को इन्होंने कापालिक कहा है। तिब्बत से प्राप्त विभिन्न ग्रंथों में से चतुराशीतिसिद्धसंबोधिहृदयनाम तथा चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्ति[486] नामक ग्रंथों में भी लूअिपा को प्रथम स्थान प्राप्त है, जो इनकी सहजयानी सम्प्रदाय में प्रभाव व प्राचीनता को दर्शाता है।

## नाथ सिद्धों का सहजयानी सिद्धों पर प्रभाव :-

नाथ तथा सहजयानी सिद्धों की नामावली प्रस्तुत करने वाले विभिन्न ग्रंथों में एक साथ दोनों सम्प्रदायों के सिद्धों के नाम प्राप्त होते हैं। इनमें सिद्धसिद्धांतपद्धति,महार्णवतंत्र,हठप्रदीपिका, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, वर्णरत्नाकर, हठरत्नावली, वर्णरत्नाकर, हठप्रदीपिका, चतुराशीतिसिद्धसंबोधिहृदयनाम, गोरक्षसिद्धांतसंग्रह, पुरातत्त्वनिबंधावली तथा चतुरशीतिसिद्ध प्रवृत्ति आदि शामिल हैं। इससे यह स्पष्टतः कहा जा सकता है की इनकी साधनाओं में अंन्तःसंबंध था।

नाथ सिद्धों के अधिकांश नामों के अंत में नाथ तथा सहजयानी सिद्धों के अधिकांश नामों के अंत में पाद नामक विशेषण प्राप्त होता है। नाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रस्तुत कौलज्ञाननिर्णय में पुरातन परम्परा से चले आ रहे विभिन्न सिद्धों के नामों का उल्लेख है।

जिनके नामों के अंत में पादान् शब्द जुड़ा हुआ है, जो प्राचीन सिद्ध हैं। सहजयानी सिद्ध भी इसी परम्परा का निर्वहन करने वाले प्रतीत होते हैं क्योंकि बौद्ध परम्परा में साधक सिद्ध के रूप में नहीं भिक्खु अर्हत् आदि के नाम से जाना जाता था। मत्स्येन्द्रनाथ बंगाल में मछली के पेट को फाड़कर कौलशास्त्र के अवतारक माने जाते हैं। विभिन्न किवदंतियों में उन्हें मछली का अवतार भी माना गया है। सहजयानी सिद्धों में बहुप्रसिद्ध एवं प्रथम सिद्ध लूअिपा (लुईपा) भी

[486] यादव, डॉ. द्विजराम. वज्रयानी सिद्ध सरहपाद. कलकत्ता : हिंदी भवन विश्वभारती, शांतिनिकेतन,1981. पृ. 20.

राहुल सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत बौद्ध सिद्धों की चित्रावली में मछली की आँत को फाड़ते हुए दिख रहे हैं।

तिब्बती भाषा में लुहिपा का अर्थ मछली की आँत है।[487] इससे यह स्पष्टतः कहा जा सकता है, कि मत्स्येन्द्रनाथ ही तिब्बत में लूअिपा (लुईपा) के रूप में प्रसिद्ध थे।

सहजीया सिद्ध लुईपा, सरहपा तथा कृष्णपाद आदि सिद्धों की रचनाओं दोहाकोश, चर्यापदों के संकलकर्ता और टीकाकार मुनिदत्त ने लुईपाद को आदिसिद्ध[488] माना है।

तिब्बती स्रोतों के आधार पर लूअिपा (लुईपा) उड्डियान क्षेत्र भारत में वर्तमान राज व्यवस्था के कर्मचारी थे। लोगों का अनुमान है कि एक ही व्यक्ति दो स्थान तिब्बत और भारत के उड्डियान में कैसे हो सकता है, किन्तु यह संभव है कि एक ही व्यक्ति दो जगहों पर हो उपस्थित हो सकते हैं क्योंकि पहले योगी एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल यात्रा कर पहुँचा करते थे। अतः इस प्रकार एक ही लुहिपा का उड्डियान और बंगाल से संबंध होना आश्चर्य का विषय नहीं जान पड़ता।

डाँ. मल्लिक ने बंगाल के शास्त्री महोदय के बंगाली उपन्यास का संदर्भ प्रस्तुत करते हुए बताया है कि बंगाल के वर्तमान राजा को लुहिपा के प्रति श्रद्धा थी और उनके लिए वे मछलियों की आँतें पहुँचाया करते थे।[489]

मत्स्येन्द्रनाथ, सिद्धों की अधिकतर स्रोतों में प्रथम है। इनमें वर्णरत्नाकर,महार्णवतन्त्र, हठप्रदीपिका, ज्ञानेश्वरचरित्र, योगिसम्प्रदायाविष्कृति, सुधाकरचन्द्रिका, गोरक्षसिद्धांत संग्रह आदि प्रमख हैं साथ ही नेपाली बौद्ध ग्रंथों में भी इन्हें लाल रंग के अवलोकितेश्वर[490] (इस लोक के देवता) मानकर पूजा

---

[487] मल्लिक, डॉ. कल्याणी. सिद्धसिद्धांतपद्धति एण्ड अदर वर्क आँफ नाथ योगिज. प्रथम संस्करण. पूना ओरियेन्टल बुक हाऊस, 1954. पृ. 14-15.

[488] भारती, धर्मवीर. सिद्धसाहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955. पृ. 25.

[489] मल्लिक, डॉ. कल्याणी. सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर्स वर्क आँफ नाथयोगीज. प्रथम संस्करण. पूना : पूना ओरियंटल बुक हाऊस, 1954. पृ.15.

[490] बागची, प्रबोधचंद. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड,

किया गया है, जिनका संबंध नेपाल में प्राचीन बुद्ध की प्रतिमा के साथ है।[491] इन्हें चतुर्थ अवलोकितेश्वर कहा गया है। उपरोक्त प्रमाण यह प्रमाणित करते हैं कि मत्स्येन्द्रनाथ की प्रतिष्ठा एवं प्रभाव बौद्ध साधनाओं में बड़ी गहरी रही है।

कौलज्ञाननिर्णय के अनुसार स्वयं शिव ने देवी से मत्स्येन्द्रनाथ नामक सिद्ध के रूप में अवतरित होने और धीवर, वीरेश्वर[492] आदि के रूप में स्वयं की प्रसिद्धि को व्यक्त किया है। इसी में एक और घटना का जिक्र है, जिसमें कार्तिकेय के द्वारा कौलशास्त्र को समुद्र में फेक देने पर मछली के द्वारा निगल लिया गया जिसे भैरव (मत्स्येन्द्रनाथ) ने आध्यात्मिक शक्ति के बल पर उस मत्स्य के पेट को फाड़कर कौलशास्त्र का पुनः उद्धार किया था। ग्रंथ के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ ने स्वयं को ब्राह्मण जाति में उत्पन्न माना है। मत्स्य के उदर का विच्छेदन करने के कारण मछली पकड़ने वाले और उसका भक्षण करने वाले के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ और लूअिपा (लुईपा) एक ही व्यक्ति जान पड़ते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ का ही तिब्बती संस्करण लुईपा[493] हैं। इतिहासकार प्रबोधचंद्र बागची का भी यही कथन है, कि मत्स्येन्द्रनाथ ही लुईपा[494] (लूअिपा) है जिन्होंने मत्स्य रूपी चित्त के जाल को नष्ट कर स्वयं को जाना था।

महाराष्ट्र में बहुप्रसिद्ध वारकरी सम्प्रदाय के संत ज्ञानेश्वर द्वारा लिखित योगिसम्प्रदायविष्कृति नामक ग्रंथमें मत्स्येन्द्रनाथ के द्वारा शिव से प्राप्त योगज्ञान का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसे प्रथमतः कामरूप में प्रचारित प्रसारित किया गया था।

नाथसिद्धों में प्रसिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ और उनके शिष्य गोरक्षनाथ चौरंगीनाथ साथ ही नाथ एवं बौद्ध सिद्धों में प्रसिद्ध हाडिपा (जालंधरनाथ) एवं उनके शिष्य

---

1934. भूमिका पृ.13.

[491] शास्त्री, द्वारका प्रसाद. सिद्धसिद्धांत पद्धति. संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. भूमिका पृ. 06.

[492] बागची, प्रबोधचंद. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, 1934. पृ. 58.

[493] मल्लिक, कल्याणी. सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर्स वर्क ऑफ नाथयोगीज. ,पूना : पूना ओरियंटल बुक हाऊस, 1954.पृ.15-16.

[494] बागची, प्रबोधचंद. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, 1934. पृ. 24.

कानूपा (कृष्णपाद) स्थान विशेष पर मिले थे। साथ ही नेपाली बौद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ चौंथे अवलोकितेश्वर के रूप में पूजनीय है। उपरोक्त विषयों की विस्तृत चर्चा बंगाल में प्रसिद्ध शून्यपुराण नामक ग्रंथ से प्राप्त होती है।

## 4.2.3 मत्स्येन्द्रनाथ की कृतक और सहज साधना का सहजयान पर प्रभाव :-

मत्स्येंद्रनाथ की साधनाएँ दो प्रमुख भागों में विभक्त है। प्रथमतः कृतक साधना है। जिसका अर्थ है, किया जाने वाला जिसके अंतर्गत हठयौगिक साधनाएँ सम्मिलित हैं। जिनका उद्देश्य सुप्त कुण्डलिनी के जागरण से है, उपरांत योगी में स्वतः सहज की अनुभूति होने लगती है। जिस अवस्था में संसार की त्याज्या अथवा ग्रहण, अच्छा और खराब आदि वस्तुओं में कोई भेद नहीं रह जाता। सभी प्रकार के कषाय, विकार, क्लेशादि नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में योगी अथवा सिद्ध को किसी भी प्रकार के अभ्यासों की आवश्यकता नहीं होती। इसे ही सहज का उदय कहा गया है जिसके जागृति होते ही आसन, प्राणायाम, मुद्रा, चक्र आदि सभी साधनाएँ निरर्थक हो जाती हैं। मत्स्येन्द्रनाथ कृत ग्रंथ कौलज्ञाननिर्णयः में यह अवस्था अकुलवीर तंत्र के अंतर्गत वर्णित है। यही जीवनमुक्त योगी की अवस्था है। शिव-शक्ति, मुक्ति-बंधन आदि से परे की स्थिति है। जिसे इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

सहजयानी सिद्धों ने भी आसन की स्थिरता, वज्रजाप मुद्रा साधना के उपरांत जागृत कुण्डलिनी को चण्डाली शक्ति कहकर संबोधित किया है। इसके जागरण से निर्माण, धर्म, सम्भोग आदि चारों चक्रों का जागरण होता है उपरांत उत्पन्न अद्वय अवस्था को सहजानंद महासुख कहा गया है, जो काय, वाक तथा चित्त के द्वारा अव्यक्त है। इसे गुरू के द्वारा भी समझाया नहीं जा सकता।

## 4.2.4 मत्स्येन्द्रनाथ और लुहिपा के विचार :-

कौलज्ञाननिर्णय चौबीस पटलों में विभक्त है। जिसमें भैरव-देवी के बीच संवाद में सृष्टि उत्पत्ति, सृष्टि संहार, प्राण, नाड़ी, मंत्र, शरीरस्थ चक्र, चक्रों के बीज मंत्र, उनके रंगों, चक्रों पर ध्यान, मुद्रा आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा

करते हुए अकुलवीरतन्त्रम् में इन प्राण, नाड़ी, चक्र, आदि साधनाओं से निवृत्ति के उपरांत प्राप्त सहज[495] की चर्चा की गयी है, जहाँ उपरोक्त साधन-साधना, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान आदि विषय समाप्त हो जाते हैं। जिसे समझाया नहीं जा सकता वही परमानंद अवस्था है। इसी प्रकार लुईपा के प्राप्त चर्यापदों का संक्षेप कथनों में यह संसार मन की ही रचना है। मन के अनुसार ही संसार दिख पड़ता है।

मूलतः इसका अस्तित्त्व नहीं है। जिस प्रकार चन्द्रमा की छाया जल में दिख पड़ती है और चंद्रमा के नहीं रहने पर उसकी छाया का अस्तित्त्व जैसे समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार मन का सहज आनंद में विलीन हो जाने से संसार नहीं रहता है। उसका अस्तित्त्व भी समाप्त हो जाता है। लुहिपा के अनुसार तब साधक को योग की मुद्रा, बंध आदि योग की जटिल प्रक्रियाओं को त्याग कर देनी चाहिए। अतः साधक को सहज मार्ग का ही चयन करना चाहिये।

मत्स्येन्द्रनाथ के अनुसार योगी को स्थिर आसन में स्थित होकर सर्व भावों से मुक्त होकर चित्त को खमध्य[496] (आकाश) में लगाना चाहिये तब योगी में समरसता आती है और अद्वैत का उदय होता है। उसी प्रकार लुईपाद के अनुसार चित्त को इन्द्रियादि विषयों से हटाकर शून्य में लगाना चाहिए। इससे प्राप्त गहन अनुभूति का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि वह परम स्थिति भाव-अभाव से परे है, जो प्राण की स्थिरता में कुम्भक समाधि से संभव हो पाया है। यह भाव-अभाव की स्थिति से परे अवर्णनीय है।

चर्यासंग्रह में राग विभास के कथनानुसार यह परम अवस्था न सुनी जा सकता है और न ही इसे बताया जा सकता है। यहाँ घृणा, मोह, शौच, पवित्रता, राग, द्वेष है, यहाँ न शून्य है और न ही उपस्थिति है, वहाँ विशुद्ध रूप से सहज है।[497]

---

[495] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिसिंग हाऊस लिमिटेड 1934.पृ. 85.

[496] वही, पृ.112.

[497] डे., भक्ति. संपादित. चर्यासंग्रह. प्रथम संस्करण. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडीज, सारनाथ, 2012.पृ.130.

उपरोक्त दोनों सिद्धों के कथनों में सहज पर ही जोर दिया गया है। जो परमानंद की अवस्था है। अतः मत्स्येन्द्रनाथ तथा लुईपा दोनों ही नामांतर भेद से एक ही है। डॉ. कल्याणी मल्लिक ने विभिन्न तर्कों एवं साक्ष्यों के आधार पर मत्स्येन्द्रनाथ एवं लुईपाद के साधनात्मक विचार, काल एवं अन्य सम्प्रदायों के संदर्भों के आधार पर मत्स्येन्द्रनाथ, लुईपाद तथा मीननाथ को एक ही व्यक्ति माना है।[498]

## 4.2.5 नाथ सिद्धों की सूची में सहजयानी सिद्ध :-

हठप्रदीपिका में नाथ महासिद्धों की वंशावली का उल्लेख करते हुए प्रथमतः आदिनाथ के बाद मत्स्येन्द्रनाथ का नाम आता है। हठप्रदीपिकाकार ने मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरक्षनाथ का नाम विशेष रूप से उल्लेख करते हुए इन्हें हठयोग के विशेषज्ञ एवं महासिद्धों में विशेष माना है। उपरोक्त ग्रंथ में सिद्धों के नाम निम्नवत प्राप्त होते हैं- आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, शाबर, आनंदभैरव, चौरंगी, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, बिलेशय, मन्थान, भैरवयोगी, सिद्धि, बुद्ध, कन्थडि, कोरण्टक, सुरानन्द, सिद्धिपाद, चर्पटी, कानेरी, कपाली आदि मिलाकर तैतीस सिद्धों का नामोल्लेख है[499] किंतु ग्रंथकार ने आदि कहकर इस बात का संकेत किया है कि इनकी संख्या और भी हैं, जिनमें से तृतीय, पंचम, षष्ठ, सप्त, अष्ट आदि सहजयानी सिद्धों की सूची में आरंभिक सिद्धों के रुप में प्रसिद्ध हैं।[500]

इस ग्रंथ में मुद्रा प्रकरण के अंतर्गत वज्रोली और सहजोली के अभ्यासों का उल्लेख है। जो वज्रयान तथा सहजयान से मिलती जुलती है। संभवतः सहजयानी सिद्धों के मध्य उक्त साधनाएँ कालांतर में विकृत हो चली थी। जिसके सही स्वरूप को ग्रंथकार नाथ योगी स्वात्माराम ने स्पष्ट किया है।

---

498 मल्लिक, कल्याणी. सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर्स वर्क ऑफ नाथयोगीज. पूना : पूना ओरियंटल बुकहाऊस, 1954. पृ.15-16.

499 दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.3-4.

500 सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्व निबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937. पृ. 144, क, ख, ग.

स्वात्माराम ने इस ग्रंथ के प्रत्येक उपदेश के अंत में स्वयं को सहजानंद परम्परा के योगी के रूप में व्यक्त किया है। सहजानंद की चर्चा नाथ साहित्यों में मत्स्येंद्रनाथ कृत कौलज्ञाननिर्णय में प्राप्त होती है, जो आसन, प्राणायाम, मुद्रा-बंध आदि के अभ्यासों से कुण्डलिनी शक्ति की जागृति के उपरांत स्वतः ही उत्पन्न है। तब किसी भी प्रकार के अभ्यासों की आवश्यकता नहीं होती, योगी परम आनंद में लीन हो जाता है। इसे ही सहजानंद कहा गया है, जहाँ चित्त की पूर्ण विश्रांति है।

## 4.2.6 हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में बौद्धसिद्धों की गणना नाथसिद्धों के अंतर्गत:-

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, हठप्रदीपिका की एक अतिमहत्वपूर्ण टीका है जिनके रचनाकार ब्रह्मानंद यति है। ग्रंथकार ने हठयोग के उपदेशकर्ता आदिनाथ को शिव कहा है, जिनके माध्यम से यह ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथ से होते हुए कालांतर के नाथ सिद्धों तक पहुँची हैं,जिनमें क्रमशःगोरक्षनाथ जालंधरनाथ,[501] भर्तृहरि, गोपीचंद आदि शामिल हैं। साथ ही सोलहवीं शताब्दी के बौद्ध सिद्धों में चर्चित तथा तिब्बती व नेपाली बौद्ध परम्परा, साधना और दर्शन आदि के साथ-साथ सहजीया सिद्धों से संबंधित अनेक किवदंतियों को प्रस्तुत करने वाले तारानाथ[502] भी नाथ सिद्धों की सूची में शामिल हैं।

## 4.2.7 मत्स्येन्द्रनाथ प्रवर्तित सम्प्रदाय में सहजयानी सिद्ध :-

काश्मीर शैव परम्परा के प्रसिद्ध आचार्य अभिनव गुप्त रचित तंत्रालोक के अनुसार कौल और क्रम मत के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ हैं। जिन्होंने अपने द्वारा प्रवर्तित ज्ञान को उत्तराधिकारी योग्य पुत्रों को प्रदान किया था। इनमें आनंद, अवलि, योगी, प्रभु, बोधि, पाद नामक छः नामावलियाँ शामिल हैं। नाथ सिद्धों को जहाँ योगियों के रूप में भी जाना जाता है, वहीं सहजयानी सिद्धों के नामों के अंत में अधिकांशतः 'पा' (पाद) नामक संबोधन प्राप्त होते हैं, जैसे सरहपा,

---

[501] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. पूना : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, 2004.पृ.09.

[502] वही, 2004.पृ.14.

विरूपा, जालंधरिपा, कृष्णपाद, शबरपा आदि। अतः इस प्रकार सहजयानी सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ प्रवर्तित मार्ग के ही पथिक जान पड़ते हैं।[503]

## 4.2.8 नाथ सिद्ध जालंधर :-

परशुराम चतुर्वेदी के द्वारा किये गये महत्वपूर्ण तीस ग्रंथों के अन्वेषण के बाद प्रस्तुत नवनाथों की सूची में जालंधरनाथ, मत्स्येंद्रनाथ एवं गोरक्षनाथ के उपरांत तीसरे स्थान पर अवस्थित हैं।[504] तिब्बत से प्राप्त चौरासी सिद्धों की नामावली में इन्हें जालंधरपा कहा गया है, जो राहुल सांकृत्यायन के 'पुरातत्त्व निबंधावली' में प्रस्तुत सिद्धों में छियालीसवें स्थान पर हैं। बंगाल में नाथ सिद्ध गोपीचंद का संन्यास दीक्षा बहुप्रसिद्ध है, जहाँ इनकी माँ मैनामती गोरक्षनाथ की शिष्या थी। गोरक्षनाथ से आदेश से प्राप्त कर जालंधरनाथ (हाडिपा) नेगोपीचंद को नाथयोग[505] की दीक्षा दी थी।

सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपदेश में नव चक्रों के प्रकरण में ब्रह्मरन्ध्र के ध्यान से मुक्ति प्रदान करने वाला जालंधरपीठ का उल्लेख है। हठयोग साधना में उल्लेखित मुद्राओं के अंतर्गत जालंधर बंध का महत्व विशेष है। जिसके अभ्यास से इड़ा और पिंगला नाड़ियों में वायु स्थिर होता है, जो प्राणायाम की सिद्धि में सहायक है।[506] जालंधरनाथ, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में प्रथम उपदेश के चतुर्थ श्लोक में नाथ सिद्धों की नामावली में शामिल हैं। इन्हें औघड़ नाथ योगी कहा गया है, वहीं मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ कानों में कुण्डल धारण करते थे। साधना के क्रम में औघड़ के बाद ही योगी अपने कानों में कुण्डल धारण किया करते थे।

सिद्धांतवाक्य के कथनानुसार त्रिशुल, मुद्रा और नाद धारण करने वाले जालंधरनाथ के गुरू हैं इससे यह निश्चित रुप से कहा जा सकता है, कि ये एक प्रसिद्ध नाथ सिद्ध थे।[507] नाथ योगी मुद्राओं का अभ्यास करते हैं एवं

---

[503] द्विवेदी, व्रजवल्लभ. आगम और तंत्र शास्त्र. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स, 1984. पृ. 63.

[504] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ : नाथ साहित्य के परिप्रेक्ष्य में. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ. 11.

[505] शास्त्री, द्वारिकादास. सिद्धसिद्धांत पद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2004. पृ. 03.

[506] वही, पृ. 33-35.

[507] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन 2010. पृ.6-7.

नादानुसंधान समाधि से मुक्ति लाभ करते हैं। इस प्रकार उपरोक्त गुण नाथ योगियों के ही प्राप्त होते हैं। इनकी बंगाल में गोरक्षनाथ से दीक्षा प्राप्ति की प्रसिद्धि है, जो पहले जालंधर के राजा के रूप में प्रसिद्ध थे[508] और दीक्षा उपरांत सिद्ध हो गये थे।

जालंधरनाथ की रचना 'पावजी की सबदी' में उनके शिष्य गोपीचंद के बीच संवाद है। जिसमें प्राण की स्थिरता, मन की सिद्धि, शरीर सिद्धि, अवधूत की चर्चा, आसन, नाद, ओंकार मंत्र,[509] अलख, अनंत आदि का उपदेश किया गया है। उपरोक्त तत्वों का विचार करने पर ये साधनाएँ नाथ योगियों के हठयौगिक साधनाओं से पूरी तरह से मेल रखती हैं। योगीसम्प्रदायविष्कृति के अनुसार स्वंय शिव ने जालंधर को मत्स्येन्द्रनाथ की साधना स्थली मार्तण्ड पर्वत पर जाकर कृपा प्राप्त करने का आदेश दिया था[510] जिससे यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है, कि मत्स्येन्द्रनाथ की साधनाओं का जालंधरिपा पर प्रभाव था।

### 4.2.9 नाथ सिद्ध कानिफा :-

उपरोक्त नवनाथों की सूची में इनकी कानिफानाथ या कणेरीनाथ के रूप में प्रसिद्धि है, जहाँ इनका स्थान जालंधरनाथ के बाद प्राप्त होता है। सहजयानी सिद्धों में कानिफानाथ (कृष्णपाद) जालंधरिपा अथवा जालंधरनाथ के शिष्य माने जाते हैं। इन्होंने स्वयं को कापालिक कहा है, जो पुरातन काल से चली आ रही शैव कापालिकों के समान ही हेरूक देवता का स्वरूप और कपाल[511] आदि का उल्लेख किया है। इनके शिष्यों में सहजयानी चौरासी सिद्धों की सूची में भेदपा (बत्तीसवें स्थान), धर्मपा (छत्तीसवें), महीपा (सैतीसवें), जवरिपा (चौसठवें), कन्तलिपा (उन्हत्तरवें), उधलिपा (इखत्तरवें) नंबर के शिष्य आदि प्रसिद्ध रहे हैं।

---

[508] शास्त्री, द्वारिकादास. सिद्धसिद्धांत पद्धति. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2004. पृ.05.

[509] मल्लिक, कल्याणी. सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर्स वर्क ऑफ नाथयोगीज. पूना : पूना ओरियंटल बुक हाऊस, 1954. पृ.80-91.

[510] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन 2009. पृ.17

[511] वही, पृ.10.

मत्स्येन्द्रनाथ बौद्ध एवं नाथ सिद्धों के मध्य श्रद्धा के केंद्र रहे हैं, जिनकी प्रतिष्ठा कदली क्षेत्र कामरूप, आसाम के क्षेत्रों में वामाचारी आचार्य के रूप में भी रही है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन क्षेत्रों में मत्स्येन्द्रनाथ की साधनाओं का प्रचलन था। कृष्णपाद का अभिषेक बंगाल के सोमपुरी विहार में जालंधरिपा के द्वारा किया गया था। जालंधरिपा के प्रमुख शिष्यों में कृष्णपाद का स्थान प्रथम माना जाता है।

सहजयानी सिद्धों के सम्प्रदाय लेखक एवं इतिहासकार तारानाथ के अनुसार कृष्णपाद का संबंध कदली क्षेत्र से जरूर रहा है। उन्होंने कदली प्रदेश के कृष्णपाद के योगी शिष्यों की भी चर्चा की है, जो वामाचारी साधक थे। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ की वामाचारी साधनाएँ सहजयानी साधना जलंधरिपा और उनके शिष्य कानिफा के माध्यम से प्रवेश पा चुकी थी।[512]

गोरक्षनाथ द्वारा संगठित नाथपंथ में शामिल बारह सम्प्रदायों में सहजयानी सिद्ध जालंधरिपा व कृष्णपाद के क्रमशः वामराग और पावनाथ शाखा शामिल हैं।[513] इस प्रकार जालंधरनाथ (जालंधरिपा) तथा कानिफानाथ (कान्हुपाद) ने नाथ साधनाओं को बौद्ध सिद्धों तक प्रचारित एवं प्रसारित किया था।[514]

## 4.2.10 नाथ साधना का सहजयानी सिद्ध सरहपा पर प्रभाव:-

प्रथमतः सहजयानी सिद्धों की रचनाओं को प्रकाशित करने वाले हरप्रसाद शास्त्री द्वारा पचास चर्यापदों का संकलन पहली बार किया गया। सरहपा के एक सौ बाईस छंद शामिल थे। इनमें से कुछ रचनाओं की हस्तलिपियाँ पूर्ण तो कुछ खंड़ित थी। सिद्धों की उन खंड़ित (नष्ट हुए अथवा अप्राप्त) भागों को प्रबोधचंद्र बागची द्वारा तिब्बती स्रोतों से प्राप्त खण्ड़ों से पूरा किया गया जो अपभ्रंश संस्कृत और नेवारी (नेपाली भाषा) लिपि में प्राप्त हुए थे।

---

[512] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन 2009.पृ.16.

[513] वही, पृ. 10.

[514] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. संस्करण. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2010. पृ. 6-7.

सरह सहजयानी सिद्धों में छठवें स्थान पर अवस्थित हैं। राहुल सांकृत्यायन द्वारा प्राप्त चौरासी सिद्धों वाली सूची के अतिरिक्त तिब्बत के विभिन्न मठों से प्राप्त सिद्धों की वंशावली में सरह को आदिसिद्ध भी माना गया है। सरहपा की अभी तक ज्ञात हस्तलिपियों में सबसे पुरानी 221 नेपाली संवत् की है, जो ईसवीं सन में 1101 शताब्दी है, जो नेपाल से प्राप्त हुई थी। अभी तक इसे ही सरह की सबसे पुरानी हस्तलिपि[515] मानी जाती है, जिसे इतिहासकार डाँ. प्रबोधचंद्र बागची ने खोज निकाला गया था।

सरहपा ने नालंदा विश्वविद्यालय को त्याग कर बौद्ध धर्म में दीक्षित परम्परावादी बौद्ध भिक्खुओं को व्यर्थ बतलाते हुए उनकी साधना पद्धतियों को नकारते[516] हुए किसी स्त्री का वरण कर मुद्रा साधना सम्पन्न कर महासिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हुए थे, जबकी बौद्ध परम्परा में भिक्षुक, स्त्रियों से दूर रहा करते थे।

धर्मवीर भारती के अनुसार सरह के पूर्व कालिदास ने मालव के दक्षिण में संभवतः महाराष्ट्र के आसपास सिद्धों के सपत्नीक रहने और उनके साधना का उल्लेख किया है।[517] मध्यकाल में मत्स्येन्द्रनाथ कौलमार्ग के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके थे, जहाँ गुरु के निर्देशन में साधना क्रम में योगिनी अथवा स्त्री का वरण कर साधक प्रवृत्त होते थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है, कि सरह ने इन्हीं नाथ सिद्धों की साधनाओं का अनुसरण किया था।

## 4.2.11 कौलयोगिनी साधना का सहजयान पर प्रभाव :-

नाथ सिद्धों ने अपने सम्प्रदाय को विभिन्न नामों में से एक योगिनी कौल मत को भी स्वीकार किया है। इस साधना में शिष्य की योग्यता को जानकर गुरू उसे उच्च साधना क्रम में योगिनी (स्त्री) का वरण करने का निर्देश करता था। कौलज्ञाननिर्णय में मत्स्येन्द्र द्वारा उल्लेखित अपने पूर्व सिद्धों के साथ विभिन्न योगिनियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

---

[515] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955. पृ. 21-22.

[516] सांकृत्यायन, महापंडित राहुल. दोहा-कोष. प्रथम संस्करण. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1957. पृ. 04.

[517] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955. पृ. 222.

हठप्रदीपिका में वज्रोली[518] के अंतर्गत सहायक सहजोली क्रिया में साधक और साधिका का उल्लेख करते हुए मैथुन क्रिया में बिन्दु को ऊर्ध्व की ओर खींचते के उपरांत सुखे गोबर के राख को जल के साथ मिलाकर अपने अंग विशेष में लेपन करने का विधान था। शिवसंहिताकार ने भी वज्रोली मुद्रा में योगिनी स्त्री के भग से योगी साधक के द्वारा लिंग के माध्यम से बिन्दु को ऊर्ध्व[519] की ओर खींचने वाली साधना का उल्लेख किया है।

कालांतर में उपरोक्त साधनाओं का विस्तार होते गया उसी का प्रभाव सहजयानी सिद्धों पर पड़ा, तब उन्होंने मुद्रा साधना के रूप में स्त्रियों की स्वीकृति आरंभ करते हुए उन्हें प्रज्ञा (बौद्ध शब्दावली) कहकर संबोधित करने लगे। सहजयान के पूर्व सम्प्रदाय वज्रयान में जहाँ मुद्रा अवलोकितेश्वर के हाथ में रखी हुई शंख, कमल, वज्र आदि के साथ शरीर और हाथ की स्थिति विशेष केवल थी,[520] वहीं इन सहजयानियों ने स्त्रियों को अपने साधनाओं में शामिल कर मुद्रा नाम दे दिया। इस प्रकार मुद्रा को सहजयानियों ने सम्वृत प्रज्ञा के रूप में संगिनी स्त्री[521] से लेकर महासुख प्रदान करने वाली अन्तः शक्ति के रूप में व्यक्त किया है। जिनमें अधिकांशतः निम्नवर्ग की स्त्रियाँ रजकी, डोम्बी, नटी, चाण्डाली,[522] धोबिनी आदि हुआ करती थी। इसीलिए इन्होंने इन्हीं नामों का ही उल्लेख अपने ग्रंथों में किया।

---

[518] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017,पृ.106-11.

[519] महेशानंद, शर्मा. बाबूराम, सहाय. ज्ञानशंकर, बोधे. रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ.190-93.

[520] मल्लिक, कल्याणी. सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर वर्क ऑफ नाथ योगिज. प्रथम संस्करण. पूना : पूना ओरियन्टल बुक हाऊस, 1954. भूमिका पृ.14-15.

[521] न्यौपाने, काशीनाथ. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : इण्डियन माइंड, 2012. पृ. 66.

[522] वही, पृ. 114.

## 4.3 साधनात्मक विधियों के आधार पर हठयोग का सहजयान पर प्रभाव :-

### 4.3.1 हठयौगिक आसन का सहजयानियों पर प्रभाव :-

हठयौगिक ग्रंथों में आसनों का महत्वपूर्ण स्थान है। योग साधना में आसन से तात्पर्य मेरूदण्ड को सीधा रखकर स्थिर आसन[523] में आसन्न होना है। जिससे योगी का मन धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए तैयार हो सके। हठयोग के विभिन्न ग्रंथों सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपेदश में अष्टांग योग के अंतर्गत आसन, परमात्म स्वरूप में चेतना की स्थिरता है। जिसके लिए स्वस्तिकासन, पद्मासन तथा सिद्धासन में से कोई एक उपयुक्त माना गया है।

गोरक्षशतकम् ने शिव उपदिष्ट चौरासी लाख योनियों से आगमित चौरासी लाख आसनों में से सिद्धासन[524] तथा कमलासन (पद्मासन) को विशिष्ट माना है। हठप्रदीपिका के अनुसार आसन हठयोग का प्रथम अंग है, जिसके अंतर्गत पंद्रह आसनों का विधि तथा लाभ के साथ उल्लेख है। इन अभ्यास से स्थिरता, आरोग्यता एवं लघुता (हल्कापन) की प्राप्ति होती है। इन आसनों में भी सिद्धासन श्रेष्ठ है। जिससे बहत्तर हजार नाड़ियों के मलों का शोधन हो जाता है। इसे ही मुक्तासन, गुप्तासन, वज्रासन[525] आदि नामों से पुकारा गया है। शिवसंहिता में चार प्रमुख आसानों सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन तथा स्वस्तिकासन की चर्चा है। जिसमें से सिद्धासन विशिष्ट है। इस प्रकार हठयौगिक ग्रंथों में प्रथमतः सिद्धासन तथा दूसरे में पद्मासन की विशिष्टता का पता चलता है।

सहजीया सिद्धों ने देह को विशेष महत्व देते हुए इसे मुख्य कायसंपदा कहकर संबोधित किया है। यह समस्त प्रकार की साधनाओं का आधार है। इस

---

[523] बागची, प्रबोधचंद. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934, पृ.62.

[524] दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. लोनावला : कैवल्यधाम,स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2013. पृ. 44-45.

[525] दिगम्बर, स्वामी, पीताम्बर, झा, संस्करणकर्ता. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2017. पृ.18-20.

शरीर को वज्र के समान बलिष्ट, सुगठित, निर्मल व रोग रहित होने पर ही आगे की साधनाओं को सम्पादित किया जा सकता है जो आसन, प्राणायाम, बिन्दु के स्थिर होने से ही वज्रदेह (अक्षुण्ण शरीर) में परिणित किया जा सकता है। सिद्धों ने आसनों की चर्चा चण्डाली योग साधना के अंर्तगत आरंभिक साधनाओं में रक्षाचक्र में की है। रक्षा चक्र का अर्थ है, जो क्लेश, दोष आदि से रक्षा करता हो।

ठाकुर सिंह नेगी ने नरोपा के षड्ंग योग के अंर्तगत सात तरह के आसन विधियों की चर्चा की है, जो शरीर को स्थिरता प्रदान करती है। इनमें सिद्धासन (वज्रासन), पद्मासन आदि सम्मिलित है। उपरोक्त आसनों को बौद्धसिद्ध बुद्ध आसन कह कर संबोधित किया करते थे। महामुद्रा शास्त्र में सात प्रकार के आसन[526] विधियों की चर्चा प्राप्त होती है।

सहजीया सिद्ध सिद्धासन का अत्यधिक प्रयोग किया करते थे। जिसे संस्कृत में वज्रासन[527] कहा गया है। इसके अभ्यास से शरीर में संचरित प्राण शक्ति की तरंगों पर नियंत्रण होता है। यह योगी के निर्वाण की प्राप्ति में सहायक माना गया है। बुद्ध आसन को भोट भाषा में दोर्जे दन[528] कहा जाता है, जो बुद्धत्व के अनुभव के लिए परम सहायक माना गया।

आसन प्रकरण के अंतर्गत उपरोक्त कथनों से यह ज्ञात होता है, कि नाथ सिद्धों के द्वारा प्रयुक्त श्रेष्ठ आसनों में सिद्धासन तथा पद्मासन का ही सहजीया सिद्ध नामांतर भेद से अभ्यास किया करते थे। हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में चार प्रमुख आसनों में विशिष्ट, सिद्धासन को ही बौद्ध सिद्ध वज्रासन कहकर पुकारते थे, क्योंकि इस एक आसन के अभ्यास से देहस्थ समस्त नाड़ियों का मल शोधित हो जाता है। तीन बंध मूल, उड्डियान तथा जालंधर सिद्ध हो जाते हैं। यह देह में बिन्दु (वीर्य) को स्थिर करता है और उसका ऊर्ध्वगमन में सहायक है। अतः स्वात्माराम ने उपरोक्त ग्रंथ में इसी आसन के अन्य सिद्धों के द्वारा किये जाने वाले अभ्यासों की ओर संकेत करते हुए इस आसन को वज्रासन, गुप्तासन,

[526] नेगी, ठाकुरसेन. ग्रंथकार. वज्रयानी अनुत्तरयोग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 383.
[527] वही, पृ. 390.
[528] वही, पृ.390.

मुक्तासन नामों से पुकारा है। विभिन्न विद्वानों के मतानुसार हठप्रदीपिका का काल चौदहवीं शताब्दी स्वीकृत है। इस प्रकार उपरोक्त सिद्धासन आदि का प्रवेश सहजयानी साधना में हो चुका था।

## 4.3.2 नाथ एवं सहजयानी सिद्धों की साधनाओं में नाड़ियाँ :-

नाड़ी शब्द नद धातु से आया हुआ है। जिसका अर्थ बहना अथवा प्रवाहित होना है। नाड़ियाँ ही प्राण शक्ति की सरणियाँ हैं। जिसमें प्राण का प्रवाह निरंतर बना रहता है। ये स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती हैं। सिद्धसिद्धांतपद्धति के प्रथम उपदेश के अड़सठवें श्लोक में दस प्रमुख नाड़ियों के नामो का उल्लेख है। इनमें से नाड़ीत्रय, सुषुम्ना, इडा, पिंगला प्रमुख हैं।

मत्स्येन्द्रकृतकौलज्ञाननिर्णय के अंतर्गत कुलानंदतन्त्रम् के अनुसार मूलाधार में कुण्डलाकार, समस्त क्लेशादि विकारों को दूर करने वाली महावहा[529] नाड़ी स्थित है। गोरक्षशतकम के अनुसार नाभि के नीचे और लिंग प्रदेश के ऊपर नाड़ियों का मूल स्थान (उद्गम स्थान) है। इसी नाड़ी कंद के ऊपर कुण्डलिनी अवस्थित है, जो अधोमुखी होकर सुषुम्ना के मुखद्वार को बंद कर सुप्त पड़ी हुई है।

कंदस्थान (मूलस्थान) से ही बहत्तर हजार नाडियाँ निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई हैं, इनमें से दस नाड़ियाँ प्रमुख हैं। जिनमें गान्धारी, हस्तिजिह्वा क्रमशः बायीं आँख और दाहिनी आँख तक जाती है। पूषा बायें कान और यशस्विनी दाहिने कान तथा अलम्बूषा मुख में पायी जाती है। कुहू, शंखिनी क्रमशः लिंग प्रदेश व मूल स्थान में कही गयी है। इड़ा और पिंगला और क्रमशः शरीर के बायीं और दाहिनी ओर स्थित हैं तथा दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी अवस्थित है। उपरोक्त तीनों नाड़ियाँ प्रमुख हैं एवं इनके देवता क्रमशः चंद्र, सूर्य और अग्नि है।

[529] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड,1934. पृ.110-111.

वसिष्ठ संहिता के अनुसार शरीर के पृष्ठभाग के मध्य में स्थित मेरूदण्ड से ही बहत्तर हजार नाड़ियाँ फैली हुई हैं। इन नाड़ियों का उद्गम स्थान देहमध्य है, जो गुदा एवं लिंग के मध्य में स्थित है। इस कंद के बीच में सुषुम्ना नामक की प्रधान नाड़ी स्थित है। इसी के आधार से इनके दोनों ओर देहस्थ समस्त नाड़ियाँ विस्तृत हैं। इनमें चौदह प्रमुख हैं। इनमें से भी सुषुम्ना (सुषुम्णा), इड़ा और पिंगला विशिष्ट हैं। इन तीनों में भी सुषुम्ना ही मोक्ष प्रदायिनी[530]मार्ग होने के कारण श्रेष्ठ है। इस मध्य नाड़ी के बायीं ओर इड़ा एवं दाहिनी ओर पिंगला क्रमशः चंद्रमा और सूर्य, तामस और राजस, रात्रि और दिन रूपी काल के प्रतीक हैं, एवं सुषुम्ना मध्य में स्थित होने के कारण कालभक्षिणी कही गयी है।

यह उपरोक्त दोनों नाड़ियों के मध्य प्रतिष्ठित रहते हुए मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यंत स्थित है। इसे ही अव्यक्त एवं वैष्णवी भी कहा गया है। शिवसंहिता के द्वितीय उपदेश में नाड़ियों की संख्या तीन लाख पचास हजार है, इनमें से चौदह विशेष एवं सुषुम्ना श्रेष्ठ है। समस्त नाड़ियों का उद्गम मूलाधार है। जहाँ से शरीर के समस्त इन्द्रियों एवं अंगों एवं उपांगों तक समस्त नाड़ियाँ सुषुम्णा के आश्रय से अधोमुखी होकर समस्त देह में व्याप्त हैं। उपरोक्त सभी नाड़ियों के द्वारा शरीर में अन्न रस के संवहन का संतुलन संभव हो पाता है। इड़ा नाड़ी सुषुम्णा के बायीं ओर से निकलकर ऊर्ध्व में बायीं नासिका में खुलती है, वहीं पिंगला दाहिनी ओर से निकलकर दाहिनी नासिका में खुलती है। मध्य में स्थित सुषुम्णा नाड़ी के अंदर चित्रा नामक अतिसूक्ष्म नाड़ी है, जहाँ मोक्ष मार्ग, ब्रह्मरन्ध्र विद्यमान है, यही तत्त्वज्ञान का बीज[531] है। हठप्रदीपिका के अनुसार नाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार है। इनमें से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्रमुख हैं। इनमें भी सुषुम्ना[532] श्रेष्ठ है इसे ही नामांतर भेद से शून्यपदवी, महापथ, शाम्भवी, ब्रह्मरंध्र, मध्यमार्ग आदि कहा गया है।

---

[530] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009. पृ.70.

[531] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिवसंहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ. 283.

[532] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, , 2017. पृ.135.

सहजयानी सिद्धों ने इस शरीर को वज्रदेह के रूप में परिणित करने की बात स्वीकार की है। जिसमें में नाड़ियों की भूमिका अह्म है, जो सम्पूर्ण शरीर में विस्तृत  है। सहजीया ग्रंथों में इन नाड़ियों को 'वहा'[533] कहा गया है। यह अंग विशेष में आवश्यक तत्त्व रक्त, पित्त, श्लेष्मा, शुक्र आदि का वहन करते हैं एवं शरीर के मलों के निष्कासन का कार्य भी करती हैं। सम्पूर्ण शरीर के नाड़ियों और उपनाड़ियों को मिलाकर इनकी संख्या तीन करोड़ पचास लाख कही गयी है, तो कुछ स्थानों पर छोटी-बड़ी सभी नाड़ियों को मिलाकर इनकी संख्या बहत्तर हजार मानी गयी हैं।

हेवज्रतंत्र एवं कृष्णपाद द्वारा रचित टीका हेवज्रपञ्जिकायोगरत्नमाला में बत्तीस प्रमुख नाड़ियों की चर्चा है, जो बोधि चित्त (शुक्र) का वहन करते हुए महासुख स्थान ललाट चक्र तक पहुँचाती है। इनमें भी तीन नाड़ियों को प्रमुख बताया गया है जिन्हें क्रमशः ललना, रसना और अवधूती[534] कहा गया । शरीर के नाभि प्रदेश से लगभग चार अंगुल नीचे शरीर के बायीं ओर से ललना और दाहिनी ओर से रसना नाड़ी का उद्गम हुआ है। दोनों नाड़ियाँ ऊपर आकर नाभि क्षेत्र में मिलती हैं फिर उनका प्रसार ऊपर के तरफ दाहिनी दिशा से रसना और बायीं दिशा से ललना गले में आकर मिलती हैं। ललना नाड़ी बायीं नासिका छिद्र से और रसना नाड़ी दाहिनी नासिका छिद्र से जुड़ी होती है एवं आगे ये दोनों नाड़ियाँ ललाट स्थान (महासुख चक्र स्थान) से मिलती हैं।

बत्तीस नाड़ियों में से उपरोक्त अवधूती आदि तीन प्रमुख हैं। जिन्हें योगिनी नाड़ियाँ कहकर संबोधित किया गया है। ललना को प्रज्ञा,[535] चंद्र, शून्यता, स्त्री, नैरात्मा स्वभाव, कमल, पद्म, रज, गगन आदि तथा रसना को कालि, सूर्य, पुरूष, उपाय, मणि, शुक्र, कुलिश, मेघ, नानात्मक गुणों से युक्त माना गया है। इन तीनों से ही देह की सम्पूर्ण नाड़ी समूह जुड़ी होती हैं। इनमें भी अवधूती अतिविशिष्ट है।

---

[533] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001. पृ.16-18.

[534] वही, पृ.16-18.

[535] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. पृ. 09.

अवधूती ललना और रसना के मध्य में स्थित रहते हुए शरीर में व्याप्त सभी नाड़ियों को आधार प्रदान करती है एवं देहस्थ निर्माण, धर्म, सम्भोग तथा महासुख चक्र इसी में अवस्थित होते हैं। इसे ही सहजसुख प्रदायिका भी कहा गया है। यह समस्त क्लेशों, वासनाओं, कामनाओं का अवधूनन (नष्ट) करती है, अतः अवधूती के नाम से भी प्रसिद्ध है। यही मध्य मार्ग है, जिससे होकर बोधि चित्त, उष्णीष कमल में पहुँचता है जिसके उपरांत साधक का चित्त महासुख[536] में विलीन हो जाता है।

बौद्ध सिद्धों ने नाथ सिद्धों की ही भांति विभिन्न नाड़ियों का उल्लेख अपने बौद्ध ग्रंथों में किया किन्तु अपनी परम्परा के अनुरुप इनकी संख्या महात्मा बुद्ध के बत्तीस विशेष लक्षणों के अनुसार ही बत्तीस नाड़ियों को महासुख स्थान से निकलने वाली बोधिचित्त वहा संबोधित करते हुए इन्हे बौद्ध शब्दावली एवं दर्शन के अनुकूल कर दिया। इन बौद्ध सिद्धों की सहजयानी सम्प्रदाय के पूर्व इस प्रकार के नाड़ियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

उपरोक्त नाथ तथा सहजयानी सिद्धों की साधनाओं में नाड़ियों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख हैं जो समस्त देह में विस्तृत है। दोनों सम्प्रदायों में मुख्य रूप से प्रधान नाड़ियों में तीन का ही उल्लेख किया है। नाथ सिद्धों ने जहाँ इन तीनों को क्रमशः इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहा है, वहीं सहजयानियों ने ललना, रसना और अवधूती कहकर संबोधित किया है। जिसमें सुषुम्ना की भांति ही अवधूती, ललना और रसना के मध्य में स्थित है। इसी मार्ग से ही महासुख तक पहुँचना संभव हो पाता है।

कौलज्ञाननिर्णय में मूर्धा में विद्यमान बत्तीस दलयुक्त कमल का उल्लेख करता है। सहजयानी सिद्धों ने भी मूर्धा में विद्यमान बत्तीस नाड़ियों को बोधिचित्त 'वहा' कहा है। इस तरह ही बौद्ध सिद्धों ने साधना के अंत में मत्स्येन्द्र अनुभूत परम्परा के सहजानंद से सहज को ग्रहण किया। नाथ सिद्ध नागार्जुन (शून्यवाद के प्रवर्तक के अतिरिक्त) सहजयानी सिद्धों में भी प्रसिद्ध रहे हैं। इन्होंने

---

[536] बसवरड्डि, वी. ईश्वर. रस्तोगी, राजीव. भारती, अमृता. संपादित. नाड़ी-तंत्र एवं प्राण. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, 2012. पृ. 217.

अपनी रचना 'पिण्डीक्रमः पंञ्चक्रमश्च' में वज्रधर को नाथ[537] कहकर संबोधित किया है।

## 4.3.3 नाथ सिद्धों की प्राण साधना का सहजीया सिद्धों पर प्रभाव :-

कौलज्ञाननिर्णय में इस साधना का अभ्यास पूरक, कुम्भक तथा रेचक के साथ वर्णित है।[538] सिद्धसिद्धांतपद्धति में पूरक, कुम्भक, रेचक तथा संघट्टन (प्राण और अपान का मेल) से प्राणायाम[539] पूरा होता है। जिससे प्राण की स्थिरता प्राप्त होती है।

गोरक्षशतकम् में पूरक, कुम्भक तथा रेचक के साथ प्राणायाम का अभ्यास करने के निर्देश है। बायीं नासिका से पूरक का कुम्भक के समय ललाट पर चंद्रमण्डल का ध्यान तथा दाहिनी नासिका से पूरक करते समय कुम्भक कर नाभि में सूर्यमण्डल का ध्यान करने के निर्देश के साथ यह अभ्यास बारह, चौबीस तथा छत्तीस मात्राओं के अनुसार क्रमशः अधम, मध्यम तथा उत्तम प्रकार के हैं। इनके अभ्यास से देह में क्रमशः पसीना आना, कम्पन होना तथा उत्तम प्राणायाम में योगी का शरीर भारहीन होने के कारण जमीन से ऊपर उठ जाता है।

हठप्रदीपिका में प्राणायाम मुख्य रूप से सहित (पूरक कुम्भक रेचक के साथ) और केवल[540] (बिना पूरक, कुम्भक और रेचक के प्राण धारणा) में विभक्त है। सहित के अंतर्गत आठ प्रकार के प्राणायामों का विधि तथा लाभ के साथ उल्लेख हैं। इन प्राणायामों के अभ्यासों की निरंतरता में योगी बिना किसी पूरक, कुम्भक आदि के प्राणों को लम्बे समय तक धारण करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

---

[537] त्रिपाठी, रामशंकर. संपादित. आचार्यनागार्जन-प्रणीत. पिण्डीक्रमः पञ्चक्रमश्च. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थानाम्, सारनाथ, 2001. पृ.17.

[538] बागची, प्रबोधचंद. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊसलिमिटेड,1934. पृ.105.

[539] शास्त्री, द्वारिकादास. संपादक व अनुवादक. सिद्धसिद्धांत पद्धति. द्वितीय संस्करण, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 42.

[540] दिगम्बर, स्वामी. पीताम्बर, झा. संस्करणकर्ता. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2017. पृ.54-69.

शिवसंहिता के अनुसार पूरक कुम्भक तथा रेचक का अभ्यास क्रमशः बायीं तथा दाहिनी दोनों नासिका से सुबह, दोपहर, शाम तथ अर्द्धरात्रि को मिलाकर अस्सी बार करना चाहिये। तीन मास तक इस अभ्यास के करने से साधक की नाड़ियाँ शोधित हो जाने से देह संतुलित, सुगन्धित, स्वर को साधने वाला तथा कान्तियुक्त हो जाता है। साधक के द्वारा कुम्भक के समय शरीर के स्थान विशेष, ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी स्थान, तालूमुल आदि स्थानों पर ध्यान लगाने से विभिन्न प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोगों की निवृत्ति होती है। कुम्भक की साधना में प्राण को धारण करने का समय क्रमशः बढ़ने से योगी में दूरश्रवण, कवित्व आदि सिद्धियाँ आ जाती हैं। केवल कुम्भक के अभ्यास से सुषुम्ना द्वार के मलों का शोधन होता है जिससे कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है[541] तब अंततः मन विषयों से परे होकर स्वयं में स्थित होने लगता है। अभ्यास की निरंतरता में मन शून्य[542] हो जाता है।

सहजयानी सिद्धों ने भी प्राण को विशेष महत्त्व देते हुए प्राण को समस्त नाड़ियों में व्याप्त माना है। जीव जिससे जीवित है, वही प्राण जीवन का आधार है। इसे ही महाशक्ति कहकर संबोधित करते हुए ये सहजीया सिद्ध भी प्राण की साधना प्राणायाम के माध्यम से करते थे। यह साधना ही चित्त के नियंत्रण का आधार थी। इन्होंने इस अभ्यास को वज्रजाप[543] कहकर भी संबोधित किया है जिसमें पूरक, कुम्भक और रेचक आदि विधियाँ सम्मिलित हैं। इन्होंने इसका अभ्यास मंत्रों के साथ किया जैसे पूरक में 'ओं कुम्भक में आः और रेचक में हूं मंत्र।[544] इस अभ्यास से प्राण-अपान[545] का संयोग से बोधिचित्त की उर्ध्वगति

---

[541] दिगम्बर, स्वामी. पीताम्बर, झा. संस्करणकर्ता. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2017. पृ.54-69.

[542] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिवसंहिता. प्रथम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999, पृ.112-125.

[543] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांति भिक्षु. संपादित. चर्यागितिकोश. कलकत्ता : विश्वभारती शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 31.

[544] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, 1999. पृ. 263-266.

[545] बसवरड्डि, वी. ईश्वर. रस्तोगी, राजीव. भारती, अमृता. संपादित. नाड़ी-तंत्र एवं प्राण. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, 2012. पृ. 215.

होती थी और वह महासुख चक्र में पहुंचकर महासुख की प्राप्ति में सहायक बनता था।

हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला में सिद्ध कृष्णपाद ने प्राणायाम की विधियों में रेचक, पूरक, कुम्भक[546] के उपरांत प्रशांत स्थित में स्थित होने का उल्लेख किया है।

प्राणायाम साधनाओं में श्वास को तीन बार बाहर निकालने और फिर लंबी गहरी श्वास लेकर अपनी क्षतानुकूल रोककर सहजता से श्वास छोड़ने के निर्देश करते हुए प्राणायाम के अभ्यास को विभिन्न चरणों में प्रस्तुत किया है।

श्वास को अंदर ले जाते समय नासिका और रोमछिद्रों से पाँच रंगों के प्रकाश अंदर प्रवेश कर रहे हैं और इन प्रकाश से सम्पूर्ण शरीर प्रकाशित होने की भावना करने और श्वास को बाहर निकालते समय इन पाँचों रंगों के प्रकाश से सम्पूर्ण संसार प्रकाशित होने की भावना करना।

श्वास को अंदर भरते हुए पंच प्रकाश किरणों के भावना के उपरांत हूँ बीजमंत्र से सारे शरीर के अनुप्राणित होने की भावना करना और श्वास बाहर निकालते समय हूँ बीजमंत्र से सारे जगत के अनुप्राणित होने की भावना करना।

श्वास अंदर लेते हुए सम्पूर्ण शरीर में प्राण के संचार और विस्तार की भावना एवं छोड़ते समय प्राण का सम्पूर्ण जगत में प्रसार होने की भावना करना। इस प्रकार उपरोक्त तीनों प्रक्रियाओं के साथ सात-सात बार अभ्यास करते हुए कुल इक्कीस बार प्राणायाम[547] करने के निर्देश है। वज्रजाप से कान्हुपाद ने आलि-कालि (सुर्य चंद्र) का शोधन[548] कर लिया है, उपरांत योगियों के समान घंटा नूपुरादि अलंकार धारण किया हुआ है।

---

[546] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. पृ.100.

[547] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 385.

[548] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 39.

प्राणायाम प्रकरण के अंतर्गत नाथ सिद्धों (योगियों) की भांति ही सहजयानी सिद्धों ने प्राण से चित्त की स्थिरता का उल्लेख करते हुए पूरक, कुम्भक तथा रेचक की विधियों को अपनाया, जिससे नाथ सिद्धों के सिद्ध देह की तरह ही वज्रदेह की प्राप्ति हो सके अतः प्राणायाम को वज्रजाप कह कर संबोधित करते हुए प्राण-अपान का मिलन, पूरक, कुम्भक तथा रेचक एवं प्राण की स्थिरता की स्थिति को प्रशांत कहते हुए नाथों की तरह ही प्राणजय के लक्षणों को प्रस्तुत किया है। नाथ योगियों ने जहाँ प्राणायाम को सहित और केवल में विभक्त किया है, उसी प्रकार सहजयानियों ने चार मिनट तक प्राण धारण[549] करने की क्षमतावान साधक को सामान्य और छः मिनट अथवा उससे अधिक समय तक प्राण धारण की योग्यता रखने वालो को उच्च श्रेणी में रखा है।

## 4.3.4 नाथ सिद्धों के सिद्धदेह सहजयान पर प्रभाव :-

हठयोग साधना में मानव देह का विशेष महत्त्व है। इसे हठयोगियों ने परिपक्व करने की बात कही है, जो सामान्य अवस्था में विभिन्न दोषों के असंतुलन आदि से मृत्यु के अधीन बना रहता है, अतः देह सिद्धि अत्यंत आवश्यक है। शरीर में इन्द्रियों की चंचलता का कारण, प्राण की चंचलता है, जो चित्त के अस्थिरता का कारण बनता है। यह आत्मिक उन्नति में बाधक है। नाथ सिद्धों ने यौगिक अभ्यासों से प्राप्त, योगाग्नि के द्वारा देह को शुद्ध करने की बात स्वीकारते हुए देह सिद्धि के लक्षणों में निर्मलता, रोगराहित्यता, जड़ता की समाप्ति, देह का कांतियुक्त होना, नयनों में तेज, मुख में सुंदरता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, प्राणजय, चित्त की स्थिरता आदि लक्षण प्राप्त होते है। जिनमें उपरोक्त लक्षण बाह्य माने गये हैं।

जिस देह में क्षुधा, तुष्णा, कामादि, जरा एवं मृत्यु व्याप्त नहीं होने से अत्यंत निर्मल होता है, उसे ही शुद्ध देह माना गया है, जो इसके आंतरिक लक्षण हैं। उपरोक्त देह की प्राप्ति के लिए हठयोग में प्राणजय एवं रसायनादि का प्रयोग

[549] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 358.

उल्लेखित है। जिसके सिद्ध हो जाने पर यह देह अमर रूप में प्रसिद्ध मानी जाती थी।

हठयोगियों के अनुसार सिद्ध देह की प्राप्ति शक्ति की दो विपरीत धाराओं इड़ा और पिंगला के संयोग से होता है। इसे ही प्राण शक्ति और चित्त शक्ति अथवा प्राण और अपान का मिलन कहा गया है। जब प्राणायाम का अभ्यास, आसन की स्थिरता, मिताहार का अनुशासन व गुरू के निर्देशन में किया जाता है, तब अभ्यास की निरंतरता में शक्ति के दो वक्र धाराओं का इन्द्रियों और विषयों से हटकर सरल पथ सुषुम्ना में प्रवेश होता है। यह क्षण दुर्लभ है।

प्राण के सुषुम्ना में प्रवेश से साधक का इन्द्रियों और पंच प्राणों पर नियंत्रण संभव हो पाता है। जिससे चंचल चित्त पर नियंत्रित स्थापित होता है। सिद्धों के अनुसार इस अवस्था को ब्रह्मचर्य से ही पाया जा सकता है। बिन्दू (शुक्र) के नियंत्रण के बगैर कुण्डलिनी का जागरण संभव नहीं और बिना कुण्डलिनी जागरण के सिद्ध देह की प्राप्ति असंभव है।

प्राचीन काल से ही देह को सिद्ध करने अमर बनाने का प्रयत्न चला आ रहा है। जिसमें तांत्रिक और कौलसाधना में प्रसिद्ध वीर साधना और कुल प्रक्रिया भी इस देह साधना अथवा काय साधना का ही प्रकार है। इसमें शरीर और मन का साधन सम्यक रूप से अनुष्ठित किये जाने पर पूर्णरूप से लाभ होता है। जिससे इसमें काल का प्रवेश नहीं हो पाता एवं यह विकार रहित हो जाता है। इस देह सिद्धि के भी दो प्रकार हैं। प्रथम में देह, बुढ़ापा और मृत्यु को प्राप्त नहीं होता जिसे अपर सिद्ध देह कहा जाता है। नाथ योगियों का कथन है कि यह सिद्धदेह समस्त शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है, जिससे इसे लघु और विभू आदि रूप में बदला जा सकता है। इसे मंत्रों, औजारों अथवा अन्य किसी भी शक्तियों से नष्ट नहीं किया जा सकता और न ही मृत्यु भी इसे प्रभावित कर सकती है।

कौलज्ञाननिर्णय में भैरव ने देवी के प्रश्न पर प्रलयकाल में वज्रयोग[550] के प्रयोग का उपदेश किया है। जिस देह में जरा-मरण, विषाद, हर्ष, मोह, रोग, मद,

[550] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस

लोभ, चिंता आदि नहीं होते, वह योगी वज्रदेह  प्राप्त कर, स्वयं शिव होकर आकाशवत् हो जाता है। वह जगत में कमल पत्र के समान अप्रभावित रहता हुआ योगीराज के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

हठप्रदीपिका, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, हठरत्नावली आदि में उल्लेखित समस्त हठयोगियों ने इसी सिद्धदेह[551] को प्राप्त कर कालदण्ड की सीमाओं से पार हो चुके हैं। नाथ सिद्धों ने इसी सिद्धदेह को ही आत्मा कहा है। जिसे प्राप्त करने के लिए गुरू का संरक्षण सर्वोपरि है। हठप्रदीपिका वज्रोली के अभ्यास से देहसिद्धि की प्राप्ति का उल्लेख करता है, जो भोग भोगते हुए भी मुक्तिदायक[552] है।

केवली कुम्भक के सिद्ध होने पर प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश से आरम्भावस्था में ब्रह्मग्रन्थि (हठप्रदीपिकाज्योत्स्नाटीका के अनुसार अनाहद चक्र में) के भेदन से आनंद का अनुभव एवं अन्तःशरीर शून्यानुभव होता है। तब अनाहत ध्वनि झण-झण सुनाई देती है, तब योगी का देह दिव्य, तेजस्वी, गंधयुक्त एवं सम्पूर्ण हृदय में शून्यता का अनुभव होता है।

नाथ सिद्धों ने विभिन्न स्थानों पर पिण्डसिद्ध, दिव्यदेह, जीवनमुक्त, सिद्धदेह आदि की चर्चा की है। जिस देह में चराचर पर्वत, महासागर, नदियाँ, सूर्य-चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि विद्यमान है। यह देह विश्व ब्रह्माण्ड का ही प्रतीक रूप है। यह निर्विकल्प अर्थात् संकल्प-विकल्प, इच्छा आदि से रहित स्वाभाविक चित्तावस्था है। इसे ही मुक्ति[553] कहा गया है, जिसे प्राप्त कर सामर्थवान नाथ सिद्ध जगत में प्रख्यात हुए हैं।  इन सिद्धों ने स्वदेह में प्रकाशित उस परमात्मा के आनंदानुभूति से व्यष्टि पिण्ड और समष्टि पिण्ड में अभिन्नता का अनुभव किया है। वे ही पिण्ड सिद्ध के रूप में चिरकाल तक प्रसिद्ध है।

---

लिमिटेड,1934.पृ.66-67.

[551] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी  कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.04.

[552] वही, पृ.114.

[553] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ. 51.

किन्तु उपरोक्त देह में भी मन पूर्णरूप से निर्विकार अथवा वासना से शून्य नहीं हो पाता। तब मन को भी ब्रह्मरूप में परिणत करना होता है। जिसमें प्रणव साधना का आलम्बन लिया जाता है। इसे ही ब्रह्मोपासना कहा गया है। जिससे देह विशुद्ध चिन्मयस्वरूप में परिणत हो जाता है जिसे परसिद्ध देह कहा गया है। तभी पूर्ण सिद्धता की प्राप्ति होती है।

सहजयानी सिद्धों ने इस शरीर को केवल भौतिक संपदा न मानते हुए इसके अंदर के गूढ़ आध्यात्मिक अनुभूतियों को स्वीकार करते हुए इसे महासुख का आधार माना है अतः यहाँ वज्रदेह[554] से तात्पर्य उस देह से है, जो सुगठित, बलयुक्त, स्वस्थ, रोग रहित एवं हीरे के समान कठोर एवं मजबूत हो तथा किसी भी परिस्थिति में नष्ट न होने वाले अमर देह की प्राप्ति करना है। उपरोक्त लक्षणों वाले, वज्रदेह अथवा सहज देह की प्राप्ति के लिए इस शरीर में स्थित सम्पदाओं को जानना अत्यन्त आवश्यक माना गया जिनमें नाड़ी, प्राण, बिन्दु, चित्त, स्कन्ध, धातु, इन्द्रिय, विषय, कर्मेन्द्रिय आदि सम्मिलित हैं। सहजयानी सिद्धों की धारणा है कि उपरोक्त सम्पदाओं से बने इस देह को जानकर ही वज्रजाप आदि साधनाओं के द्वारा वज्रदेह प्राप्त किया जा सकता है। अतः इन्होंने मानव देह की मातृगर्भ में उत्पत्ति से लेकर उस जीव के जगत में आने तक का उल्लेख विस्तार पूर्वक किया है।

उपरोक्त स्कन्ध, धातु[555] आदि का निम्नवत विस्तार है - स्कन्ध के अंर्तगत रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और ज्ञान आते हैं। धातु अथवा महाभूत में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और विज्ञान है। ज्ञानेन्द्रियों में नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, काय और मन है। विषयों में गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द एवं धर्म का समावेश है। कर्मेन्द्रियों में मुख, हाथ, पैर, लिंग और गुदा एवं इनके कार्य क्रमशः कथन, ग्रहण, गमन, मल, मूत्र और शुक्र स्वीकृत हैं।[556] पिता के शुक्र से देह में अस्थि,

---

[554] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001. पृ.16.

[555] सांकृत्यायन, राहुल. संपादित. ग्रंथकार सिद्ध सरहपाद. दोहा-कोश. (हिंदी छायानुवाद सहित). चतुर्थ संस्करण. पटना : बिहार- राष्ट्रभाषा परिषद्, 2009. पृ.229.

[556] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ.199-204.

मज्जा, नाड़ी, बाल और रोम निर्मित होते हैं, तथा माता के रज से रक्त, मांस और त्वचा का निर्माण होता है।

सिद्धों ने उपरोक्त सभी प्रकार के सम्पदाओं का आश्रय स्थान चित्त को माना है, जो बिना किसी सम्बल के स्वतः ही उत्पन्न है। यही भव (समस्त प्रकार के दुःखों का समूह) और निर्वाण (मुक्ति) का सेतू है। यही संसार का बीज है। गुरू साधक को देह की महत्ता स्पष्ट करते हुए उपदेश करता है कि इसी देह में ही सभी प्रकार के अनुष्ठानों को सम्पन्न किया जा सकता है। इसी में बुद्ध का वास है एव इसी में ही पंच ध्यानी बुद्ध अपनी शक्तियों के साथ वास करते हैं।

सिद्ध कृष्णपाद इस देह को नगर की संज्ञा देते हुए कापालिक योग से संम्पन्न होकर विहार करने का उपदेश करते हैं। सरहपा ने इसे नौका का रूपक देकर प्रज्ञोपाय योग से जगत रूपी सागर को पार किया है और अन्य सभी को उपदेश करते हुए कहा है कि इसी देह में ही सूर्य-चंद्र का वास है। गंगा-यमुना, प्रयाग, वाराणसी इसी में विद्यमान हैं, इसके जैसा अन्यत्र तीर्थ नहीं है।[557] पीठ-उपपीठ आदि सभी इसी में अवस्थित हैं। अद्वयवज्र ने इस शरीर को ही समस्त आश्रयों का आधार स्वीकार करते हुए तीर्थाटन आदि करना व्यर्थ माना है। हेवज्रतंत्रम् ने इस देह में स्थित महासुख के वास को मान्यता दी है।

प्रज्ञोपाय योग से साधक का देह जब तथागत स्वभाव वाला हो जाता है, तब यह धर्मकाया कहलाता है। उस समय योगी काया में रहते हुए भी काया से अलग माना जाता है। इसी देह में विद्यमान बोधिचित्त का ऊर्ध्वगमन से शक्ति केन्द्रों के जागरण से वह अशरीरी बुद्ध[558] हो जाता है, उसका देह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है, वही सिद्ध के रूप में विख्यात हो जाता है।

उपरोक्त विवरणों में नाथ तथा बौद्ध सिद्धों ने नामांतरभेद से इस देह को साधना का मूलाधार मानते हुए प्राणायाम, बिन्दु साधना तथा कुण्डलिनी के जागरण से मानव देह को सिद्धदेह अथवा वज्रदेह में परिणित करने की बात कही

---

[557] सांकृत्यायन, राहुल. संपादित. ग्रंथकार. सिद्ध सरहपाद. दोहा-कोश.(हिंदी छायानुवाद सहित). चतुर्थ संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, 2009. पृ. 22.

[558] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 204-05.

है। जिसके उपरांत साधक को इसी देह में ही विश्वब्रह्माण्ड की अनुभूति होती है। कौलज्ञाननिर्णय में वज्रदेह की प्राप्ति का गुप्त उपेदश भैरव के द्वारा देवी के लिए प्रकाशित करते हुए कहा गया है कि जिस देह के प्राप्त होने पर योगी सृष्टि और संहार के प्रभावों से मुक्त होकर सम चित्त वाला हो जाता है। इस वज्रदेह में क्षुधा, जरा, मरण, विषाद, हर्ष, मोह, राग, लोभ, मद, चिंता आदि उत्पन्न नहीं होते।[559] वह योगी कमल पत्र के समान जल रूपी जगत से अप्रभावित रहता हुआ स्वयं शिव होकर परम व्यापक हो जाता है।

इन बौद्ध सिद्धों के पूर्व सम्प्रदायों में इस प्रकार के सिद्ध देह की प्राप्ति के संकेत नहीं  दिख पड़ते। इस प्रकार नाथ सिद्धों की सिद्धदेह की साधना ने सहजयानियों को आकर्षित किया था जिससे वे नाथ साधना में प्रवृत्त हुए थे।इस तरह से सहजयानी सिद्धों ने नाथ सिद्धों का ही अनुसरण किया।

## 4.3.5 नाथ सिद्धों की चक्र साधना का सहजयानी सिद्धों पर प्रभाव :-

चक्र से तात्पर्य देहस्थ शक्ति केन्द्रों से हैं। हठयौगिक ग्रंथों में इन चक्रों की संख्या कहीं छः प्रकार की तो कहीं अष्ट, नव आदि प्राप्त होते हैं। जैसे मत्स्येन्द्रनाथ कृत कौलज्ञाननिर्णय में अष्टचक्रों[560] का उल्लेख है। जिसमें उनके दलों की संख्या देह के मध्य स्थान, गुह्य, लिंगमूल, नाभि, हृदय,कण्ठ, आदि स्थान पर कमल दलों का उल्लेख करते हुए उन चक्रों के पद्मदल, वर्ण, स्थान के साथ ध्यान करने से विभिन्न प्रकार के सिद्धियों के प्राप्ति की विस्तृत चर्चा है। जैसे प्रथम चक्र आठदल युक्त कमल के सदृश है। जिस पर ध्यान करने से क्रोध का शमन, दूर श्रवण, सर्वसिद्धि, वाचा सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है। द्वितीय चक्र पर तेज का ध्यान करने से मृत्यु भय से मुक्ति। तृतीय चक्र पर ध्यान करने से समस्त तत्त्वों से मुक्ति एवं बलित-पलित का नाश होना।

पांचवें चक्र धूम्रवर्ण का है, जिसके ध्यान से त्रिलोक को चलायमान करने की शक्ति आ जाती है। छठवें चक्र में तप्त स्वर्ण के प्रकाश का ध्यान करने से इच्छा

---

[559] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.पृ. 56.

[560] वही, पृ. 04.

सिद्धि, अष्ट सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है। सातवें चक्र में पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश का ध्यान करने से भुक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है। जरा और मृत्यु नाशक, परदेह में प्रवेश की शक्ति आ जाती है। आठवें चक्र महाचक्र के ध्यान से चारों पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त चक्रों के ध्यान से मन, इन्द्रिय, बुद्धि आदि की मलिनता दूर होती है एवं योगी को सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। तब मन उन्मन की प्रक्रिया आरंभ होती है। उपरोक्त देह, मन, बुद्धि, चक्र आदि सम्मिलित रूप से कुलागम[561] कहलाते हैं।

सिद्धसिद्धांतपद्धति के द्वितीय उपदेश में पिण्डविचार के अंतर्गत नौ चक्रों का उल्लेख है, जिनमें ब्रह्मचक्र, इसका स्थान मूलाधार में है। त्रिकोणाकार, भगमण्डल की तरह शोभित है। इसी के पास मूलकंद का स्थान है। उस स्थान पर कामरूप पीठ है। साधक को उसी स्थान पर अग्नि शिखा के सदृश शक्ति का ध्यान करने से सभी तरह की कामनाओं की पूर्ति होती है। इसी प्रकार स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिचक्र जिसके ध्यान से योगी को सर्व सिद्धि की प्राप्ति होती है। अनाहत चक्र, यही हंसकला शक्ति के रूप भी प्रसिद्ध है। कण्ठचक्र, जिसके बायीं ओर इड़ा नाड़ी एवं दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी स्थित है। इन दोनों नाड़ियों के बीच में सुषुम्ना का ध्यान करने से संकल्प सिद्धि की प्राप्ति होती है।

तालुचक्र, इससे अमृत धारा निरंतर प्रवाहमान होता है। मुख खोलने पर घंटी की तरह लटका हुआ लिंग के आकार का मांसल भाग घण्टिका कहलाती है। इसके मूल में एक रंध्रस्थित है, जो खोखले शंख के समान खाली स्थान है। इसे ही दसवाँ द्वार कहा गया है। इस स्थान पर शून्य का ध्यान करने से योगी को चित्तलय की प्राप्ति होती है। भ्रूचक्र, दोनों भौहों के बीच में भ्रूचक्र का स्थान है। इस स्थान पर दीपशिखा का ध्यान करने से कहे गये वचन सिद्ध हो जाता है।

---

[561] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.पृ. 07.

ब्रह्मरन्ध्र चक्र, इसे निर्वाणचक्र भी कहा गया है। यहीं जालन्धर पीठ भी विद्यमान है। आकाश चक्र, जो सोलह पंखुडियों वाले कमल के समान है, जो ऊपर की तरफ मुख किये हुए स्थित है। जिसके मध्य में त्रिकोण आकार की ऊर्ध्वमुखी शक्ति है। इस स्थान पर परशून्यता का ध्यान करने से योगी की सभी प्रकार की इच्छाओं की सिद्धि की प्राप्ति होती है, इसे ही पूर्णागिरी पीठ कहा गया है।

गोरक्षशतक में अष्टचक्र, षट्चक्र,[562] आधारचक्र, मेरूदण्ड के अंतिम स्थान, गुदा स्थान में तप्त स्वर्ण के सदृश चार दल युक्त आधार पद्म स्थित है। इसी पद्म के केन्द्र स्थान में योनि का स्थान है। दृष्टि को नासिकाग्र कर इस आधार पद्म में ध्यान लगाने से योगी सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। स्वाधिष्ठान चक्र, स्व का अर्थ प्राण एवं अधिष्ठान से तात्पर्य स्थान से है। यह चक्र लिंगमूल स्थान में स्थित होकर मणिक के समान शोभायमान है।

मणिपूर चक्र, यह चक्र नाभि मण्डल में स्थित है। दृष्टि को उपरोक्त स्थान में रखते हुए योगी को इस चक्र में प्रातःकालीन सूर्य के समान दिव्य प्रकाश का ध्यान लगाने से योगी में समस्त जगत को प्रभावित करने की शक्ति आ जाती है। अनाहत चक्र, यह हृदय में स्थित है। जहाँ प्राण का स्थान है। नासिकाग्र दृष्टि रखकर इस स्थान में विद्युत के सदृश ध्यान से योगी ब्रह्ममय हो जाता है। विशुद्ध चक्र, कंठ स्थान में स्थित है, जो अमृत का स्रोत स्थान है। योगी नासिका के अग्रभाग में दृष्टि लगाकर चक्र स्थान में अमृत स्रोत का ध्यान करने से ब्रह्म के समान हो जाता है। लम्पिका, अमृत से भरा हुआ तालु मूल में स्थित है इस स्थान पर ध्यान, दृष्टि को नासिकाग्र पर लगाने से साधक मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है।

आज्ञा चक्र, भ्रूमध्य स्थान में स्थित है। इस स्थान में दृष्टि नासिकाग्र कर मोती के समान स्निग्ध देवता पर ध्यान करने से योगी आनंद मग्न हो जाता है। दृष्टि नासिकाग्र कर आकाश में निर्गुण निराकर शांत शिव पर ध्यान करने से सभी दुःखों से छुटकारा मिलता है। इस प्रकार प्राण आधार पद्म से ऊर्ध्वगमन करता

---

[562] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ. 65.

हुआ आज्ञा चक्र से होते हुए महापद्म स्थान सहस्रार पर पहुँचकर तत्त्वामृत[563] को प्राप्त कर लेता है।

हठप्रदीपिका के अनुसार प्राणायाम के सिद्ध हो जाने से सूर्य एवं चंद्र नाड़ी से प्राण दोनों के मध्य निरालम्ब स्थान (सुषुम्ना) के आकाश में षट्चक्र[564] उदित होते हैं एवं भ्रूमध्य में जाकर विलीन हो जाते हैं। इसे ही खेचरी कहा गया है।

शिवसंहिता के पंचम पटल में षट्चक्रों के नाम, दलसंख्या, वर्ण, निवास स्थान, रंग, देवी और उनके देवों के साथउनका विस्तृत उल्लेखप्राप्त होता है जो निम्नवत है

मूलाधार चक्र, इसे चार दल युक्त आधार कमल भी कहा गया है जो स्वर्ण के समान कांति युक्त है। इसे कुल चक्र अथवा स्वयम्भू लिंग[565] की भी संज्ञा दी गयी है। इसके प्रत्येक दल में व्, ष्, ष्, स् नामक चार वर्ण सुशोभित हो रहा है। जिसके सिद्ध द्विरण्ड और देवी डाकिनी है। इसी पद्म के मध्य में योनिस्थान है, जहाँ कुण्डलिनी स्थित मानी जाती है। उसके ऊपर, तेजप्रकाश युक्त कामबीज सक्रिय रहता है। इस चक्र के ध्यान से जठराग्नि का प्रदीप्त होना, शरीर का कान्तियुक्त होना, आरोग्यता, सर्वज्ञता, वायु एवं बिन्दु पर नियंत्रण, मन विजय एवं आकाश गमन आदि की सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

स्वाधिष्ठान चक्र, यह पद्म लिंग के मूलस्थान में स्थित है जो रक्त वर्ण का है। जहाँ सिद्ध बाल और देवी राकिणी वास करती है। इस कमल दल में ब्, भ्, म्, य्, र्, ल् नामक छः वर्ण भासित होते हैं। इस चक्र के ध्यान से स्त्रियों का मोहित होना, रोगमुक्ति, निर्भयता, अष्टसिद्धियों की प्राप्ति, शरीर में रसों की वृद्धि, सुषुम्ना में वायु का संचार, सहस्रार से अमृत स्राव में वृद्धि होती है।

---

[563] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013. पृ. 58.

[564] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.147.

[565] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999. पृ. 260.

मणिपूर चक्र, यह पद्म नाभि स्थान में स्थित है। इसके दलों की संख्या दस है। जिसके प्रत्येक दल में ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ् नामक स्वर्ण के समान वर्ण शोभायमान हैं। इस पद्म के देवता रूद्र है जो सर्वमंगलदायक है एवं परमधार्मिका देवी लाकिनी का वास स्थान है। इस चक्र के ध्यान से सुखों में निरन्तर वृद्धि होती है। इच्छाओं की पूर्ति, औषधियों का ज्ञान होना, भूमिगत खजाने का ज्ञान होता है।

अनाहत चक्र,[566] यह पद्म हृदय स्थान में स्थित है। जो गहरे रक्तवर्ण का है। यह प्रसन्नता का मूलस्थान है। जिसके ऊपर बाणलिंग नामक तेज प्रकाशित होता है। इस चौथे कमल के, दलों में क्, ख्, ग्, घ्, ड्.,च्, छ्, ज, झ्, ञ्, ट्, ठ् वर्ण शोभित हो रहे है। इस कमल में सिद्ध पिनाकी एवं देवी काकिनी अधिष्ठित हैं। इस चक्र के ध्यान से इस लोक एवं परलोक के इच्छित फलों की प्राप्ति हो जाती है। अप्सरायें आकर्षित होती है। योगी में भूत, वर्तमान एवं भविष्य को जान लेने की शक्ति आ जाती है। सूक्ष्म वस्तुओं को भी जान लेने वाला, आकाश गमन की शक्ति, खेचरी एवं भूचरी की सिद्धि प्राप्त होती है ।

विशुद्ध चक्र, यह पंचम पद्म कंठस्थान में स्थित है। जो स्वर्ण के समान कांतियुक्त है, देवताओं का निवास स्थान है। जिसके दलों में षोडश स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः शोभायमान हैं। इस पद्म में सिद्ध छागलाण्ड और देवी शाकिनी अधिष्ठित हैं। इस चक्र के ध्यान से वेदों के रहस्यों को जानने वाला पण्डित हो जाता है। इस ध्यान से हृदय में मन लीन हो जाने से देह की क्षति नहीं होती वह योगीश्वर हो जाता है।

आज्ञा चक्र,[567] यह दो दलयुक्त पद्म भ्रूमध्य में स्थित है। इसे आज्ञा पद्म भी कहा गया है जिसका वर्ण शुक्ल है। इनके दोनों दलों में ह, क्ष नामक वर्ण सुशोभित है। इस पद्म के सिद्ध महाकाल और अधिष्ठात्री देवी हाकिनी अवस्थित है। इस चक्र की चर्चा सभी तांत्रिक ग्रन्थों ने की है। इस के ध्यान से उपरोक्त सभी

---

[566] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999. पृ. 260.

[567] वही, पृ. 274.

चक्रों के ध्यानों का लाभ प्राप्त हो जाता है। परम सिद्धि दायक इसके ध्यान से साधक शिव के समान हो जाता है। आज्ञा चक्र में शक्ति बीज का स्थान है। इसका मंत्र गुरू से जानना चाहिये।

सुषुम्णा, तालुमूल में ही सुषुम्ना नाड़ी अधोमुखी स्थित है। इसी सुषुम्ना के मध्य ब्रह्मरन्ध्र स्थित है, इसे ही सरस्वती की संज्ञा प्रदान की गयी है। जिसका गंगा और यमुना के मध्य में निवास है। इसी त्रिवेणी तीर्थ पर ध्यान लगाने से साधक मुक्ति को प्राप्त करता है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार काकी मुद्रा में प्राण को पूरक कर उसे अपान से संयुक्त करने से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर हुँ और हंस मंत्र का जप करते हुए, षट्चक्रों[568] का भेदन करते हुए जीव के साथ सहस्रार में स्थित शिव से संयुक्त होकर अनंत सुख, पूर्ण शांति एवं पूर्णानंद के साथ विहार करती है। तब योगी को अहं ब्रह्म के साथ आनंद की अनुभूति होती है।

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना के अनुसार इड़ा और पिंगला के मध्य सुषुम्ना मार्ग आश्रय रहित स्थान है। उसी स्थान में षट्चक्र[569] का समुदाय स्थित है। उपरोक्त समुदाय भ्रूमध्य (शिव स्थान) में समन्वित हो जाता है। तब निर्मल स्फटिक मणि के सदृश चित्त स्थिर हो जाता है। चित्त की यह दशा खेचरी कही गयी है।

गोरखबानी के अनुसार स्वाभाविक रूप से अधः की ओर प्रवाहमान अपान को प्राण से संयुक्त कर देने पर दोनों की गति ऊर्ध्व हो जाती है। तब सुषुम्ना के मार्ग में सुप्त कुण्डलिनी जागृत होकर षट्चक्रों[570] का भेदन करती हुई रेतस को ब्रह्मरंध्र के द्वारा उसी प्रकार सोख लिया जाता है, जिस प्रकार रक्त तप्त लोहा जल को अवशोषित कर लेता है। तब चंद्र और सूर्य के विपरीत स्वभाव को निमज्जित कर योगी अलख, ब्रह्मविद् हो जाता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होकर

---

[568] दिगम्बर, स्वामी. घरोटे,एम.एल. संपादित.घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018.पृ.100-02.

[569] महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004,पृ.321.

[570] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. संपादक एवं टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ. 56.

षट्चक्रों के भेदन के परिणाम स्वरूप ब्रह्मरंध्र में सहस्रार से स्रावित चंद्रामृत का पान कर गोरखनाथ ने उस ब्रह्म प्रकाश को जानकर, पूर्णानंद[571] का अनुभव किया है।

सहजयानी सिद्धों की साधनाओं में देहस्थ चक्रों की स्थिति, आकार, वर्ण, पद्मदलों के साथ विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इन सिद्धों के ग्रंथों, टीकाओं, चर्यापदों आदि से ज्ञात होता है कि इन्होंने कही पाँच चक्रों[572] तो कही चार चक्रों[573] का उल्लेख किया गया है।

सिद्ध काण्हपा मेरूदण्ड को सुमेरू के रूप में संबोधित करते हुए उसके शिखर को नैरात्म्या (सहजसुन्दरी) का स्थान माना है। सिद्ध शबरपा भी इसी शिखर के कमलदल में वज्रधर के रूपी शोभायमान है। इसी सुमेरू शिखर के आधार में कन्दरा है, जहाँ नाभिकमल में बोधिचित्त (शुक्र) स्थित है। इसी में ही कालाग्नि का भी निवास है, जो प्राण के निरोध होने पर ऊर्ध्वमुखी होकर प्रकाश के साथ उपाय रूपी बोधिचित्त, प्रज्ञा से एकाकार होने के लिए ऊपर की ओर गतिमान हो जाता है। मेरूदण्ड के चार स्थानों नाभि, हृदय, कण्ठ तथा मूर्धा (उष्णीष) में क्रमशःनिर्माणकाय, धर्मकाय, सम्भोगकाय अवस्थित है, तथा मूर्धा (उष्णीष कमल) में महासुखकाय[574] का स्थान है। उपरोक्त चारों को बुद्ध के चार काय माना गया है।

जिनमें निर्माण, धर्म, सम्भोग और महासुख चक्र स्थित हैं। इन पद्म दलों में बीजाक्षर भी अंकित हैं। श्रीसम्पुट तन्त्रानुसार नाभि, हृदय, कण्ठ तथा उष्णीष कमल में क्रमशः ए,व,म,या बीजाक्षरों का अंकन है। जिनमें पृथ्वी, जल, पावक व

---

[571] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. संपादक एवं टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004. पृ. 78.

[572] न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. श्रीनारोपाविरचितं सेकोद्देशटीकासहितं. कालचक्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : साधना प्रेस, 2013. पृ. 179.

[573] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001. पृ. 23.

[574] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 45.

समीर भूतों का वास स्थान हैं। लोचना, मामकी, पाँडरा व तारा इन चक्रों की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं, जो क्रमशः मैत्री, करूणा, मुदिता एवं उपेक्षा की गुणों से सम्पन्न है।

अंतिम महासुख चक्र अथवा उष्णीष कमल में चन्द्रमा की सोलह कलाएँ विद्यमान है। यह द्विगुणित होकर बत्तीस पद्मदल युक्त हो जाती है, जो आलि तथा कालि स्वभाव की है। इन्हें ही सूर्य-चंद्र अथवा प्रातः और रजनी का प्रतीक माना गया है। इन्हें ही हेवज्रतंत्रम् व उसकी योगरत्नमाला नामक टीका में महासुख प्रदान करने वाली नाड़ियाँ (वहा) कहा गया है। जिनके मध्य में ग्राह्य-ग्राहक विवर्जित अवधूती विद्यमान होती है। इसी स्थान पर ही महासुख का वास है। सिद्ध भुसुकुपा ने इसे ही पद्मवन (नलिनीवन) कहा है, जहाँ चित्त विश्रांति को प्राप्त करता है। इसी उष्णीष कमल से अमृत की वर्षा होती है, जिससे सिद्ध सहजानंद में निमग्न हो जाता है।

सहजयानी सिद्ध कृष्णपाद रचित हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला और सिद्ध शांतिपा रचित हेवज्रपंजिका मुक्तावली में चार चक्रों की चर्चा प्राप्त होती है। वहीं कुछ ग्रंथों कालचक्रतंत्रटीका, वज्रमालातंत्र आदि में छः चक्रों[575] का भी उल्लेख है। जिनमें उपरोक्त चार चक्रों के साथ गुह्य चक्र और उष्णीष चक्र सम्मिलित हैं। उरोक्त चारों चक्रों में दलों की संख्या क्रमशः चौंसठ, आठ, सोलह, और बत्तीस है। ये चक्र निम्नवत हैं-1.नाभिचक्र (निर्माण चक्र) 2.हृदयचक्र (धर्मचक्र) 3.कण्ठचक्र (सम्भोग चक्र) 4. ललाट (महासुख चक्र) उपरोक्त क्रम से चारों चक्र नीचे से ऊपर कि ओर स्थित हैं।

नाभिचक्र,[576] यह नाभि प्रदेश की ओर सीधा स्थित होता है और यहीं से उत्पन्न होता है। नाभि की नाड़ियों के मर्माहत होने से यह जागृत होता है। यह मध्य नाड़ी से संविभक्त होता है। यह कमल चौंसठ दल युक्त है। सिद्ध कण्हपा ने अपरिशुद्ध नैरात्मा को इस चौसठ पंखुडियों वाले कमल पर नृत्य करते हुए

[575] भारती, अमृता. बसवरेड्डि, बी. ईश्वर. राजीव, रस्तोगी. संपादित. नाड़ी-तंत्र एवं प्राण. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, 2012,पृ. 223.

[576] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 241.

चित्रित किया है। जो वासना का परिचायक है। इनके दक्षिण भाग की तीस नाड़ियाँ रसना नाड़ी से संबंधित है एवं बायीं भाग की तीस नाड़ियाँ ललना नाड़ी से संबंधित होती है। इसे जागृत अवस्था में निर्माण चक्र कहा जाता है। इस नाभिचक्र की सभी नाड़ियाँ पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होती है।

हृदय चक्र, यह हृदय प्रदेश में स्थित होता है। यह मनोवैज्ञानिक धर्मों को उत्पन्न करता है। हृदय की नाड़ियों के मर्माहत हाने पर यह जागृत होता है। यह आठ दल युक्त चक्र है। इसे धर्मचक्र के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। हृदय चक्र की सभी नाड़ियाँ वायु धातु से उत्पन्न होती है।

कण्ठ चक्र,[577] यह देह के कण्ठ भाग में स्थित है। इसके द्वारा अन्नपान का संभोग होता है। स्थान विशेष में स्थित नाड़ियों का आकार चक्र सदृश होने के कारण कण्ठ के साथ चक्र जोड़ा गया है। उसके मर्माहत होने पर स्वप्नावस्था में यह संभोग चक्र के रूप में उदित होता है। इसमें सोलह नाड़ियाँ (नाड़ी दल) होते हैं। इनमें सोलह संक्रांति दल वायुओं का संचार होता है, जो उपाय-प्रज्ञा के युगद्ध में होते हैं। कण्ठ चक्र के सभी नाड़ियों की उत्पत्ति अग्नि धातु से होती है।

ललाट चक्र,[578] यह मूर्धा में स्थित होता है। जो महासुख का आधार है। यह बिंदु (शुक्र) से अवलंबित होता है। इसके मर्माहत होने पर महासुख उदित होता है। इसके उदय होन से ललाट चक्र में स्थित सोलह बाह्य और सोलह आभ्यांतर मिलाकर नाड़ियों की संख्या बत्तीस है। इनमें से सोलह आभ्यन्तर वाली नाडियों से बिन्दु का और सोलह बाह्य वाली नाड़ियों से रक्त का प्रवाह होता है। ये दोनों प्रज्ञोपाय क्रम में स्थित माने गये हैं। ललाट चक्र की समस्त नाड़ियाँ अप् धातु से उत्पन्न होती है।

उपरोक्त नाथ एवं सहजयानी सिद्धों की चक्र साधनाओं के विवरण का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि नाथ सिद्धों की तरह ही सहजयानी

---

[577] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. कृष्णपादविरचित. हेवज्रपंजिका योगरत्नमाला. 1कल्प/1पटल, श्लोक 23. वाराणसी : केंद्रीय उच्च तिब्बत संस्थान सारनाथ, 2006. *संभोगचक्रे षोडषदलम्।*

[578] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 247.

सिद्धों ने देहस्थ चक्रों के नामों के साथ उनके वर्ण, पदमदल, शरीर के विशेष स्थानों में उनकी स्थिति आदि का विस्तार से उल्लेख किया है।

सहजयानी सिद्धों ने इन चक्रों का नाम एवं उनकी संख्या अपने पूर्व परम्परा महायान के अनुसार बुद्ध के तीन काय के अनुसार निर्माण, धर्म और सम्भोग रखते हुए एवं एक अतिरिक्त चतुर्थ काय महासुख (सहजकाय) को अपने सम्प्रदाय में प्रतिष्ठित कर दिया। किन्तु इन सिद्धों ने अपनी पूर्व सम्प्रदायों में स्वीकृत चक्रों की स्थितियों को बदलते हुए धर्म चक्र के ऊपर सम्भोग चक्र की प्रतिष्ठा भी कर दी।[579] साथ ही उपरोक्त चक्रों की स्थिति नाथ साहित्यों के समान ही नाभि, हृदय, कण्ठ और ललाट पर स्वीकृत करते हुए उन चक्रों में उपस्थित पद्म दलों का भी उल्लेख किया।

गोरखनाथ कृत सिद्धसिद्धांत पद्धति में नव चक्रों के चर्चा में नाभि में चौंसठ दलयुक्त रागाग्नि की चर्चा की है। सहजयानी सिद्धों ने भी नाभि में निर्माण चक्र में चौंसठ दल युक्त कमल की चर्चा की है।

अतः स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि नाथ सिद्धों की ही भाँति सहजयानियों ने देहस्थ चक्रों की साधनाओं को नामांतर भेद से सम्पन्न किया किन्तु उनके नाम, प्रकार एवं स्थान आदि अपने पूर्व परम्परा के अनुरूप एवं बौद्ध शब्दावलियों के अनुकूल करते गये। किंतु इनके पूर्व की परंपराओं में देहस्थ विशेष स्थानों में इस प्रकार के पद्मदल का उल्लेख नहीं मिलता।

## 4.3.6 नाथ सिद्धों की मुद्रा साधना का सहजयान पर प्रभाव :-

हठयौगिक ग्रन्थों में मुद्रा का अतिविशेष स्थान है। इन ग्रंथों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ कृत कौलज्ञाननिर्णय उपरोक्त प्रकरण का आधार है। इस ग्रंथ के षष्ठ पटल में खेचरी मुद्रा[580] का अभ्यास निर्दिष्ट है। जिसमें

---

[579] भारती, धर्मवीर. सिद्धसाहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955. पृ. 186.

[580] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ.16-17.

जिह्वा को तालुमूल के ऊपर स्थित गुहर में प्रवेश कर स्थिर रखा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सहस्रार कमल से स्रावित अमृत रस को नाभि में स्थित सूर्य से नष्ट होने से बचाना है। यह अमृत खेचरी के सिद्ध होने पर सम्पूर्ण शरीर को पोषित करता हुआ सभी प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है। इससे देह में विष का प्रभाव नहीं होता। बुढ़ापा आदि के लक्षण नहीं आते। बिन्दु का पतन नहीं होता, तब अन्ततः योगी मृत्युंजयी हो जाता है। उपरोक्त विशेषताऐं खेचरी के छः मास तक निरन्तर अभ्यास से प्राप्त होती है।

कालान्तर में प्राप्त हठयौगिक ग्रन्थों में अन्य विभिन्न मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होते है। जैसे- सिद्धसिद्धांतपद्धति के षष्ठ उपदेश में मुद्रा को 'मुद्' मोदे व 'रा' दाने धातु से मिलकर बना हुआ माना गया है, जो अर्थ जीवात्मा और परमात्मा की अखण्डता[581] को व्यक्त करता है। सामान्य अर्थों में यह शुभ एवं मंगलकारी है।

गोरक्षशतकम् में महामुद्रा, नभोमुद्रा एवं तीन बन्ध जालन्धर, उड्डियान एवं मूल के अभ्यासों का उल्लेख है।[582] जिससे शरीरस्थ प्राण का संतुलन, कुण्डलिनी का ऊर्ध्वगमन, सिद्धियों की प्राप्ति, मृत्युभय से मुक्ति आदि प्राप्त होती है।

हठप्रदीपिकाकार स्वात्माराम ने तृतीय उपदेश में कुण्डलिनी को तंत्र एवं योग ग्रन्थों का आधार मानते हुए आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट, मृत्यु और बुढ़ापा को दूर करने वाली एवं कुण्डलिनी को जागृत कर सुषुम्ना में प्रवेश के उद्देश्य से दस मुद्राओं का उल्लेख किया है।[583] जिसमें महामुद्रा से विभिन्न प्रकार के रोगों, कोष्ठबद्धता, चर्मरोग, वायुदोष दूर होते हैं एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है। महाबंध, अन्य नाड़ियों से प्राण को इड़ा एवं पिंगला में प्रवेश कराता है। महावेध, के अभ्यास से इड़ा और पिंगला दोनों सुषुम्ना में आकर मिलती है। जिससे अमनस्क (मन का विषय रहित अवस्था) की प्राप्ति होती है।

---

[581] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ.89.

[582] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. , पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.पृ. 50-52.

[583] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 74.

खेचरी, सोममण्डल से स्रावित अमृत को नष्ट होने से बचाता है। उड्डियान, प्राण के ऊर्ध्वगमन में सहायक है। मूलबंध, बिन्दु (वीर्य) का ऊर्ध्वगमन एवं मल-मूत्र की अल्पता लाता है। जालंधर बंध, कंठ के रोगों को दूर कर सोममण्डल के स्राव को जठराग्नि प्रदेश तक आने से रोकता है। विपरीतकरणी, सहस्रार से स्रावित अमृत को नष्ट होने से बचाता है। वज्रोली, बिन्दु का उर्ध्व आरोहण एवं अपान वायु का नियंत्रण करता है। शक्तिचालन कुण्डलिनी का जागरण एवं मृत्यु भय से मुक्ति करता है। उपरोक्त मुद्राओं में खेचरी एवं त्रिबंधों में उड्डियान विशिष्ट है।

शिवसंहिता के चतुर्थ पटल मुद्रिका योग में हठप्रदीपिका के भांति दस मुद्राओं का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इन मुद्राओं के पूर्व साधक को योनिमुद्रा साधक को गुदा एवं लिंग के मध्य स्थान (सीवनी स्थान) का आकुंचन करते हुए मूलाधार में अपने मन को लगाये एवं वायु का पूरक कर कामकला पीठ, सुषुम्णा के मूल में करोड़ों सूर्य एवं चन्द्रमा की उष्णता एवं शीतलता का ध्यान करें। इसके ऊपर ही सूक्ष्म ज्ञानमयी परमकला, ज्योति रूप में विद्यमान है। मन एवं आत्मा दोनों का उसी परम कला के साथ संयुक्त कर चिंतन करना चाहिये। उपरोक्त तीनों इसी सुषुम्णा मार्ग (ब्रह्म मार्ग) से ऊर्ध्वगति करती है।[584] यही ब्रह्ममार्ग स्वर्गानंद को प्रदान करने वाली अमृत का सदैव स्रावित करती रहती है। शिवरूप जीवात्मा उसी अमृत का पान करते हुए जहाँ से अमृत का स्राव निरंतर हो रहा उस कुलामृत (चंद्रस्थान) में लय हो जाता है। इस योनिमुद्रा के अभ्यास से संसार के सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

सहजयानी साधना में मुद्रा का विशेष स्थान है। इन सिद्धों ने योगी को बोधिचित्त एवं योगिनियों को प्रज्ञा, महामुद्रा, ज्ञानमुद्रा आदि नामों के साथ सहजसुन्दरी[585] नाम से भी संबोधित किया है। इसे ही शक्ति, साधिका, वज्रकन्या, युवती, पद्म के साथ-साथ कई स्थानों पर योनि का भी प्रतीक माना है। हेवज्रतंत्र

---

[584] महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999. पृ. 166.

[585] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 292.

में मुद्राओं की संख्या पाँच बतायी गयी है, जिनमें डोम्बी, नर्तकी, रजकी, ब्राह्मणी और चण्डालिनी[586] सम्मिलित है।

मुद्रा, यौवन से परिपूर्ण, बृहद नेत्रों वाली, सुन्दर मुखाकृति एवं लम्बे केशों वाली कही गयी है, जो कृष्णवर्ण, रक्तनेत्रा, महारौद्रा है जिसने अपने हस्त में कर्तरी, कपाल, कटी में मेखला धारण कर रखा है, जो शवारूढ़ है। साधक के द्वारा उस मुद्रा का, गुरू के निर्देशानुसार ग्रहण कर गुह्य साधना का विधान है। इस ज्ञान का प्रकाशन सभी के लिए आवश्यक नहीं माना जाता था।

मुद्रा साधना के पूर्व साधक को चार अभिषेक साधनाओं से गुजरना आवश्यक था। उपरांत वह साधक महामुद्रा साधन प्रणाली में दीक्षित किया जाता था। दीक्षा के उपरांत वह कपाली अथवा चर्यावर आदि नामों से पुकारा जाता था। दोहाकोष में चार मुद्राओं के अंतर्गत कर्म, धर्म, ज्ञान, एवं महामुद्रा का उल्लेख प्राप्त होता है। वहीं चर्यापदों में कर्म, ज्ञान एवं महामुद्रा का उल्लेख है। महामुद्रा[587] भगवती, प्रज्ञा, दीर्घ, वर्तुल आदि से परे वर्णों से रहित, कमलदल के आकार वाली, अचंचला, मनोरमा, सुखावहा एवं भगवान के सदृश भी कहा गया है। इस प्रकार मुद्रा का स्वरूप सहजयानियों ने सम्वृत प्रज्ञा के रूप में संगिनी स्त्री[588]से लेकर महासुख प्रदान करने वाली अन्तः शक्ति तक को उल्लेखित किया है।

उपरोक्त मुद्रा प्रकरण में नाथ सिद्धों में महासिद्ध, मत्स्येन्द्रनाथ कौलयोगिनी तंत्र के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हैं। जिस साधना में योगी व योगिनी एक साथ मिलकर गुरू के निर्देशन में साधनाओं को गति देते थे। कौलज्ञाननिर्णय के नौवें पटल में मत्स्येंद्रनाथ ने अपने पूर्व के विभिन्न सिद्धों का नामोल्लेख करते हुए उनके साथ लाकिनी, डाकिनी, शाकिनी, वाराही आदि पूज्या योगिनियों की भी चर्चा की है। हठप्रदीपिका, शिवसंहिता आदि में मुद्रा प्रकरण के अंतर्गत खेचरी मुद्रा श्रेष्ठ है।

---

[586] न्यौपाने, काशीनाथ. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : इण्डियन माइंड, 2012. पृ.44.

[587] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी :केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001,पृ.183.

[588] न्यौपाने, काशीनाथ. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : इण्डियन माइंड, 2012. पृ.66.

उपरोक्त ग्रंथों में स्पष्ट रूप से साधक के द्वारा स्त्री से संयुक्त होकर बिन्दु को उर्ध्व कि ओर खींचने की साधना का वर्णन है। किन्तु कालांतर में इस योगिनी कौल साधना में विकृति के कारण व्यभिचार बढ़ने लगा एवं स्त्रियों को केवल उपभोग की वस्तु समझा जाने लगा। समाज में इन साधनाओं के प्रति लोगों में भय और घृणा का परिवेश व्यापक हो गया। उस समय गोरक्षनाथ आदि योगियों ने इस साधना में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित रखते हुए उन मुद्रा साधना के स्थान पर मुद्रा के विभिन्न अभ्यास विकसित किये और हठसाधना में उनका अभ्यास अनिवार्य कर दिया गया, जिसे हम आज इन ग्रंथों में खेचरी, महामुद्रा, महाबंध, महावेध, मूलबंध, जालंधर आदि के रूप में अवलोकन करते हैं, किन्तु आज भी उन ग्रंथों के सूक्ष्म अध्ययन से उनमें अवशेष रूप वज्रोली एवं उनकी सहायक सहजोली आदि साधनाएँ विद्यमान हैं, जो पूर्व में उपस्थित कौल साधना कि ओर इंगित करती हैं।

वहीं बौद्ध सम्प्रदाय में आरंभिक काल में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित था। वज्रयानी सम्प्रदाय में भी आरंभिक समय में मुद्राएँ केवल अवलोकितेश्वर देवता के हाथों में रखी हुई वस्तुओं के रुप में उल्लेखित थी। सहजयानी सिद्धों ने स्त्रियों को मुद्राओं के रूप में अपनाने के साथ-साथ नाथ योगियों की भांति कालांतर के मुद्राओं जैसे- मूलबंध[589] आदि का अनुसरण करते हुए इसका उल्लेख चर्यागीतिकोष में किया।उन्हें अपने ग्रंथों में भी उल्लेख किया। कौलज्ञाननिर्णय के समान ही सहजयानी ग्रंथ हेवज्रतंत्र में वाराही का उल्लेख है, जो प्रज्ञा स्वभावा है। योगी मत्स्येन्द्रनाथ अवलोकितेश्वर के रूप में बौद्धों के मध्य प्रतिष्ठित एवं बहुप्रसिद्धि हो चुके थे। इनकी ही साधनाओं का सहजयानी सिद्धों ने अनुसरण किया था।

## 4.3.7 नाथ सिद्धों की कुण्डलिनी साधना का सहजयान पर प्रभाव :-

कुण्डलिनी नाथसिद्धों की महत्वपूर्ण साधना है। यह समस्त तंत्र और योग ग्रंथों का आधार है। हठयोग में इसी शक्ति के जागरण से ही राजयोग की प्राप्ति

[589] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ.15.

संभव है। कुण्डलिनी, कुण्डल से बना हुआ है, जिसका अर्थ वलयाकार या वृत्ताकार रूप में मानव देह के मूल में अवस्थित शक्ति से है। नाथ योगियों ने अपने हठसाहित्यों में इस महाशक्ति के स्थान, रूप, अवस्था आदि का विवरण विस्तार पूर्वक किया है।

कौलज्ञाननिर्णय के अकुलवीरतन्त्रम् में कुण्डलिनी साधना एवं उसके उपरांत उत्पन्न सहजावस्था का उल्लेख है। प्रथमतः कुण्डलिनी को जागृत कर ऊर्ध्व गति प्रदान करना कृतक साधना है, कृतक[590] से तात्पर्य साधक के द्वारा की जाने वाली आसन, प्राणायाम, मुद्रा, मंत्र, प्रेय-प्रेरक भावनाऐं, धारणा, ध्यान आदि शामिल हैं।

उपरोक्त कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के उपरांत स्वतः ही उत्पन्न स्थिति को सहज[591] कहा गया है। जिसमें पिण्ड और ब्रह्माण्ड के बीच अभेदता स्थापित हो जाती है। योगी, परम चेतना के साथ एक हो जाता है, जो योगी की शिव-शक्ति, संसार-मुक्ति, बाह्याभ्यंतर से परे निरालंब, अव्यक्त स्थिति है।

गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार अनामा ब्रह्म से सृष्टिक्रम में पंच शक्तियों का विकास होता है। इसी क्रम में कुण्डलिनी शक्ति से समस्त आकाशादि भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति होती है। इस शक्ति के द्विविध रूप हैं। पहला, अप्रबुद्ध कुण्डलिनी, यह कुण्डलिनी की सामान्य अवस्था है जिसमें यह सांसारिक विषयों का विस्तार करती है, जो मोह, शोक, चिंता आदि का कारण है। अतः यौगिक दृष्टि से इसे अजागृत या अप्रबुद्ध कहा गया है। दूसरा, प्रबुद्ध कुण्डलिनी,[592] योगियों के द्वारा जागृत किये जाने पर ऊर्ध्व गति करते हुए, समस्त कषायों, मानसिक संकल्पों आदि को नष्ट करते हुए गमन करती है, तब यह प्रबुद्ध कहलाती है। जो अन्ततः, सहस्रदल कमल में मिल जाती है। कुण्डलिनी का मूल स्थान मूलाधार है।

---

[590] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ.88

[591] वही, पृ. 88

[592] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.पृ. 56.

उपरोक्त स्थान पर यह इन्द्रियादि व्यापार में संलग्न होने के कारण स्थूल जगत व्यापार के कारण अधःशक्ति कहलाती है। मणिपूर स्थान में होने पर यह सूक्ष्म शक्ति सम्पन्न होने के कारण मध्या शक्ति कहलाती है। किन्तु योगियों के द्वारा मूलाधार का आकुंचन-प्रकुंचन करने एवं मूलबंध लगाने से अधः, मध्य से ऊपर उठ जाती है और परमेश्वरी शक्ति कुण्डलिनी, शिव से एकाकार हो जाती है। तब योगी में द्वैत और मैं का अस्तित्व समाप्त होते-होते जीवात्मा और परमात्मा, व्यष्टि और समष्टि चेतना की अखण्डता[593] स्थापित हो जाती है।

गोरक्षशतकम् के अनुसार नाभि के नीचे और लिंगमूल के ऊपर एक पक्षी के अण्डे के समान कंद योनि स्थित है। यह सुषुम्ना से तन्तुवत छिद्र के साथ जुड़ी हुई है। इसी कंद के ऊपर शक्ति कुण्डलिनी[594] आठ वलयों में ब्रह्म द्वार सुषुम्णा के मुख को आवृत्त कर सदैव स्थित रहती है। यह शक्ति, अपान, प्राण और अग्नि के साथ संयुक्त होकर सुषुम्णा मार्ग में प्रवेश कर जाती है।

हठप्रदीपिका के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति, मूलाधार में साढ़े तीन फेरे लिए हुए सर्पवत् नाड़ी कंद के ऊपर ब्रह्मपथ को ढककर सोयी हुई है। जो योगियों के लिए मोक्ष प्रदायक है। इनके विभिन्न नामों में कुटिलांगी,[595] ईश्वरी, शक्ति, कुण्डली, अरून्धति, बालरण्डा आदि उल्लेखित है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा का अभ्यास दृढ़ होने पर एवं गुरू के अनुग्रह से यह जागृत होने पर सुषुम्ना मार्ग मल रहित हो जाता है। तब यह शक्ति सुषुम्ना मार्ग में ऊपर षट्चक्रों का भेदन करते हुए समस्त बन्धनों को खोलती हुई योगी को मुक्त कर देती है।

सहजयानी सिद्धों ने देहस्थ इस शक्ति को चण्डाली कहकर संबोधित किया है। इस शक्ति का जागरण योग साधना में ललना और रसना के संयुक्त होने से आरंभ होती है। यह योग साधना सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त नाड़ियों के जाल समूहों से प्राण को मध्य एवं ऊर्ध्व खींचने की क्रिया है। जिसमें साधक वज्रजाप से बिन्दु

---

[593] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 56-57.

[594] दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013. पृ. 50.

[595] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 115.

का शोधन कर प्राण के परिशोधित अवस्था में उसे ऊपर उठाता है। यह सामान्य प्रक्रिया नहीं है, इस शक्ति का जागरण वीर ही कर सकने में सक्षम होते हैं।

देहस्थ विभिन्न नाड़ियाँ ललना और रसना से जुड़ी होती है एवं ये दोनों स्वयं अवधूती[596] में आश्रित होते हैं। चण्डाली शक्ति के जागरण से समपूर्ण अंग-प्रत्यंग में प्राण के साथ अतिसूक्ष्म रूप में संयुक्त बिन्दु शक्ति का संचार होता है। यह शक्ति सिद्धासन, पद्मासन, ब्रह्मचर्य, वज्रजाप, धारणा, मुद्रा साधना, ध्यान आदि की सूक्ष्म अभ्यासों से गुजरते हुए दीर्घाभ्यास में प्राण और अपान की घनिष्टता से यह शक्ति उद्‌बुद्ध होती है। उपरोक्त तीनों नाड़ियों का स्पष्ट बोध हो जाने के उपरांत साधक क्रमशः ललाट, कण्ठ, हृदय तथा नाभि चक्रों को देखता है।

चण्डाली के जागरण के लिए साधक वज्रासन अथवा पद्मासन आदि स्थिर आसन में स्थित हो पश्चात प्राणायाम का अभ्यास करता है, जिससे दोनों नासिका से प्राण का आवागमन संतुलित हो जाता है। उस समय ललना, रसना और अवधूती तीनों नाड़ियाँ नाभि में जाकर संगठित होती हैं। चण्डाली दीपक की लौ की तरह किन्तु निरालंब एवं वृत्ताकार रूप में स्थित होती है। यह लाल, भूरा, ऊष्ण एवं तंरग की भांति होती है। सम्पूर्ण देह में उष्णता और आनंद को प्रेषित करती है। साधक कुम्भक करते समय चण्डाली के उपरोक्त स्वरूप पर ध्यान करता है। कुम्भक से प्राणवायु चण्डाग्नि को प्रेरित करता है एवं रेचक करते समय वह वाष्पित होकर अवधूती के शीर्ष तक गमन करती है।

यह नाभि में प्रज्ज्वलित[597] होकर स्थित होती है एवं कामनाओं, वासनाओं, विषयों, सांसारिक ज्ञानादि को जलाती हुई ललाट स्थान में स्थित चंद्रमण्डल में प्रवेश कर जाती है। तब चंद्रमण्डल से अमृत का स्त्राव कण्ठ, हृदय, नाभि और गुह्य पद्मों में होने लगता है। उस समय योगी परमानंद[598] की अनुभूति करता है। उस

---

[596] बागची, डॉ. प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षुक. संपादित. चर्यागीतिकोष. प्रथम संस्करण. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956.पृ.14.

[597] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001.पृ. 27.

[598] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 363.

समय साधक का देह वज्रमणि बन जाता है। इसी षडंग योग से योगियों ने बुद्धत्व की प्राप्ति कर प्रसिद्धि को प्राप्त हुए थे।

साधक के द्वारा सर्वप्रथम इस अभ्यास के आरंभ करने के पूर्व गुरू की प्रार्थना, पंच ध्यानी बुद्धों की पूजा उपरांत पद्मासन में स्थित होकर दोनों हाथों को नाभिमूल के अधः स्थिर कर अवधूती नाड़ी को ऊपर की ओर कसता है। ठुड्डी को कण्ठ के नीचे स्थापित करता है। जीभ को तालु पर रखते हुए दृष्टि नासिकाग्र कर देह में बाहर और भीतर से शून्यता का अनुभव करता हुआ उसी शून्यता को क्रमशः नाभि, हृदय,कण्ठ और सिर पर देखता है। यह प्रक्रिया तब तक की जाती है, जब तक साधक देहस्थ सम्पूर्ण अंगों एवं उपांगों में शून्यता का अनुभव न कर ले।

इस साधना की गहनता से साधक में समाधि घटित होती है इस समाधि की स्थिरता में चित्त महाशून्यता को ही प्रदीप्त[599] करता है। तब सभी प्रकार विचार, संकल्प, विकल्प आदि सभी शून्य हो जाते हैं। साधक क्रमशः आनंद, परमानंद, विरमानंद को पार करता हुआ सहजानंद में स्थित हो जाता है। उस समय साधक के अंदर समस्त भेदाभेद समाप्त हो जाते है। जिसे सहजयानियों ने अद्वय कहा है।

इन बौद्ध सिद्धों ने नाथयोगियों की तरह ही इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को ललना, रसना और अवधूती के रूप में, कुण्डलिनी को चाण्डालिनी के रूप में तथा देहस्थ विभिन्न चक्रों, महामुद्रा, सहज आदि का भी नाथ सिद्धों की भांति ही उल्लेख किया हैं किन्तु इन साधनाओं को इन बौद्ध सिद्धों ने अपने पूर्व परम्परा के अनुसार नामकरण कर दिया।

उपरोक्त कुण्डलिनी अथवा चाण्डाली शक्ति के जागरण में नाथ योगियों की तरह ही चाण्डाली का स्थान मेरूदण्ड के अधः गुहर में बताते हुए इनके जागरण के लिए स्थिर आसन, प्राणायाम की साधना, बिन्दु की स्थिरता क्रमशः अधः से ऊर्ध्वचक्रों पर ध्यान, चण्डालिनी का स्वरूप, देहस्थ समस्त प्रकार के कामनाओं,

[599] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ.372.

वासनाओं आदि विकारों से निवृत्ति, ललाट प्रदेश में स्थित नाथ योगियों की तरह चंद्रमण्डल में प्रवेश होने पर चित्त, मन, देह, इन्द्रियादि में आनंदानुभूति अंततः सहजानंद की प्राप्ति समान ही है। इस प्रकार सहजयानी सिद्धों ने नाथ सिद्धों का ही अनुसरण करते हुए नामांतर भेद से कुण्डलिनी के जागरण का ही अभ्यास किया।

## 4.3.8 नाथ सिद्धों की कापालिक साधना का सहजयान पर प्रमाण :-

कौलज्ञाननिर्णय चर्या लक्षण के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को आचरित करने का निर्देश करता है। जिनमें राजा, बालक, वीर, पागल आदि की तरह व्यवहार करना, नग्न रहते हुए गुरू उपदिष्ट साधना करने, सुरापान, एकांतवास, नारियल के खोपले में जल ग्रहण करते हुए शमशान,[600] एकांत, नदी के निकट एकांत आदि स्थानों पर रहते हुए साधना करने का विधान है।

सिद्धसिद्धांतपद्धति में पिण्डसिद्ध योगी की वेशभूषा के अंतर्गत शंख, मुद्रा,[601] लम्बे केश रखना, सहस्त्रार से स्त्रावित अमृत का पान करना, एकांत में रहना, संध्यावंदन, जप, भैरवमूर्ति की पूजा, शंखनाद, सिंहगर्जन, कौपीन पहनना, कंबल, अंगवस्त्र, बिछाने का वस्त्र, धूप एवं वर्षा से बचने के लिए छाता, बेंत, कमण्डल, अपने शरीर में भस्म एवं मस्तक में त्रिपुण्ड लगाना, गुरू की वन्दना करते हुए उपरोक्त साधना में लगे रहने के निर्देश है। उपरोक्त साधना के अंग हैं। पिण्ड सिद्ध योगी सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करता है।

सहजयानी सिद्धों में सरहपा कृत हेवज्रतन्त्रम् और उनकी टीका कृष्णपाद द्वारा लिखित योगरत्नमाला, सिद्ध शांतिपा की मुक्तावली एवं चर्यापदों आदि में कापालिक साधनाओं के विस्तृत विधानों का उल्लेख प्राप्त होने से यह कहा जा सकता है कि इन सिद्धों की साधनाओं में कापालिक साधनाएँ सम्मिलित थी। सिद्ध कृष्णपाद की माने जाने वाली अन्य रचनाओं वसन्ततिलकम्, वज्रावली आदि रचनाओं में भी कापालिक साधनाओं के प्रमाण देखे जा सकते हैं।

---

[600] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ. 40-41.

[601] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 66.

स्वयं कृष्णपाद ने चर्यापद[602] संख्या दो, चर्यागीतिकोष में नग्न कापालिक[603] नाम से ही संबोधित किया है। इनकी प्रसिद्ध शिष्यों में कनखला और मेखला का नाम आता है। टीकाकार ने कापालिक की परिभाषा देते हुए बताया है कि जो महासुख के बीज को अन्तः में पालता है, वही कापालिक है।[604] कापालिक साधनाओं में शमशान में निवास व साधना, देह में भस्म लपेटना, सिर में जटा अथवा मुण्डित सिर, मुद्रा का संग, ललाट में त्रिपुण्ड धारण करना, अस्थिमाला धारण करना, रूद्राक्ष पहनना, मुण्डमाला धारण, मुद्रा[605] (वज्रकन्या), कपाल को नारी व वज्र को पुरूष का प्रतीक माना गया है। हाथों में खड्ग हाथों में नर कपाल, कर्णकुण्डल,[606]मेखला आदि धारण करता है।

उपरोक्त कापालिक साधना को वामाचारी साधना भी कहा जाता है। शाक्ततंत्र के कथनानुसार विभिन्न आचारों में वैदिक, वैष्णव, वामचार, दक्षिणाचार, सिद्धाचार और कौलाचार प्रमुख माने हैं, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। नाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ इन आचारों में कौलाचार के प्रसिद्ध सिद्ध एवं कौलयोगिनी तंत्र के प्रवर्तक रूप में प्रसिद्ध है। इस प्रकार सहजयानी नाथ साधना का ही अनुसरण करते हुए दिख रहे हैं।

सहजयानी सिद्धों में मुख्यतः सरह, जालंधरिपा व उनके प्रसिद्ध शिष्य कृष्णपाद ने इस साधना को सहजयानी सिद्धों के मध्य विस्तारित किया था। कृष्णपाद ने वज्रधर को ही नाथ[607] कहकर संबोधित किया है। इस प्रकार सहजयानियों ने नाथों की कापालिक साधना को अपनाते हुए उष्णीष कमल महासुख स्थान में विद्यमान वज्रधर (श्रेष्ठ अवस्था) को नाथ कहा।

---

[602] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्धकापालिक साधना और साहित्य. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.पृ. 203.

[603] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ. 34.

[604] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 274.

[605] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. पृ.46.

[606] वही, पृ.66.

[607] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 365.

## 4.3.9 नाथ सिद्धों के सहजानंद का सहजयान पर प्रभाव :-

नाथ योगियों में सहज, परम तत्त्व के रूप में स्वीकृत है। जो शिव-शक्ति आदि से परे अव्यक्तावस्था है। मत्स्येन्द्रनाथ ने उस परम गुरू को प्रमाण किया है, जिनके मार्गदर्शन से सहजानंद को जाना है। जिसे जान लेने से योगी माया-जाल से मुक्त होकर बाह्याभ्यंतर दोनों में ही स्थिर हो जाता है। जल, थल, आकाश आदि सभी स्थान आनंद युक्त हो जाते हैं वही चराचर जगत में व्याप्त है। गुणातीत सारयुक्त शुद्ध परम अमृत का पान करता है। उसे ही अकुलवीर कहा गया है। यह गुह्य ज्ञान सिद्धनाथ के द्वारा सर्वजनों के हितार्थ उपदेश किया गया है। जिस तरह से सभी दिशाओं की नदियाँ अन्ततः सागर में विलीन हो जाती है। उसी प्रकार अकुलवीर[608] में सभी धर्मों का समन्वय हो जाता है। किन्तु शास्त्रजाल में मोहित न्याय, वैशेषिक, अरिहन्त, बौद्ध, वाम तथा दक्षिणमार्गी, सोमसिद्धांतवादी, मीमांसक, शैव आदि मिथ्या और निरर्थक भाषण, उपदेश करते हुए पाप कर्मों से बंधे रहते हैं।[609] सहज, पंच ज्ञानेन्द्रियादि से परे, भावाभाव से रहित सभी धर्मों का आधार है। जिससे स्वभाव, पूर्ण शांति में स्थिर हो जाता है। यह सभी प्रकार के आधारों से ऊपर निरालंब है।

सहज में स्थित योगी के लिए सभी प्रकार के शरीराधार हृदय, कण्ठ, घण्टिका, तालु आदि नाद, नाभिचक्र, नासिकाग्र, ललाट, हृदय, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आगम, नाभिचक्र, कण्ठ, सिर, बिन्दु धारणा, नासिकाग्र ध्यान, पूरक, कुम्भकादि, प्रवेश-निर्गमन, मुद्रा धारणा, सूर्य-चंद्र, भाव-अभाव, बिन्दु साधना, पूरक आदि अभ्यास, बाह्य अथवा अंन्तः आदि किसी भी क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रह जाती।[610]

योगी एकाकार, चराचर में अचल, निराभासता, निर्विकार, भेदरहित, तत्त्वातीत, शांत, निरंजन, सर्वज्ञ, कार्य-कारण मुक्त, भयातीत, निरालंब व्यापक व समत्व में स्थित हो जाता है। काष्ठ में अग्नि, पुष्प में गंध की भाति वह देह में ही

---

[608] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ. 84.

[609] वही, पृ. 84-85.

[610] वही, पृ.86-87.

विद्यमान है, किन्तु देह से परे है। उसे जान लेने पर से योगी निरालंब[611] हो जाता है।

सहज, अस्ति-नास्ति, मन, बुद्धि, चिंता, काल, ब्रह्मा, रूद्र, शिव-शक्ति, सुख-दुःख, छाया, ताप, शीत-उष्ण, उदय-अस्त, सीमा, तीर्थ से परे है। माता-पिता, वर्ण, स्नान, जप, तीर्थ, धारणा, ध्यान, धर्म-अधर्म आदि सहज (अकुल) में वर्जित हो जाता है। उस योगी का पुनः जन्म नहीं होता उस परमानंद को ही मत्स्येन्द्रनाथ ने सहजानंद[612] कहा है।

सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार सभी प्रकार के संकल्पों, इच्छाओं आदि से मुक्त चित्त की निर्विकल्पावस्था ही मुक्ति[613] है। इसे ही स्वरूप स्थिति अथवा कैवल्य आदि भी कहा गया है।

यह सहज अवस्था विभिन्न हठयौगिक अभ्यासों जैसे आसन, प्राणायाम, बंध व मुद्राओं के अभ्यास से कुण्ड़लिनी शक्ति (प्राण शक्ति) जागृत होकर सुषुम्ना में प्रवेश करता हुआ मेरूदण्ड में स्थित विभिन्न शक्ति केन्द्रों को जागृत कर नाद के साथ  भ्रूमध्य में पहुँच जाता है। जिसके अंतिम परिणति की अवस्था में शिव-शक्ति का समरसीकरण हो जाता है। यह शिव-शक्ति, इड़ा-पिंगला, सूर्य-चंद्र आदि दो विपरीत शक्ति धाराओं के भाव एवं रस ऐक्य होते-होते अंतिम अवस्था में प्रगाढ़ता में होकर सहजावस्था में स्थित हो जाते हैं, जहाँ उपरोक्त शिव-शक्ति, सूर्य-चंद्र आदि के भेद समाप्त होकर एक हो जाते हैं।

यह नाथ योगियों (सिद्धों) का स्वसंवेद्य[614] (स्वयं में स्वयं के द्वारा जाना गया) है। सिद्धों के अनुसार कुण्ड़लिनी के जागरण उपरांत किसी अभ्यासों की आवश्यकता नहीं होती स्वतः ही सहजावस्था की प्राप्ति हो जाती है, इसे ही समाधि, उन्मनी, राजयोग, मनोन्मनी, लय, अमरत्व, परमपद, शून्याशून्य,

---

[611] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ.100-03.

[612] वही, पृ. 92.

[613] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 51.

[614] वही, पृ.63.

अद्वैत,[615] अमनस्क, निरंजन, निरालंब, जीवनमुक्ति, तुर्या आदि नामों से संबोधित किया गया है।

सहजयानी सिद्धों में सहजावस्था निर्वाण से अलग नहीं है। सहज तत्व को सहजयानी सिद्धों ने परम लक्ष्य स्वीकार किया है। जिसे वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त से परे, गुह्य है। किन्तु इसे प्रतीक के रूप में प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, संसार-निर्वाण, चंद्र-सूर्य, आलि-कालि, मणि-पद्म कमल-कुलिश, स्त्री-पुरूष आदि के मेल से उत्पन्न माना है। इसे ही सिद्धों ने आदि बुद्ध और आदि प्रज्ञा कहा।[616] जो आदिकाल से अस्तित्व में थे। उपरोक्त प्रतीकों के अनुसार सहज दो का मिलित रूप है परंतु मूलरूप से एक है। इसे ही अद्वय कहा गया है।

उपरोक्त युगल के बिना संसार से पार होना या संसार और निर्वाण में समान दृष्टि प्राप्त करना असम्भव है। उपाय और प्रज्ञा का सामरस्य ही सहज है। सहज को प्रतीक रूप में हेरूक देवता और वाराही देवी को आलिंगन करते हुए चित्रित किया गया है। जिसमें हेरूक उपाय और वाराही प्रज्ञा का प्रतीक है। यही महासुख है जिसे निज स्वभाव कहा गया है। सिद्धों के अनुसार सहज की प्राप्ति के बाद संसार और निर्वाण दोनों समान हो जाते हैं और साधक निर्विकल्प पद में प्रतिष्ठित हो जाता है।

सहजानंद की प्राप्ति भी क्रमशः आनन्दों से होता हुआ अन्तिम में उपलब्ध होता है जो निम्नवत हैं- आनंद, आलिंगन[617] चुम्बन आदि से प्राप्त सुख के रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परमानंद में ज्ञान सुख का आनंद है। विरमानंद को समागम सुख की भांति माना है। आनंद को रागयुक्त साधना, परमानंद और विरमानंद वैराग्य की साधना है किन्तु अंतिम में सहजानंद राग और विराग दोनों से परे अव्यक्तावस्था[618] है इसे ही महा सुखावस्था भी कहा गया है। सहज की

---

[615] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. कैवल्यधाम, पुणे : स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ.129.

[616] डी, भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012. पृ. 129.

[617] भारती, धर्मवीर. सिद्ध-साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 219.

प्राप्ति में गुरू का विशेष महत्व  है। यह निर्वाण की अवस्था है जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से परे है। सहजानंद को उपलब्ध सिद्ध कृष्णपाद ने अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करते हुए कहा है कि अवधूती में बोधिचित्त के ऊर्ध्वगमन से साधक को अनहद नाद डमरू आदि वाद्ययंत्रों की ध्वनियाँ सुनाई देने लगती है। इसे ही वीरनाद की संज्ञा दी गयी है।

कृष्णपाद ने नाभिचक्र में उत्पन्न रागाग्नि को नियंत्रित कर लिया है और वीर की उपाधि धारण की है। जो वीर नहीं है, वे विषयासक्त होकर इस महा रागाग्नि में अपने को नष्ट कर ड़ालते हैं। कापालिक कृष्णपाद अवधूतिका की अशुद्धता को नष्टकर शुद्ध कर लिया है और संसार रूपी विषय के मध्य भी मतवाले हाथी की भाँति विचरण करते हैं।[619] अपने को अनंत एकरस में मिला लिया है, जहाँ भेद नहीं है, वहीं अद्वयता है।

सिद्ध सरहपा ने चित्त को संबोधित करते हुए कहा है कि, हे चित्त उस स्थान पर तुम्हें पूर्ण विश्रान्ति की प्राप्ति होगी जहाँ रात-दिन, जीवन-मृत्यु नहीं है, वहाँ केवल पूर्णानंद है। पूर्ण विश्रान्ति है। वहीं सहज है।*620*

उपरोक्त दोहे में सहजयानी सिद्धों ने प्रज्ञोपाय की गहनता में प्राप्त सहज को व्यक्त किया है, जहाँ चित्त की पूर्ण विश्रांति है। मूलतः इनके अभ्यासों में प्राण साधना से ही सहज तक पहुँचा जाता है। जब वज्रजाप संपन्न होता है, तब देहस्थ नाड़ियों से प्राण ललना और रसना में पहुँच जाता है, एवं मिलन की प्रगाढ़ता में वह अवधूती में मिल जाता है। जिससे प्राण नियंत्रित हो जाता है। जिसके प्रभाव से मन का कार्य स्थगित हो जाता है। तब अच्छे-बुरे, सही-गलत, संसार- निर्वाण में कोई भेद नहीं रह जाता। चित्त स्थिर हो जाता है। यही चित्त का मूल स्वभाव एवम् स्थिरावस्था है। सहजयानी सिद्ध सरह उसी का उपदेश कर रहे है। सिर्फ

---

[618] त्रिपाठी, रामशंकर.  नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय  उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006. पृ.15.

[619] बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956. पृ.30.

[620] यादव, डॉ. द्विजराम. वज्रयानी सिद्ध सरहपाद. कलकत्ता : हिंदी भवन विश्वभारती, शांतिनिकेतन,1981.पृ. 90.

प्रज्ञा या उपाय से बुद्धत्व लाभ नही होता, इसके लिए दोनों का साम्य या अभिन्नता चाहिए। उस अवस्था में भोग और मोक्ष दोनों समान हो जाते हैं।

सिद्धों ने सहजानंद की उपलब्धता के लिए जोर देकर कहा है कि इसकी अनुभूति इसी देह में ही सम्भव है। वह तत्त्वातीत[621] इसी देह में ही उपस्थित है। परन्तु जो इसकी प्राप्ति के लिए शास्त्र, मूर्ति बाहर की यात्रा करते है, वे इसे जान नहीं पाते और आवागमन का खण्डन नहीं हो पाता।

जब तक सहज[622] की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक ललना और रसना नाड़ियों में प्राण अपना कार्य करता रहता है, जो स्व केंद्रित और कर्तापन से युक्त होता है। यह अभिमान का मूल कारण है। जिससे संकल्प-विकल्प की उत्पत्ति होती है। अन्ततः संस्कारों का निर्माण क्रम आरम्भ हो जाता है, परन्तु जब सहजावस्था की प्राप्ति होती है, तब यह सत्य ज्ञान होता है कि इस जगत में कर्ता कोई नहीं है। सांसारिक सभी कार्य अपने स्वभाव से उत्पन्न होते है और स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं।[623] कर्तापन केवल मिथ्या मात्र है।

सिद्धों के अनुसार सहजावस्था की अभिव्यक्ति उष्णीष अर्थात् सबसे ऊपर स्थित कमल पर होता है। इस पथ में ब्रह्मचर्य (बिन्दु) की स्थिरता आवश्यक है। किन्तु नाड़ियों में नियंत्रण नहीं होने से ब्रह्मचर्य[624] स्थिर नहीं होता तब उनका प्रयास व्यर्थ हो जाता है। सामर्थवान बिन्दु को स्थिर कर उनका चालन करते हुए ऊपर उठाकर मध्यपथ अवधूती से ऊर्ध्वगमन कराते हुए उस महासुख स्थान, उष्णीष कमल तक पहुँचा कर परम पुरूषार्थ से पूर्णानंद को जानता है।

गुरू निर्देश और साधना बल से कन्हपा ने इस पर विजय पाया है। वहीं डोम्बी के परिशुद्ध रूप में होने से ही बोधिचित्त का ऊपर की ओर गमन संभव हो पाता है और यह डोम्बी साधक को उस महासुख स्थान पर प्रतिष्ठित कर देती है। जिससे सभी तरह के द्वैत भाव विलुप्त हो जाते हैं। तब योगी दिव्य रूप में

---

621 उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ.113.

622 डी.,भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012.पृ.130.

623 कविराज, गोपीनाथ.भारतीय सधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007. पृ.87.

624 वही, पृ. 88.

प्रतिष्ठित हो जाता है। यही अद्वैय अथवा महासुख[625] है, जो सहज के नाम से प्रख्यात है।

उपरोक्त सहजानंद नाथ सिद्धों में अंतिम उपलब्धि है। उसी प्रकार सहजयानी साधना में भी यह उष्णीष कमल में ही इसकी अभिव्यक्ति का उल्लेख है। दोनों ही साधनाओं में यह पूर्ण आनंद, इड़ा-पिंगला अथवा नामांतर भेद से ललना-रसना के मिलन की प्रगाढ़ता में अंतिम में उत्पन्न होता है, जहाँ संसार-निर्वाण आदि द्वैत भाव समाप्त होकर अव्यक्त पूर्णानंद में योगी निमग्न हो जाता है। वह योगी जगत में कमल पत्र के समान अप्रभावित रहता हुआ सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है।

सहजयानी सिद्धों के पूर्व की परम्पराओं का अवलोकन करने पर सहज का प्रयोग प्राप्त नहीं होता। वज्रयानी प्रसिद्ध सिद्धों ने अपनी साधना और ग्रंथों में सहज को क्रमशः स्थान देते हुए साधना में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के मंत्र, धारणी, मण्डल, आदि बाह्याचारों का विरोध करते हुए इन्हें व्यर्थ कहने लगे। जिस तरह से मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा है कि सहजानंद में प्रतिष्ठित होने वाले योगी के लिए प्राणायाम, ध्यान, समाधि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती उसी प्रकार सहजयानियों ने इसका अनुसरण करते हुए सहज को अपनाते हुए वज्रयानी सम्प्रदाय में उपरोक्त मंत्र, मंड़ल आदि को नकारते हुए सहज की प्रतिष्ठा की।

## 4.4 नाथ सिद्धों की रचनाओं का सहजयान पर प्रभाव :-

महामहोपाध्याय पं हरप्रसाद शास्त्री के द्वारा सहजीया सिद्धों की रचनाओं को पुरानी बांग्लालिपि संबोधित करते हुए इनका प्रकाशन किया गया। तब बंगाल के भाषाविदों एवं इतिहासकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होने लगा एवं इन रचनाओं की भाषाशैली और लिपि के आधार पर इनका कालनिर्णय होने लगा। जिसमें प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ तथा इतिहासकार राखालदास बनर्जी ने इन रचनाओं की शैली के आधार पर इन्हें चौदहवीं शताब्दी[626] के बाद की रचना

[625] त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, वाराणसी. 2001. पृ. 23.

[626] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ.25.

स्वीकारते हैं। वहीं हरप्रसाद शास्त्री सरह की रचनाओं का काल बारहवीं शताब्दी[627] मानते हैं। डॉ. प्रबोधचंद्र बागची, विनयतोष भट्टाचार्य आदि विद्वानों के अनुसार सहजयानी सिद्धों की अभी तक ज्ञात चर्यापदों, चर्यागीतिकोष, डाकार्णव आदि रचनाएँ का उनकी भाषाशैली, लिपि आदि के आधार पर ये तेरहवीं शताब्दी के बाद की जान पड़ती है।

मत्स्येन्द्रनाथ कृत कौलज्ञाननिर्णय की आठ हस्तलिपियों में से केंब्रिज विश्वविद्यालय में रखी हुई दो हस्तलिपियों पर क्रमशः1008ई. और 1065ई.[628] उल्लेखित हैं। इस प्रकार यह दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी की रचना जान पड़ती है। बैडले ने  कौलज्ञाननिर्णय के एक हस्तलिपि का काल 9 वीं शताब्दी बताया है।

अतः उपरोक्त विवरणों से यह प्रमाणित होता है कि सहजयानी सिद्धों के पूर्व मत्स्येन्द्रनाथ कृत कौलज्ञाननिर्णय में हठयोग से संबंधित विभिन्न साधना पद्धतियों का उल्लेख हो चुका था। इन साधना पद्धतियों को सहजयानी बौद्ध सिद्धों ने भी अपनाया और उन्हें अपने सम्प्रदाय के अनुकूल, बौद्ध शब्दावलियों में प्रस्तुत करते गए।

## 4.4.1 नाथ साधना का हेवज्रतंत्र तथा उनकी टीका पर प्रभाव :-

हेवज्रतंत्र एवं उनकी टीका योगरत्नमाला  और मुक्तावली, सहजयानी सिद्धों के मान्य ग्रंथ हैं। इनमें बत्तीस नाड़ियों में नाथ सिद्धों के इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के समान तीन प्रमुख नाड़ियाँ ललना, रसना और अवधूती की चर्चा है। चार प्रमुख चक्रों में निर्माण, धर्म, सम्भोग तथा महासुख का उल्लेख,[629] आनंद, परमानंद, विरमानंद तथा सहजानंद नामक चार आनंदों का क्रम, प्राणायाम के अंतर्गत पूरक, कुम्भक, रेचक तथा प्रशांत अवस्था एवं बौद्ध कापालिक साधनाओं का विस्तार से विवरण प्राप्त होता है। हेवज्र में हे से तात्पर्य महाकरूणा और वज्र का अर्थ प्रज्ञा से है[630] इस प्रकार यह ग्रंथ प्रयोपायात्मक योग का उपदेश करता है,

---

[627] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968.  पृ. 24.

[628] बागची, प्रबोधचंद. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, 1934. पृ. 04.

[629] न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी : इंडियन माइंड, 2012. पृ. 19.

[630] वही,. पृ. 16.

जो सहजीया सिद्धों की मूल साधना है। इस साधना में सफल सिद्ध ही वज्रधर कहलाता है, इसे ही नाथ[631] कहकर भी संबोधित किया गया है। हठयोगी आरंभ से ही अपने परमाराध्य को नाथ कहकर ही संबोधित करते आ रहे हैं।[632]

हेवज्रतंत्र में साधना के चार प्रसिद्ध पीठों के अंतर्गत जालंधरपीठ[633]का उल्लेख किया गया है।जालंधरनाथ नव प्रसिद्ध नाथों की विभिन्न सूचियों में शामिल हैं। वहीं कौलज्ञाननिर्णय साधना पीठों में क्रमशः कामाख्या, पूर्णागिरी तथा ओडियान[634] का उल्लेख करता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नाथ साधना में प्रसिद्धि को प्राप्त करने के उपरांत जालंधरनाथ प्रसिद्ध हो चुके थे। तब हेवज्रतंत्र में कौलज्ञाननिर्णय के समान ही तीन पीठों के उपरांत चतुर्थ पीठ के रूप में जालंधरपीठ को भी शामिल किया गया।

## 4.4.2 सहजयानी सिद्ध परम्परा का तिब्बत में अस्वीकृति :-

तिब्बत के तंग्युर को सहजयानी सिद्धों के रचनाओं का संग्रह स्थान माना जाता है। जहाँ इनकी पोथियाँ आज भी सुरक्षित हैं, किन्तु उन स्थानों पर सहजयानी (भारतीय और तिब्बती) सिद्धों की ज्ञान परम्पराओं का प्रचलन नहीं है। सहजयानी सिद्धों में शामिल मैत्रीपा के एक शिष्य दीपंकर श्रीज्ञान लगभग दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत के पश्चिमी क्षेत्र में सहजयानी सिद्धों की तरह कर्मकाण्ड़ो की अनुपयोगिता, दीप जलाने की निर्थरक, भावना क्रम की व्यर्थता व प्रदक्षिणा आदि साधनाओं को अनावश्यक बताते हुए सिद्धों की सहज साधना का युवक-युवतियों के मध्य प्रचार-प्रसार करने लगे थे। यह साधना तिब्बती साधकों में शामिल युवक युवतियों को तो अच्छी लगने लगी थी किन्तु वहाँ के स्थिवीर

---

631 उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 365.

632 बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित.कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934. पृ.73-74.

633 त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, वाराणसी, , 2006, पृ.56.

634 बागची, प्रबोधचंद. संपादित. कौलज्ञाननिर्णय. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ. 24.

वादी आचार्यों ने दीपंकर श्रीज्ञान का विरोध किया और तर्क दिया की इनसे इन साधकों का आचार बिगड़ने लगेगा इस प्रकार दीपंकर श्री ज्ञान का विरोध होने लगा था। साथ ही उन स्थिवीरवादियों ने 8वीं शताब्दी में हुए महायानी आचार्य ह्वशंग और भारतीय आचार्य कमलशील के मध्य हुए शास्त्रार्थ में महायानी साधक के हार का उल्लेख करते हुए तांत्रिक साधनाओं का विरोध किया।[635] इस प्रकार तिब्बत में सहज साधना को अस्वीकृति प्राप्त हुई एवं इसे स्थवीरवादियों ने नकार दिया इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सहज साधनाएँ सिद्धों के द्वारा अपने पूर्व परम्पराओं से नहीं वरन मध्यकाल में प्रसिद्ध नाथ साधनाओं से अपनायी गयी थी।

## 4.5 नाथ सिद्धों के दर्शन का सहजयानी सिद्धों पर प्रभाव :-

### 4.5.1 नाथ एवं सहजयानी साधना में जीव एवं जगत का विचार :-

नाथ सिद्धों (योगियों) ने भारत की विभिन्न सम्प्रदायों की भांति विभिन्न तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर अपने दर्शन को प्रस्तुत नहीं किया हैं, वरन इन सिद्धों की मान्यता है कि विभिन्न प्रकार के तर्कों एवं विवादास्पद विषयों में नहीं पड़ते हुए यौगिक साधनाओं में रत रहते हुए आध्यात्मिक अनुभूतियों को ही महत्त्व दिया जाना चाहिये। इस प्रकार वे दर्शन और प्रतिवादों में तनिक भी विश्वास नहीं करते थे किन्तु नाथ साहित्यों की साधनाओं, सिद्धांतों एव अनुभूतियों आदि के अवलोकन से उनके दर्शन को जाना जा सकता है।

इस विषय में गोरक्षनाथकृत सिद्धसिद्धांतपद्धति महत्वपूर्ण हैं। जिसमें कहा गया है की प्रलयकाल (कर्ता और कार्य की अनुपस्थिति) में अव्यक्त परमब्रह्म में वह शक्ति आश्रित होकर विद्यमान रहती है। उस परब्रह्म को अनामा कहा गया है, जो अव्यक्त है, एवं सभी के कारण रूप, स्वयं अकारण हैं। जो अनादिकाल से स्वयं सिद्ध  एवं मृत्यु से परे सिद्धों के परम लक्ष्य हैं। इसी अनामा में सिसृच्छा के

[635] कृष्णनाथ. बौद्ध निबंधावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : सारनाथ केंद्रींय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, 1998. पृ. 89.

कारण शक्तियाँ कार्य करती हैं। तब सृष्टि में विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। ये क्रमशः निजा, परा, अपरा, सूक्ष्मा एवं कुण्डलिनी कही गयी है।

उपरोक्त शक्तियों के साथ अनामा में मानस अहलाद, कम्पन, सृष्टि निर्माण का अभिमान एवं वेदनशीलता की अभिव्यक्ति होती है। उपरोक्त उल्लेखित पंच शक्तियों में से कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सहस्रार में नियोजित करना ही नाथ सिद्धों का परम उद्देश्य है। यह कुण्डलिनी सामान्यावस्था में अधोगति करने वाली एवं सांसारिक होती हैं, किन्तु हठयोग की साधना से जागृत होने पर योगी को मुक्त कर देती है।

उपरोक्त पंच शक्तियों, निजा, परा आदि के मिलने से परपिण्ड शिव का आविर्भाव होता है। यहाँ पर शिव से अर्थ अनामा ब्रह्म से नहीं है, वरन सृष्टि के संचालक एवं संहारक उपाधियुक्त शिव हैं। पंच शक्तियों के पंच देव संयुक्त होकर अनादिपिण्ड की उत्पत्ति करते हैं। अनादिपिण्ड से आदि पिण्ड की उत्पत्ति होती है। इसके क्रम में अनादिपिण्ड से परमानंद, परमानंद से प्रबोध, प्रबोध से चिदुदय, चिदुदय से चित्प्रकाश, चित्प्रकाश से सोऽहमभाव की उत्पत्ति होती है। उपरांत महाभूतों (महासाकार पिण्ड) की उत्पत्ति, महाभूतों की उत्पत्ति का कारण आद्यपिण्ड है। जिससे महाकाश, महावायु, महातेज, महासलिल, महापृथ्वी उत्पन्न होते हैं। महासाकार पिण्ड से क्रमशः शिव, शिव से भैरव, भैरव से श्रीकण्ठ, श्रीकण्ठ से सदाशिव, सदाशिव से ईश्वर, ईश्वर से रूद्र, रूद्र से विष्णु, विष्णु से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती हैं।

उपरोक्त देवों के द्वारा ही सृष्टि में सृजन, पालन एवं संहार आदि कार्य संपादित किये जाते हैं। प्रकृतिपिण्ड (शरीर) ब्रह्म के द्वारा महाकाशादि के अवलोकन से नर-नारी के रूप के समान प्रकृति पिण्ड उत्पन्न होते हैं। जिनमें सभी प्रकार के जीव वनस्पति आदि सम्मिलित हैं। पंच महाभूतों के गुणों से युक्त प्रकृति पिण्ड को ही शरीर कहा गया है। इसी देह में ही भूमि, जल, तेज, वायु एवं आकाश अवस्थित हैं एवं अन्तःकरण पंचक, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चैतन्य शामिल हैं। उपरोक्त पंच शक्तियों से लेकर अंतःकरण पंचक आदि तक सभी के पंच पंच गुणों का विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है।

दस प्रधान नाड़ियाँ, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि का उनके उत्पत्ति स्थान, प्रवाह आदि का विस्तार है। इस देह में ही इड़ा बायीं नासिका, पिंगला दाहिनी नासिका एवं सुषुम्ना तालु मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक स्थित होती है। इसी में ही प्राण, अपान, समान आदि दस वायुओं का स्थान हैं। प्राण एवं अपान का पूरक, रेचक एवं कुम्भक के अभ्यास से ऐक्य करना ही हठयोग है।

शरीर की उत्पत्ति नर एवं नारी के क्रमशः वीर्य एवं रज के संयोग एवं संयोग काल में मनोदशा, पुत्र एवं पुत्री की प्राप्ति, युगल संतान की उत्पत्ति के कारण से लेकर विभिन्न समयांतराल में गर्भ में उस जीव के अंगों, उपांगों, नख, बाल, त्वचा आदि के विकास एवं दसवें मास में गर्भ से जीव की उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख है। उत्पन्न शिशु के शरीर में सप्तधातुओं के नामों के साथ उनके मात्राओं की चर्चा सूक्ष्म रूप में प्राप्त होती है, साथ ही अस्थि के संधियों, रोमकूपों की संख्या तीन करोड़ पचास लाख तक होती है।

इस प्रकार माता-पिता के रज और वीर्य, त्रिदोषों (वात, पित्त एवं कफ) एवं सप्त धातुओं आदि से बने इस शरीर का विस्तृत उल्लेख है। उपरोक्त हठयोग के दर्शन क्रम में अनामा ब्रह्म से लेकर मानव देह तक की उत्पत्ति में विश्व ब्रह्माण्ड[636] की उपस्थिति को देखा जा सकता है।

सहजयानी सिद्धों की दार्शनिकता का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि इन्होंने सहज देह की प्राप्ति के क्रम में स्कन्ध, धातु, ज्ञानेन्द्रिय, विषय, कर्मेन्द्रिय आदि का विस्तार से उल्लेख करते हुए पिता के शुक्र से देह में अस्थि, मज्जा, नाड़ी, बाल और रोम आदि तथा माता के रज से रक्त, मांस और त्वचा आदि के निर्मित होने की विस्तार से चर्चा करते हुए उपरोक्त सभी प्रकार के सम्पदाओं का आश्रय स्थान चित्त को माना हैं।

इस प्रकार दृश्यमान जगत को चित्त का ही प्रक्षेपण मानते हुए, स्वयं के संकल्प-विकल्प से निर्मित माना है। इन्होंने इन्द्रियजन्य ज्ञान को अस्वीकार्य करते हुए, देह को मुक्ति का मूल माध्यम मानकर काय साधना को स्वीकार्य किया है।

---

[636] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 44.

तीर्थ सेवन, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड आदि को अस्वीकार कर शास्त्रीय विवेचना को महत्त्व नहीं देते हुए शुद्ध अनुभूतजन्य विषयों आदि पर ही अपने मतों को विभिन्न कविताओं, रचनाओं, दोहाकोश, गीतों के रूप में प्रस्तुत किया।

सिद्ध लुईपाद चौरासी सिद्धों में प्रथम स्थान रखते हैं। इन्होंने इस देह को वृक्ष की संज्ञा देते हुए इसके पंच स्कन्ध, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान को शाखाऐं स्वीकार करते हुए चित्त की चंचलता से मानव देह का काल के वशीभूत होकर नष्ट हो जाने की बात कही है। अतः चित्त के प्रपंच से उत्पन्न सुख-दुःख से प्रभावित हुए बिना योग्य गुरू के शरण प्राप्त कर महासुख की अनुभूति प्राप्त करने का उपदेश किया है। इसी महासुख की अनुभूति को ही सहजयानियों ने विभिन्न स्थानों पर निर्वाण कहा है चूंकि यह स्थिति सभी दिशाओं से परे है, इसे समझाया अथवा बतलाया जाना संभव नहीं अतः इसे ही शून्यता भी कह दिया गया है।

उपरोक्त शून्यता का निर्देश करते हुए लुईपाद ने कहा है कि चित्त को इन्द्रियादी विषयों से हटाकर शून्य में लगाना चाहिए। प्राप्त गहन अनुभूति का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा है की वह परम स्थिति भाव-अभाव से परे प्राण की स्थिरता में कुम्भक समाधि से संभव हो पाया है। यह भाव-अभाव की स्थिति से परे अवर्णनीय है। चर्यासंग्रह में राग विभास के कथनानुसार यह परम अवस्था न सुना जा सकता हैं और न ही बताया जा सकता हैं। यहाँ घृणा, मोह, शौच, पवित्रता, राग, द्वेष नहीं है और न ही यहाँ शून्य है और न ही किसी की उपस्थिति है। यह निरतरंग विशुद्ध रूप से सहज है।

भुसुकपा ने इस दृश्यमान जगत को अवास्तविक अस्थिर मानते हुए नदी की भाँति प्रवाहमान एवं केवल प्रतिभासित (प्रतिबिम्ब) कहा है। उपरोक्त कथन को सिद्ध करने के लिए रज्जु में सर्प दिखाई देना, रेगिस्तान में पानी का भ्रम होना, रेत से तेल निकालना, आकाश में फुल खिलना आदि विभिन्न प्रकार के उद्धरणों को प्रस्तुत किया गया है। जगत के इस वास्तविकता का अनुभव नहीं होने के कारण सामान्यजन अविद्या के प्रभाव से इसे सत्य मान बैठते हैं और कामनाओं के साथ जीवन को समाप्त कर लेते हैं। अतः भुसुकपा का कथन है कि

सद्गुरू के सानिध्य में वासनाओं का क्षय होकर इस प्रतिभासित जगत से मुक्ति मिलती है। तब वास्तविक ज्ञान का उदय संभव हो पाता है।

सिद्ध चाटिलपाद ने जगत की नश्वरता एवं गतिशीलता को नदी के प्रवाहमान जल से संबद्ध कर समझाने का प्रयास किया है कि जिस प्रकार नदी में जल का प्रवाह निरंतर बना रहता है। उसी प्रकार यह भासमान जगत भी गतिशील है, यही इसकी नश्वरता एवं अस्थिरता का कारण है किन्तु यह जगत, चित्त की विशुद्धता नहीं होने पर भयंकर जलप्रवाह के समान स्थिर दिखाई पड़ता है, जो वास्तव में नहीं है।

प्रसिद्ध सहजयानी सिद्ध कण्हपा प्रतिभासित जगत को चित्त की उपज कहते हुए उसी के विभिन्न कल्पनाओं आदि विकल्पों का परिणाम माना है। साथ ही कहा है की पंच स्कन्धों  के परे चित्त की शून्यता ही परमसुख का द्योतक है, किन्तु सामान्यजन इसी पंच स्कन्धों को ही सब कुछ मानकर परमानंद से वंचित रह जाते हैं। मृत्यु के उपरांत भी हमारा परमानंद सहज रूप विद्यमान होता है, जो सर्वव्यापी एवं शाश्वत है। सहजसुख के अनुभव को साक्षा करते हुए कहा है की इस अवस्था में न ही हम सोए हुए होते हैं, और न ही जागृत। चेतना की पूर्ण उपस्थिति में स्थित कण्हपा ने इसे सहजनिद्रा कहकर संबोधित किया है। कण्हपा, हाथी की तरह उन्मत्त होकर सहज नामक नलिनी वन में प्रवेश कर निर्विकल्पावस्था में स्थित है।

भुसुकपा ने कहा है कि निज में उत्पन्न सहजावस्था की अनुभूति होते ही इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के विषय जाल मानों लुप्त हो गये है और अपूर्व पूर्ण उल्लास[637]  का अनुभव हो रहा है। जैसे पूर्ण चन्द्रमा उदित होकर अपना प्रकाश प्रसारित कर रहा हो।

[637] चतुर्वेदी, परशुराम. बौद्धसिद्धों के चर्यापद. प्रथम संस्करण. वाराणसी : भारतीय विद्या प्रकाशन, 1969. पृ. 66.

### 4.5.2 नाथ साधना में सिद्धदेह एवं सहजयान में वज्रदेह :-

हठयोग साधना में मानव देह का विशेष महत्त्व है। नाथ सिद्धों ने विभिन्न स्थानों पर इसे ही परिपक्व करने की बात कही है, जो की सामान्य अवस्था में वात, पित्त, कफ आदि के असंतुलन से मृत्यु के आधीन बना रहता है। अतीन्द्रिय ज्ञान का आधार देह ही है। अतः देहसिद्धि अत्यंत आवश्यक है। शरीर में इन्द्रियों की चंचलता का कारण प्राण ही है, जो सामान्यावस्था में चित्त में अस्थिरता उत्पन्न करता है। यही आत्मिक उन्नति में बाधक है। नाथ योगियों ने यौगिक अभ्यासों से प्राणजय कर योगाग्नि के द्वारा देह को शुद्ध कर सिद्धदेह का उपदेश किया है।

देह सिद्धि के लक्षणों में देह की निर्मलता, रोगराहित्यता, जड़ता की समाप्ति, देह का कांतियुक्त होना, नयनों में तेज, मुख में सुंदरता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, प्राणजय, चित्त की स्थिरता आदि प्रसिद्ध है। उपरोक्त लक्षण बाह्य है।

आंतरिक लक्षणों में जिस देह में क्षुधा, तुष्णा, कामादि, जरा एवं मृत्यु व्याप्त नहीं होते उसे ही शुद्ध देह कहा गया है। उपरोक्त देह की प्राप्ति के लिए हठयोग में प्राणजय एवं रसायनादि का प्रयोग उल्लेखित है। जिसके सिद्ध हो जाने पर यह अमर देह के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। हठयोगियों के अनुसार सिद्ध देह की प्राप्ति शक्ति की दो विपरीत धाराओं प्राण शक्ति और चित्त शक्ति अथवा प्राण और अपान के मिलन के बिना संभव नहीं है। जब प्राणायाम का अभ्यास आसन की स्थिरता, मिताहार के अनुशासन व गुरू के निर्देशन में आरंभ किया जाता है, तब अभ्यास की निरंतरता में शक्ति के दो वक्र धाराऐं प्राण और अपान इन्द्रियों और विषयों से हटकर सरल पथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। यह क्षण दुर्लभ है। प्राण के सुषुम्ना में प्रवेश से साधक का इन्द्रियों और पंच प्राणों पर नियंत्रण संभव हो पाता है, जिससे चंचल चित्त पर नियंत्रण स्थापित होने लगता है।

हठयोगियों के अनुसार इस अवस्था को ब्रह्मचर्य से ही पाया जा सकता है। बिन्दू (शुक्र) पर नियंत्रण के बगैर कुण्डलिनी का जागरण संभव नहीं और बिना कुण्डलिनी जागरण के सिद्ध देह की प्राप्ति असंभव है। प्राचीन समय से ही देह

साधना का प्रयत्न चला आ रहा है। जिसमें तांत्रिक और कौलसाधना में प्रसिद्ध वीर साधना और कुल प्रक्रिया भी इस देह साधना अथवा काय साधना का ही प्रकार है। इसमें शरीर और मन का साधन सम्यक रूप से अनुष्ठित किये जाने पर पूर्णरूप से लाभ होता हैं। तब इस देह में काल का प्रवेश नहीं हो पाता एवं यह विकार रहित भी होता है।

इस देह सिद्धि के भी दो प्रकार है। प्रथम में देह, बुढ़ापा और मृत्यु को प्राप्त नहीं होता जिसे अपर सिद्ध देह कहा जाता है। नाथ योगियों का कथन है कि यह देह समस्त शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है जिससे इसे लघु और विभू आदि रूप में बदला जा सकता है। इसे मंत्रों, औजारों आदि अन्य किसी भी शक्तियों से नष्ट नही किया जा सकता और न ही मृत्यु भी इसे प्रभावित कर सकती है।

किन्तु उपरोक्त देह में मन पूर्णरूप से निर्विकार (वासना शून्य) नहीं हो पाता। उस समय मन को भी ब्रह्मरूप में परिणत करना होता है। जिसमें प्रणव साधना का आलम्बन लिया जाता है यही ब्रह्मोपासना है जिससे देह विशुद्ध चिन्मय स्वरूप में परिणत हो जाता है। इसे ही परसिद्ध देह कहा गया है तभी पूर्णसिद्धता सम्पन्न होती है।

कौलज्ञाननिर्णय में भैरव ने देवी के प्रश्न पर प्रलयकाल में वज्रयोग के प्रयोग का उपदेश किया है। जिस देह में जरा-मरण, विषाद, हर्ष, मोह, रोग, मद, लोभ, चिंता आदि नहीं होते। वह योगी वज्रदेह  प्राप्त कर स्वयं शिव होकर आकाशवत् हो जाता है एवं बाह्य जगत से कमल पत्र के समान अप्रभावित रहता हुआ योगीराट के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। जहाँ वह माया से संबंध विच्छेद होकर शक्तिस्वरूप चिदाकार में अवस्थित होता है।

बौद्ध सिद्धों ने अपनी साधना में देह को वज्र के समान किसी भी परिस्थितियों से अप्रभावित रहते हुए इसी में ही उस परमतत्त्व की अनुभूति करने की बात स्वीकार की है। इसी देह में ही बुद्ध का वास है। जिसे अज्ञानी जान नहीं पाते की इसी देह में ही बुद्ध के साथ भगवती नैरात्मा निवास करती है और हम

उसे बाह्य अनुष्ठान के माध्यम से बाहर खोजते फिरते हैं। सिद्ध कण्हपा ने इसी देह रूपी नगर में कापालिक योग के द्वार विहार का वर्णन किया है।

सरहपा काया रूपी नौका के खेवनहार मन को प्रज्ञोपाय योग से विशुद्ध करने की बात करते है। यह देह सभी साधनों में श्रेष्ठ है। जिसमें गंगा-यमुना, सूर्य-चंद्र, वाराणसी, प्रयाग, पीठ, उपपीठ, धर्मक्षेत्र आदि विद्यमान है। अतः तीर्थाटन, बाह्यानुष्ठान आदि निरर्थक कार्य छोड़ देने चाहिये। महासुख का वास इसी देह में ही है किन्तु वह देह नहीं है। जो पवन के निरोध, मेरूदण्ड में बोधिचित्त के ऊपर गमन करता हुआ कमल से (प्रज्ञा) योग करता है। तब अमृत वर्षा संभव हो पाती है। उपरोक्त सभी का आधार देह ही है।

## 4.5.3 नाथ साधना में कुण्डलिनी एवं सहजयान में चण्डाली शक्ति :-

अनन्त शक्तिमान परमेश्वर ही विश्व रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करते है। सिद्धों के अनुसार परापर स्वरूप शक्ति ही मानव देह में स्थित है। इस शक्ति की जागृत करने वाले सिद्ध ही पिण्डसिद्ध के रूप में प्रसिद्ध है। यह शक्ति गुदामार्ग से दो अंगुल ऊपर एवं लिंगमूल से एक अंगुल नीचे चार अंगुल के परिमाप वाला समकोणाकार कंद का स्थान है। इसी कंद के ऊपर मध्यभाग में कुण्डलिनी का वास है। सामान्यावस्था में यह कुण्डलिनी सभी नाड़ियों के उद्गम स्थान में साढ़े तीन फेरे लिये हुए पूछ को अपने मुख में दबाकर स्थित है।

यह सत्व, रज एवं तम की माता वाणी की देवी एवं विष्णु की स्वर्ण कांतियुक्त शक्ति हैं। यह लाल वर्ण युक्त कामबीज की प्रतीक हैं। इस कंद मध्य में स्थित सुषुम्ना, कुण्डलिनी एवं कामबीज तीनों सम्मिलित रूप से त्रिपुर भैरवी कही गयी है। उपरोक्त तीनों करोड़ों सूर्य एवं चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित है। क्रिया शक्ति एवं ज्ञान शक्ति के रूप में शरीर में ऊर्ध्व, अधः एवं मध्य में भ्रमणशील रहती हुई कभी सूक्ष्म रूप, कभी अग्निशिखा सदृश एवं कभी स्वयंभूलिंग के नाम से जानी जाती हैं। नामांतर भेद से यही व्योमालिनी, खेचरी, वामाख्या, ज्येष्ठा, रूद्रशक्ति, कामाख्या , कुटिलांगी, शक्ति, ईश्वरी अरून्धती है।

मानव देह में कुण्डलिनी शक्ति प्रबुद्ध एवं अप्रबुद्ध दो रूपों में स्थित है। अप्रबुद्ध रूप में यह नाना प्रकार की चिंताओं, सांसारिक व्यापार, प्रपंच, निम्नगामी होकर कार्य करती है। परन्तु यह योग साधनाओं से जागृत होने पर उपरोक्त विकारों का त्याग कर मूलशक्ति के रूप में प्रसिद्ध होती है। कुण्डलिनी शक्ति में ही सभी तत्वों का वास है। यह जगत की कारण रूपा है। यह शक्ति योगी को स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठित कर देती है। अधःशक्ति, इन्द्रियों की चंचलता एवं विभिन्न प्रकार के इच्छाओं की पूर्ति की चिंताओं के कारण यह शक्ति निम्नगामी होती है।

अतः योगियों के द्वारा मूलाधार (गुदाद्वार एवं लिंग द्वार के मध्य स्थान) का आकुंचन करते हुए मूलबंध के अभ्यास से इसे ऊपर उठाया जाता है। इस मूलाधार से ही दृश्यमान जगत उत्पन्न हुआ है। अतः मूलबंध से इस अधः शक्ति को योगी द्वारा जागृत किया जाता है। मध्यमा शक्ति कुण्डलिनी का स्वरूप चंचल स्वभावा होने के कारण जीवात्मा को भ्रमणशील बनाये रखती है। वह इसी मध्यमा शक्ति में स्थित होती है।

महासिद्धों के द्वारा इस शक्ति के स्थूल एवं सूक्ष्म दो भेद कहे गये है। स्थूल एवं सूक्ष्म कुण्डलिनी, स्थूल रूप में यह शक्ति सांसारिक पदार्थों, भागों आदि स्थूल जगत में भ्रमण करती रहती है एवं उन्हीं पदार्थों को ही अपना स्वरूप समझती है। इसे ही स्थूल (साकार) कुण्डलिनी कही गयी है। शक्ति की इन अवस्थाओं को सिद्धों ने जाना है। इस प्रकार सूक्ष्म रूप वाली विषय रहित पराशक्ति युक्त मध्यमा शक्ति कुण्डलिनी को सद्गुरू के मुख से जानना चाहिये। यह शक्ति सभी प्रकार के तत्वों से ऊपर होने के कारण नाना प्रकार के सिद्धियों को प्रदान करने वाली परम पद प्रदायिका कहलाती है।

सहजयानी सिद्धों के अनुसार नाभि में प्रज्ज्वलित यह शक्ति प्रज्ञास्वभावा होने के कारण आलि कहलाती है। इसका बीजाक्षर अंकार है और देह में इसका स्थान वाम भाग (वाम नाड़ी) है। वज्रसत्व अथवा उपाय का बीजाक्षर हूँकार है और देह में इसका स्थान दक्षिण भाग (दक्षिण नाड़ी) है। गुरू के उपदेश से साधना

की गहनता में ही दोनों मध्यनाड़ी से संयुक्त होते हैं, तब यह चण्डाली जागृत होकर साधक को महासुख प्रदान करती है।

## 4.5.4 नाथ और सहजयानी सिद्धों के देहस्थ चक्र एवं शून्यता:-

सुषुम्ना मार्ग में यह शक्ति ऊर्जा केन्द्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा का भेदन करती है, तब ये सभी चक्र, कमल रूप में परिणत हो जाते हैं। मूलाधार से लेकर विशुद्धि पंचभूत के साथ तथा ऊपर आज्ञा चक्र चित्त (मन, बुद्धि अहंकार) के साथ संबंधयुक्त होता है। आज्ञा चक्र में हंकार बिन्दु युक्त और सः कार विसर्ग युक्त होकर द्विदल में विद्यमान होते हैं।

कुण्डलिनी के जाग जाने से मूलाधार आदि की दीवार गिर जाती है। विभिन्न प्रकार की मात्रिकायें जो पद्मदलों में विद्यमान है वे सभी गल जाते हैं। उपरांत नाद की उत्पत्ति होती है, जो आज्ञाचक्र तक चलती है। आज्ञा चक्र में केवल बिन्दु की स्थिरता से शिव नेत्र भी खुल जाता है। तब यहाँ से एक मार्ग सहस्त्रदल में परमेश्वर की ओर और दूसरा ब्रह्मरन्ध्र (ब्रह्म) की ओर जाता है। यह ज्ञान अनुभव एवं इच्छा शक्ति परम सत्ता (अनामा) की अभिव्यक्ति है, जो अंततः उसी में विलीन हो जाती है।

नाथ सिद्धों के अनुसार कुण्डलिनी के जागरण से उत्पन्न अन्तःनाद से लेकर उस नाद का आज्ञा चक्र में पूर्ण विलय तक क्रमशः आरंभा, घटा, परिचया व निष्पत्ति अवस्था में पूर्णता को प्राप्त करता है। इनमें ही क्रमशः शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और अंततः सर्वशून्यता में योगी सहजानंद में निमग्न हो जाता है।

सहजीया सिद्धों ने शरीरस्थ नाभिप्रदेश, हृदयप्रदेश, कण्ठप्रदेश एवं मस्तिष्क में निर्माणकाय, धर्मकाय, सम्भोगकाय एवं चतुर्थ महासुखकाय की चर्चा करते हुए इन स्थानों में क्रमशः निर्माण चक्र, धर्म चक्र, सम्भोग चक्र और महासुख चक्र एवं उनके पद्म दलों, उनके देवियों, बीजमंत्रों के साथ विस्तृत उल्लेख किया है। उपरोक्त चार कायों में स्थित शक्ति के विशुद्धता के अनुरूप् उसे चण्डाली, नैरामणि, नामों से पुकारते हुए चतुर्थकाय महासुखस्थान में इसे नैरात्म्य (सहजसुन्दरी) कहकर संबोधित किया है। उपरोक्त चारों कायों में अनुभूत आनंद

के चार स्तरों का उल्लेख करते हुए निर्माणकाय में शुद्ध आनंद, धर्मकाय में परमानंद, सम्भोगकाय में विरमानंद एवं महासुखकाय में सहजानंद की उत्पत्ति माना हैं। जो पूर्णानंद का स्थान है।

सिद्ध कण्हपा ने अनुत्तर की उपलब्धि को रूपक के रूप में व्यक्त करते हुए कहा है कि वह नैरात्मा सहजसुन्दरी से व्याह रचाने जा रहे हैं। जिसमें विभिन्न प्रकार के नाद रूप शहनाई, ढोल, नगाड़े आदि से सारा आकाश गूँज उठा है। मन, पवन में लीन होकर पालकी बन गया है। कण्हपा ने इस विवाह से अनायास ही अनुत्तर योग महासुख की प्राप्ति कर ली है।सिद्ध कोकण्पाद ने तथता-स्वभाव का योगपरक व्याख्या के साथ नाद के साथ विषयों की विलिनता से उत्पन्न शून्यता का उल्लेख किया है।

## 4.5.5 नाथ एवं सहजयानी सिद्धों में सहजानंद :-

नाथ योगियों में सहज, परम तत्त्व के रूप में स्वीकृत है। जो शिव-शक्ति आदि से परे अव्यक्तावस्था है। वही चराचर जगत में व्याप्त है। मत्स्येन्द्रनाथ ने उस परम गुरू को प्रमाण किया हैं जिनके मार्गदर्शन से सहजानंद को जाना है। जिसे जान लेने से योगी माया-जाल से मुक्त होकर बाह्याभ्यंतर दोनों में ही स्थिर हो जाता है। जल, थल, आकाश आदि सभी स्थान आनंद युक्त हो जाते है। वह योगी गुणातीत, सारयुक्त, शुद्ध, परम अमृत का पान करता है। उसे ही अकुलवीर कहा गया है। यह गुह्य ज्ञान सिद्धनाथ के द्वारा सर्वजनों के हितार्थ उपदेश किया गया है। जिस तरह से सभी दिशाओं की नदियाँ अन्ततः सागर में विलीन हो जाती है। उसी प्रकार अकुलवीर में सभी धर्मों का समन्वय हो जाता है। इसे सहज कहकर भी संबोधित किया गया है। सहज पंच ज्ञानेन्द्रियादि से परे, भावाभाव से रहित सभी धर्मों का आधार है। जिससे स्वभाव, पूर्ण शांति में स्थिर हो जाता है। यह सभी प्रकार के आधारों से ऊपर है।

सहज में स्थित योगी के लिए सभी प्रकार के शरीराधार हृदय, कण्ठ, घण्टिका, तालु आदि नाद, नाभिचक्र, नासिकाग्र, ललाट, हृदय, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आगम, नाभिचक्र, कण्ठ, सिर, बिन्दु धारणा, नासिकाग्र ध्यान, पूरक,

कुम्भकादि, प्रवेश-निर्गमन, मुद्रा धारणा, सूर्य-चंद्र, भाव-अभाव, बिन्दु साधना, पूरक आदि अभ्यास, बाह्य अथवा अंन्तः आदि किन्ही भी क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रह जाती। योगी एकाकार, चराचर में अचल, निराभासता, निर्विकार, भेदरहित, तत्त्वातीत, शांत, निरंजन, सर्वज्ञ, कार्य-कारण मुक्त, भयातीत, निरालंब व्यापक व समत्व में स्थित हो जाता है। काष्ठ में अग्नि, पुष्प में गंध की भाति वह देह में ही विद्यमान है किन्तु देह से परे है। उसे जान लेने पर योगी निरालंब हो जाता है।

सहज, अस्ति-नास्ति, मन, बुद्धि, चिंता, काल, ब्रह्मा, रूद्र, शिव-शक्ति, सुख-दुःख, छाया, ताप, शीत-उष्ण, उदय-अस्त, सीमा, तीर्थ से परे है। माता-पिता, वर्ण, स्नान, जप, तीर्थ, धारणा, ध्यान, धर्म-अधर्म आदि सहज (अकुल) में वर्जित हो जाता है। उस योगी का पुनः जन्म नहीं होता उस परमानंद में ही सहजानंद है।

सहजयानी सिद्धों के अनुसार सहजानंद लौकिक अथवा सामान्य सिद्धियों से परे आध्यात्मिक अनुभूती है। जिसे बताया नहीं जा सकता अतः यह अनुत्तरित है। जिसे सिद्धों ने अपने ही देह में प्रज्ञोपाय योग में लीन हो जाने पर इसकी प्रगाढ़ता में इसकी सिद्धि प्राप्त की है। इसे ही तत्त्वज्ञान कहा गया है। जिसके प्राप्ति के उपरांत कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इसे ही सहज के नाम से भी संबोधित किया गया है। इसकी उपलब्धि ही पूर्णता की उपलब्धि है। इसे ही नामान्तर भेद से महासुख कहा गया है।

सिद्ध कण्हपा ने महासुख की प्राप्ति कर ली है। जिससे चित्त समरस होकर सहज में स्थित हो गया है। जहाँ जरा-मरण का भय नहीं है। भुसुकुपा ने भी चित्त रूपी मणि का शून्यता में समरस होकर अभेदता की प्राप्ति कर ली है। किन्तु इन अनुभूतियों को व्यक्त करना असंभव है। क्योंकि यह इन्द्रिय, मन, चित्त से पार है। गुरू भी इसे समझा नहीं सकता। सिद्धों ने इस परम अनुभूति को भव-निवार्ण, सुख-दुःख, आरंभ-अंतिम आदि से भी अलग कहा है। इसे केवल निज के द्वारा ही जाना जा सकता है।

## 4.5.6 नाथ एवं सहजयानी साधना में चित्त :-

नाथ सिद्धों के अनुसार प्राण की अशुद्धता एवं वासना के कारण चित्त चंचलता को प्राप्त होता है जो जगत रूप में विभिन्नता का परिचायक है। किन्तु नाड़ी शोधन, विविध कुम्भक आदि के अभ्यास से इसे शुद्ध कर स्थिर किया जा सकता है। यह कुम्भक के अभ्यास से विषयों से मुक्त हो जाता है। खेचरी मुद्रा आदि के अभ्यास से आकाशवत् शून्यता को प्राप्त होता है। कुण्डलिनी के जागरण से यह निरालंब[638] हो जाता है। समाधि अवस्था में यह चित्त नाद में उसी प्रकार लय हो जाता है। जिस प्रकार जल में नमक को पूरी तरह से मिला देने पर नमक का अस्तित्व जल में विलीन हो जाता है। नाथ सिद्धों ने चित्त का अकुल (शिव) में विलय होने से समस्त वृत्तियाँ समाप्त[639] हो जाती है, तब चित्त सत, रज, तम नामक त्रिगुणों से निराश्रित होकर सर्वकुलों से मुक्त हो जाता है इसे ही अकुल[640] कहा गया है। यही नामांतर भेद से मुक्ति है।

सहजयानी सिद्धों की साधना का केन्द्र बिन्दु चित्त है। इसे ही भगवान, जगत का बीज रूप, संसार[641] आदि नामों से अभिहित किया गया है। इसकी चंचलता ही काल में प्रवेश है। अतः इसे संकल्प विकल्पादि जालों से मुक्त कर सहज में प्रतिष्ठित करना ही परम उद्देश्य है। इसके दो रूप है। पहला संवृत्त और दूसरा सहज। संवृत्त रूप में चित्त चंचल होकर सांसारिक कार्यों में लिप्त रहता है। इसे ही सिद्धों ने भव-निमज्जित कहा है। कण्हपा के अनुसार यह शुक्र द्रवाकार बोधिचित्त को नष्ट करने वाला है। जिससे साधना में विघ्न उत्पन्न होता है और साधक कालाग्नि में नष्ट हो जाता है। चित्त के सहज रूप में साधक प्रज्ञोपायात्मक योग से बोधिचित्त को रज से युक्त कर देने पर यह वज्ररूप में संकल्पादि से मुक्त होकर सहज हो जाता है।

---

[638] दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला, 2017. पृ. 72.

[639] स्वामी, महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रवीन्द्रनाथ. संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.पृ. 297.

[640] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ. 115.

[641] वही,पृ. 75.

## 4.5.7 नाथ एवं सहजयानी साधना में प्रमाण :-

नाथ सिद्धों के अनुसार परम तत्व इन्द्रियातीत है। सत् असत् से परे अव्यक्त, उपाधि रहित[642] है। इसे वेद शास्त्रों के अध्ययन, किसी ग्रंथ विशेष आदि से भी नहीं जाना जा सकता। इसे निपूर्ण विद्वानों के द्वारा भी व्यक्त नहीं किया जा सकता। विभिन्न प्रमाणादि से भी इसका बोध नहीं होता। अतः गोरक्ष ने नाथ सिद्धों (योगियों) को संबोधित करते हुए कहते है कि वाद-विवाद, शास्त्र चर्चा[643] आदि में नहीं पड़ना चाहिये। पोथी पढ़ने वाले एवं शास्त्र पर निर्भर रहने वालों को गोरक्ष कहते है, बिना रास्ते के चलना, देह के बिना जले पंच तत्वों का भस्म होना, वायु से प्यास बुझाना आदि शास्त्रों में उल्लेखित नहीं है। इन्हें केवल स्वयं संवेद्य (स्वानुभव) से ही जाना जा सकता है।

सद्गुरू की कृपा प्राप्त होने पर वही इसे जानने का संकेत देता है। मत्स्येन्द्रनाथ के अनुसार योगी के अकुल में प्रतिष्ठित होने के उपरांत सभी प्रकार का जप, ध्यान, तीर्थ सेवन, मूर्ति पूजा[644] आदि की आवश्यकता नहीं रह जाती।

तांन्त्रिक बौद्ध परम्पराओं के पूर्व सम्प्रदायों महायान, वज्रयान, मन्त्रयान आदि की मान्यताओं को अस्वीकार करते हुए आगम, मन्त्र, मूर्तिपूजा, ग्रन्थ प्रमाण, ब्राह्मणों, वेदपाठी पंड़ितों को विकल्प जाल युक्त अविद्या से ग्रसित अभिमानी संबोधित करते हुए तर्क को व्यर्थ[645] माना हैं। सिद्धों के अनुसार सहज परम अनुभूति है जिसे ग्रन्थों के अध्ययन से अथवा तर्कों से नहीं जाना जा सकता। उसे अद्वय में स्थित गुरू के माध्यम से ही जाना जा सकता है। सहज को जानने वाले ही गुरू हो सकते है। उसे ही वज्रधर की संज्ञा दी गयी है। स्वसंवेद्य[646] (स्वयं

---

[642] शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014. पृ. 63.

[643] बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. सम्पादक और टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, 2004. पृ. 25.

[644] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ.88.

[645] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009. पृ.113.

[646] वही, पृ.114.

के द्वारा अनुभूत ज्ञान) इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि से परे है। यह अतीन्द्रिय ज्ञान ही प्रमाण के रूप में स्वीकृत है। जिसे व्यक्त करना संभव नहीं है।

सहजयानी सिद्धों ने सिद्धत्व की प्राप्ति के लिए कठोर एवं दुष्कर नियमों को अस्वीकार करते हुए सहज रूप में उपभोग की वस्तुओं का सेवन करते हुए उस परमावस्था को पाने के सिद्धांत को स्वीकारा है। इसी क्रम में इन सिद्धों की विभिन्न प्रकार की साधनाओं में गुरू के निर्देशन में सहज उपलब्ध स्त्रियों (विशेष कर निम्नजाति की) को महामुद्रा के रूप में वरण किया जाता था जिनमें ये महामुद्रायें उन साधकों की सहचरी एवं योगिनियों के रूप में उनके साधनाओं को पूर्णता प्रदान करने में सहायक के रूप में प्रसिद्ध थी। साधक वज्रजाप पूर्ण कर यह प्रज्ञोपाय की साधना करता था। जो ब्रह्मचर्य पर आधारित थी। सिद्धों ने स्थान-स्थान पर बिन्दु को बोधितचित्त कहकर संबोधित किया है। जिसे मध्यमार्ग अवधूती से उष्णीष कमल तक पहुँचाया जाता था। तब साधक काय, वाक, चित्त से परे अव्यक्त महासुख में लीन हो जाता था वही सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध माना जाता था।

उपरोक्त नाथ एवं सहजयानी सिद्धों के दर्शन की समीक्षा करने पर यह ज्ञात होता है कि सहजयानी सिद्धों ने नामांतर भेद से नाथ सिद्धों की साधना का ही अनुसरण किया है। जिनमें नाथों के सिद्ध देह, देहस्थ चक्र, कुण्डलिनी, शून्यता, सहजानंद, को क्रमशः वज्रदेह, चार काय, चाण्डाली शक्ति, चार आनंद एवं सहज कहा है, साथ ही परम तत्व को जहाँ नाथ साहित्यों में अद्वैत अथवा द्वैताद्वैतविवर्जित कहा गया है। वहीं सहजीया सिद्धों ने इसे ही अद्वैत कहा है। नाथ एवं सहजयानी सिद्धों की साधना, साहित्य एवं दर्शन आदि की समीक्षा कर विभिन्न विद्वानों ने भी नाथ सिद्धों का सहजयानियों पर प्रभाव को स्वीकार किया है।

## 4.6 हठयोग का सहजयान पर प्रभाव का विभिन्न विद्वानों का मत :-

**गोपीनाथ कविराज-** विभिन्न नाथ साहित्य निरंजन पुराण, अवधूतगीता, गोरक्षोपनिषद् आदि ग्रंथों का संदर्भ देते हुए लौकिक रूप से मत्स्येन्द्रनाथ तथा

गोरक्षनाथ को नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानते हुए नाथ सिद्ध एवं सहजयानी सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध जालंधरनाथ, गोपीचंद, भर्तृहरि आदि की रचनाओं, पदावलियों का उल्लेख करते हुए इन्हें नाथ उपासनाओं के प्रचारकों के अंर्तगत रखा है।[647] साथ ही

उक्त विद्वान ने नाथ योगियों द्वारा स्वीकृत शिव-शक्ति के समान ही सहजयानी साधनाओं में प्रयुक्त होने वाले प्रज्ञा-उपाय को समानान्तर माना है।[648] कविराज के अनुसार नाथ सिद्धों परम उद्देश्य प्रथमतः पिण्ड सिद्धि से जीवन मुक्ति और समरसीकरण से परामुक्ति को प्राप्त करना है। नाथों की इसी साधना ने बौद्ध सिद्धों को देह को वज्रकाय बनाने के लिए आकर्षित[649] किया था।

**हजारी प्रसाद द्विवेदी-** हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बौद्ध साधना का नाथ योगियों की साधनाओं से घनिष्ट संबंधों कि ओर संकेत करते हुए कहा है कि बौद्ध सिद्ध सम्प्रदायिक दृष्टि से भले ही बौद्ध प्रतीत होते हैं किन्तु बौद्ध सिद्धों की विचार धाराएँ नाथ पंथी (शैव) हैं।[650] सहज शब्द की व्याख्या करते हुए द्विवेदी जी ने सहज में 'ह' का संबंध हठयोग से व 'ज' का संबंध जपयोग से माना है, और कहा है कि सहज की प्राप्ति सहज साधनाओं से होती है। वे साधनाएँ हठयोग व जपयोग के समन्वय से संभव है। जिनमें योग की साधनाएँ सम्मिलित हैं।[651]

**हरप्रसाद शास्त्री-** के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित हठयोग साधना तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय से अलग विकसित हुई थी। कालांतर में बौद्ध सम्प्रदायों में भी इस साधना की स्वीकृति हो गयी थी।[652]

---

[647] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 2007. पृ.101.

[648] वही,पृ.95.

[649] अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी (मत्स्येन्द्र विशेषांक). गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर, जनवरी 1992. वर्ष-17. अंक-1-3.पृ. 49.

[650] द्विवेदी, मुकुन्द. संपादित. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013. पृ.112.

[651] वही, पृ.112.113.

[652] कविराज, गोपीनाथ. भारतीय संस्कृति और साधना. (द्वितीय खण्ड). चतुर्थ संस्करण. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, 2009. पृ. 254-255.

**डॉ. प्रबोध चंद बागची-** हठयोग के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ (मीननाथ, मत्स्येन्द्र, मच्छघन आदि) को मानते है और तिब्बती सूचियों में उल्लिखित आदि सिद्ध लुईपा से मत्स्येन्द्रनाथ को अभेद स्वीकार करते हुए कहा है कि तिब्बती स्रोतों के अनुसार लुई का अर्थ मछली की आँत है। इसी आदि सिद्ध मत्स्येंद्र (लुईपा)द्वारा प्रवर्तित योगिनीकौल साधना (हठयोग) का प्रभाव तिब्बती बौद्ध सिद्धों पर रहा है।[653]

**डॉ. कल्याणी मल्लिक -** नाथ साहित्यों पर महत्वपूर्ण कार्य करते हुए गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धांत पद्धति एण्ड अदर्स वर्क आँफ नाथ योगिज् को संपादित करते हुए उसकी भूमिका में नाथमहासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ और प्रथम सहजयानी लुईपा को विभिन्न प्रमाणों,साधनास्थली, सिद्धों की सूची, दोनों के साधनात्मक विचारों एवं बांग्ल सहित्यों के संदर्भों के आधार पर एक माना है।[654]

**डॉ. धर्मवीर भारती -** हठयोग में प्रचलित नाड़ियों में से तीन प्रधान नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना है प्रचलित हैं। जिसका बौद्ध सिद्धों ने आश्रय लिया था किन्तु उनके नाम बदल कर सहजयानी सिद्धों ने ललना, रसना और अवधूती नाम प्रदान कर दिया।[655]

**व्रजवल्लभ द्विवेदी -** प्रसिद्ध काश्मीर शैवाचार्य अभिनव गुप्त ने तंत्रालोक में तंत्रशास्त्र के प्राचीन सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ की पृष्ठभूमि में बौद्ध तंत्रों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है की वज्रयान, सहजयान, कालचक्रयान मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित कौलशास्त्र के ही विभिन्न रूप हैं।[656]

**रामधारी सिंह दिनकर-** दसवीं शताब्दी में वज्रयान की एक शाखा ने अपने मत को सहजयानी कहते हुए अपने आचारों, साधनाओं व दर्शन को उस

---

[653] बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिसिंग हाऊस लिमिटेड 1934. पृ. 24.

[654] मल्लिक, कल्याणी. संपादित. सिद्धसिद्धांतपद्धति ऐंड अदर वर्क्स आँव नाथ योगीज. पूना : पूना ओरियंटस बुक हाउस, 1954. पृ. 15.

[655] भारती, धर्मवीर. सिद्ध साहित्य. द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : किताब महल, 1968. पृ. 397.

[656] द्विवेदी, व्रजवल्लभ. आगमऔर तंत्रशास्त्र,दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स, 1984. पृ.61.

सहज तत्त्व के अनुकूल गढ़ने लगे। इन साधकों ने नाड़ी, चक्र आदि के साथ सहज तत्त्व को परम उद्देश्य स्वीकार कर लिया था। इसे प्रज्ञा और उपाय,शून्यता और करूणा का मिलित रूप मानते थे। यहाँ उपाय (पुरूष) और प्रवृत्ति मूलक तथा प्रज्ञा (स्त्री) निवृत्ति मूलक तत्वों के रूप में स्वीकृत की गयी थी। इनकी साधनाएँ नर-नारी समागम की ओर संकेत करती हुई दिख पड़ती है।[657] उपरोक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि सहजयानी सिद्धों ने अपनी वज्रयानी परम्पराओं की साधनाओं से विमुख होकर नाथ योगियों की ही भाँति शरीरस्थ चक्रों, सहजतत्त्व को अपनाया था।

**राजकुमारी पाण्डेय-** सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक क्रमशः बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों का पतन तथा शैव धर्म साधनाओं का उत्तरोत्तर विकास होने लगा था। इसी शैव सम्प्रदाय के अंतर्गत नाथ सम्प्रदाय भी शामिल था। जिनके प्रथम सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ बहुप्रसिद्ध हैं। नव नाथों की विभिन्न सूचियों का संदर्भ देते हुए जालंधरनाथ, कानिफानाथ, चर्पटनाथ आदि नाथ सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है[658] जो सहजयानी सिद्धों के रूप में भी प्रसिद्ध रहे हैं।

**नागेन्द्रनाथ उपाध्याय-** सहजयानी सिद्ध जालंधरिपा को श्मशान में डाकिनी ने इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना की साधनाओं का उपदेश किया था।[659] हेवज्रतंत्र में वज्रधर को ही नाथ की संज्ञा दी गयी है। सहजयानी साधना ग्रंथों चर्यापद, दोहाकोश आदि में इनके प्रसिद्ध शिष्य कृष्णपाद को कापालिक योगी कहा गया है, जो हठयोग के साथ अंन्तःसंबधों को दर्शाता है।[660] इस प्रकार कहा जा सकता है कि जालंधरिपा की साधनाओं में नाथ योगियों की साधनाएँ सम्मिलित हो चुकी थी।[661] जालंधरनाथ और उनके शिष्य कानिफानाथ दोनों

---

[657] सिंह, रामधारी. संस्कृति के चार अध्याय. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2015. पृ. 180.

[658] पाण्डेय, राजकुमारी. भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन्स, 2008.पृ. 263.

[659] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 364-65.

[660] वही, पृ. 364-65.

[661] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ. 364-65.

नाथसिद्ध और सहजयानी सिद्ध दोनों के रूप में गिने जाते है। कान्हुपा अपने को कापालिक और जालंधरिपा का शिष्य बता रहे हैं। नाथ सम्प्रदाय में कापालिक साधनाएँ वामाचारी साधना के अंतर्गत है। इस साधना के बाद उत्तरोत्तर कौलमार्ग श्रेष्ठ कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ इसी कौलमार्ग के प्रतिष्ठित आचार्य माने जाते हैं। जो कामरूप में योगिनियों के मध्य वामाचारी गुरू के रूप में भी प्रतिष्ठित रहे है। गोरक्षनाथ ने अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ को वामाचारी मार्ग से निकालकर शैवमार्ग में पुनः वापस लाये थे। कान्हुपाद ने बंगाल में बहुत समय गुजारा था और सोमपुरी विहार में जालंधरिपा से दीक्षा भी ग्रहण की थी।[662]

**द्वारका दास शास्त्री -** बंगाल के राजा गोपीचंद की माता मैनामती गोरक्षनाथ की शिष्या थी। गोरक्षनाथ के द्वारा मैनामती को सिद्ध जालंधर (हाडिपा) से गोपीचंद को दीक्षा दिलाने का निर्देश प्राप्त हुआ था। राजा गोपीचंद के संन्यास के बाद उनके सम्मान में गाये जाने वाले गीतों से यह पता चलता है कि जालंधरनाथ और मैनामती दोनों गोरक्षनाथ के शिष्य थे। ये गीत आज भी भारत की विभिन्न भाषाओं में भी प्रचलित हैं।[663]

**डॉ. ठाकुर सेन नेगी -** जिस प्रकार बौद्ध तंत्रों के इतर मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी जागृत होकर ऊर्ध्वगमन करती है, उसी प्रकार प्रकार बौद्ध तंत्रों के अनुसार निर्माण चक्र में चण्डाली उदीप्त होती है।[664] इसके जागृत होने पर शिरोभाग में स्थित चंद्रमा से अमृत का स्राव होने लगता है। अवस्थाओं के अनुसार बौद्ध सिद्धों ने इसी शक्ति को ही डोंबी, योगिनी, सहजसुन्दरी, नैरात्मा आदि नामों से पुकारा है जो बोधिचित्त को मध्यमार्ग से उष्णीष कमल तक ले जाती हुई पंच महाभूतों के प्रतीकों को जला देती है।[665]

---

[662] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001. पृ.10.

[663] शास्त्री, द्वारिका दास. सिद्धसिद्धांत पद्धति. संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014. भूमिका. पृ.3.

[664] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999.पृ. 220

[665] नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999. पृ. 221.

## उपसंहार :-

नाथ सिद्धों की हठयोग साधना को प्रस्तुत करने वाले साहित्यों में नाथ शब्द एक परम तत्व का सूचक है, जो नाम रहित ब्रह्म है। इसे ही आदिनाथ (शिव) की संज्ञा दी गयी है। जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि का स्वामी है। जिसने स्वयं को जान लिया है, एवं योग की दीक्षा देता है, उन गुरूओं को भी नाथ कहकर संबोधित गया है। नाथ सम्प्रदाय में महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि महासिद्ध बहुप्रसिद्ध हैं, जो हठयोग के विशेषज्ञ माने गये हैं। नाथ सिद्धों के साहित्यों से यह ज्ञात होता है कि हठयोग की विद्या प्राचीन काल से चली आ रही है, जो अधिकांशत: सूत्र रुप में प्राप्त होती है। इस विद्या को मध्यकाल में मत्स्येन्द्रनाथ ने आदिनाथ से प्राप्त किया एवं गोरक्षनाथ आदि योगियों (सिद्धों) ने इस पर विविध नवीन प्रयोगों के माध्यम से इस विद्या का प्रचार-प्रसार किया । शोध कार्य के लिए विभिन्न नाथ सहित्यों में से कतिपय नाथ साहित्यों का चयन किया गया जो वैज्ञानिक रीति से सम्पादित साहित्य हैं। इनमें कौलज्ञाननिर्णय, गोरक्षशतकम्, सिद्धसिद्धांतपद्धति, वसिष्ठसंहिता, हठप्रदीपिका,घेरण्ड संहिता, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, शिवसंहिता, गोरखबानी शामिल हैं। कौलज्ञाननिर्णय, पाँच छोटे-बड़े ग्रथों का संकलन है। जिनमें कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीरतंत्रम् ए, अकुलवीरतंत्रम् बी, कुलानंदतंत्रम् और ज्ञानकारिका शामिल हैं। ये ग्रंथ मूल रूप से कुल साधना से अकुल में प्रतिष्ठित होने का उपदेश करते हैं। कुल के अंतर्गत आसन, कुम्भक, कुण्डलिनी, देहस्थ चक्रों का जागरण, विभिन्न सिद्धियाँ आदि साधनाएँ शामिल हैं। इसके उपरांत स्वतः ही उत्पन्न सहज, मुक्ति का ही नामांतर है। इसे ही अकुल कहकर संबोधित किया गया है। सिद्धसिद्धांतपद्धति छः उपदेशों में विभक्त है। जिसमें अनामा ब्रह्म से उत्पन्न सृष्टि, हठयोग की परिभाषा, नौ चक्र, सोलह आधार, अष्टांगयोग, देह रूपी पिण्ड में विद्यमान विश्वब्रह्माण्ड का निरूपण, कुण्डलिनी का स्वरूप, शिव-शक्ति की अभेदता, समरसता, अवधूत योगी के लक्षणोंआदि का प्रतिपादन करता है। गोरक्षशतकम् हठयोग के आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का विस्तार से उपदेश करता है। वसिष्ठसंहिता अष्टांग योग का निरूपण करता है। हठप्रदीपिका आसन, कुम्भक,

मुद्रा एवं नादानुसंधान के रूप में हठयोग साधना का क्रम प्रस्तुत करता है। घेरण्ड संहिता षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के रूप में योग के सप्तांग का उपदेश करता है। हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, हठप्रदीपिका की ही भाँति योग के चतुष्क अंग का उपदेश करता है। शिवसंहिता में योग को किसी भी निश्चित अंगों के रूप में प्रस्तुत न करते हुए योग के दर्शन, आसन, प्राणायाम, विभिन्न मुद्रायें, कुण्डलिनी, देहस्थ चक्र, ध्यान एवं नादानुसंधान का निरूपण करता है। गोरखबानी (सबदी) में गोरक्षनाथ के द्वारा आसन, प्राणायाम, कुण्डलिनी, योग दर्शन, स्वसंवेद्य (स्वयं के द्वारा जाना गया) के साथ-साथ योग को चर्चा का विषय न बनाने, वाद-विवाद न करने, अवधूत योगियों के लिए साधनात्मक निर्देश आदि शामिल हैं।

हठ शब्द ह+ठ नामक दो वर्णों से मिलकर बना है। 'ह' से तात्पर्य 'हकार' एवं 'ठ' से तात्पर्य 'ठकार' है। सिद्धसिद्धांतपद्धति हठयोग की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए हकार को सूर्य एवं ठकार को चंद्र स्वीकार करता है। यौगिक साधनाओं के द्वारा सूर्य-चंद्र (प्राण-अपान) का योग ही हठयोग है। नाथसिद्धों के अनुसार देह में विद्यमान प्राण शक्ति और चित्त शक्ति ही शक्ति की दो विपरीत धाराएँ हैं। इन्हे ही नामांतर भेद से प्राण-अपान, सूर्य-चंद्र, इड़ा-पिंगला आदि नामों से भी संबोधित किया गया है, ये दोनों बायीं और दाहिनी नासिका के प्रतिनिधि भी हैं। सामान्यावस्था में इन दोनों में से किसी एक के सक्रिय होने पर दूसरा निष्क्रिय हो जाता है।

उपरोक्त दोनों विपरीत धाराओं को आसन, षट्कर्म, नाड़ी शोधन, प्राणायाम एवं मुद्रा साधना से संयुक्त किया जाता है। तब दोनों मिलन की प्रगाढ़ता में एक हो मध्यपथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। जिससे इस मार्ग में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति उर्ध्वगमन करती हुई इस निरालंब मार्ग में शक्ति के केन्द्रों को जागृत करती हुई नाद के साथ परम शिव के साथ एक हो जाती है। तब योगी पूर्णानंद सहजानंद में निमग्न हो जाता है। यही परम पद है। जिससे इसी देह में ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड क अभेदता का ज्ञान होता है। इसे ही योगियों ने स्वसंवेद्य कहा है, जो संसार और मुक्ति से परे अव्यक्त है।

उपरोक्त हठयोग की साधना नाथ सिद्धों (योगियों) के मध्य प्रचलित थी और आज भी प्रचलन में है, किन्तु इन साधनाओं के सूत्र हमें वैदिककाल से ही प्राप्त होने लगते हैं। विभिन्न उपनिषद्, तंत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण, स्मृति, सूत्र आदि ग्रंथों आदि में क्रमश: प्राप्त होते हैं, किन्तु मध्यकाल में नाथ सिद्धों (योगियों) के द्वारा इस योग पर विभिन्न प्रयोग किये गये एवं कालांतर में इस मार्ग में सम्मिलित विभिन्न विकृतियों को दूर कर इन योगियों ने गूढ़ माने जाने वाले हठयोग को व्यवहारिक रूप में प्रतिष्ठित किया। नाथ सिद्धों में ये हठयोग की साधना दीक्षा प्राप्ति के उपरांत गुरू के संरक्षण में संचालित होती थी। ये विद्याएँ गुप्त रूप से गुरू-शिष्य के मध्य संचालित थी। इन सिद्धों ने हठयोग की पुरातन एवं नवीन साधनाओं को मिलाकर इस विद्या की पुनः प्रतिष्ठा की।

नाथ सिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, काणेरीनाथ, चर्पटनाथ, कंथडिनाथ, गोपीचंद, भर्तृहरि, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या कहीं चौरासी तो कहीं सवा सौ कही गयी है। इन नाथ सिद्धों ने हठयोग की साधना में अपने पुरातन सिद्धों की सूची प्रस्तुत करते हुए आसन, आयुर्वेद में प्रसिद्ध पंचकर्म की तरह ही किन्तु  बिना किसी प्रकार के आवश्यक साधनाओं के जल, वायु एवं किंचित वस्त्र आदि से त्रिदोंषों के संतुलन के उद्देश्य से षट्कर्म नामक शोधन क्रिया को इस साधना में आवश्यक माना।

योग के लिए पथ्य एवं निषिद्ध आहारों की चर्चा करते हुए मिताहार एवं सर्वसुलभ आहारों में से संतुलित एवं योग के साधना के लिए उपयुक्त भोज्य पदार्थों की सूची प्रस्तुत की है। विभिन्न नाड़ियों में सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला को प्रमुखता दी गयी। यम में मिताहार एवं नियम में अहिंसा को प्रमुख माना गया। आसनों में सिद्धासन, विविध प्रकार के कुम्भक साधनाओं में केवली को श्रेष्ठ है। मुद्राओं में खेचरी विशिष्ट माना गया। गुरू के मार्गदर्शन को ही साधना का आधार स्वीकार किया गया। ब्रह्मचर्य की महत्ता, देहस्थ शक्ति कुण्डलिनी को हठयोग का आधार स्वीकार करते हुए इसे ही जागृत करना ही साधना का उद्देश्य स्वीकार

किया गया। देहस्थ चक्रों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञाचक्र मिलाकर षट्चक्रों को अधिक मान्यता दी गयी है।

समस्त प्रकार की समाधियों में से नादानुसंधान को सर्वोत्तम माना गया। इस शरीर को ही समस्त साधनाओं का उपाय मानते हुए किसी मंदिर, तीर्थ, देव स्थापना की अपेक्षा इसे सिद्धदेह बनाकर रोगरहित, जरा मुक्त एवं विभिन्न सिद्धियों के साथ ही जीवन मुक्ति को स्वीकार किया गया। अंतिम में प्राप्त पूर्णानन्द, मुक्ति को नाथसिद्धों ने सहज कहकर संबोधित करते हुए सहजानंद कहा। इसके साथ-साथ यम, नियम, प्रत्याहार, धारणा आदि को भी कुछ नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए इसे देह में ही समस्त सृष्टि की उपस्थिति को पिण्डब्रह्माण्डवाद, परम तत्त्व को किसी संख्या अथवा गणना के परे होने के कारण, द्वैताद्वैतविवर्जित एवं इन सभी को स्वयं के द्वारा स्वयं से जानने को स्वसंवेद्य कहा गया। नाथ सिद्धों के समान ही इनके समकालीन तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय सहजयान की साधना, सिद्ध और दर्शन प्रसिद्धि पाते रहे हैं।

सहजयान में सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' से तात्पर्य उत्पन्न होना है। शब्दकोश के अनुसार सहज शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ प्राकृतिक रूप से, साथ-साथ अथवा एक ही काल में उत्पन्न होना है। नामांतर भेद से इसे ही जन्मजात अथवा स्वभाव भी कहा गया है। तिब्बती भाषा में सहज शब्द सह= ह्लन चिग्, ज= क्येपा से मिलकर बना है। जिसका अर्थ साथ-साथ पैदा होना या उत्पन्न होना है। सहजयान तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत आने वाला एक सम्प्रदाय है। जिसका विकास वज्रयानी सम्प्रदाय के उपरांत अथवा साथ साथ माना जाता है। सहजयान सम्प्रदाय में सहज, प्रज्ञा-उपाय, वज्र-वाराही शून्यता-करूणा, पद्म-वज्र आदि का मिलित रूप हैं, एवं परमलक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में जिन साधनाओं, अभ्यासों को माध्यम लिया जाता है, वे ही यान (साधन) के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन सहजीया सिद्धों ने सहज को अव्यक्त कहा है जिसे बताया या समझाया नहीं जा सकता। यह भावाभाव से परे संसार (भव) और निर्वाण के पार

है। अनेक स्थानों पर इन सिद्धों ने इसे ही महामुद्रा साक्षात्कार, निर्वाण, परमपद आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है।

सहजयान सम्प्रदाय तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत उद्‌बुद्ध मानी जाती है, जो वज्रयानी शाखा से अलग होकर विकसित हुई थी। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में चौरासी सिद्धों की सूची में सहजयानी सिद्धों को देखा जा सकता है। इन सिद्धों में लूअिपा (लुईपाद), लीलापा, विरूपा, शबरपा, सरहपा, कण्डालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, कण्हपा, चौरंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तिलोपा, नरोपा, डोम्भीपा आदि प्रमुख सिद्धों के नामों का उल्लेख है।

इनकी संख्या चौरासी कही गयी है। सिद्धों की रचनाएँ संस्कृत, मिश्रसंस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्राप्त होती है। इनमें चर्यापद, दोहाकोशगीति, चर्यागीति और संस्कृत आदि प्रमुख माने जाते हैं जिनमें लुईपाद रचितचर्यापद, चर्याचर्यविनिश्चय, हेवज्रतंत्र, कृष्णपादरचित, हेवज्रपंजिकायोगरत्नमाला, शांतिपा रचित हेवज्रपंजिका मुक्तावली, हेवज्रतंत्र, नरोपाकृत वज्रयानी अनुत्तरयोगतंत्र, सेकोद्देश्यटीका, चर्यागितिकोश, हेवज्रपंजिका, कालचक्रतंत्रम् आदि सहजयानी ग्रंथों के रूप में प्रसिद्ध हैं। जिनमें इन सिद्धों की साधनाओं का अवलोकन किया जा सकता है।

इन सहजयानी सिद्धों ने उपरोक्त ग्रंथों के साथ-साथ वज्रयान के आधार ग्रंथों को भी स्वीकार किया है। इन्होंने गुरू को विशेष महत्त्व देते हुए उनके द्वारा उपदिष्ट साधनाओं को अपने ग्रंथों में वर्णित किया है। जिनके अवलोकन से वज्रासन, देहस्थ विभिन्न नाड़ियों का उल्लेख, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रा साधना, प्रज्ञोपाय, बिन्दु साधना, चाण्डाली योग, देहस्थ चक्र, सहजानंद एवं निर्वाण आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके दर्शन एवं प्रमाणों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने इस जगत को चित्त से ही उत्पन्न माना है। जो न तो सत् रूप है, और न ही असत् रूप। सहजयानी सिद्धों के अनुसार ललना और रसना की मिलन की प्रगाढ़ता में प्रज्ञोपाय साधना से बोधिचित्त का मध्यमार्ग से ऊर्ध्वगमन होने से मन और प्राण में क्रमश: स्थिरता आते-आते समस्त संसारिक ज्ञान एवं पंचमहाभूत भस्मिभूत हो जाते हैं। उपरांत इसी देह में सत्य ज्ञान का

उदय होता है। वही, सहज है, जो संसार और निर्वाण के परे परमावस्था है। इसे ही सहजानंद भी कहा गया है। इन सिद्धों की साधनात्मक ग्रंथों का प्रकाशन प्रथमतः भारतीय विद्वानों में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने किया एवं इन सिद्धों की सूची प्रथमतः राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत की गयी जिनको तिब्बत के सुदूर बौद्ध मठ सस्कय विहार से प्राप्त किया गया था।

उपरोक्त हठयोग एवं सहजयान की साधना, दर्शन एवं साहित्यों में अधिक समानता दिखाई देती है। इस प्रकार हठयोग एवं सहजयान की समीक्षा करने पर हठयोग दो वर्णों ह+ठ से मिलकर बना है। जिसका अर्थ शक्ति की दो धाराओं से है। सामान्यावस्था में ये धाराएँ एक दूसरे के विपरीत कार्य व्यापार को सम्पादित करती है, किन्तु गुरू के द्वारा उपदिष्ट साधना मार्ग का अनुसरण करने से इन दोनों धाराओं को क्रमश: एक्य किया जाता है। इन धाराओं को ही नामांतर भेद से इड़ा-पिंगला, सूर्य-चंद्र, गंगा-यमुना आदि नामों से संबोधित किया जाता है। दोनों शक्ति धाराओं का योग ही हठयोग है। जिससे भेदाभेद आदि मिट जाते हैं, तब योगी, सहज में रमण करता है, जो मुक्ति का ही नामांतर है।

उपरोक्त साधनाएँ नाथ योगियों अथवा नाथसिद्धों के बीच प्रचलित है। इनके मत को योगमार्ग, अवधूतमार्ग, सिद्धमार्ग कौलमार्ग आदि नामों से भी जाना जाता है। इसी प्रकार ही सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' का अर्थ उत्पन्न होना है। वस्तु और उसके गुण का एक साथ होना ही सहज है। सहजयानी सिद्धों ने सहज को ही नामांतर भेद से प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, सूर्य-चंद्र, स्त्री-पुरूष आदि कहकर भी संबोधित किया है। उपरोक्त दोनों की मिलन की प्रगाढ़ता में समस्त भेद समाप्त हो जाते हैं और साधक सहज में रमण करने लगता है, जो निर्वाण का ही नामांतर है। नाथ और सहजयानी दोनों सम्प्रदायी सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हैं। मध्यकालीन भारतीय एवं तिब्बती स्त्रोतों से प्राप्त सूचियों वर्णरत्नाकर, सस्कय विहार, हठप्रदीपिका आदि में दोनों सम्प्रदायी मिश्रित रूप में शामिल हैं, किन्तु इनमें प्रथम नाम मत्स्येन्द्रनाथ का ही प्राप्त होता है, इन्हीं का तिब्बती संस्करण लूअिपा (लुहिपा) है। जो सहजयानी सिद्धों में आदि सिद्ध है, इसी सूची में ही गोरक्षनाथ, गोरक्षपा के नाम

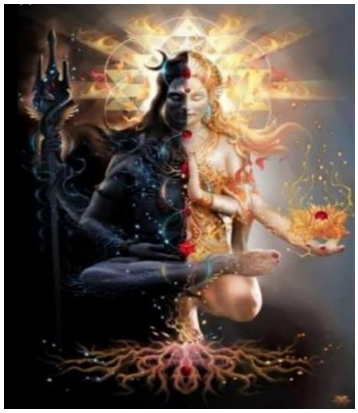
से वर्णित है। नेपाली बौद्धों के मध्य भी मत्स्येन्द्र अवलोकितेर के रूप में पूजित है और प्रसिद्ध है।

काश्मीर शैव परम्परा के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार मत्स्येन्द्र ने ही स्वउपार्जित ज्ञान को आनंद, अवलि, योगी, प्रभु, बोधि, पाद में बाँट दिया था। सहजयानी सिद्धों की नामावली में 'पाद' नामक सम्बोधन शब्द की बहुलता है। मत्स्येन्द्र कृत कौलज्ञाननिर्णय में अपने पूर्व की सिद्धों की परम्पराओं का उल्लेख किया है। जिनके नामों के अंत में भी पादान नामक विषेषण प्राप्त होते हैं। नवनाथों की सूची प्रस्तुत करने वाली सूची में सहजयानी प्रसिद्ध सिद्ध जालंधर एवं उनके प्रमुख शिष्य कानिफा भी शामिल है। इन सूचियों में भी मत्स्येन्द्र का स्थान प्रथम और गोरक्षनाथ दूसरे स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्मानंदकृत हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में बंगाल के प्रसिद्ध नाथ सिद्ध और सहजयानी सिद्ध गोपीचंद के साथ-साथ सोलहवीं शताब्दी में तिब्बत में प्रसिद्ध लेखक और सहजयानी साधक तारानाथ की नाथों की सूची में शामिल किया हैं।

दोनों सम्प्रदायों में उनकी साधनात्मक विधियाँ भी समान है, नाथ साधना में जहाँ आसन, प्राणायाम, कापालिक साधना, मुद्रा, कुण्डलिनी जागरण, देहस्थ चक्र, सहजानंद आदि का वर्णन प्राप्त होता है, सहजयान में भी नामांतर भेद से इन्हें बुद्धासन, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रासाधना, चाण्डाली जागरण, देहस्थ चक्र एवं सहजानंद आदि नामों से प्राप्त होता है। इनके दर्शन भी नाथ योगियों से मिलते है। सहजयान के पूर्व परम्पराओं की समीक्षा करने पर उपरोक्त साधनाएँ मेल नहीं रखती। सहजयान की उत्पत्ति की अस्पष्टता एवं इनकी अपने पूर्व की परम्पराओं से मेल नहीं दिखाई देती। साथ ही विभिन्न सहजयानी ग्रंथ दोहाकोश, चर्यापद, हेवज्रतंत्र, एवं उनकी संस्कृत की टीकाओं का काल एवं उनमें वर्णित साधना नाथ सिद्धों के बाद ठहरती है, एवं इनका नाथ साधना से गहरा संबंध दिखाई पड़ता है। इस प्रकार सहजयानी सिद्धों ने नाथ साधनाओं का ही अनुसरण कर अपनी साधनाओं को बौद्ध शब्दावलियाँ देते रहे । विभिन्न विद्वानों ने भी भिन्न-भिन्न संदर्भों एवं साधना, साहित्य एव दर्शन आदि के आधार पर नाथ सिद्धों का सहजयान पर प्रभाव स्वीकार किया है।

## सिद्धों की साधनात्मक चित्रावली :-

हठ यौगिक साधना

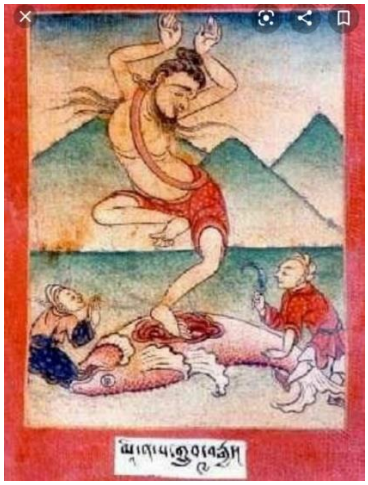


1. अर्धनारिश्वर स्वरुप

सहजयानी साधना



2. वज्रवाराही स्वरुप



3.मत्स्य के साथ महासिद्ध मत्स्येंद्रनाथ



4. मत्स्य के साथ लुईपा सिद्ध



5. षट्चक्र



6. चाण्डाली शक्ति

## सिद्धों की साधनात्मक चित्रावलियों की संदर्भ सूची :-


1. https://images.app.goo.gl/4M4E7PSfUFB2iXwQ9
2. https://images.app.goo.gl/s1HWYEGK5b1QkAat7
3. https://images.app.goo.gl/maccvMkz5dSoxspt8
4. https://images.app.goo.gl/WmQitBCnrP2SE6h69
5. https://images.app.goo.gl/tjdMzbXB6Ryg261P7
6. https://images.app.goo.gl/KfNmQrnKX2YuMmXR6

# संदर्भ ग्रंथ सूची

## आधार ग्रंथ -


1. कविराज, गोपीनाथ. संपादित. गोरक्षसिद्धांतसंग्रह. बनारस : गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी, 1925.
2. तिवारी, ओमप्रकाश. भाषानुवाद. संत चरणदासकृत अष्टांग योग. द्वितीय आवृत्ति. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2010.
3. द्विवेदी, पं. ब्रजवल्लभ. महार्थमंजरी. वाराणसेय : संस्कृत विश्वविद्यालय, संवत् 2029.
4. दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.
5. दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग, संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009.
6. दिगम्बर, स्वामी. घरोटे,एम.एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018.
7. दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावल, 2017.
8. न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. कालचक्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी: साधना प्रेस, 2013.
9. न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी :इंडियन माइंड, 2012.
10. पातंजल योगदर्शन. चौदहवां संस्करण. गोरखपुर : गीताप्रेरस, संवत्, 2007.
11. पाण्डेय, डॉ. उमेशचंद्र. व्याख्याकार. याज्ञवल्क्यसमृतिः. पुनर्मुद्रण. वाराणसी : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, सं. 2070.
12. बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. सम्पादक और टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004.
13. ब्रह्मवर्चस. संपादक. सावित्रि-कुंडलिनी एवं तंत्र. द्वितीय संस्करण. मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान, 1998.
14. बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956.

15. बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.
16. मल्लिक, कल्याणी. संपादित. सिद्धसिद्धांतपद्धति ऐंड अदर वर्क्स ऑव नाथ योगीज. पूना : पूना ओरियंटस बुक हाउस, 1954.
17. महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे. रवीन्द्रनाथ, संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.
18. महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004.
19. शर्मा, उमाशंकर. संपादक एवं टीकाकार. माधवाचार्य कृत. सर्वदर्शनसंग्रहः वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014.
20. शर्मा, सुरेन्द्र कुमार. संपादित. बलभद्रविरचितः सिद्धसिद्धांतसंग्रहः. प्रथम संस्करण. दिल्ली : ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1986.
21. शर्मा, महिधर. भाषानुवाद. गोरक्षपद्धति. खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई: श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई-4, 1954.
22. शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.
23. शास्त्री, मुकुंदराम. संपादित. अमरौघशासनम्. बाम्बे : काश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्स ऐंड स्टडीज, 1918.
24. शास्त्री, मुकुंदराम. संपादित. अभिनवगुप्त कृत. तंत्रालोक. प्रथमो भागः. काश्मीर : श्रीनगर काश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्स एंड स्टडीज, 1918.
25. शास्त्री, हरप्रसाद. संपादित. बौद्ध गान ओ दोहा. प्रथम संस्करण. कलकत्ता : बंगीय साहित्य परिषद्, 1916.
26. शिवाचार्य, डॉ. चन्द्रशेखर. द्विवेदी, वज्रवल्लभ. तन्त्रागमीय-ज्ञानकोश. प्रथम संस्करण. वाराणसी : शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानम्, जंगमवाड़ी मठ, 2008.
27. सांकृत्यायन, राहुल. संपादित. सिद्ध सरहपाद. दोहा-कोश. चतुर्थ संस्करण. (हिंदी छायानुवाद सहित) पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, 2009.
28. त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001.

29. त्रिपाठी, रामशंकर. संपादित. आचार्यनागार्जन-प्रणीत. पिण्डीक्रमः पञ्चक्रमश्च. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थानाम्, सारनाथ, 2001.
30. त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006.
31. श्रीकृष्ण दास, गंगाविष्णु. गोरक्षपद्धति. मुंबई : लक्ष्मीवेंक्टश्वर छापाखाना, कल्याण-1867.
32. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादक व टीकाकार. गोरखबाणी. तृतीय संस्करण. गोरखनाथ : गोरखपुर महायोगी गुरू गोरखनाथ शोध संस्थान, गोरखनाथ मन्दिर, वि. 2071.
33. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादक. गोरक्षसिद्धांतसंग्रह. प्रथम संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर सं. 2036.
34. श्रीवास्तव, रामलाल. टीकाकार तथा संपादक. योगबीज. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर, वि. 2036.

## सहायक ग्रंथ :-

35. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. नाथसिद्धचरितामृत. गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर, सं. 2040.
36. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, 2014.
37. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ : नाथ साहित्य के परिप्रेक्ष्य में. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.
38. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, 1958.
39. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. नाथ और संत साहित्य: तुलनात्मक अध्ययन. वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1965.
40. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001.
41. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.
42. कविराज, गोपीनाथ.भारतीय संस्कृति और साधना. प्रथम व द्वितीय खण्ड. चतुर्थ संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2009.

43. कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007.
44. कविराज, गोपीनाथ. शक्ति का जागराण और कुण्डलिनी. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1999.
45. काशिकेय, रूद्र. द्धिवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सिद्धों की बानियाँ. प्रथम संस्करण. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, संवत्, 2014.
46. कृष्णनाथ. बौद्ध निबंधावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केंद्रीय उच्च तिब्बती संस्थान, सारनाथ, 1998.
47. कुकरेती, विष्णुदत्त. नाथपंथ : गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में. पहला संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर, सं. 2043.
48. गोस्वामी, डॉ. सुरक्षत. पातंजल योग एवं नाथयोग. संस्करण. नई दिल्ली : सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस,2005.
49. गौतम, डॉ. चमन लाल. गोरक्ष-संहिता. संशोधित संस्करण.बरेली : संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब, 2018.
50. घुरे, एस. जी. इंडियन साधुज. बंबई : द पॉपुलर बुक डिपो. लैमिंगटन रोड़, 1953.
51. घुरे, एस. जी. कास्ट ऐंड क्लास इन इंडिया. न्यूयॉर्क : फिलॉसफिकल लाइब्रेरी, 1952.
52. चटर्जी, जगदीशचंद्र. काश्मीर शैविज्म. भाग-प्रथम. श्रीनगर : काश्मीर द काश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्स ऐंड स्टडीज, 1914.
53. चटर्जी, सुनीतिकुमार. मिश्र, बबुआ. कविशेखराचार्य. ज्योतिरीश्वर रचित. वर्णरत्नाकर. कोलकता : रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल, 1940.
54. चंदोला, शांतिप्रसाद. चंदोला, भगवती. नाथ पंथ. वाराणसी : नेपाली कोठी वरूणापुल, 1975.
55. चुन्नीनाथ, गोरक्षन बाबा. तन-प्रकाश. द्वितीय संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर,1989.
56. दासगुप्त, शशिभूषण. आब्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स. कोलकता : युनिवर्सिटी ऑव कोलकता, 1946.
57. दास, श्यामसुंदर. कबीर ग्रंथावली. चतुर्थ संस्करण. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, संवत्, 2008.
58. द्विवेदी, व्रजवल्लभ. आगम और तंत्र शास्त्र. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स, 1984.

59. द्विवेदी, व्रजवल्लभ. तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन. भाग-1,2. प्रथम संस्करण. वाराणसी : शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्, जंगमवाडी मठ, 2001.
60. दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय. तृतीय संस्करण. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2017.
61. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कबीर. बंबई : हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, 1950.
62. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : उत्तरप्रदेश हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1950.
63. द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. क्र. 6. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.
64. नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999.
65. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त. योगप्रवाह. प्रथम संस्करण. बनारस : काशी विद्यापीठ, संवत् 2003.
66. तिवारी, रामचंद्र. अनुवादित. बनर्जी अक्षयकुमार कृत. नाथ योग एक परिचय. गोरखपुर : दिग्विजयनाथ टस्ट गोरखनाथ-मन्दिर, 1972.
67. भट्टाचार्य, विनयतोष. ऐन इंट्रोडक्षन टु बुद्धिस्ट एसोटेरिज्म. इंग्लै : हंफ्री मिलफोर्ड, आँक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1932.
68. भारती, अमृता. बसवरेड्डि, बी. ईश्वर. राजीव, रस्तोगी. संपादित. नाड़ी तंत्र एवं प्राण. केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012.
69. भारती, धर्मवीर. सिद्धसाहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955.
70. मल्लिक, कल्याणी. नाथ सम्प्रदायेर इतिहास दर्शन ओ साधनाप्रणाली. कलकत्ता : विश्वविद्यालय, 1950.
71. महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ.संपादित. योगाकोन्कोरडेन्स. प्रथम खण्ड, लोनावला : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2001.
72. यदुवंशी. शैवमत. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1955.
73. यादव, डॉ. द्विजराम. वज्रयानी सिद्ध सरहपाद. हिंदी भवन विश्वभारती, कलकत्ता : शांतिनिकेतन, 1981.

74. राय, डॉ. विनय प्रकाश. नाथ साहित्य परंपरा और प्रदेय. सारस्वत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016.
75. रांगेय, राघव. गोरक्षनाथ और उनका युग. दिल्ली : आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली-6, 1963.
76. वर्मा, डॉ. रामकुमार. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. प्रयाग : रामनारायण लाल, 1965.
77. शर्मा, उमाशंकर. (टीकाकार). माधवाचार्य प्रणीत सर्वदर्शनसंग्रह, वाराणसी : चौखंबा विद्या भवन, 1964.
78. शर्मा, राजेन्द्रनाथ. सिंह, नागशरण. संपादित. श्रीमार्कण्डेयमहापुराणम्. तृतीय संस्करण. दिल्ली : नाग पब्लिसर्स, 2008.
79. शर्मा, विनयमोहन. हिन्दी को मराठी संतों की देन. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1957.
80. शुक्ल, रामचंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, प्रवर्द्धित संस्करण, 2003.
81. स्नातक, विजयेन्द्र. संपादित. कबीर. दसवाँ संस्करण. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2016.
82. संत ज्ञानेश्वर विरचित. श्रीज्ञानेश्वरी. (हिन्दी-भाषानुवाद). गोरखपुर : गीताप्रेस, संवत्, 2072.
83. सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937.
84. सिंह, डॉ. अनुज प्रताप. गोरक्षनाथ और नाथ सिद्ध. तृतीय संस्करण. गोरखपुर : महायोगी गुरु गोरक्षनाथ शोध संस्थान, सम्वत् 2071.
85. सिंह, डॉ. उमा. गोरक्षनाथ एव पतंजलि के योग दर्शन के तात्विक स्वरुप का तुलनात्मक अध्ययन. प्रथम संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ मंदिर, 2002.
86. सरस्वती, स्वामी बुद्धानंद. मूलबंध. अनन्त रहस्यों की कुंजी. द्वितीय संस्करण. बिहार : योग पब्लिकेशन्स टस्ट, मुंगेर, 2010.

**अंग्रेजी संस्करण :-**

87. इलियट, सर चार्ल्स. हिंदुइज्म ऐंड बुद्धिज्म. (ए हिस्टॉरिकल स्केच). वाल्यूम-3, लंडन, 1954.
88. कुवल्यानंद, स्वामी.आसनास्.नाइन्थ एड़िशन. लोनावला : स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, इड़िया, 2017.

89. डी., भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012.
90. मेलिन्सन, जेम्स. सिग्लेटन, मार्क. ट्रांस्लेटेड एण्ड एडिटेड. रूट्स ऑफ योग. पेंग्विन बुक्स, 2017.
91. मिश्रा, रामप्रसाद. सहजयान : ए स्टडी ऑफ तांत्रिक बुद्धिजम. कलकत्ता : पुन्थी पुस्तक, 1991.
92. पाठक, एस. वी. शैव कल्ट्स इन नॉर्दर्न इंडिया, वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास, 1960.

**प्रकाशित पत्र एवम् पत्रिकाएँ : -**

93. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी. (कुण्डलिनी जागरण विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर, जनवरी-मार्च, 1996. वर्ष 21. अंक 1-3.
94. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी. (गोरख विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर, जनवरी, 1977. वर्ष-2. अंक-01.
95. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी.(गोरख चरित- दर्शन विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर, जनवरी, 1986. वर्ष-12. अंक-01.
96. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी. (मत्स्येन्द्र विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर जनवरी, 1992. वर्ष-17. अंक-1-3.
97. इण्डियन हिस्टोरीकल क्वाटर्ली. मत्स्येन्द्रनाथ एण्ड हिस योगिनी कल्ट्स, वाल्यूम 31, नं.1-4. मार्च-दिसंबर, 1955. पेज नं. 362.
98. नेगी, ठाकुर सेन. **धी :** दुर्लभ बौद्ध ग्रंथ शोध पत्रिका. क्रमांक 44. वाराणसी : केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2007.
99. नेगी, ठाकुर सेन. **धी :** दुर्लभ बौद्ध ग्रंथ शोध पत्रिका. क्रमांक 58. वाराणसी : केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2018.
100. सरस्वती, स्वामी ज्ञानसिद्धि. संपादित. योगविद्या. बिहार : बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, भारत, मई, 2018. वर्ष-7, अंक-5.

## उपसंहार :-

नाथ सिद्धों की हठयोग साधना को प्रस्तुत करने वाले साहित्यों में नाथ शब्द एक परम तत्व का सूचक है, जो नाम रहित ब्रह्म है। इसे ही आदिनाथ (शिव) की संज्ञा दी गयी है। जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि का स्वामी है। जिसने स्वयं को जान लिया है, एवं योग की दीक्षा देता है, उन गुरूओं को भी नाथ कहकर संबोधित गया है। नाथ सम्प्रदाय में महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ आदि महासिद्ध बहुप्रसिद्ध हैं, जो हठयोग के विशेषज्ञ माने गये हैं। नाथ सिद्धों के साहित्यों से यह ज्ञात होता है कि हठयोग की विद्या प्राचीन काल से चली आ रही है, जो अधिकांशत: सूत्र रुप में प्राप्त होती है। इस विद्या को मध्यकाल में मत्स्येन्द्रनाथ ने आदिनाथ से प्राप्त किया एवं गोरक्षनाथ आदि योगियों (सिद्धों) ने इस पर विविध नवीन प्रयोगों के माध्यम से इस विद्या का प्रचार-प्रसार किया । शोध कार्य के लिए विभिन्न नाथ सहित्यों में से कतिपय नाथ साहित्यों का चयन किया गया जो वैज्ञानिक रीति से सम्पादित साहित्य हैं। इनमें कौलज्ञाननिर्णय, गोरक्षशतकम्, सिद्धसिद्धांतपद्धति, वसिष्ठसंहिता, हठप्रदीपिका,घेरण्ड संहिता, हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, शिवसंहिता, गोरखबानी शामिल हैं। कौलज्ञाननिर्णय, पाँच छोटे-बड़े ग्रथों का संकलन है। जिनमें कौलज्ञाननिर्णय, अकुलवीरतंत्रम् ए, अकुलवीरतंत्रम् बी, कुलानंदतंत्रम् और ज्ञानकारिका शामिल हैं। ये ग्रंथ मूल रूप से कुल साधना से अकुल में प्रतिष्ठित होने का उपदेश करते हैं। कुल के अंतर्गत आसन, कुम्भक, कुण्डलिनी, देहस्थ चक्रों का जागरण, विभिन्न सिद्धियाँ आदि साधनाएँ शामिल हैं। इसके उपरांत स्वतः ही उत्पन्न सहज, मुक्ति का ही नामांतर है। इसे ही अकुल कहकर संबोधित किया गया है। सिद्धसिद्धांतपद्धति छः उपदेशों में विभक्त है। जिसमें अनामा ब्रह्म से उत्पन्न सृष्टि, हठयोग की परिभाषा, नौ चक्र, सोलह आधार, अष्टांगयोग, देह रूपी पिण्ड में विद्यमान विश्वब्रह्माण्ड का निरूपण, कुण्डलिनी का स्वरूप, शिव-शक्ति की अभेदता, समरसता, अवधूत योगी के लक्षणोंआदि का प्रतिपादन करता है। गोरक्षशतकम् हठयोग के आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का विस्तार से उपदेश करता है। वसिष्ठसंहिता अष्टांग योग का निरूपण करता है। हठप्रदीपिका आसन, कुम्भक, मुद्रा एवं नादानुसंधान के रूप में हठयोग साधना का

क्रम प्रस्तुत करता है। घेरण्ड संहिता षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के रूप में योग के सप्तांग का उपदेश करता है। हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, हठप्रदीपिका की ही भाँति योग के चतुष्क अंग का उपदेश करता है। शिवसंहिता में योग को किसी भी निश्चित अंगों के रूप में प्रस्तुत न करते हुए योग के दर्शन, आसन, प्राणायाम, विभिन्न मुद्रायें, कुण्डलिनी, देहस्थ चक्र, ध्यान एवं नादानुसंधान का निरूपण करता है। गोरखबानी (सबदी) में गोरक्षनाथ के द्वारा आसन, प्राणायाम, कुण्डलिनी, योग दर्शन, स्वसंवेद्य (स्वयं के द्वारा जाना गया) के साथ-साथ योग को चर्चा का विषय न बनाने, वाद-विवाद न करने, अवधूत योगियों के लिए साधनात्मक निर्देश आदि शामिल हैं।

हठ शब्द ह+ठ नामक दो वर्णों से मिलकर बना है। 'ह' से तात्पर्य 'हकार' एवं 'ठ' से तात्पर्य 'ठकार' है। सिद्धसिद्धांतपद्धति हठयोग की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए हकार को सूर्य एवं ठकार को चंद्र स्वीकार करता है। यौगिक साधनाओं के द्वारा सूर्य-चंद्र (प्राण-अपान) का योग ही हठयोग है। नाथसिद्धों के अनुसार देह में विद्यमान प्राण शक्ति और चित्त शक्ति ही शक्ति की दो विपरीत धाराएँ हैं। इन्हे ही नामांतर भेद से प्राण-अपान, सूर्य-चंद्र, इड़ा-पिंगला आदि नामों से भी संबोधित किया गया है, ये दोनों बायीं और दाहिनी नासिका के प्रतिनिधि भी हैं। सामान्यावस्था में इन दोनों में से किसी एक के सक्रिय होने पर दूसरा निष्क्रिय हो जाता है।

उपरोक्त दोनों विपरीत धाराओं को आसन, षट्कर्म, नाड़ी शोधन, प्राणायाम एवं मुद्रा साधना से संयुक्त किया जाता है। तब दोनों मिलन की प्रगाढ़ता में एक हो मध्यपथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है। जिससे इस मार्ग में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति उर्ध्वगमन करती हुई इस निरालंब मार्ग में शक्ति के केन्द्रों को जागृत करती हुई नाद के साथ परम शिव के साथ एक हो जाती है। तब योगी पूर्णानंद सहजानंद में निमग्न हो जाता है। यही परम पद है। जिससे इसी देह में ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड क अभेदता का ज्ञान होता है। इसे ही योगियों ने स्वसंवेद्य कहा है, जो संसार और मुक्ति से परे अव्यक्त है।

उपरोक्त हठयोग की साधना नाथ सिद्धों (योगियों) के मध्य प्रचलित थी और आज भी प्रचलन में है, किन्तु इन साधनाओं के सूत्र हमें वैदिककाल से ही प्राप्त होने लगते हैं। विभिन्न उपनिषद्, तंत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण, स्मृति, सूत्र आदि ग्रंथों आदि में क्रमश: प्राप्त होते हैं, किन्तु मध्यकाल में नाथ सिद्धों (योगियों) के द्वारा इस योग पर विभिन्न प्रयोग किये गये एवं कालांतर में इस मार्ग में सम्मिलित विभिन्न विकृतियों को दूर कर इन योगियों ने गूढ़ माने जाने वाले हठयोग को व्यवहारिक रूप में प्रतिष्ठित किया। नाथ सिद्धों में ये हठयोग की साधना दीक्षा प्राप्ति के उपरांत गुरू के संरक्षण में संचालित होती थी। ये विद्याएँ गुप्त रूप से गुरू-शिष्य के मध्य संचालित थी। इन सिद्धों ने हठयोग की पुरातन एवं नवीन साधनाओं को मिलाकर इस विद्या की पुनः प्रतिष्ठा की।

नाथ सिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, काणेरीनाथ, चर्पटनाथ, कंथडिनाथ, गोपीचंद, भर्तृहरि, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या कहीं चौरासी तो कहीं सवा सौ कही गयी है। इन नाथ सिद्धों ने हठयोग की साधना में अपने पुरातन सिद्धों की सूची प्रस्तुत करते हुए आसन, आयुर्वेद में प्रसिद्ध पंचकर्म की तरह ही किन्तु बिना किसी प्रकार के आवश्यक साधनाओं के जल, वायु एवं किंचित वस्त्र आदि से त्रिदोंषों के संतुलन के उद्देश्य से षट्कर्म नामक शोधन क्रिया को इस साधना में आवश्यक माना।

योग के लिए पथ्य एवं निषिद्ध आहारों की चर्चा करते हुए मिताहार एवं सर्वसुलभ आहारों में से संतुलित एवं योग के साधना के लिए उपयुक्त भोज्य पदार्थों की सूची प्रस्तुत की है। विभिन्न नाड़ियों में सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला को प्रमुखता दी गयी। यम में मिताहार एवं नियम में अहिंसा को प्रमुख माना गया। आसनों में सिद्धासन, विविध प्रकार के कुम्भक साधनाओं में केवली को श्रेष्ठ है। मुद्राओं में खेचरी विशिष्ट माना गया। गुरू के मार्गदर्शन को ही साधना का आधार स्वीकार किया गया। ब्रह्मचर्य की महत्ता, देहस्थ शक्ति कुण्डलिनी को हठयोग का आधार स्वीकार करते हुए इसे ही जागृत करना ही साधना का उद्देश्य स्वीकार किया गया।

देहस्थ चक्रों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञाचक्र मिलाकर षट्चक्रों को अधिक मान्यता दी गयी है।

समस्त प्रकार की समाधियों में से नादानुसंधान को सर्वोत्तम माना गया। इस शरीर को ही समस्त साधनाओं का उपाय मानते हुए किसी मंदिर, तीर्थ, देव स्थापना की अपेक्षा इसे सिद्धदेह बनाकर रोगरहित, जरा मुक्त एवं विभिन्न सिद्धियों के साथ ही जीवन मुक्ति को स्वीकार किया गया। अंतिम में प्राप्त पूर्णानन्द, मुक्ति को नाथसिद्धों ने सहज कहकर संबोधित करते हुए सहजानंद कहा। इसके साथ-साथ यम, नियम, प्रत्याहार, धारणा आदि को भी कुछ नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए इसे देह में ही समस्त सृष्टि की उपस्थिति को पिण्डब्रह्माण्डवाद, परम तत्त्व को किसी संख्या अथवा गणना के परे होने के कारण, द्वैताद्वैतविवर्जित एवं इन सभी को स्वयं के द्वारा स्वयं से जानने को स्वसंवेद्य कहा गया। नाथ सिद्धों के समान ही इनके समकालीन तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय सहजयान की साधना, सिद्ध और दर्शन प्रसिद्धि पाते रहे हैं।

सहजयान में सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' से तात्पर्य उत्पन्न होना है। शब्दकोश के अनुसार सहज शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ प्राकृतिक रूप से, साथ-साथ अथवा एक ही काल में उत्पन्न होना है। नामांतर भेद से इसे ही जन्मजात अथवा स्वभाव भी कहा गया है। तिब्बती भाषा में सहज शब्द सह= ह्लन चिग्, ज= क्येपा से मिलकर बना है। जिसका अर्थ साथ-साथ पैदा होना या उत्पन्न होना है। सहजयान तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत आने वाला एक सम्प्रदाय है। जिसका विकास वज्रयानी सम्प्रदाय के उपरांत अथवा साथ साथ माना जाता है। सहजयान सम्प्रदाय में सहज, प्रज्ञा-उपाय, वज्र-वाराही शून्यता-करूणा, पद्म-वज्र आदि का मिलित रूप हैं, एवं परमलक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में जिन साधनाओं, अभ्यासों को माध्यम लिया जाता है, वे ही यान (साधन) के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन सहजीया सिद्धों ने सहज को अव्यक्त कहा है जिसे बताया या समझाया नहीं जा सकता। यह भावाभाव से परे संसार (भव) और निर्वाण के पार है। अनेक स्थानों पर इन सिद्धों

ने इसे ही महामुद्रा साक्षात्कार, निर्वाण, परमपद आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है।

सहजयान सम्प्रदाय तांत्रिक बौद्ध परम्परा के अंतर्गत उद्‌बुद्ध मानी जाती है, जो वज्रयानी शाखा से अलग होकर विकसित हुई थी। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में चौरासी सिद्धों की सूची में सहजयानी सिद्धों को देखा जा सकता है। इन सिद्धों में लूअिपा (लुईपाद), लीलापा, विरूपा, शबरपा, सरहपा, कण्डालीपा, मीनपा, गोरक्षपा, कण्हपा, चौरंगिपा, वीणापा, शान्तिपा, तिलोपा, नरोपा, डोम्भीपा आदि प्रमुख सिद्धों के नामों का उल्लेख है।

इनकी संख्या चौरासी कही गयी है। सिद्धों की रचनाएँ संस्कृत, मिश्रसंस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्राप्त होती है। इनमें चर्यापद, दोहाकोशगीति, चर्यागीति और संस्कृत आदि प्रमुख माने जाते हैं जिनमें लुईपाद रचितचर्यापद, चर्याचर्यविनिश्चय, हेवज्रतंत्र, कृष्णपादरचित, हेवज्रपंजिकायोगरत्नमाला, शांतिपा रचित हेवज्रपंजिका मुक्तावली, हेवज्रतंत्र, नरोपाकृत वज्रयानी अनुत्तरयोगतंत्र, सेकोद्देश्यटीका, चर्यागितिकोश, हेवज्रपंजिका, कालचक्रतंत्रम् आदि सहजयानी ग्रंथों के रूप में प्रसिद्ध हैं। जिनमें इन सिद्धों की साधनाओं का अवलोकन किया जा सकता है।

इन सहजयानी सिद्धों ने उपरोक्त ग्रंथों के साथ-साथ वज्रयान के आधार ग्रंथों को भी स्वीकार किया है। इन्होंने गुरू को विशेष महत्त्व देते हुए उनके द्वारा उपदिष्ट साधनाओं को अपने ग्रंथों में वर्णित किया है। जिनके अवलोकन से वज्रासन, देहस्थ विभिन्न नाड़ियों का उल्लेख, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रा साधना, प्रज्ञोपाय, बिन्दु साधना, चाण्डाली योग, देहस्थ चक्र, सहजानंद एवं निर्वाण आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके दर्शन एवं प्रमाणों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने इस जगत को चित्त से ही उत्पन्न माना है। जो न तो सत् रूप है, और न ही असत् रूप। सहजयानी सिद्धों के अनुसार ललना और रसना की मिलन की प्रगाढ़ता में प्रज्ञोपाय साधना से बोधिचित्त का मध्यमार्ग से ऊर्ध्वगमन होने से मन और प्राण में क्रमश: स्थिरता आते-आते समस्त संसारिक ज्ञान एवं पंचमहाभूत भस्मिभूत हो जाते हैं। उपरांत इसी देह में सत्य ज्ञान का उदय होता है। वही, सहज है, जो संसार

और निर्वाण के परे परमावस्था है। इसे ही सहजानंद भी कहा गया है। इन सिद्धों की साधनात्मक ग्रंथों का प्रकाशन प्रथमतः भारतीय विद्वानों में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने किया एवं इन सिद्धों की सूची प्रथमतः राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत की गयी जिनको तिब्बत के सुदूर बौद्ध मठ सस्कय विहार से प्राप्त किया गया था।

उपरोक्त हठयोग एवं सहजयान की साधना, दर्शन एवं साहित्यों में अधिक समानता दिखाई देती है। इस प्रकार हठयोग एवं सहजयान की समीक्षा करने पर हठयोग दो वर्णों ह+ठ से मिलकर बना है। जिसका अर्थ शक्ति की दो धाराओं से है। सामान्यावस्था में ये धाराएँ एक दूसरे के विपरीत कार्य व्यापार को सम्पादित करती है, किन्तु गुरू के द्वारा उपदिष्ट साधना मार्ग का अनुसरण करने से इन दोनों धाराओं को क्रमश: एक्य किया जाता है। इन धाराओं को ही नामांतर भेद से इड़ा-पिंगला, सूर्य-चंद्र, गंगा-यमुना आदि नामों से संबोधित किया जाता है। दोनों शक्ति धाराओं का योग ही हठयोग है। जिससे भेदाभेद आदि मिट जाते हैं, तब योगी, सहज में रमण करता है, जो मुक्ति का ही नामांतर है।

उपरोक्त साधनाएँ नाथ योगियों अथवा नाथसिद्धों के बीच प्रचलित है। इनके मत को योगमार्ग, अवधूतमार्ग, सिद्धमार्ग कौलमार्ग आदि नामों से भी जाना जाता है। इसी प्रकार ही सहज, सह+ज से मिलकर बना हुआ है। जिसमें 'सह' से तात्पर्य साथ-साथ एवं 'ज' का अर्थ उत्पन्न होना है। वस्तु और उसके गुण का एक साथ होना ही सहज है। सहजयानी सिद्धों ने सहज को ही नामांतर भेद से प्रज्ञा-उपाय, शून्यता-करूणा, सूर्य-चंद्र, स्त्री-पुरूष आदि कहकर भी संबोधित किया है। उपरोक्त दोनों की मिलन की प्रगाढ़ता में समस्त भेद समाप्त हो जाते हैं और साधक सहज में रमण करने लगता है, जो निर्वाण का ही नामांतर है। नाथ और सहजयानी दोनों सम्प्रदायी सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध हैं। मध्यकालीन भारतीय एवं तिब्बती स्रोतों से प्राप्त सूचियों वर्णरत्नाकर, सस्कय विहार, हठप्रदीपिका आदि में दोनों सम्प्रदायी मिश्रित रूप में शामिल हैं, किन्तु इनमें प्रथम नाम मत्स्येन्द्रनाथ का ही प्राप्त होता है, इन्हीं का तिब्बती संस्करण लूअिपा (लुहिपा) है। जो सहजयानी सिद्धों में आदि

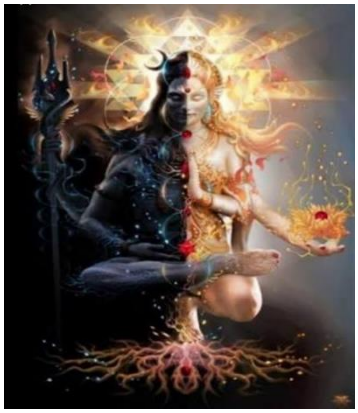
सिद्ध है, इसी सूची में ही गोरक्षनाथ, गोरक्षपा के नाम से वर्णित है। नेपाली बौद्धों के मध्य भी मत्स्येन्द्र अवलोकितेर के रूप में पूजित है और प्रसिद्ध है।

काश्मीर शैव परम्परा के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार मत्स्येन्द्र ने ही स्वउपार्जित ज्ञान को आनंद, अवलि, योगी, प्रभु, बोधि, पाद में बाँट दिया था। सहजयानी सिद्धों की नामावली में 'पाद' नामक सम्बोधन शब्द की बहुलता है। मत्स्येन्द्र कृत कौलज्ञाननिर्णय में अपने पूर्व की सिद्धों की परम्पराओं का उल्लेख किया है। जिनके नामों के अंत में भी पादान नामक विषेषण प्राप्त होते हैं। नवनाथों की सूची प्रस्तुत करने वाली सूची में सहजयानी प्रसिद्ध सिद्ध जालंधर एवं उनके प्रमुख शिष्य कानिफा भी शामिल है। इन सूचियों में भी मत्स्येन्द्र का स्थान प्रथम और गोरक्षनाथ दूसरे स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्मानंदकृत हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में बंगाल के प्रसिद्ध नाथ सिद्ध और सहजयानी सिद्ध गोपीचंद के साथ-साथ सोलहवीं शताब्दी में तिब्बत में प्रसिद्ध लेखक और सहजयानी साधक तारानाथ की नाथों की सूची में शामिल किया हैं।

दोनों सम्प्रदायों में उनकी साधनात्मक विधियाँ भी समान है, नाथ साधना में जहाँ आसन, प्राणायाम, कापालिक साधना, मुद्रा, कुण्डलिनी जागरण, देहस्थ चक्र, सहजानंद आदि का वर्णन प्राप्त होता है, सहजयान में भी नामांतर भेद से इन्हें बुद्धासन, वज्रजाप, कापालिक साधना, मुद्रासाधना, चाण्डाली जागरण, देहस्थ चक्र एवं सहजानंद आदि नामों से प्राप्त होता है। इनके दर्शन भी नाथ योगियों से मिलते है। सहजयान के पूर्व परम्पराओं की समीक्षा करने पर उपरोक्त साधनाएँ मेल नहीं रखती। सहजयान की उत्पत्ति की अस्पष्टता एवं इनकी अपने पूर्व की परम्पराओं से मेल नहीं दिखाई देती। साथ ही विभिन्न सहजयानी ग्रंथ दोहाकोश, चर्यापद, हेवज्रतंत्र, एवं उनकी संस्कृत की टीकाओं का काल एवं उनमें वर्णित साधना नाथ सिद्धों के बाद ठहरती है, एवं इनका नाथ साधना से गहरा संबंध दिखाई पड़ता है। इस प्रकार सहजयानी सिद्धों ने नाथ साधनाओं का ही अनुसरण कर अपनी साधनाओं को बौद्ध शब्दावलियाँ देते रहे । विभिन्न विद्वानों ने भी भिन्न-भिन्न संदर्भों एवं साधना, साहित्य एव दर्शन आदि के आधार पर नाथ सिद्धों का सहजयान पर प्रभाव स्वीकार किया है।

## सिद्धों की साधनात्मक चित्रावली :-

हठ यौगिक साधना

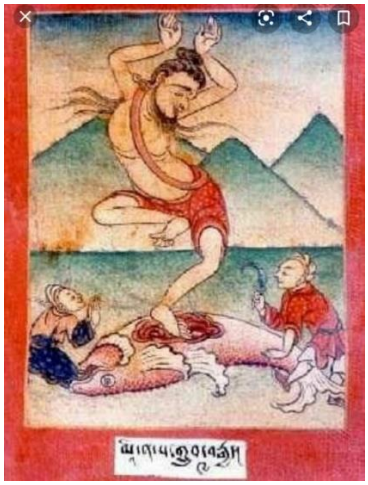


1. अर्धनारिश्वर स्वरुप

सहजयानी साधना



2. वज्रवाराही स्वरुप



3.मत्स्य के साथ महासिद्ध मत्स्येंद्रनाथ



4. मत्स्य के साथ लुईपा सिद्ध



5. षट्चक्र



6. चाण्डाली शक्ति

# सिद्धों की साधनात्मक चित्रावलियों की संदर्भ सूची :-


1. https://images.app.goo.gl/4M4E7PSfUFB2iXwQ9. 20.03.2021, 5.30pm.
2. https://images.app.goo.gl/s1HWYEGK5b1QkAat7. 20.03.2021, 5.30pm.
3. https://images.app.goo.gl/maccvMkz5dSoxspt8 . 20.03.2021, 5.30pm.
4. https://images.app.goo.gl/WmQitBCnrP2SE6h69 . 20.03.2021, 5.30pm.
5. https://images.app.goo.gl/tjdMzbXB6Ryg261P7 . 20.03.2021, 5.30pm.
6. https://images.app.goo.gl/KfNmQrnKX2YuMmXR6 . 20.03.2021, 5.30pm.

# संदर्भ ग्रंथ सूची

## आधार ग्रंथ -


1. कविराज, गोपीनाथ. संपादित. गोरक्षसिद्धांतसंग्रह. बनारस : गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी, 1925.
2. तिवारी, ओमप्रकाश. भाषानुवाद. संत चरणदासकृत अष्टांग योग. द्वितीय आवृत्ति. लोनावला : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, 2010.
3. द्विवेदी, पं. ब्रजवल्लभ. महार्थमंजरी. वाराणसेय : संस्कृत विश्वविद्यालय, संवत् 2029.
4. दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग. संपादित. गोरक्षशतकम्. प्रथम आवृत्ति. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2013.
5. दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग, संपादित. वसिष्ठसंहिता. परिवर्धित संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, लोनावला, 2009.
6. दिगम्बर, स्वामी. घरोटे,एम.एल. संपादित. घेरण्ड संहिता. चतुर्थ संस्करण. पुणे : श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 2018.
7. दिगम्बर, स्वामी. झा, पीताम्बर. संस्करणकर्ता. स्वात्मारामकृत. हठप्रदीपिका. षष्ठम संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम, स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावल, 2017.
8. न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. कालचक्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी: साधना प्रेस, 2013.
9. न्यौपाने, काशीनाथ. अनुवादक. हेवज्रतन्त्रम्. प्रथम संस्करण. वाराणसी :इंडियन माइंड, 2012.
10. पातंजल योगदर्शन. चौदहवां संस्करण. गोरखपुर : गीताप्रेरस, संवत्, 2007.
11. पाण्डेय, डॉ. उमेशचंद्र. व्याख्याकार. याज्ञवल्क्यसमृतिः. पुनर्मुद्रण. वाराणसी : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, सं. 2070.
12. बड़थ्वाल, डॉ. पीताम्बरदत्त. सम्पादक और टीकाकार. गोरख-बानी. षष्ठ संस्करण. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2004.
13. ब्रह्मवर्चस. संपादक. सावित्रि-कुंडलिनी एवं तंत्र. द्वितीय संस्करण. मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान, 1998.
14. बागची, प्रबोधचंद्र. शास्त्री, शांतिभिक्षु. संपादित. चर्यागीतिकोषः. कलकत्ता : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, 1956.

15. बागची, प्रबोधचंद्र. संपादित. कौलज्ञाननिर्णयः. कलकत्ता : मेट्रोपोलिटेंट प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस लिमिटेड, 1934.
16. मल्लिक, कल्याणी. संपादित. सिद्धसिद्धांतपद्धति ऐंड अदर वर्क्स ऑव नाथ योगीज. पूना : पूना ओरियंटस बुक हाउस, 1954.
17. महेशानंद. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे. रवीन्द्रनाथ, संपादित. शिव संहिता. प्रथम हिंदी संस्करण. पुणे : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, 1999.
18. महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ. संपादित. हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना. लोनावला : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2004.
19. शर्मा, उमाशंकर. संपादक एवं टीकाकार. माधवाचार्य कृत. सर्वदर्शनसंग्रहः वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, 2014.
20. शर्मा, सुरेन्द्र कुमार. संपादित. बलभद्रविरचितः सिद्धसिद्धांतसंग्रहः. प्रथम संस्करण. दिल्ली : ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1986.
21. शर्मा, महिधर. भाषानुवाद. गोरक्षपद्धति. खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई: श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई-4, 1954.
22. शास्त्री, द्वारिका दास. संपादक एवं अनुवादक. सिद्धसिद्धांतपद्धति. वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2014.
23. शास्त्री, मुकुंदराम. संपादित. अमरौघशासनम्. बाम्बे : काश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्स ऐंड स्टडीज, 1918.
24. शास्त्री, मुकुंदराम. संपादित. अभिनवगुप्त कृत. तंत्रालोक. प्रथमो भागः. काश्मीर : श्रीनगर काश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्स एंड स्टडीज, 1918.
25. शास्त्री, हरप्रसाद. संपादित. बौद्ध गान ओ दोहा. प्रथम संस्करण. कलकत्ता : बंगीय साहित्य परिषद्, 1916.
26. शिवाचार्य, डॉ. चन्द्रशेखर. द्विवेदी, वज्रवल्लभ. तन्त्रागमीय-ज्ञानकोश. प्रथम संस्करण. वाराणसी : शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानम्, जंगमवाड़ी मठ, 2008.
27. सांकृत्यायन, राहुल. संपादित. सिद्ध सरहपाद. दोहा-कोश. चतुर्थ संस्करण. (हिंदी छायानुवाद सहित) पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, 2009.
28. त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. रत्नाकर शांतिपा विरचित. हेवज्रपंजिका-मुक्तावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2001.
29. त्रिपाठी, रामशंकर. संपादित. आचार्यनागार्जन-प्रणीत. पिण्डीक्रमः पञ्चक्रमश्च. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थानाम्, सारनाथ, 2001.

30. त्रिपाठी, रामशंकर. नेगी, ठाकुर सेन. संपादित. महापण्डित आचार्य कृष्णपाद विरचित. हेवज्रपंजिका-योगरत्नमाला. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षासंस्थानम्, सारनाथ, 2006.
31. श्रीकृष्ण दास, गंगाविष्णु. गोरक्षपद्धति. मुंबई : लक्ष्मीवेंक्टश्वर छापाखाना, कल्याण-1867.
32. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादक व टीकाकार. गोरखबाणी. तृतीय संस्करण. गोरखनाथ : गोरखपुर महायोगी गुरू गोरखनाथ शोध संस्थान, गोरखनाथ मन्दिर, वि. 2071.
33. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादक. गोरक्षसिद्धांतसंग्रह. प्रथम संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर सं. 2036.
34. श्रीवास्तव, रामलाल. टीकाकार तथा संपादक. योगबीज. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर, वि. 2036.

## सहायक ग्रंथ :-

35. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. नाथसिद्धचरितामृत. गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर, सं. 2040.
36. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, 2014.
37. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. गोरखनाथ : नाथ साहित्य के परिप्रेक्ष्य में. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.
38. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, 1958.
39. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. नाथ और संत साहित्य: तुलनात्मक अध्ययन. वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1965.
40. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध अपभ्रंश साहित्य. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2001.
41. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य. प्रथम संस्करण, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.
42. कविराज, गोपीनाथ.भारतीय संस्कृति और साधना. प्रथम व द्वितीय खण्ड. चतुर्थ संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2009.
43. कविराज, गोपीनाथ. भारतीय साधना की धारा. द्वितीय संस्करण. पटना : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 2007.

44. कविराज, गोपीनाथ. शक्ति का जागराण और कुण्डलिनी. द्वितीय संस्करण. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1999.
45. काशिकेय, रूद्र. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सिद्धों की बानियाँ. प्रथम संस्करण. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, संवत्, 2014.
46. कृष्णनाथ. बौद्ध निबंधावली. प्रथम संस्करण. वाराणसी : केंद्रीय उच्च तिब्बती संस्थान, सारनाथ, 1998.
47. कुकरेती, विष्णुदत्त. नाथपंथ : गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में. पहला संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर, सं. 2043.
48. गोस्वामी, डॉ. सुरक्षत. पातंजल योग एवं नाथयोग. संस्करण. नई दिल्ली : सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस,2005.
49. गौतम, डॉ. चमन लाल. गोरक्ष-संहिता. संशोधित संस्करण.बरेली : संस्कृति संस्थान ख्वाजा कुतुब, 2018.
50. घुरे, एस. जी. इंडियन साधुज. बंबई : द पॉपुलर बुक डिपो. लैमिंगटन रोड़, 1953.
51. घुरे, एस. जी. कास्ट ऐंड क्लास इन इंडिया. न्यूयॉर्क : फिलॉसफिकल लाइब्रेरी, 1952.
52. चटर्जी, जगदीशचंद्र. काश्मीर शैविज्म. भाग-प्रथम. श्रीनगर : काश्मीर द काश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्स ऐंड स्टडीज, 1914.
53. चटर्जी, सुनीतिकुमार. मिश्र, बबुआ. कविशेखराचार्य. ज्योतिरीश्वर रचित. वर्णरत्नाकर. कोलकता : रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल, 1940.
54. चंदोला, शांतिप्रसाद. चंदोला, भगवती. नाथ पंथ. वाराणसी : नेपाली कोठी वरूणापुल, 1975.
55. चुन्नीनाथ, गोरक्षन बाबा. तन-प्रकाश. द्वितीय संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ-मन्दिर,1989.
56. दासगुप्त, शशिभूषण. आब्स्क्योर रेलिजस कल्ट्स. कोलकता : युनिवर्सिटी ऑव कोलकता, 1946.
57. दास, श्यामसुंदर. कबीर ग्रंथावली. चतुर्थ संस्करण. काशी : नागरीप्रचारिणी सभा, संवत्, 2008.
58. द्विवेदी, व्रजवल्लभ. आगम और तंत्र शास्त्र. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स, 1984.
59. द्विवेदी, व्रजवल्लभ. तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन. भाग-1,2. प्रथम संस्करण. वाराणसी : शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्, जंगमवाडी मठ, 2001.

60. दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति के चार अध्याय. तृतीय संस्करण. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2017.
61. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कबीर. बंबई : हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, 1950.
62. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. नाथ सम्प्रदाय. इलाहाबाद : उत्तरप्रदेश हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1950.
63. द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली. क्र. 6. चौथा संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013.
64. नेगी, ठाकुरसेन. वज्रयानी अनुत्तर योग. वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1999.
65. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त. योगप्रवाह. प्रथम संस्करण. बनारस : काशी विद्यापीठ, संवत् 2003.
66. तिवारी, रामचंद्र. अनुवादित. बनर्जी अक्षयकुमार कृत. नाथ योग एक परिचय. गोरखपुर : दिग्विजयनाथ टस्ट गोरखनाथ-मन्दिर, 1972.
67. भट्टाचार्य, विनयतोष. ऐन इंट्रोडक्षन टु बुद्धिस्ट एसोटेरिज्म. इंग्लै : हंफ्री मिलफोर्ड, आँक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1932.
68. भारती, अमृता. बसवरेड्डि, बी. ईश्वर. राजीव, रस्तोगी. संपादित. नाड़ी तंत्र एवं प्राण. केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012.
69. भारती, धर्मवीर. सिद्धसाहित्य. इलाहाबाद : किताब महल, 1955.
70. मल्लिक, कल्याणी. नाथ सम्प्रदायेर इतिहास दर्शन ओ साधनाप्रणाली. कलकत्ता : विश्वविद्यालय, 1950.
71. महेशानंद, स्वामी. शर्मा, बाबूराम. सहाय, ज्ञानशंकर. बोधे, रविन्द्रनाथ.संपादित. योगाकोन्कोरडेन्स. प्रथम खण्ड, लोनावला : कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, 2001.
72. यदुवंशी. शैवमत. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1955.
73. यादव, डॉ. द्विजराम. वज्रयानी सिद्ध सरहपाद. हिंदी भवन विश्वभारती, कलकत्ता : शांतिनिकेतन, 1981.
74. राय, डॉ. विनय प्रकाश. नाथ साहित्य परंपरा और प्रदेय. सारस्वत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016.

75. रांगेय, राघव. गोरक्षनाथ और उनका युग. दिल्ली : आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली-6, 1963.
76. वर्मा, डॉ. रामकुमार. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. प्रयाग : रामनारायण लाल, 1965.
77. शर्मा, उमाशंकर. (टीकाकार). माधवाचार्य प्रणीत सर्वदर्शनसंग्रह, वाराणसी : चौखंबा विद्या भवन, 1964.
78. शर्मा, राजेन्द्रनाथ. सिंह, नागशरण. संपादित. श्रीमार्कण्डेयमहापुराणम्. तृतीय संस्करण. दिल्ली : नाग पब्लिसर्स, 2008.
79. शर्मा, विनयमोहन. हिन्दी को मराठी संतों की देन. पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1957.
80. शुक्ल, रामचंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, प्रवर्द्धित संस्करण, 2003.
81. स्नातक, विजयेन्द्र. संपादित. कबीर. दसवाँ संस्करण. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2016.
82. संत ज्ञानेश्वर विरचित. श्रीज्ञानेश्वरी. (हिन्दी-भाषानुवाद). गोरखपुर : गीताप्रेस, संवत्, 2072.
83. सांकृत्यायन, राहुल. पुरातत्त्वनिबंधावली. इलाहाबाद : इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1937.
84. सिंह, डॉ. अनुज प्रताप. गोरक्षनाथ और नाथ सिद्ध. तृतीय संस्करण. गोरखपुर : महायोगी गुरु गोरक्षनाथ शोध संस्थान, सम्वत् 2071.
85. सिंह, डॉ. उमा. गोरक्षनाथ एव पतंजलि के योग दर्शन के तात्विक स्वरुप का तुलनात्मक अध्ययन. प्रथम संस्करण. गोरखपुर : गोरखनाथ मंदिर, 2002.
86. सरस्वती, स्वामी बुद्धानंद. मूलबंध. अनन्त रहस्यों की कुंजी. द्वितीय संस्करण. बिहार : योग पब्लिकेशन्स टस्ट, मुंगेर, 2010.

**अंग्रेजी संस्करण :-**

87. इलियट, सर चार्ल्स. हिंदुइज्म ऐंड बुद्धिज्म. (ए हिस्टॉरिकल स्केच). वाल्यूम-3, लंडन, 1954.
88. कुवल्यानंद, स्वामी.आसनास्.नाइन्थ एड़िशन. लोनावला : स्वामी कुवल्यानंद मार्ग, इड़िया, 2017.
89. डी., भक्ति. एडिटेड. चर्यासंग्रहः. वाराणसी : सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ तिब्बतन स्टडिज, सारनाथ, 2012.
90. मेलिन्सन, जेम्स. सिग्लेटन, मार्क. ट्रांस्लेटेड एण्ड एडिटेड. रूट्स ऑफ योग. पेंग्विन बुक्स, 2017.

91. मिश्रा, रामप्रसाद. सहजयान : ए स्टडी ऑफ तांत्रिक बुद्धिजम. कलकत्ता : पुन्थी पुस्तक, 1991.
92. पाठक, एस. वी. शैव कल्ट्स इन नॉर्दर्न इंडिया, वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास, 1960.

**प्रकाशित पत्र एवम् पत्रिकाएँ : -**

93. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी. (कुण्डलिनी जागरण विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर, जनवरी-मार्च, 1996. वर्ष 21. अंक 1-3.
94. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी. (गोरख विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर, जनवरी, 1977. वर्ष-2. अंक-01.
95. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी.(गोरख चरित- दर्शन विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर, जनवरी, 1986. वर्ष-12. अंक-01.
96. अवेद्यनाथ, महन्त. श्रीवास्तव, रामलाल. संपादित. योगवाणी. (मत्स्येन्द्र विशेषांक). गोरखपुर : गोरखनाथ मन्दिर जनवरी, 1992. वर्ष-17. अंक-1-3.
97. इण्डियन हिस्टोरीकल क्वाटर्ली. मत्स्येन्द्रनाथ एण्ड हिस योगिनी कल्ट्स, वाल्यूम 31, नं.1-4. मार्च-दिसंबर, 1955. पेज नं. 362.
98. नेगी, ठाकुर सेन. **धी :** दुर्लभ बौद्ध ग्रंथ शोध पत्रिका. क्रमांक 44. वाराणसी : केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2007.
99. नेगी, ठाकुर सेन. **धी :** दुर्लभ बौद्ध ग्रंथ शोध पत्रिका. क्रमांक 58. वाराणसी : केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2018.
100. सरस्वती, स्वामी ज्ञानसिद्धि. संपादित. योगविद्या. बिहार : बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, भारत, मई, 2018. वर्ष-7, अंक-5.

**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 2; Issue 6; November 2016; Page No. 22-23**

# नाथ सम्प्रदाय : योग, तंत्र, आयुर्वेद, बौद्ध अध्ययन, एवं हिन्दी के क्षेत्र में साहित्य सर्वेक्षण

**[1] उमाशंकर कौशिक, [2] डॉ0 उपेन्द्र बाबु खत्री, [3] डॉ0 अखिलेश कुमार सिंह, [4] डॉ0 राहुल सिद्धार्थ**

[1] शोधार्थी पी–एच0 डी0 योग विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन मध्य प्रदेश, भारत।
[2] सहायक प्राध्यापक योग विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन मध्य प्रदेश, भारत।
[3] सहायक प्राध्यापक आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन मध्य प्रदेश, भारत।
[4] सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन मध्य प्रदेश, भारत।

**सारांश**

नाथ सम्प्रदाय का उल्लेख विभिन्न क्षेत्र के ग्रंथों में जैसे–योग (हठयोग) तंत्र (अवधूत मत या सिद्ध मत) आयुर्वेद (रसायन चिकित्सा) बौद्ध अध्ययन (सहजयान तिब्बतियन परम्परा 84 सिद्धों में) हिन्दी (आदिकाल के कवियों के रूप) में चर्चा मिलती हैं।

**यौगिक ग्रंथों में नाथ सिद्ध**:– हठप्रदीपिका के लेखक स्वात्माराम और इस ग्रंथ के प्रथम टीकाकार ब्रह्मानंद ने हठ प्रदीपिका ज्योत्स्ना के प्रथम उपदेश में 5 से 9 वे श्लोक में 33 सिद्ध नाथ योगियों की चर्चा की है। ये नाथसिद्ध कालजयी होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते है। इन नाथ योगियों में प्रथम नाथ आदिनाथ को माना गया है जो स्वयं शिव है जिन्होंने हठयोग की विद्या प्रदान की जो राजयोग की प्राप्ति में सीढ़ी के समान है।

**आयुर्वेद ग्रंथों में नाथ सिद्धों की चर्चा** – रसायन चिकित्सा के उत्पत्ति करता के रूप प्राप्त होता है। जिन्होंने इस शरीर रूपी साधन को जो मोक्ष में माध्यम है इस शरीर को रसायन चिकित्सा पारद और अभ्रक आदि रसायानों की उपयोगिता सिद्ध किया। पारदादि धातु घटित चिकित्सा का विशेष प्रवर्त्तन किया था तथा विभिन्न रसायन ग्रंथों की रचना की उपरोक्त कथन सुप्रसिद्ध विद्वान और चिकित्सक महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन ने लिखा है।

**तंत्र गंथों में नाथ सम्प्रदाय** – नाथ सम्प्रदाय के आदिनाथ शिव है, मूलतः समग्र नाथ सम्प्रदाय शैव है। शाबर तंत्र में कपालिको के 12 आचार्यों की चर्चा है– आदिनाथ, अनादि, काल, वीरनाथ, महाकाल आदि जो नाथ मार्ग के प्रधान आचार्य माने जाते है। नाथों ने ही तंत्र गंथों की रचना की है। षोड्श नित्यातंत्र में शिव ने कहा है कि – नव नाथों– जडभरत मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ,, सत्यनाथ, चर्पटनाथ, जालंधरनाथ नागार्जुन आदि ने ही तंत्रों का प्रचार किया है।

**बौद्ध अध्ययन में नाथ सिद्ध** 84 सिद्धों में आते है। राहुल सांकृत्यायन ने गंगा के पुरात्त्वांक में बौद्ध तिब्बतियन परम्परा के 84 सहजयानी सिद्धों की चर्चा की है। जिसमें से अधिकांश सिद्ध नाथसिद्ध योगी है जिनमें लुइपाद मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षपा गोरक्षनाथ, चौरंगीपा चौरंगीनाथ, शबरपा शबर आदि की चर्चा है जिन्हें सहजयानीसिद्धों के नाम से जाना जाता है।

**हिन्दी में नाथसिद्ध** :– हिन्दी साहित्य में आदिकाल के कवियों में नाथ सिद्धों की चर्चा मिलती है।

चर्चा है। अपभ्रंस, अवहट्ट भाषाओं की रचनाऐं मिलती है जो हिन्दी की प्रारंभिक काल की है। इनकी रचनाओं में पाखंड़ों आडंबरो आदि का विरोध हैं तथा इन्की रचनाओं में चित्त, मन, आत्मा, योग, धैर्य, मोक्ष आदि का समावेश मिलता है जो साहित्य के जागृति काल की महत्वपूर्ण रचनाऐं मानी जाती है। जो जनमानष को योग की शिक्षा, जनकल्याण तथा जागरूकता प्रदान करने के लिए था।

**मूलशब्द:** योग, आयुर्वेद, तंत्र, बौद्ध अध्ययन, हिन्दी, नाथ सम्प्रदाय

## प्रस्तावना

## साहित्य सर्वेक्षण

गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धांत पद्धति में नाथ योगियों को योगमत या योग सम्प्रदाय नाम से जाना जाता है क्योंकि इनका मुख्य धर्म योगाभ्यास ही रहा है। उनके विभिन्न प्रमाणिक ग्रंथों से स्पष्ट हो जाते है। नाथ सिद्ध विविध विषयों के ग्रंथों– योग, आयुर्वेद, तंत्र, बौद्ध अध्ययन, हिन्दी आदि में इनकी महत्वपूर्ण ग्रंथ या रचनाऐं प्राप्त होती है।

## यौगिक ग्रंथों में नाथ सम्प्रदाय

नाथ सम्प्रदाय मुख्यतः योगाभ्यास धर्म का पालन करते थे। हठ योग विद्या, नाड़ी तंत्र, षट्कर्म, आसन, कुम्भक (प्राणायाम) मुद्रा व बंध, कुण्लिनी, शून्यसमाधि आदि की चर्चा इनके विभिन्न ग्रंथों से प्राप्त होते है जो निम्न है–

1. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, 2. हठप्रदीपिका 3. गोरक्ष सिद्धात संग्रह 5. हठरत्नावली 6. वर्णरत्नाकर 7. शिव संहिता 8. वशिष्ठ संहिता 9. घेरण्ड संहिता 10. छान्दोग्य उपनिषद् 11. तेजोबिन्दूपनिषद् 12. अवधूत गीता 13. कैवल्योपनिषद् 14. सूतसंहिता, 15. ब्रह्मबिन्दुउपनिषद् 16. अमनस्क 17. विवेकमार्तण्ड 18. मुण्डक उपनिषद् 19. भागवत 20. गोरक्षउपनिषद् 21. कालाग्निरूद्र उपनिषद् 22. शाबर तंत्र 23. षोडश नित्यातंत्र 24. षट्शांभव रहस्य 25. कपिल गीता 26. तारासूक्ति 27. कलार्णव तंत्र 28. श्री नाथ सूत्र 29. शिवपुराण 30. योगदर्शन (बंगाक्षरों में) 31. आदिनाथ संहिता 32. गोरखनाथ एण्ड कन्फटा योगी 33. गोरखबानी 34. महार्थमंजरी 35. योगी सम्प्रदाय विष्कृति 36. साधन माला 37. योग शास्त्र 38. नाथ फिलॉसफी एण्ड अष्टांग योग आदि।

## तंत्र ग्रंथों में नाथ सिद्ध

तंत्राधिपति, मंत्राधिपति स्वयं शिव है, वही आदिनाथ है। ''षोडश नित्यातंत्र'' में भगवान शिव ने कहा है कि नव नाथों ने जिसमें जड़भरत, नागार्जुन, सत्यनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, चर्पटनाथ, जालंधर आदि ने ही तंत्र गंथों की रचना की ही और इनका प्रचार

किया है। बौद्ध तंत्र में सहजयानी परम्परा के सिद्ध कन्हपाद, जालंधरपाद अपने को कपालिक कहते है जिन्होंने तांत्रिक साधनाऐं की थी।

तंत्रग्रंथों में नाथ सम्प्रदाय से संबंधित ग्रंथ निम्न हैं– 1. कौलमार्ग रहस्य, 2. कौलज्ञान निर्णय, 3. कौलावली निर्णय 4. गंभीरनाथ प्रसंग 5. अमरौघशासनम् 6. गोरखनाथ ऐण्ड मिडिएवल हिंदू मिस्टिसिज्म, 7. जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, 8. ज्ञानसिद्धि, 9. दि इंडियन बुद्धिष्ट आईकोनेग्राफी मेनली बेस्ड अपॉन दि साधनमाला ऐण्ड अदर कांग्रेट तांत्रिक टेक्सट्स, 10. दि सर्पेन्ट पॉवर, 11. दि सेन्सस ऑफ इण्डिया, 12. परशुराम कल्प सूत्र, 13. प्राण संकली, 14. गोरखनाथ ऐण्ड कन्फटा योगिज, 15. भारतीय दर्शन, 16. महार्थमंजरी, 17. मालतीमाधवम्, 18. बामकेश्वर तंत्रान्तर्गत नित्याषोडशिकार्णवः, 19. सिद्ध सिद्धांत संग्रह, 20. स्टडीज इन दि तन्त्र, 21. सनातन साधना की धारा आदि गंथों है।

## आयुर्वेद ग्रंथों (रसायन शास्त्रों) में नाथ सम्प्रदाय

नाथसिद्धों का मत है कि आयुर्वेद का रसायन शास्त्र आदिनाथ महादेव का उपदिष्ट है। पारा शिव का वीर्य है और अभ्रक पार्वति का रजः है। इन दानों के मिश्रण से यंत्र विशेष से उर्ध्वपातित करने से शरीर को अमर बनाने वाला रस तैयार होता है इन्हीं से ही रसेश्वरमत का आविष्कार हुआ। अनेक नाथ सिद्ध योगियों द्वारा लिखित विभिन्न ग्रंथ निम्न है–

1. गोरक्षनाथ – प्राण संकली
2. नित्यनाथ – रसरत्नाकर, रसखंड, और रसेन्द्रखण्ड, रसरत्नमाला(अमुद्रित)
3. शालिनाथ– रसमंजरी
4. काकचण्डीश्वर – काकचण्डेश्वरीमत तंत्र
5. मथान भैरव – रसरत्न
6. सिद्धनागार्जुन – नागार्जुन तंत्र, रस रत्नाकर (अमुद्रित)

आदि आयुर्वेदिक रसायन चिकित्सा ग्रंथ उपलब्ध है।

## बौद्ध तंत्र में नाथ सिद्ध

बौद्ध तंत्र में नाथ सिद्धों का बड़ा गहरा प्रभाव रहा है। ''वर्णरत्नाकर'' नामक ग्रंथ उपलब्ध है जिनके ग्रंथकार कविशेखराचार्य ज्योतिरिश्वर है जो मिथिला के राजा हरिदेव 1300–1321ई. के सभासद थे। इनमें 84 सिद्धों की बात कही गयी है तथा उनमें 76 नाथ सिद्धों का ही नाम आया है। राहुल सांकृत्यायन द्वारा ''गंगा के पुरात्त्वांक''में तिब्बती परम्परा (बौद्ध–सहजयानी) के जो 84 सिद्धों का नाम आया हैं। इन दोनों ग्रंथों से सिद्धों के नामों को मिलान करने पर अधिकतर सिद्ध नाथ योगी परम्परा के जान पड़ते है। ऐसा प्रमाण मिलते है कि भारत से पद्मसंभव के 725 ई.तिब्बत जाने के बाद सहजयानी परम्परा के अनेक सिद्ध बने थे। सिद्ध नाथ योगियों और बौद्ध तंत्र सिद्धों से संबंधित ग्रंथ निम्नवत हैं–

1. बौद्ध गायन दोहा, 2. चर्यापद 3. मालती माधवम् 4. वर्णरत्नाकर 5. गंगा के पुरात्त्वांक 6. चर्याचर्यविनिश्चय 7. तारानाथ 8. अद्वयवज्रसंग्रह 9. दि ट्राइबल एण्ड कास्ट्स ऑफ सेन्ट्रल प्रार्विसेज ऑफ इंडिया 10. कौलावली निर्णय 11. दि ट्राइबल एण्ड कास्ट्स ऑफ दि नार्थ वेस्टर्न 12. योगिसंप्रदायाविष्कृति, 13. तिल्लोपाद का दोहा कोष, 14. सरहपाद का दोहा कोष, 15. कण्हपाद का दोहाकोष 16.प्रकीर्ण दोहा संग्रह 17. विश्वभारतीय पत्रिका खण्ड 4, अंक 1, 18. गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगी आदि ग्रंथ प्रमुख है।

## हिन्दी साहित्य में नाथ सम्प्रदाय

हिन्दी के आदिकाल में नाथसिद्धों की रचनाओं को देखते हुए उन्हें आदिकावि की संज्ञा दी गयी है इनकी कविताओं में अपभ्रंश, अवहट्ट आदि हिन्दी की पुरानी शैली का समावेश मिलता है। इनकी रचनाओं चेतना, मन, मोक्ष, सहजानंद, आदि विषयों का समावेश मिलता है तथा आडंबर, पाखंड की निंदा की गयी है बाद के भक्तिकालीन कवियों में भी नाथसिद्धों की साधनाओं व रचनाओं का प्रभाव रहा।

जिसमें कबीर, नानक, तुलसी, रविदास, आदि की रचनाओं में मिलता है। हिंदी की विभिन्न ग्रंथों में इनकी जानकारी उपलब्ध है जो निम्न है–

1. नाथ सम्प्रदाय, 2. गंगाके पुरात्त्वांक, 3. चर्यापद, 4. दोहा कोष, 5. सबदी 6. प्राणसंकली, 7. गोरखबानी, 8. जायसी ग्रंथावली, 9. ज्ञानसिद्धि, 10. ज्ञानेश्वर चरित्र, 11. नागर सर्वस्व, 12. पदुमावती, 13. परसंगपूरनभगत, 14. प्रबंध चितामणि, 15. बांग्ला साहित्येर इतिहास, 16. भरधरी चरित्र, 17. बौद्ध गान दोहा, 18. भारतीय दर्शन, 19. भ्रमर गीत सार, 20. राजपूताने का इतिहास, 21. हिंदी साहित्य का इतिहास 22. कबीर, आदि ग्रंथों में इनकी जानकारी मिलती है।

## उपसंहार

उपरोक्त वर्णित विविध ज्ञान के क्षेत्रों योग, आयुर्वेद, तंत्र, बौद्ध अध्ययन, हिन्दी आदि के क्षेत्रों में नाथ सिद्धों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है इन विविध क्षेत्रों में इनकी उपस्थिति इन सम्प्रदाय के ज्ञान के प्रकाश को प्रदर्शित करता है। इन नाथ सिद्धों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, नागार्जुन, जालंधर, कृष्णपाद, चौरंगीनाथ, कपाली, चर्पटनाथ आदि प्रमुख थे जिनका ज्ञान के विविध क्षेत्रों में विशेष योगदान रहा है जो अविष्मरणीय है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1. अमरौघशासनम् सिद्धगोरक्षनाथ–विरचित, महामहोपाध्याय पं. मुकुदराम शास्त्री द्वारा संपादित, काश्मीर संस्कृत ग्रंथावलि, ग्रथांक 20 बम्बई 1918.
2. अष्ट्यवज्रसंग्रह गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज, नं. 40, बडौदा, 1927.
3. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन ऐण्ड एथिक्स।
4. कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी, मुम्बई हिंदी ग्रंथ रत्नाकर 1942.
5. कौलज्ञान निर्णय, डॉ. प्रबोधचंद्र बागची द्वारा सम्पादित कलकत्ता संस्कृत सीरीज, नं.3 कलकत्ता 1924।
6. ब्रिग्स, गोरखनाथ ऐण्ड कनफटा योगीज, श्री जार्ज बेस्टन ब्रिग्स, लिखित कलकत्ता, 1938।
7. भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय (बाग्ला) श्री अक्षय कुमार दत्त, कलकत्ता 1314, बंगाब्द (द्वितीय संस्करण)।
8. मालती माधवम्, जगद्वर कृत टीकासहित, एम.आर.काले द्वारा संपादित, बम्बई 1928।
9. शारदा तिलक तंत्रम्, आर्थर एवेलान द्वारा संपादित कलकत्ता 1933।
10. श्री गुह्य समाज तंत्र, गायकवाड़ सीरीज नं. 53, 1931।
11. सिद्धसिद्धांत संग्रह, म.म.प. गोपीनाथ कविराज संपादित, सरस्वती भवन टेक्सट्स, 13 काशी 1925।
12. हठप्रदीपिका स्वात्माराम कृत, संस्करणकर्ता दिगम्बर झा, कैवल्यधाम लोनावला पुणे 2001।

ISSN No- 2456-7078
Impact Factor- 4.520

# Certificate of Publication

# Research maGma

This is to certified that

उमाशंकर कौशिक, लोकेश चौधरी, डॉ.उपेन्द्र बाबु खत्री, डॉ.अखिलेश सिंह

has published article entitled

"नाथयोगिय साहित्य का विवेचन : कतिपय विद्वानों/संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में"

In **Research maGma**, Volume-I, Issue-IX, Nov-2017.

Editor-in-Chief

IMPACT FACTOR- 4.520 ISSN NO- 2456-7078

Volume-1, Issue-IX, Nov- 2017

# Research maGma

An International Multidisciplinary Journal




Editor in Chief
Dr. Sanjay Kumar Singh

Associate Editor
Dr. T. Manichander

# Research maGma

Research maGma is a multidisciplinary research journal, published monthly in all Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed .

## Our Editorial Board


Dr Anil Kumar S.

Dr. Gatade Dattatraya Ganapati

Dr. Prashant Thote

Dr. Deepa Viswam

Dr. Anamika Kumari

Smt. B.S.Gunarekha

Dr. P. Samuel

Dr. Pargat Singh Garcha

Dr. M. Abdul Jamal

Dr. Tapas Pal

Dr. Gardi Balu Pandurang

Dr. Dnyaneshwar Babulal Shirode

Dr. Ashokkumar B. Surapur

Dr. N. Sasikumar

Dr. Saykar Satish Govind

Dr. A. Paul Albert

Dr. Atul Hansraj Salunke

Mr. Sanjeev Kumar Mishra

Dr. Neeta Sukhendrapal Singh

Dr. Kispotta Seraphinus

Dr. Santosh Kumar Behera

Dr. Sandhya Ayaskar

Dr. S. Aravind

Dr. Sandeep V. Binorkar

Dr. Raval Sandeep Krishnat

Dr. Mahesh Nawria

Dr. Tamanna Kaushal

Dr. Deepak B. Nale

Dr. Ram Chander

Dr. Sudhir Kumar Jena

Dr. S Maxwell Lyngdoh

Dr. Bhed Pal Gangwar

Dr. Shaikh Fahemeeda

Dr. Deshai Rajesh Bhaurao

Research maGma
An International Multidisciplinary Journal
ISSN NO- 2456-7078 IMPACT FACTOR- 4.520
VOL-1, ISSUE-9, NOV-2017 UGC JOURNAL ID- 63465

# ''नाथयोगिय साहित्य का विवेचन : कतिपय विद्वानों/संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में''

[1]उमाशंकर कौशिक, [2]लोकेश चौधरी, [3]डॉ.उपेन्द्र बाबु खत्री, [4]डॉ.अखिलेश सिंह
[1]जे.आर.एफ, शोधार्थी, पीएच.-डी.योग, [2](नेट,जे.आर.एफ)शोधार्थी, पीएच.-डी.योग,
[3]सहायक प्राध्यापक,योग, [4]सहायक प्राध्यापक, आयुर्वेद, सॉची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, (म.प्र.)

## प्रस्तावना-

नाथ योगीयों की साधनाऐं पुरे भारत एवं अन्य पड़ोसी देशों अफगानिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश आदि तक प्रसिद्ध रहे है। जिनका प्रभाव मध्यकालीन भारत के विभिन्न महत्वपूर्ण तंत्र ग्रंथों, योगियों, भक्तों, सगुण और निगुर्ण परम्परावादियों, इतिहासकारों की रचनाकारों में दिख पड़ते है। नाथ योगियों के शब्दों में नाथ का अर्थ एक विशेष हठयोग विद्या में योग्य गुरू द्वारा दीक्षित हो वे अपने नाम के अंत में नाथ शब्द जोड़ते है। नाथ योगियों का उद्देश्य हठयोग के साधना क्रमों का गुरू निर्देश पर अभ्यास आवश्यक है जो साधक को शारीरिक मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ्य कर दे जिससे साधक का स्वयं के ऊपर नियंत्रण स्थापित हो जाए और जो मुक्त हो सकने में सामर्थ हो वे ही अपने स्वामी या नाथ है। नाथयोगी अपने को साधना की उच्च अवस्था में शिव से जोड़ते है नाथ योगियों में शिव ही आदिनाथ के रूप में प्रतिष्ठित है जो संसार के नाथ है, स्वामी है। उसी के समान सामर्थ प्राप्त करना ही नाथ योगियों का लक्ष्य है।

नाथ सम्प्रदाय का मुख्य उद्देश्य योगाभ्यास है। ये सिद्ध, अवधूत, योगी आदि नामों से भी जाने जाते है। इन योगियों ने अपनी साधना पद्धतियों को समय–समय पर साहित्यिक का रूप प्रदान किया है, वे चाहे संस्कृत, मिश्र संस्कृत, दोहों, पदों, लोक भाषाओं देशीभाषाओं(सधुक्कड़ी) अपभ्रंश रचनाओं आदि के रूप में प्राप्त होती है। नाथ सम्प्रदाय के आदिगुरूओं में आदिनाथ (शिव) का प्रथम स्थान है। मानव गुरूओं में महायोगी मत्स्येंद्रनाथ का नाम प्रथम है। इन नाथ योगियों की प्रारंभिक रचनाओं में संस्कृत रचनाऐं आती है। नाथ योगियों का संबंध जातिगत रूप से सभी जातियों( निम्न और उच्च) से रहा हैं यहॉ कोई जातिगत अंतर्विरोध नही दिख पड़ता। इन नाथ योगियों में मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, शाबर, आनंदभैरव, मीन, विरूपाक्ष, बिलेशय, मन्थान, भैरवयोगी, सिद्धिपाद,चर्पटी, पूज्यपाद, नित्यनाथ, घोड़ाचौली आदि, नाथ सिद्धों में आते है। इन नाथ सिद्धों का काल 6वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक माना जाता है। इन कालों में समयानुकूल इन नाथ योगियों ने ग्रंथों की रचनाऐं की है। जो उनके साधना, दर्शन और विविध आडम्बरों, विकृतियों पर पर विरोध को दर्शाता है साथ ही सहज जीवन पर बल दिया गया है। समय–समय पर विभिन्न विद्वानों, दार्शनिकों सहित्यकारों, इतिहासकारों ने इन पर महत्वपूर्ण कार्य कर इन विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया जो उनके विद्वत्ता, दार्शनिकता और अपने ज्ञान धरोहर के प्रति प्रेम को दर्शाता है। इन विद्वानों में प्रमुख रूप से डॉ.प्रबोधचंद्र बागची, म.म.डॉ.

गोपीनाथ कविराज, डॉ. कल्याणी मल्लिक, डॉ.पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ.नागेन्द्रनाथ उपाध्याय आदि प्रमुख है।

## नाथ योगियों के कार्य क्षेत्र और भाषा–

नाथ योगियों में मत्स्येंद्रनाथ आदिगुरूओं में प्रसिद्ध है। विभिन्न विद्वानों का मत है कि ये मूलतः बंगाल क्षेत्र के थे और कौल साधना कामरूप शक्तिपीठ आसाम में हुई थी साथ ही नेपाल में ये लौकिक ईश्वर के रूप में पूजनीय है। इनका कार्य क्षेत्र भी तिब्बत तक विस्तृत माना जाता है। प्रबोध चंद्र बागची इन्हें तिब्बती सिद्धों में प्रथम लुईपाद के रूप में मानते है। नाथ योगियों में महायोगी गोरक्षनाथ का स्थान अतिविशिष्ट है, परन्तु अभी तक इनका जन्म स्थान निश्चित नही हो पाया है। कुछ विद्वान इन्हें गोदावरी तट महाराष्ट्र क्षेत्र, पंजाब, नेपाल, बंगाल आदि के मानते है। अन्य नाथ योगियों के संदर्भ में यही अनुमान है कि ये भारत के अलग–अलग प्रांत महाराष्ट्र (नेमीनाथ, संत ज्ञानेश्वर) राजस्थान, बंगाल, बिहार, अवध (उत्तरप्रदेश), नेपाल, पंजाब, गुजरात, मध्य व दक्षिण आदि भारत के विभिन्न प्रांतों से विभिन्न जातियों से आये हुए थे। नाथ योगियों कि भाषा का उत्तरोत्तर विकास संस्कृत मिश्र संस्कृत, अपभ्रंश, लोकभाषा, हिंदी की पूर्वी बोलियों में, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, मगधी, सधुक्कड़ी, हिंदी आदि में प्राप्त होती हैं।

## नाथयोगिय साहित्यों का उद्देश्य–

नाथयोगियों की साधनात्मक, दार्शनिक, वैचारिक, साम्प्रदायिक मान्यताओं को उद्घाटित करना, बाह्याडम्बर, अश्लीलवाद, असंयमित जीवन, तात्कालिक समय के मिथ्या वादविवाद, मिथ्याचार का विरोध, संयमित नैतिक आचरण का महत्व, हठयोग व रोजयोग के संबंध, मन की शुद्धता, चित्त की एकाग्रता, सहजावस्था, गुरू का स्थान ईश्वर सदृश, आदि की चर्चा विशेष है।

## प्रमुख नाथ योगी–

सिद्धों 84 प्रसिद्ध है इन सिद्धों में बहुतेरे नाथ सिद्धों के नाम प्राप्त होते है। इनमें भी नवनाथ प्रमुख हैः इन नव नाथों के नामों में भी भेद मिलता है। नाथ योगियों में प्रमुख रूप से मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरि, गोपीचंद, भरथरी, कंथड़नाथ, चर्पटनाथ, उदयनाथ सत्यनाथ संतोषनाथ, अचलनाथ, बाद के नाथ सहित्य के रचनाकारों में सेवादास निरंजनी, कवि मेघ, रतननाथ आदि योगियों के नाम आते है।
नाथ योगिय साहित्यों के संकलनकर्ता, संपादक एवं टीकाकार प्रमुख रूप से निम्न विद्वानों की चर्चा आती हैं–

## डॉ. प्रबोध चंद्र बागची–

20वीं शताब्दी के इतिहासकार कलकत्ता विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रोफेसर डॉ. प्रबोध चंद्र बागची ने वैज्ञानिक रीति से सर्वप्रथम मत्स्येंद्र की संस्कृत रचनाओं का संपादन 'कौलज्ञान निर्णय नामक' ग्रंथ संग्रह में किया है। डॉ. बागची मत्स्येंद्रनाथ को ही सिद्धों में प्रथम लुईपाद मानते है। कौलज्ञान के अंतर्गत निम्न ग्रंथ आते हैं – 1. कौलज्ञाननिर्णय, 2.अकुलवीर तंत्र (ए), 3.अकुलवीर (बी), 4.कुलानंद तंत्रम्, 5.ज्ञानकारिका
डॉ. बागची द्वारा मत्स्येंद्र और नाथ योगियों पर योगविषय ग्रंथ की रचना भी की गयी और मत्स्येंद्रनाथ के कुछ पदों का प्रकाशन भी किया गया था।

## डॉ.पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल–

डॉ.बड़थ्वाल द्वारा नाथ साहित्यों की हस्तलिपियों पर महत्वपूर्ण वैज्ञानिक शोध कर 'गोरखबानी' नाम से नाथ योगियों की रचनाओं पर टीका प्रस्तुत किया गया है। जिसका प्रकाशन हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद द्वारा हुआ है। इस ग्रंथ में गोरखनाथ की कही जाने वाली छोटी–बड़ी 40 रचनाओं का संकलन है। डॉ.बड़थ्वाल ने इन रचनाओं की आठ महत्वपूर्ण हस्तलिखित प्रतियों को उनके लिखित वर्ष क्रम से प्रस्तुत किया है। जिनमें सबसे पुरानी (च) हस्तलिखित प्रति है। जिसका काल 1517 बताया गया है। और सबसे बाद की हस्तलिपि में ज का स्थान है जिसका काल 1855 बताया गया है। गोरखबानी कि टीका में निम्न रचनाऐं आती हैं–1.सबदी, 2.पद, 3.सिष्यादरसन, 4.प्राण संकली, 5. नरवैबोध, 6.आत्मबोध, 7.अभैमात्राजोग, 8.पंद्रह तिथि, 9.सप्तवार,10.मछींद्रगोरखबोध,11.रोमावली,12.ग्यांनतिलक,13. ग्यांनचौतीसा,14.पंचमात्रा,15.गोरख गणेशगोष्ठी,16.गोरख दत्त गोष्ठी (ग्यानदीप बोध), 17.महादेव गोरख गुष्टि,18.

सिष्टपुरान, 19.दयाबोध, 20.जाती भौंरावली (छंद गोरख),21.नवग्रह, 22.नवरात्र, 23.अष्ट पारछया, 24.रहरास, 25.ग्यान माला, 26.आत्मबोध(2), 27.व्रत, 28.निरंजन पुराण, 29.गोरख वचन, 30.इंद्री देवता, 31.मूल गर्भावली, 32.खाणी बाणी, 33. गोरख सत, 34.अष्ट मुद्रा, 35.चौबीस सिधि, 36.षडक्षरी, 37.पंच अग्नि, 38.अष्टचक्र, 39.अवलि सिलूक, 40.काफिर बोध।

अन्य नाथ योगियों की हिंदी रचनाओं के परिचय देने के लिए 'हिंदी कविता में योग प्रवाह' शीर्षक से आलोचनात्मक टिप्पणी भी लिखीं थी। डॉ.बड़थ्वाल के अनुसार श्रुति परम्परा से होती आती हुई इन बानियों के संबंध में दो तथ्यों कि ओर ध्यान जाता है।1.नाथ गुरूओं के बानी के प्रति शिष्यों में प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास की भावना होती है, वह उसे नष्ट होने से बचाती है। 2.स्मृति के कारण इनमें परिवर्तन या छूट हो जाती है तथा सांप्रदायिक उद्देश्य और मत विकास या परिवर्तन या स्पष्टीकरण की अभिलाषा गुरूओं के नाम से नयी रचनाओं के गढ़े जाने और पुरानी रचनाओं में परिवर्तन का कारण होती है। इनमें से सबदी महत्वपूर्ण है। आरंभ की 14 हस्तलिखित रचनाऐं गोरखनाथ की जान पड़ती है क्योंकि इनमें गोरक्षनाथ का नाम आता है साथ ही लगभग सभी प्रतिलिपियों में यें रचनाऍं मिलती है। डॉ. बडथ्वाल के अनुसार सं. क्र. 15 से 19 तक की रचनाओं में सेवादास निरंजनी, क्र. 20 कवि मेघ, क्र. 39, 40 रतननाथ के नाम आने से ये रचनाऍं इन नाथयोगियों की जान पड़ती है।

## मिश्रबंधु-

हिंदी में नाथ सम्प्रदाय के योगदान को लेकर सर्वप्रथम उनकी कुछ रचनाओं का संकलन सबसे पहले मिश्र बंधुओं ने किया था। इन्होंने ही सर्वप्रथम नाथपंथियों को शैव माना था और गोरखनाथ को प्रथम पद्य के रचनाकार माना था। उस समय गोरक्षनाथ की माने जाने वाली निम्न ग्रंथ प्रकाश में थे –
1.गोरखशतक(ज्ञानशतक),2.चतुरशीत्यासन,3.ज्ञानामृत,4योगचिंतामणि,5.योगमहिमा 6.योगमार्तंड, 7.योगसिद्धांत पद्धति, 8.विवेकमार्त्तड, 9.सिद्धसिद्धांतपद्धति

## आचार्य रामचंद्र शुक्ल -

शुक्ल जी के अनुसार नाथपथीयों की रचनाओं में मिश्रबंधुओं कि रचनाओं के साथ–साथ पीताम्बर दत्त वड थ्वाल द्वारा संपादित गोरखबानी में आ जाता है।
शक्तिसंगम तंत्र, निरंजनपुराण, वैराटपुराण की गणना की गयी थी।

## डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी -

द्विवेदी जी ने नाथ पंथीयों पर दो महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। 'नाथ सम्प्रदाय' और 'नाथसिद्धों की बानियॉं' द्विवेदी जी ने नाथ सम्प्रदाय नामक ग्रंथ में गोरखनाथ की कही जाने वाली विभिन्न ग्रंथ सूचियों के आलोचनात्मक अध्ययनों से 28 रचनाओं के नाम मिलते है। द्विवेदी जी के अनुसार ये सभी रचनाऐं गोरखनाथ की नही जान पड़ती परवर्ती अन्य नाथपंथीयों की रचनाऐं भी मालूम होती है। जिनमें हठसिद्धांतों और गोरखनाथ के मतों का प्रतिपादन मिलता है।

## २८ रचनाओं की सूची निम्न हैं -

1.अमनस्क, 2.अमरौघशासनम्, 3.अवधूत गीता, 4.गोरक्षकल्प, 5.गोरक्षकौमुदी 6.गोरक्षगीता, 7.गोरक्षचिकित्सा, 8. गोरक्षपञ्चय, 9.गोरक्षपद्धति, 10.गोरक्षशतक 11.गोरक्षशास्त्र,12.गोरक्षसंहिता,13.चतुरशीत्यासन, 14.ज्ञानप्रकाशशतक,15. ज्ञान शतक, 16.ज्ञानामृत योग, 17.नाड़ी ज्ञान प्रदीपिका, 18.महार्थमंजरी 19.योगचिन्तामणि, 20.योगमार्तण्ड, 21.योगबीज, 22.योगशास्त्र, 23.योग सिद्धांतपद्धति, 24.विवेकमार्तण्ड, 25.सिद्धसिद्धांत पद्धति, 26.श्री नाथ सूत्र, 27.हठयोग, 28. हठसंहिता
इन 28 ग्रंथों में गोरक्षकृत मुख्यतः.निम्न रचनाऐं जान पड़ती हैं–

1.अमनस्क, 2.अमरौघशासनम्, 3.गोरक्षसंहिता 4.श्री नाथ सूत्र.

## नाथ सिद्धों की बानियॉं-

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। इसमें 24 नाथ सिद्धों की रचनाओं का संकलन है। इनमें भी मत्स्येंद्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालंधरनाथ, काणेरी, चौरंगी, चरपटनाथ,काणेरी, जालंधरी,गोपीचंद,भरथरी, गोपीचंद,

घोड़ाचोली, चुणकरनाथ, पृथ्वीनाथ,बालनाथ, हणवंत, प्रेमदास, अजैपाल,सिद्ध गरीब आदि के नाम दिए हुए है। कुछ रचनाओं का काल 14वीं शताब्दी पूर्व, कुछ 14वीं शताब्दी और थोड़े ही इनके बाद के कहे गये हैं। ये रचनाऐं गोरखबानी के बाद प्रकाशित हुई थी।

### गोरखनाथ मंदिर गोरखपुर–

गोरखनाथ की माने जाने वाली कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन व टीकाएँ भिन्न–भिन्न विद्वानों द्वारा गोरखनाथ मंदिर से किया गया है, इनमें अमनस्क योग, गोरखबानी आदि साथ ही योगवाणी जैसी महत्वपूर्ण पत्रिका नाथ योगियों की साधना, दार्शनिकता पर प्रकाशित की जाती है।

### कैवल्य धाम लोनावला–

वर्तमान समय में हठयौगिक ग्रंथों पर वैज्ञानिक अनुसंधानों से प्रमाणित विभिन्न पाण्डुलिपियों पर महत्वपूर्ण कार्य करने वाले पुणे महाराष्ट्र, कैवल्यधाम लोनावला के 'दार्शनिक साहित्यिक अनुसंधान विभाग' ने नाथपंथियों की हठयोग साधना पर महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किए हैं–

**१.हठप्रदीपिका–** 101 पाण्डुलिपियों पर संस्थान ने काम कर हठप्रदीपिका का प्रकाशन कराया है। इनके रचनाकार स्वात्माराम हैं जो मत्स्येद्रनाथ द्वारा प्रवर्तित सहजानंद परम्परा के योगी थे। इनका प्रमाण हठप्रदीपिका के प्रत्येक उपदेश के अंतिम श्लोक से ज्ञात होता है ।

**२. गोरक्षशतकम्–** संस्थान के द्वारा प्रकाशित गोरक्षशतकम् के प्रस्तावना से यह ज्ञात होता है कि संस्थान ने इनकी 35 पाण्डुलिपियों पर कार्य कर महत्वपूर्ण प्रकाशन किया है। जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स जैसे विदेशी विद्वान जिन्होंने नाथ योगियों पर 'गोरखनाथ ऐंड कानफटा योगीज' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की साथ ही गोरक्षशतकम् को गोरक्षनाथ की प्रामाणिक कृति मानते है।

3. हठरत्नावली संस्थान से 1982 में 10 से अधिक प्रतिलिपियों का आलोचनात्मक अध्ययन कर प्रकाशित किया गया था।

4.शिवसंहिता

### डॉ. कल्याणी मल्लिक–

डॉ. मल्लिक ने भी प्रबोध चंद्र बागची और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल की तरह ही गोरखनाथ एवं नाथ सिद्धों कि रचनाओं पर वैज्ञानिक शोध प्रस्तुत किया है। इन्होंने गोरखनाथ एवं नाथ योगियों पर 'सिद्धसिद्धांतपद्धति ऐंड अदर वर्क्स ऑव नाथयोगीज' नामक ग्रंथ का प्रकाशन किया है। इन्होंने निम्न गंथों को नाथ साहित्यों के अंतर्गत रखा है –

1.सर्वप्रथम गोरक्ष कृत 'सिद्धसिद्धांत पद्धति' का संपादन

2.मीन नाथ कृत (मत्स्येंद्रनाथ) 'योग विषय'

3.अमरौघप्रबोध 4.योगमार्त्तड़ नामक संस्कृत ग्रंथों का संपादन किया है। इनके अतिरिक्त चतुरशीत्यासन, ज्ञानामृत, योगमहिमा, योगसिद्धांत पद्धति, गोरक्षकला, गोरक्षसहस्रनाम और गोरक्षपिष्टिका को भी गोरक्षनाथ द्वारा रचित कहा है।

डॉ. गोपीनाथ कविराज– म.म. गोपीनाथ कविराज उत्कृष्ट तंत्रसाधक थे इन्होंने नाथ साधनाओं और तांन्त्रिक बौद्ध सम्प्रदाय सहजयान की साधनाओं का महत्वपूर्ण संबंधों को स्पष्ट किया है। नाथ योगियों का संबंध तंत्र साधनाओं से रहा है। कविराज जी ने गोरक्षनाथ कि माने जाने वाली–

1.गोरक्ष सिद्धांत संग्रह

2.सिद्धसिद्धांत संग्रह का संपादन किया है।

### डॉ.नागेन्द्रनाथ उपाध्याय–

उपाध्याय जी द्वारा लिखित 'गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में' नामक ग्रंथ में नाथ साहित्य के अंतर्गत भिन्न–भिन्न विद्वानों के मतों का ग्रंथ सूचियों के साथ विवरण प्रस्तुत किया गया है।

### उपसंहार –

नाथयोगियों कि साधना गुरू–शिष्य परम्परा के अनुशासन से गतिमान रहा है। नाथयोगियों ने उन गुरू उपदेशों को सहेजकर रखा और साधनाओं का क्रम चलता रहा व आवश्यकतानुसार अपनी साधनाओं, शिक्षाओं, दार्शनिकता और

उनमें स्वार्थी तत्वों द्वारा दुष्प्रचार और भ्रांतियों को दूर करने लिए उन साधनाओं को संस्कृति, समाज और मानवानुकूल बनायें रखने के लिए साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया इनमें प्रमुख रूप से मत्स्येंद्रनाथ की कहे जाने वाली संस्कृत ग्रंथ जिनका संपादन डॉ.बागची ने की है जो कौलज्ञाननिर्णय के अंतर्गत 1.कौलज्ञाननिर्णय, 2.अकुलवीर तंत्र (ए), 3.अकुलवीर (बी), 4.कुलानंद तंत्रम्, 5.ज्ञानकारिक प्रमुख है। साहित्यिक दार्शनिक अनुसंधान विभाग लोनावला कैवल्यधाम से पूर्णतया वैज्ञानिक शोध के अंतर्गत प्रकाशित हठयौगिक नाथयोगिय ग्रंथों में हठप्रदीपिका, गोरक्षशतकम्, शिवसंहिता,घेरण्ड़ संहिता, हठरत्नावली प्रमुख है। नाथ साहित्यों में गोरक्षनाथ कृत कहे जाने वाले साहित्यों की संख्या सबसे अधिक है इनमें डॉ.गोपीनाथ कविराज द्वारा संपादन और टीका सिद्धसिद्धांत संग्रह, गोरक्षसिद्धांत संग्रह डॉ. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल द्वारा संपादित गोरखबानी और डॉ. कल्याणी मल्लिक द्वारा संपादित सिद्धसिद्धांत पद्धति साथ ही हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा आलोचनात्मक अध्ययन से 1.अमनस्क, 2.अमरौघशासनम्,3.गोरक्षसंहिता 4.श्री नाथ सूत्र 24 नाथ सिद्धों की बानियॉ प्रमुख है।

बाद के नाथ योगियों की रचनाओं में चौरंगीनाथ, स्वात्माराम, सेवादास निरंजनी, कवि मेघ, रतननाथ, श्रीनिवास आदि नाथयोगियों के नाम आते है। इस प्रकार कतिपय विद्वानों द्वारा नाथ योगियों की महत्वपूर्ण रचनाओं का पता चलता है। इन यौगिक साहित्यों के शोध कार्यो में कतिपय विद्वानों ने अपना महत्वपूर्ण समय देकर भारत और भारत के बाहर भी विभिन्न शोधग्रंथ संग्रहालयों, विभागों को पत्र व्यवहार कर व स्वयं उपस्थित हो यह विशिष्ट कार्य पूर्ण किया, तक जाकर इन नाथ योगिय साहित्यों का साहित्यिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, स्वरूप प्रकाश में आया है। इन साहित्यों में शैव सम्प्रदाय के स्रोंतों, तांत्रिक शाक्त सम्प्रदाय, लकुलीश पाशुपत मत, पतंजलि के हठयोग और काश्मिर शैव सिद्धांतों का समन्वय दिखाई देता है, साथ ही तंत्रसाधनाओं की प्राचीनता, तंत्रग्रंथों के साधना संदर्भ, पिण्ड ब्रह्माण्ड की एकता, शिव–शक्ति का संयोग, शरीर मन व प्राण, विविध आसन, प्राणायाम, मुद्राबंध, पिण्ड़ ब्रह्माण्ड़ की एकता, विभिन्न मतों के साधनाओं का संदर्भ, सहजावस्था, तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय पर साधना का प्रभाव जीव मात्र के प्रति दया, नाद, बिंदु, योगावस्था, कुण्डलिनी जागरण, चित्तदशा, मिताहार, नाड़ी, प्राण, चक्र आदि की विशेष रूप से चर्चा है और गुरू उपदेश ईश्वर उपदेश के सदृश है एवं इनका अंतिम लक्ष्य शिव स्वरूप (सहजस्वरूप) में प्रतिष्ठित होना है। इन नाथयोगियों में महायोगी श्रीनाथ से प्रतिष्ठित गुरू गोरक्षनाथ ने तंत्र के उन साधनाओं को अश्लीलता, असंयमित जीवन, स्त्रीपुरूष के विकृत साधनाओं को अलगकर समाज के अनुकूल, संयमित, मन की दृढ़ता, ब्रह्मचर्य पर बल, अहिंसा, चित्त की एकाग्रता पर बल दिया ये उपरोक्त विषय नाथ योगिय साहित्य में मूल विषय जान पड़ते है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1. उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2009, पृ.44.
2. बड़थ्वाल पीताम्बर दत्त, संपादक और टीकाकार, गोरखबानी, हिंदी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग,इलाहाबाद,2003.पृ.
3. उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2009, पृ.43–44.
4. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद, 2009, पृ.10–11.
5. द्विवेदी हजारी प्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 95–101.
6. द्विवेदी हजारी प्रसाद, संपादित, 'नाथ सिद्वों की बानियॉ', नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, 2014, भूमिका.पृ.21.
7. दिगम्बर स्वामी, झा.पीताम्बर, स्वात्माराम कृत, हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमन्दिर समिति, लोनावला, पुणे, पृ.प्रस्तावना 33–34.
8. दार्शनिक साहित्यानुसंधान विभाग, 'गोरक्षशतकम्' कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावला,पुणे, 2013, प्रस्तावना, पृ.16.
9. उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2009, पृ.45.
10.उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, 'नाथ और संत साहित्यः तुलनात्मक अध्ययन' काशी हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी,1965.
11.कविराज गोपीनाथ, संपादित, 'गोरक्षसिद्धांत संग्रह' गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी, बनारस, 1925.
12.बडथ्वाल दत्त पीताम्बर, 'योगप्रवाह', काशी विद्यापीठ, बनारस, 2003.
13.ब्रिग्स जी.डब्ल्यू., गोरखनाथ ऐंड़ कनफटा योगिज, जी.एम.सी.ए.पब्लिशिंग हाउस, 5रसेल स्ट्रीट,कलकटा,हंफ्री मिलफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस,लंडन,1938.
14.बागची प्रबोधचंद,संपादित, कौलज्ञाननिर्णय,कलकटा संस्कृत सिरीज,1934.
15.बनर्जी अक्षय कुमार, संपादक, सिंह भगवती प्रसाद,अनुवादक स्वरूप श्याम बिहारी, दिग्विजयनाथ न्यास, गोरखनाथ

मंदिर,गोरखपुर, सं.2028.
16.मल्लिक कल्याणी,'नाथ संप्रदायेर इतिहास,दर्शन और साधना प्रणाली' कलकत्ता विश्वविद्यालय,1950.
17.मल्लिक कल्याणी, 'सिद्धसिद्धांत पद्धति ऐंड अदर वर्क्स ऑव नाथयोगीज', पूना ओरियंटस बुक हाउस, पूना,1954.
18.शास्त्री मुकुंदराम, संपादित,अमरौघशासनम्,काश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्सए ऐंड स्टडीज, बाम्बे, 1918.
19.स्वामी दिगम्बर, झा पीताम्बर, संस्करणकर्ता, स्वात्माराम कृत, 'हठप्रदीपिका' कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावला, पुणे, 2001.
20.सिद्धसिद्धांत संग्रह, गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी, सं.13, बनारस, 1925.

Research maGma

# Research maGma

## (An International Multidisciplinary Journal)

**UGC Approved Journal No: 63465**




Editor in Chief
Dr. Sanjay Kumar Singh

Associate Editor
Dr. T. Manichander

# Research maGma

Research maGma is a multidisciplinary research journal, published monthly in all Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed .

## Our Editorial Board


Dr Anil Kumar S.

Dr. Gatade Dattatraya Ganapati

Dr. Prashant Thote

Dr. Deepa Viswam

Dr. Anamika Kumari

Smt. B.S.Gunarekha

Dr. P. Samuel

Dr. Pargat Singh Garcha

Dr. M. Abdul Jamal

Dr. Tapas Pal

Dr. Gardi Balu Pandurang

Dr. Dnyaneshwar Babulal Shirode

Dr. Ashokkumar B. Surapur

Dr. N. Sasikumar

Dr. Saykar Satish Govind

Dr. A. Paul Albert

Dr. Atul Hansraj Salunke

Mr. Sanjeev Kumar Mishra

Dr. Neeta Sukhendrapal Singh

Dr. Kispotta Seraphinus

Dr. Santosh Kumar Behera

Dr. Sandhya Ayaskar

Dr. S. Aravind

Dr. Sandeep V. Binorkar

Dr. Raval Sandeep Krishnat

Dr. Mahesh Nawria

Dr. Tamanna Kaushal

Dr. Deepak B. Nale

Dr. Ram Chander

Dr. Sudhir Kumar Jena

Dr. S Maxwell Lyngdoh

Dr. Bhed Pal Gangwar

Dr. Shaikh Fahemeeda

Dr. Deshai Rajesh Bhaurao

Research maGma
An International Multidisciplinary Journal
ISSN- 2456-7078 IMPACT FACTOR- 4.520
VOL-1, ISSUE-12, Feb-2018

# 'सहजयानः तांत्रिक बौद्ध परम्परा के परिप्रेक्ष में'

[१]उमाशंकर कौशिक और [२]डॉ. उपेन्द्र बाबु खत्री
[१]जे.आर.एफ.,शोधार्थी (पीएच.-डी.,योग), साँची विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, म. प्र.
[२]सहायक प्राध्यापक योग, साँची विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, म. प्र.

## प्रस्तावना

सहज की उत्पत्ति 'सह जायते इति सहजः' से हुई है। सूत्र रूप में सहज= सह+ज, सह= साथ–साथ है सामान्य अर्थों में वस्तु और उसके गुण का साथ–साथ होना जो उस वस्तु का आंतरिक गुण है। यह किसी के द्वारा ली गयी या आरोपित नही है। वह उसका निज स्वभाव है। तिब्बती भाषा में सहज के अनुवाद से सह= ह्लन चिग्, ज= क्येपा,सहज= ह्लन चिग् क्येपा कहा जाता है। जो प्रज्ञोपाय, शून्यताकरूणा, सूर्य–चंद्र, कमल–कुलिश आदि का मिलित (युगन्द्ध) स्वरूप है। सहज, निर्वाण की अवस्था है जो सिद्धों के मुख से कविताओं, दोहों, पदो के रूप में निकली है जो सहजयान सम्प्रदाय के रूप में प्रसिद्ध थे। बौद्ध धर्म के आरंभकाल में बुद्ध के उपदेशों और साधनाओं का बौद्ध अनुयायिओं के द्वारा सर्वोपरि स्वीकार्यता है। परन्तु कालांतर में बौद्ध धर्म के साधक अपनी साधना पद्धतियों के कारण हीनयान और महायान नामक दो समूहों में विभक्त हो चुके थे। बौद्ध धर्म में तंत्र साधनओं का प्रवेश महायानी बौद्ध परम्परा से स्वीकार किया जाता है। जिनका लक्ष्य बुद्धत्व की प्राप्ति थी परन्तु साधनाओं में बुद्ध के उपदेशों से अंतर स्पष्ट देखा जा सकता था। इसी महायानी परम्परा ने स्वीकार किया कि बुद्ध ने स्वयं एवं उनके बोधि अवतारों ने तंत्रों की शिक्षा साधकों के योग्यताओं के आधार पर दी थी। ये उपदेश सारनाथ, धान्यकटक आदि में स्वीकार किये गये थे। बौद्ध धर्म परम्परा में महायान के अंतर्गत तांत्रिक साधना विधियों, समाधि, ऐंद्रजालिक सिद्ध,देवी, देवताओं की कल्पना आदिके आचार उनके अनेक ग्रंथों ललितविस्तर, लंकावतार, तथागतहुह्यक,दशभूमीश्वर आदि में देखे जा सकते है जिसने बौद्ध धर्म में तंत्र साधनाओं की नींव ड़ाली उसी तांत्रिक शाखा से सहजयान सम्प्रदाय विकसित हुआ। बौद्ध धर्म में यान की विशेष चर्चा है जो निर्वाण प्राप्ति के साधन माने जाते है। बौद्ध धर्म के बौद्ध धर्म धर्मसंग्रह के अनुसार यान तीन है– (प)श्रावकयान (पप) प्रत्येक बुद्धयान (पपप)महायान, महायान के अंतर्गत दो नय है। प्रज्ञापारमितानय और मंत्रनय साथ ही मंत्रनय के अंतर्गत वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान का विकास हुआ। सहजयानी सिद्धों ने मंत्र, तंत्र, मूर्ति आदि का विरोध किया और इस शरीर को ही समस्त साधनों का आधार स्वीकार किया। सहजयानी सिद्धों का काल अनेक विद्वानों ने 8वीं से 13वीं शताब्दी मध्य मानते है। इस काल के बाद भी सिद्धों की परम्परा चलती रही है। इन मध्यकालीन सिद्धों के इस सहजावस्था ने मध्यकालीन साधना परम्परा से लेकर भक्तिकालीन कवियों कबीर, जायसी, तुलसी आदि को भी प्रभावित किया है। इन पर भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने कार्य कर सहजावस्था, साधना, दर्शन, लिपि, भाषा आदि पर महत्वपूर्ण प्रकाश ड़ाला है।

## मुख्य बिंदु-

तांत्रिक बौद्ध शाखा सहजयान, सहजयान का विकास, सहजयान पर कार्य

## सहज का प्रतीक एवं अवस्था -

इस सहज अवस्था को सहजयानी सिद्धों ने प्रतीक रूप में हेरूक देवता को को वाराही देवी के साथ आलिंगन करते दिखाया गया है। सहज युगन्द्ध मिलित रूप है। सहज का प्रतीक सिद्धों के अनुसार प्रज्ञा–उपाय, शून्यता–करूणा, संसार–निर्वाण, चंद्र–सूर्य, आलि–कालि, मणि–पद्म कमल–कुलिश आदि नाम दिए गये है। यहाँ कमल का अभिप्राय स्त्री योनि (प्रज्ञा) और कुलिश से तात्पर्य पुरूष लिंग(उपाय) कहा गया है। यह गूढ़ है, इसे बताया नही जा सकता, यह परम अवस्था है। सहजयानी सिद्धों के अनुसार सहजावस्था पूर्ण सिद्धि है। निज स्वभाव है। वे इस अवस्था को महासुख, निर्वाण, सूखराज, महामुद्राका साक्षात्कार आदि नामों से पुकारते थे। सहजयानी सिद्धों के अनुसार सहजावस्था अंतिम अवस्था है। इसके पूर्व कर्म आनंद और परमानंद अवस्था है जो राग (प्रेम) का मार्ग है फिर विरमानंद अवस्था विराग की (वैराग्य) अवस्था है। अंतिम में सहजानंद अवस्था राग और विराग से परे की अवस्था है। जो सहज अवस्था है।

## सहजयान सम्प्रदाय का विकास-

बुद्ध के निर्वाण के बाद उनके अनुयायिओं द्वारा उनके उपदेशों को आदर्श मानकर उसी के मार्ग पर चलकर निर्वाण की इच्छा रखते थे परंतु यह समाज के सभी वर्गों के लिए श्रमसाध्य व कठिन था इस पर कुछ साधकों का मानना था कि भगवान बुद्ध की निर्वाण की स्थिति उनके उपदेशों पर चलने से प्राप्त हो सकती है। दूसरी तरफ स्वतंत्र विचार रखने वाले महायानी बौद्ध साधकों (महासांघिक शाखा) का विश्वास था कि इसी जन्म में ही निर्वाण की प्राप्ति संभव है। महायानी शाखा ने समय के साथ अपने साधना पद्धतियों को समाजानुकूल किया जिससे गृहस्थों, सैनिकों, स्त्रियों और जनसामान्यों के लोगों ने यह सबसे ज्यादा स्वीकार्यता मिलती गयी। इन दानों यानों के कई नाम प्राप्त होते गये जिसमें हीनयान और महायान इन्हें के क्रमशः कठिनयान और सहजयान के नाम से भी जाना जाता है। नागेन्द्रनाथ उपाध्याय के 'बौद्ध अपभ्रंश साहित्य' एवं कृष्णनाथ के 'बौद्ध निबंधावली रचनाओं में कहा गया है कि (किमुर के अनुसार) सहजयान का प्रयोग सर्वप्रथम नागार्जुन ने किया था। किमुर ने दशभूमिविभाषा शास्त्र के अनुसार यह बताया है कि कठिन मार्ग वह मार्ग है जिससे निर्वाण की प्राप्ति अधिक दिनों के साधना के बाद प्राप्ति संभव होती है। परन्तु सहजमार्ग (विश्वास और श्रद्धा) के बल पर शीघ्र ही निर्वाण तक पहुँचा जा सकता है। नागार्जुन ने अनेक भविष्य के बुद्धों का नाम लिया है और उनमें अमिताभ बुद्ध को विशेष महत्व दिया है। साथ ही कहा है कि नामजप, नामस्मरण, नामगायन सहजमार्ग है। इस तरह महायानी सम्प्रदाय ने सहजयान की नींव रखी।

## सहजयानी सिद्ध-

सिद्धों की परम्परा प्राचीन है। परन्तु सिद्ध 84 प्रसिद्ध है इनके उपरांत भी सिद्धों का क्रम जारी रहा है जिनमें शैव, नाथ, रसेश्वर, बौद्ध, सिद्ध आते है। सहजयानी सिद्धों की कही जाने वाली सूची जिसे राहुल सांकृत्यायन ने सस्क्य विहार, तिब्बत से प्राप्त की थी। दूसरी भारत से प्राप्त वर्णरत्नाकर की सिद्धों की सूची है। जिसमें क्रमशः 84 और 76 सिद्धों के नाम प्राप्त होते है। सिद्धों के अनेक सूचियों में ये प्रमुख एवं परवर्ती माने जाते है। इनमें आरंभ के और प्रसिद्ध सिद्धों के नाम निम्नवत है– लुईपाद (लुहिपा), सरहपा, शबरीपा, गोरक्षपा, कण्हपा, तिलोपा, नरोपा, लीलापा, विरूपा, डोम्भीपा, लक्ष्मीकरा आदि।

## सहजयानी सिद्धों का क्षेत्र-

मध्यकालीन भारतीय इतिहास से इन सिद्धों की जानकारी प्राप्त होती है। जो पुरे भारत मे भ्रमण करते देखे जाते रहे है। परन्तु इनकी साधनाएँ विशेष रूप से कामरूप, काश्मीर, बंगाल, वाराणसी, अड़िसा, बिहार, सारनाथ, महाराष्ट्र, नेपाल, तिब्बत आदि क्षेत्रों से क्रमशः आरंभ मानी जाती है।इन सिद्धों की उपस्थिति 8वीं शताब्दी से लेकर 13वीं शताब्दी थी।

## सहजीया सिद्धों के आधार ग्रंथ-

सहजयानी सिद्धों ने वज्रयान के महत्वपूर्ण ग्रंथों को आधार ग्रंथों के रूप में स्वीकार किया है साथ ही अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ जो लोकभाषाओं, पदों, गीतों आदि में लिखित है ये रचनाएँ जैसे– लुईपाद रचित चर्यापद, सरोरूहवज्र कृत दोहाकोश, चर्याचर्यविनिश्चय, डाकार्णव, कृष्णपादाचार्यकृत सहजाम्नायपंजिका, हेवज्रतंत्र, नरोपाकृत वज्रयानी अनुत्तरयोग तंत्र, तिल्लोपादकृत दोहाकोश, सेकोद्देश्यटीका, साधनमाला, गुह्येंद्र तिलक तंत्र, चर्यागितिकोश, हेरूकवज्रतंत्रटीका, हेवज्रपंजिका योगिनीसंचारटीका, चक्रसंवरतंत्रविवृति, अमृतकणिका, कालचक्र तंत्र, षडंगयोग आदि है।

## सहजयान पर भारतीय विद्वानों के मत एवं कार्य -

1.महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री आधुनिक समय में सहजयान पर कार्य करने वाले विद्वानों में हरप्रसाद शास्त्री का नाम प्रथम माना जाता है जिन्होंने सहजयान की चार महत्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन कर प्रकाशित करवाया था जो उन्हें नेपाल से प्राप्त हुए थे। जो निम्न है–1.चर्याचर्यविनिश्चय,.2.सरोजवज्रकृत–दोहोकोश,

3.कृष्णपादाचार्यकृत– दोहोकोश, 4.डाकार्णव। इन सिद्धों की रचनाओं को पुरानी बांगला मानकर 'बौद्ध गान ओ दोहा' के नाम से 1916 ई. बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता से प्रकाशित किया। हरप्रसाद शास्त्री जी के अनुसार इस सहजीया सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक लुईपा (लुईपाद) है। जिन्होंने सहजीया मत का प्रचार–प्रसार किया यह मत 9–13 शताब्दी तक यह मत अपने चरम पर था।
विनयतोष भट्टाचार्य– विनयतोष भट्टाचार्य ने बौद्ध धर्म में तंत्र का प्रवेश, महायानी साधना, वज्रयान व सहयानी सिद्धों के ग्रंथों गुह्यसमाज तंत्र, साधनमाला आदि पर विस्तार से महत्वपूर्ण लेख प्रस्तुत किये है। जो 1925,1928,1931 में बड़ौदा से प्रकाशित है।
डॉ. प्रबोध चंद्र बागची– डॉ. बागची 20वीं शताब्दी के प्रमुख इतिहासकारों में से एक थे, इन्होंने लुईपाद, सरह, तिल्लोपाद सिद्धों के दोहाकोषों, चर्यापदों का सम्पादन कर 1938 में कलकत्ता संस्कृत सीरीज से प्रकाशित किया। मत्स्येंद्रनाथ (मीननाथ) की कही जाने वाली पाँच संस्कृत ग्रंथों का सम्पादन भी किया जो कौलज्ञाननिर्णयः नाम से प्रकाशित है, इनके अनुसार मत्स्येंद्रनाथ ही लुईपाद है जो सहजयान के प्रथम सिद्ध है। इसकी विस्तृत चर्चा कौलज्ञाननिर्णयः नामक ग्रंथ की भूमिका से प्राप्त होता है।

### डॉ. शांति भिक्षुशास्त्री–

शांति भिक्षु शास्त्री ने डॉ. प्रबोध चंद्र बागची से मिलकर सहजयानी सिद्धों के रचनाओं के संस्कृत टीकाकार मुनिदत्त की संस्कृत टीका, संस्कृत छायानुवाद,व चर्यागीतिकोष का संपादन कर 1956 में विश्वभारतीय शांतिनिकेतन, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

### राहुल सांकृत्यायन–

तिब्बत से प्राप्त सरह की दोहोकोष, हिंदी छायानुवाद सहित तिब्बती अनुवाद को देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया गया है जो बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित है। राहुल सांकृत्यायन ने सरहपा (सरोरूहवज्र) को सहजयान का प्रवर्त्तक माना है। सरहपा और लुईपा का काल क्रमशः 768–809ई., लुईपा 769–809ई. स्वीकार करते है।

### हजारी प्रसाद द्विवेदी–

द्विवेदी जी ने सहज साधना पर अपने व्याख्यानों के माध्यम से प्राचीन भारत के ज्ञान परम्परा शैवों, नाथों, बौद्धों की सहज अवस्था की गंभीरता, सहजीया सिद्धों की दार्शनिकता तथा भक्तिकालीन कवियों पर सहज का प्रभाव और उसके गूढ़ शब्दों का सरल विवेचन प्रस्तुत किया है जो 1989 में द्वितीय संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित है।

डॉ. सुकुमार सेन, डॉ. सनीति कुमार चटर्जी, तारा प्रसन्न भट्टाचार्य, डॉ. मणीन्द्र मोहन वसु, अतीन्द्र मजुमदार आदि विद्वानों ने तिब्बती अनुवाद के आधार पर सहजीया सिद्धों की चर्यापदों, दोहों, गानों, भाषा, टीका आदि का पाठ संस्कार कर प्रकाशित किया है।

### नागेन्द्रनाथ उपाध्याय–

उपाध्याय महोदय ने बौद्ध अपभ्रंश साहित्य नामक ग्रंथ में सहजीया सिद्धों की दार्शनिकता, रचनाओं, साधनाओं बौद्ध तांत्रिकता का आरंभ और वज्रयानी सिद्धों के साथ सहजयान के विविध क्षेत्रों पर विशेष रूप से प्रकाश ड़ाला है। इस ग्रंथ का प्रकाशन 2001ई. में सारनाथ वाराणसी से हुई ही साथ ही बौद्ध कपालिक साधना और साहित्य' नामक ग्रंथ के अंतर्गत बौद्ध तंत्र का आरंभ, बौद्ध कपालिक जालंधरपाद, सहजीया सिद्ध सरहपा, कृष्णवज्रपाद आदि की चर्यापदों की टीका प्रस्तुत की है जिनका प्रकाशन 2009 ई. में विश्वविद्यालय प्रकाशन से प्रकाशित है।

### कृष्णनाथ–

कृष्णनाथ स्वतंत्र विचारक रहे है। जिन्होंने बौद्ध साधनाओं पर स्वतंत्र लेख प्रस्तुत किया है। इन्होंने सारनाथ, नेपाल, तिब्बत की यात्राऐं की और सहजयानी सिद्धों के साधनाओं और परम्पराओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश ड़ाला है। इनके अनुसार तिब्बत में सहजयानी सिद्धों की रचनाऐं सिर्फ संग्रहित है। उनकी परम्पराओं को आगे बढ़ाने वाले वहाँ नही है। तिब्बत में 8वीं सदी. से ही सहजयानी साधनाओं का विरोध किया जाता रहा है।

### सहजयानी सिद्धों एवं उनके रचनाओं पर पाश्चात्य विद्वानों के कार्य–

1.बेड़ेल– सहजयानी सिद्धों की रचनाओं पर सर्वप्रथम कार्य आरंभ किया इन्होंने सहजीया सिद्धों की रचनाओं में सरहपा के पदों और मुक्तकों का संपादन किया और प्रथमतः 68 दोहों का भी प्रकाशन कराया।
2.डॉ. मोहम्मद शहिदुल्ला– सहजयानी सिद्धों सरह और कान्ह के चर्यापदों का (तेंजुर के तिब्बती अनुवाद के अनुसार) चर्यापदों व दोहोकोषों का संपादन कर 'ल शॉ मिस्तीक्स' नाम पेरिस से फ्रेंच भाषा में 1928 में प्रकाशित किया था।
3.प्रोफेसर हर्बर्ट वी. गुंथर–तिब्बती अनुवाद और टीका के आधार पर सिद्धों के दोहोकोष व चर्यागीति का अध्ययन कर 'द रॉयल

सांग ऑव सरह' का संपादन किया और 1969 में यूनिवर्सिटी ऑव वाशिंगटन से प्रकाशित कराया था।

### ४. बर्कले-

बर्कले महोदय ने सरह के उपदेश कहे जाने वाले दोहाकोश, उपदेश गीति, दोहाकोशगीति जो उन्होंने अपने समय में राजा, रानी और प्रजा को दिया था का टीका के साथ अध्ययन बाद 1993 में 'म्बेजंजपबै चवदजंदमपजल' का संपादन किया था। और साहित्य नामक ग्रंथ में बौद्ध कपालिक जालंधरपा और कृष्णवज्रपाद,सरहपाद का

## सहजयानी सिद्धों की दार्शनिकता-

सहजयानी सिद्धों ने अपने निर्वाण अवस्था को सहज नाम से पुकारा है। यह सहज प्रज्ञा और उपाय, शून्यता और करूणा, संसार–निर्वाण, चंद्र–सूर्य, आलि–कालि, मणि–पद्म, कमल–कुलिश का मिलित स्वरूप है। यही उनकी निर्वाण अवस्था है यह अद्वय स्वरूप है यह भाव या अभाव से परे है वह बोधिचित्त है। इसे गुरू का स्वरूप कहा गया है। जिसे व्यक्त करना असंभ है। उस सहज की प्राप्ति के बाद संसार और निर्वाण दोनों समान हो जाता है। इस अवस्था को बताया नही जा सकता, यहाँ साधक और साधना का उभयनिष्ठ संबंध भी नही रहता। वह निर्विकल्प पद की प्राप्ति ही सहज अवस्था है। लुईपाद के अनुसार 'जहि मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाही प्रवेश' यहॉ मन और प्राण का संचार नही होता अर्थात मन का विषय (सांसारिकता) से परे की अवस्था है सहजावस्था। जिसे बताया जाना संभव नही।

## उपसंहार-

सहजयानी सिद्धों ने वज्रयान कि बाह्याचार का विरोध अपने लोकरचनाओं, कविताओं, दोहों, पदों में की है। इनमें लुईपा, सरहपा, कान्हुपा, नरोपा, आदि सहजयानी सिद्धों के चर्यापदों, चर्यागीतियों से पता लगया जा सकता है। इन सिद्धों को बौद्ध साधु की संज्ञा भी दी जाती रही है। इन सिद्धों की साधनाएँ कामरूप, बंगाल, काश्मीर, महाराष्ट्र, उडीसा, वाराणसी, सारनाथ, नेपाल, तिब्बत आदि क्षेत्रों में रही है। समय–समय पर भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इनकी रचनाओं की संस्कृत, तिब्बती अनुवाद और टीकाओं पर कार्य कर उनके दार्शनिकता, साधना, लिपि, भाषा, आदि पर महत्वपूर्ण कार्य किये है। सहजावस्था वास्तव में गुरू उपदेश से ही संभव है। सहजावस्था की प्राप्ति में ब्रह्मचर्य की साधना नितांत आवश्यक है। यह शब्दातीत है। सहज की प्राप्ति के क्रम में साधक को वाम और दक्षिण मार्ग को छोड़कर मध्यमार्ग का अनुशरण करने की बात कही गयी है। सहजयानी सिद्धों ने ललना, रसना, अवधूती आदि नाड़ियों की चर्चा की है। सहजयानी सिद्धों ने वज्रजाप से नाड़ी शुद्धी की बात स्वीकारी है साथ ही अवधूती के शुद्ध होने पर चार चक्रों के जागरण और महासुखावस्था की बात कही है। सहज प्रज्ञोपाय, शून्याताकरूणा का मिलित रूप है। जहाँ संसार और निर्वाण में कोई अंतर नही जहाँ पूर्ण विश्राम है, निर्वाण अवस्था ही सहज अवस्था है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1.अद्वयवज्रसंग्रह, संपादित, हरप्रसादशास्त्री, गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बडौदा, 1927.
2.ऐन इंट्रोडक्शन टु तंत्रशास्त्र, सर जान उडरफ, मद्रास, 1952.
3.ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑव बेंगाली लैंग्वेज, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, कलकत्ता, प्रथम भाग, 1926.
4.कौलज्ञाननिर्णय, संपादित, डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची, कलकत्ता, 1934.
5.गुह्यसमाजतंत्र, संपादित, विनयतोष भट्टाचार्य, ओरियेंटल इंस्टीट्यूट, बडौदा, 1931.
6.चर्यागीतिकोष, संपादित, डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची, शांतिभिक्षु शास्त्री, शांति निकेतन, 1956.
7.तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2009.
8.दोहाकोष, सिद्ध सरहपाद कृत, संपादित राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1956.
9.नाथ सम्प्रदाय, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1950.
10.पुरातत्व निबन्धावलि, राहुल सांकृत्यायन, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, 1937.
11.बौद्ध गान ओ दोहा, संपादित हरप्रसाद शास्त्री, बंगीय साहित्य परिषद्, प्रथम संस्करण कलकत्ता,1916.
12.बौद्ध निबंधावली, कृष्णनाथ, केंद्रिय उच्च तिब्बती संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1998.
13.बौद्ध अपभ्रंश साहित्य, डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, केंद्रिय उच्च तिब्बती संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001.
14.भारतीय संस्कृति और साधना, डॉ. गोपीनाथ कविराज, भारतीय राष्ट्र भाषा परिषद्, भाग 2, पटना, 1963

International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(6): 03-06

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(6): 03-06
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-09-2018
Accepted: 03-10-2018

**उमाशंकर कौशिक**
नेट, जे.आर.एफ., शोधार्थी, योग विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

**डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री**
सहायक प्राध्यापक, योग विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

**डॉ. यतीन्द्रदत्त अमोली**
सहायक प्राध्यापक, योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत

**Correspondence**
**उमाशंकर कौशिक**
नेट, जे.आर.एफ., शोधार्थी, योग विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

# भारतीय आगमिक परम्पराओं का तांत्रिक बौद्ध परम्पराओं पर प्रभावः एक समीक्षात्मक परिचय

**उमाशंकर कौशिक, डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री, डॉ. यतीन्द्रदत्त अमोली**

**सारांश**
आगम (तंत्रसाधना) के प्रमाण सिंधुघाटी सभ्यता से लेकर ऋग्वेदिय, अर्थववेदिय ऋचाओं, उपनिषदों, पुराणों, तांत्रिक ग्रंथों और हठयौगिक ग्रंथों आदि में स्पष्ट देखा जा सकता है। आगम से तात्पर्य उस ज्ञान से है जो गुरू शिष्य परम्परा से आया हुआ है। इसे सामान्य अर्थों में नही लिया जा सकता यह ज्ञान सद्गुरू के बिना जानना संभव नही है। तंत्र साधना बाह्य पूजा से आरंभ होकर शरीर की आंतरिक शक्तियों पर को जागृत कर समस्त बन्धनों से मुक्त कर, अतीन्द्रिय ज्ञान की अनुभूति कर लेते है। यही ज्ञान ही आगम कहलाता है। इस आगम साधना के प्रवर्तक तंत्राधिपति–मंत्राधिपति शिव को माना जाता है। भारतीय आगमिक तंत्रों के अनुसार आगम (तंत्र) का ज्ञान प्रथमतः शिव से पार्वति को प्राप्त हुआ। आगम साधना को बाद में तंत्र साधना के रूप में जाना जाने लगा। समयांतराल में इन आगमिक साधना को सर्वत्र प्रचार–प्रसार के निमित्त शिव से ऋषि दुर्वासा को आदेश प्राप्त हुआ। दुर्वासा ने तंत्र साधना की द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत मार्गी साधनाओं के प्रचार के लिए त्र्यंबक, आमर्दक और श्रीनाथ को नियुक्त किया। इस प्रकार तंत्र के इस गूढ़ साधनाओं का आरंभ गुरू के निर्देशों से विशेष स्थानों, निर्जन क्षेत्रों, गुफाओं, शिक्तिपीठों– कामरूप, उड्डियान, जालंधर आदि स्थानों में होने लगे। इन तांत्रिक परम्पराओं में शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदाय सबसे पुराने माने जाते है। साथ ही सौर, गाणपत्य, कौलमार्ग, स्मार्त आदि प्रमुख थे। शैव परम्पराओं के अंतर्गत पाँचवी–छठवी ई.पू. श्रीकंठ प्रवर्त्तित पाशुपत मत के उपरांत कालामुख, कापालिक, माहेश्वर, नाथ सम्प्रदाय आदि शाक्तों में मनसादेवी पार्वती, दुर्गा, अर्द्धनारिश्वर, दसमाविद्याऐं, श्रीविद्या आदि वैष्णवों में बैखानस, पांचरात्र, हरिहर आदि तांत्रिक परम्पराऐं प्रमुख थे। उपरोक्त तांत्रिक साधनाओं में से कुछ परम्पराओं को विभिन्न साधना परम्पराओं ने अपने साधनाओं में स्थान देने लगे थे। इनमें प्रमुख रूप से बौद्ध तांत्रिक परम्पराऐं सम्मिलित थे। तांत्रिक बौद्ध परम्परा से तात्पर्य बौद्ध साधकों का वह समुदाय जो बुद्धत्व की प्राप्ति तंत्र साधनाओं से किया करते थे। तांत्रिक बौद्धों का उद्घोष था कि उद्देश्य बुद्धत्व की प्राप्ति है। इस प्रकार तांत्रिक साधनाओं को स्वीकार कर एक सम्प्रदाय का रूप ले लिया जो महायानी कहलाये कालांतर में इनके अनेक सम्प्रदायों का विकास होता गया जिनमें मंत्रयान, वज्रयान, सहजयान, कालचक्रयान आदि सम्प्रदाय प्रमुख है। इन तांत्रिक बौद्ध परम्पराओं के द्वारा अपनी साधनाओं और अनुभूतियों को साहित्यिक रूप प्रदान करने का प्रयास जारी रहा जिनमें इन महायानी बौद्धों ने अपने रचनाओं में हिंदू देवी, देवताओं के समान ही देवी और देवताओं व सिद्ध पुरूषों की पूजा का विधान, उपनिषदिक ध्यान पद्धतियों को अपनाना, अवलोकितेश्वर पूजा, शिव–शक्ति के समान वज्र–वारिही का स्वरूप को आदर्श मानना, आसन,प्राणायाम, शरीरस्थ चक्र का जागरण व महासुखावस्था आदि बौद्ध धर्म के अनुरूप दर्शन प्रस्तुत करने लगे थे। इन तांत्रिक बौद्ध परम्पराओं के द्वारा संस्कृत, मिश्र संस्कृत, अपभ्रंश, तिब्बती, नेवारी आदि लिपि में रचनाऐं प्रकाश में आती गयी। इन मध्यकालीन तांत्रिक सिद्धों की साधनाओं व सिद्धियों ने भारत के बाहर नेपाल, तिब्बत आदि देशों की साधनाओं में अपना स्थान बना लिया था।

**कुट शब्दः** भारतीय आगम (तंत्र) साधना, शैव, शाक्त व हठयोग, तांत्रिक बौद्ध परम्परा, महायान, वज्रयान, सहजयान

## प्रस्तावना
भारतीय आगमिक (तंत्र) परम्परा मुख्यतः क्रिया, चर्या, योग व ज्ञान में विभाजित है। जिनके अंतर्गत शरीर की बाह्य शुद्धि से लेकर अपने चेतना को समस्त बन्धनों पाशों से मुक्त कर शिवस्वरूप होने तक की यात्रा है। भारत में ऋग्वैदिक काल के पूर्व से ही तांत्रिक साधनाऐं प्रचलन में रही है। सिंधु घाटी की सभ्यता से प्राप्त शिवलिंगों का प्राचानीकाल, मध्यकाल व वर्तमान समय के विभिन्न तांत्रिक परम्पराओं में पूजा प्रचलन में है। वही ऋग्वेद में देवों की शक्तियों की चर्चा है। सृष्टि क्रम में देवों के साथ शक्तियाँ संबंधित है, इन्हें माया कहा गया है। तंत्र से संबंधित विभिन्न मंत्रों आदि का उल्लेख भी प्राप्त होता है। जीवानन्द द्वारा संपादित रूद्रयामल तंत्र में अथर्ववेद का संदर्भ दिया गया है।

जिनमें सभी जीवों के अंदर कामविद्या निवास करती कही गयी है। इस ग्रंथ में तांत्रिक–यौगिक प्रयोगों, कुण्डलिनी शक्ति, शरीर में चक्रों आदि की चर्चा की गयी है। साधना पीठों– कामरूप, जालंधर, पूर्णगिरी, उड्डियान आदि का उल्लेख किया गया है।[1] अर्थववेद में वशीकरण मंत्रों की चर्चा प्राप्त होती है। जादू को यातु और दूसरों को हानि पहुँचाने वाली आत्माओं को राक्षस की संज्ञा दी गयी है। उन दुष्टजनों को नष्ट करने की बात कही है, जो माया के उपासना करते है। महाभारत में दुर्गा को संबोधित दो स्त्रोतों कहे गये है। केनोपनिषद् में उमा की चर्चा प्राप्त होती हैं जो ब्रह्म के विषय में इन्द्र, वरूण और वायु से प्रश्न करती है। श्वेताश्वरोपनिषद् में ऋषियों, ब्राह्मणों ने देखा की शक्ति शिव से पृथक नही है।[1] उपरोक्त आगमिक साधनाओं में सबसे प्राचीन साधनाऐं शैव आगम को स्वीकार किया जाता है। जिनके अंतर्गत पाशुपत पाँचवी–छठी ई.पू.) की मानी जाता है।[2] जिनके प्रवर्त्तक श्रीकंठ माने जाते है। साथ ही शाक्त एवं वैष्णव तांत्रिक परम्पराओं को भी समकालीन माना गया है। इनमें परम्पराओं में क्रमशः शिव देवी और विष्णु उपास्य माने जाते है। शैव सम्प्रदायों में पाशुपत, कापालिक, कालामुख, माहेश्वर, काश्मीर शैव, नाथ सम्प्रदाय आदि सम्मिलित माने जाते है।[3] शाक्त आगम की परम्परों के अंतर्गत दुर्गा, काली, कामाख्या कालांतर में दस महाविद्याओं और अनेक सम्प्रदायों का विकास होता गया। इनके साथ ही स्वतंत्र तांत्रिक सम्प्रदायों के रूप में सौर सम्प्रदाय सूर्य उपासक, गाणपत्य (गणपति) की पूजा, कौलसम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय, स्मार्त सम्प्रदाय आदि भी प्रचलित रही है। परमात्मा शक्ति संपन्न कहे गये है। कालिदास (जिनका काल चौथी शताब्दी के पूर्व) अर्द्धनारिश्वर का उल्लेख किया है। साथ ही दुर्गा के अन्य नामों में अपर्णा, उमा, गौरी, भवानी कि चर्चा की है। पी.वी. काणे महोदय ने धर्मशास्त्र का इतिहास नामक ग्रंथ के पाँचवें भाग में दुर्गा पूजा को प्रमाणों के आधार पर दो सौ ई. पूर्व स्वीकार करते है। सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, तंत्र एवं योग विभाग के पूर्व अध्यक्ष व्रजवल्लभ द्विवेदी ने मथुरा संग्रहालय में रखी तेईस सौ साल पुरानी मनसा देवी की प्रतीमा का उल्लेख किया है।[4] इससे यह ज्ञात होता है कि तंत्रों में शक्ति की उपासना के प्रमाण पुरातन है। दुर्गासप्तसति, शिवपुराण, श्रीमद्भागवतम् आदि में शक्ति की उपासनों व महत्त्वों का उल्लेख किया गया है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में तांत्रिक साधनाओं का प्रचार प्रसार अत्यधिक होने लगे थे उनमें भी शाक्त तंत्र का सबसे ज्यादा प्रचार–प्रसार माना जाता है। मध्यकालीन भारत में कौलयोगिनी तंत्र के प्रवर्त्तक मत्स्येन्द्रनाथ को माना जाता है। जो मध्यकालीन हठयौगिक परम्परा में भी प्रथम मानव सिद्ध के रूप में प्रतिष्ठित है। मत्स्येन्द्रनाथ नेपाल में तांत्रिक बौद्धों के मध्य अवलोकितेश्वर के रूप में पूजनीय है।[5] साथ ही तिब्बत के चौरासी सिद्धों में आदि सिद्ध लुईपा के नाम से भी प्रसिद्ध है। उपरोक्त तंत्रों की साधनाओं के अनुसार कुछ विद्वानों के मत–

पी.वी.काणे– बौद्ध धर्म के प्रारंभिक ग्रंथों– त्रिपिटक आदि में तंत्रों के प्रयोग के साक्ष्य नही मिलते और न ही मुद्राओं, मंत्रों, मण्डलों आदि का प्रमाण ही प्राप्त होता है। बौद्ध धर्म पर लिखने वाले प्राचीन विद्वानों में ह्वेन्सॉंग, इत्सिंग आदि की रचनाओं में बौद्ध तंत्रों की कोई चर्चा प्राप्त नही होता।[6]

**विनयतोष भट्टाचार्यः** आरंभिक काल में बौद्ध एवं जैन धर्मों ने हिंदू देवी–देवताओं को अपनाया था।[7]

डॉ. विन्तरनित्ज ने अपना मत व्यक्त किया है कि त्रिपिटक में अथवा अन्य किसी प्राचीन ग्रंथों में इनका कोई प्रमाण नही मिलता कि बुद्ध और उनके प्राचीन अनुयायिओं का मुद्रा, मण्डल और धारणियों से कोई संबंध था। इसके साथ ही विभिन्न प्राचीन ग्रंथ, पालि, त्रिपिटक तथा सिंहली इतिहास इस परम्परा से अनभिज्ञ है। यहाँ तक की मन्त्रतत्त्व समन्वित प्राचीनतम वैपुल्यसूत्र, मंजुश्री मूलकल्प, गुह्यसमाज तंत्र जैसे ग्रंथ बुद्ध के द्वारा इस तंत्र उपदेश के विषय में मौन मिलते है। विन्तरनित्ज ने विनयतोष भट्टाचार्य के मतों का उल्लेख करते हुए कहा है कि भट्टाचार्य का यह कथन कि हिंदुओं की तंत्र साधना बौद्धों से आयी है उनके तर्क उनके ही तथ्यों के विरोध में है।[8] डॉ. जोशी अनेक तथ्य देकर इन मान्यताओं को अविश्वसनीय मानते है कि बुद्ध ने तंत्र का उपदेश दिया था है।

तांत्रिक बौद्ध परम्परा– सर्वप्रथम यह बात उल्लेखनीय है कि महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बारह सौ वर्ष बाद यह घोषणा होती है कि समस्त बौद्ध तंत्रों के उपदेष्टा बुद्ध है, उपरोक्त वचन डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य ने शांतिरक्षित के तत्त्वसंग्रह और कमलशील कृत टीका का उदाहरण देकर प्रस्तुत किया है। यह संदेहास्पद लगता है क्योंकि दोनों आचार्य महात्मा बुद्ध के चौदह सौ वर्ष बाद घोषणा कर रहे है।[9]

तांत्रिक बौद्ध परम्राओं की यह मान्यता है कि बुद्ध ने स्वयं इन तंत्रों की दीक्षा तीक्ष्णेन्द्रिय साधकों को धान्यकटक, श्रीपर्वत आदि स्थानों पर मंत्रयान आदि की देशना दी थी। इस प्रकार समस्त तांत्रिक बौद्ध परम्परा क्रिया, चर्या, योग एवं अनुत्तरयोग में विभाजित है। इनके और वर्गीकरण करने पर ये मातृतंत्र, पितृतंत्र, आदि भी विभाजित है। महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पूर्व से उनके अनुयायिओं में साधना पद्धतियों को लेकर मतभेद होने लगे थे और महापरिनिर्वाण के उपरांत ये मुख्य रूप से दो समुदायों थेरवादी (हीनयान) और महासांघिक (महायान) में विभक्त हो गये। बौद्ध धर्म में यान की विशेष चर्चा है जो निर्वाण प्राप्ति के साधन माने जाते है। हीनयानी समुदाय का विश्वास था कि बुद्ध के उपदेश मार्गों का अनुसरण कर ही निर्वाण पाया जा सकता है। परन्तु महायानी बौद्धों का यह मानना था कि हीनयान के साधना क्रम कठिन है, जिससे निर्वाण प्राप्ति में कई जन्मों का समय लग जाता है। महायानी समुदाय स्वीकारते थे कि स्वयं बुद्ध को निर्वाण पद कई जन्मों के बाद प्राप्त हुआ। परंतु तांत्रिक साधनाओं से इसी जन्म में ही बुद्धत्व की प्राप्ति की जा सकती है। इस प्रकार तांत्रिक साधनाओं की स्वीकार्यता महायानी सम्प्रदाय में स्पष्ट दिखता है। कालांतर में इसी महायानी परम्परा से मंत्रयान, वज्रयान, कालचक्रयान व सहयानी बौद्ध तांत्रिक सम्प्रदायों का विकास हुआ। इन तांत्रिक सम्प्रदायों में स्त्रियों का साधनाओं में प्रवेश अनीवार्य था। उपरोक्त विवरणों को थेरवादी महात्मा बुद्ध के उपदेशों के विपरित मानते है। और इन्हें वैदिक व तांत्रिक समप्रदायों से प्रभावित स्वीकार करते है। पी.व्ही. काणे ने अपने धर्मशास्त्र का इतिहास नामक ग्रंथ में आनंद और बुद्ध के उपदेशों को थेरवादी मूल ग्रंथ से उद्धृत किया है। जिसमें बुद्ध ने आनंद को अपने द्वारा प्रवर्त्तित मार्ग में स्त्रियों के प्रेवश से पाँच सौ वर्षों में ही इस मार्ग के पतन का कारण कहा है।[10]

**शाक्त तंत्र का बौद्ध तंत्र साधना पर प्रभावः** शाक्त आगम की साधनाओं के प्रमाण आज से लगभग तेईस सौ वर्ष पुरानी देवी की प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में उसके आस–पास के ग्राम से पुरातत्त्व उत्खन्न से प्राप्त हुए थे। समयांतराल से महायानी परम्परा के तांत्रिक बौद्ध सिद्धों ने जो वेदों के जानकार थे और आगम साधनाओं को जानने वाले थे। उन्होंने बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए तंत्र साधनाओं का माध्यम लिया और इन साधनाओं, दर्शनों को बौद्ध दर्शन के अनुकूल बनाते चले गये। उपरोक्त कथनों को प्रमाणित करते निम्न महायानी ग्रंथों के विषय वस्तुओं को देखा जा सकता हैं– कल्पना–मण्डीतिका, चतुःशतकस्तोत्र, मैत्रेयव्याकरण, जातकमाला, अवदानशतक, कर्मशतक, दिव्यावदान, अवदानकल्पलता जैसे ग्रंथों के अध्ययन से चमत्कार पूर्ण कथा, लोकोत्तरवाद बोधिसत्त्व की उदारता, सिद्धि, बुद्ध की लीला, बुद्ध भक्ति आदि विशेषताऐं आदि दिखाई देती है। इसी प्रकार महायान के प्रसिद्ध वैपुल्यसूत्रों– अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुण्डरीक, ललितविस्तर, लंकावतार, सुवर्णप्रभास, गण्डव्यूह, तथागतगुह्यक, समाधिराज और दसभूमीश्वर के अध्ययन से अनेक देवताओं और देवियों की कल्पना ऐंद्रजालिक सिद्ध और शक्तिमान बुद्ध, नमोस्तु बुद्धाय मंत्र, पारमिताओं का माहात्म्य विस्तार, वज्रगर्भ, ध्यान, समाधि, तंत्र प्रभाव, श्रीमहादेवी, सरस्वती आदि देवियों की कल्पना, हारिति, चण्डिका,

जैसी शक्तियों की कल्पना का पता लगता है। मूर्ति रचना धारणियों व विभिन्न लोकों की कल्पना एवं मंत्र प्रयोग आदि का भी पता चलता है।[11] महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरांत भिक्षुओं का कुछ समुदाय शाक्त परम्परा से प्रभावित दिख पड़ता है। इसी तरह महायानी साहित्य में तांत्रिकता के अंतर्गत मैथुन की साधनात्मक प्रभाव और उनकी प्राचीनता एवं प्रवर्त्तक व पंचमकार (मद्य, मांस, मुद्रा, मत्स्य, मैथुन) का प्रयोग, पंचमकार के अन्य तत्त्वों में मुद्रा का वीराचारगत विकास आदि का प्रयोग आरंभ हो चला था जो सातवीं से नौ वीं शताब्दी में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा शाक्त परम्परा के साधनाओं के अनुरूप ही अपने साधनाओं में शक्ति तत्त्व के रूप में स्त्रियों को अपने साधनाओं के विकास में सहगामी बनाने का प्रमाण प्राप्त होने लगता है। इस विषय पर रामधारी सिंह दिनकर ने बौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव के अंतर्गत विभिन्न उद्धरणों से बौद्धों के तांत्रिक सम्प्रदायों में शक्ति तत्त्वों की समावेश की चर्चा की है जिनमें बौद्ध धर्म में बुद्ध के साथ शक्ति तत्त्वों को स्थापित करने व अपने साधना में मुद्रा रूप में स्त्रियों के प्रवेश से बौद्ध धर्म के मूल साधनाओं का स्वरूप पूरा बदल गया आदि को बड़े ही स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है।[12] इस प्रकार भारतीय आगमिक परम्पराओं के प्रभावों को महायानी ग्रंथों में स्पष्ट देखा जा सकता है। विशेष रूप से महायान धर्म में बुद्ध की अलौकिक तथा अनेक बोधिसत्वों ने अनेक देवताओं और उनके मण्डलों के विकास में योगदान दिया। तांत्रिक बौद्ध धर्म के अद्वयवज्रसंग्रह में संगृहीत तत्त्वरत्नावली में महायान को दो भागों में विभाजित किया गया है– पारमितानय और मंत्रनय। इसी मंत्रयान से कालांतर में वज्रयान, कालचक्रयान, व सहजयान आदि का विकास हुआ। यह अद्वयवज्र द्वारा किया गया विभाजन माना जाता है।[13] जो बौद्ध धर्म में साधनात्मक परिवर्तनों को इंगित करता है। इस विभाजन से बौद्ध मतों में स्पष्ट रूप से तांत्रिक साधनाओं की पूरी परम्परा का विकास बौद्ध धर्म के मूल स्वभाव से विलग प्रतीत होते है।

**तांत्रिक शैव साधना एवं वज्रयानी साधनाः** तांत्रिक शैव साधना में शिव उपास्य है। इन सम्प्रदायों में शिव को पशुपति कहा गया है। पाशुपत मत सबसे प्राचीन माना गया है। जिस प्रकार पशु पाश या रस्सी से बंधकर सीमित हो जाता है। वैसे ही मानव इन्द्रियों, मन, बुद्धि के वशीभूत हो जरा, जन्म, मरण आदि में ही घुमते रहता है। इन शैव साधनाओं में शरीर को प्रथमतः शुद्ध करना, आसन, प्राणायाम, कुण्डलिनी जागरण आदि की साधनाओं से अभेद्य बनाने की साधना निहित थी। साथ ही शिव की प्रतीमा कुण्डलन धारण किये हुए अपने हाथों में डमरू नाद का प्रतीक व त्रिशुल प्रकृति के गुणों से मुक्ति के प्रतीक थे। शैव कापालिकों से बौद्धों के संबंध के विषय में नगेन्द्रनाथ ने विस्तार से उल्लेख किया है।[14] इस प्रकार वज्रयानी बौद्ध साधकों ने शिव के समानान्तर ही अवलोकितेश्वर का रूप दिया व उनकी पूजा भी प्रचलित की थी जिनमें उनके देवता बाघम्बर पहने शिव के प्रतिमा के ही समान है। इसी प्रकार वज्रयानी साधकों ने वज्र का अर्थ ऐसे शरीर की प्राप्ति से लगाया है जो अभेद हो जिसे हर परिस्थितियों व प्रभावों से अप्रभावित हो। वज्रदेह की चर्चा पातंजल योग सूत्र के विभूतिपाद में प्राप्त होता है। जिसके अंतर्गत कायसम्पदा में वज्र जैसे देह जिसमें शरीर सूडौल, निरोगी, सुन्दर और वज्र के समान दृढ़ होना कहा गया है।[15] गोपीनाथ कविराज के अनुसार नाथ योगियों (सिद्धों) के साधनाओं में यह दिख पड़ता है कि देहजय करना अनिवार्य कहा गया है। बौद्ध सिद्धों भी शरीर की मूल सम्पदा कहे जाने वाले वज्रदेह कि ओर, इन विशेषताओं की ओर आकर्षित हुए थे।[16]

**हठयोग साधना व तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय सहजयानः** हठयोग के साधनाओं में नाथ सिद्ध प्रसिद्ध है। हठयोग के प्रथम मानव सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ का नाम प्रथम है। जिन्हें सहजयानी 84 सिद्धों में प्रथम लुईपाद के नाम से जाना जाता है। यह कथन मत्स्येन्द्रनाथ के ग्रंथों का वैज्ञानिक रिति से 8 हस्तलिपियों के साथ सम्पादन करने वाले डॉ. प्रबोधचंद बागची के है। जिस ग्रंथ का नाम कौलज्ञाननिर्णयः है।[17] तिब्बती एवं नेपाली बौद्धों के मध्य मत्स्येन्द्रनाथ इस लोक के देवता के रूप में पूजित रहे है। नाथ सिद्धों की सूची प्रस्तुत करने वाले 13वीं शताब्दी के ग्रंथ वर्णरत्नाकर में अनेक बौद्ध सिद्धों का नाम नाथ सिद्धों की सूची में प्राप्त होता है। साथ ही सहजयानी सम्प्रदाय के चौरासी सिद्धों मे अनेक नाथ सिद्धों को शामिल किया गया है। इनमें तिब्बती बौद्ध सिद्धों में सबसे अधिक ग्रंथ के रचनाकार, कवि कान्हुपाद या कृष्णपाद इन्हें काणेरीनाथ अथवा कृष्णनाथ के नाम से नाथ सिद्धों की सूची में भी इनका नाम प्राप्त होता है। साथ ही इनके गुरू जालंधरीपाद भी जालंधरनाथ नाम से इस सूची में सम्मिलित है।[18] इस सूची में प्रथम स्थान मीननाथ का प्राप्त होता है। जो मत्स्येन्द्रनाथ का ही नामान्तर है। डॉ. प्रबोधचंद बागची ने कौलज्ञाननिर्णयः की भूमिका में मत्स्येन्द्रनाथ के विभिन्न नामों की चर्चा की है। सहजयानी सिद्धों के ग्रंथों में नाथ योगियों के ग्रंथ सिद्धसिद्धांतपद्धति, हठप्रदीपिका आदि के ही समान नाड़ियों की संख्या 72,000 व मुख्य नाड़ियों में जहाँ नाथ सिद्धों ने इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना कहा वही सहजयानी बौद्धों इन नाड़ियों को अपने मूल ग्रंथों में ललना, रसना व अवधूती कहा है।।[19] नाथ सिद्धों ने मूलाधार चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, सहस्रार चक्र को निर्माण चक्र, धर्म चक्र सम्भोग चक्र व उष्णीष चक्र का नाम दिया। नाथ सिद्धों के समान ही सहजयानी बौद्ध सिद्धों ने उस साधना की उत्तम अवस्था को सहज, महासुख आदि नाम दिया है। जो काय, वाक, चित्त से परे है। इन अनुभूतियों को अद्वय आदि नामों से पुकारते थे।[20] सहजावस्था को नाथसिद्धों ने द्वैताद्वैत विवर्जित कहा है। जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त से परे है। सहज को बताया नही जा सकता यह स्वयं में ही अनुभव (स्वसंवेद्य) किया जा सकता है।

**उपसंहारः** भारतवर्ष में आगम (तंत्र) का विकास आदिकाल से माना जाता है जिसके उल्लेख ऋग्वेद, अर्थवेद, उपनिषदों और पुराणों में भरी पड़ी है। इसके प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता के उत्खन्न से प्राप्त शिवलिंग एवं पुरात्तव विभाग, मथुरा को तेईस सौ वर्ष पुरानी देवी की प्रतिमा प्राप्त हुई है जो इस बात के प्रमाण है। तंत्र को भारतीय ज्ञान परम्परा का पंचम वेद माना जाता है जो शिव मुख से पार्वती तक पहुँची। यही आगम शास्त्र है। बौद्ध धर्म में तांत्रिक साधना का प्रवेश महायानी परम्परा से माना जाता है। इन बौद्ध तांत्रिक साधकों ने इसे और भी विकास दिया साथ ही तांत्रिक ग्रंथों की रचनाएँ प्रकाश में आने लगी जो संस्कृत, मिश्र संस्कृत के ग्रंथ उपलब्ध होने लगे थे। विभिन्न भारतीय तांत्रिक सम्प्रदायों शैव, शाक्त, नाथ सम्प्रदायों से उत्तरोत्तर विकसित विभिन्न बौद्ध सम्प्रदायों मंत्रयान वज्रयान, कालचक्रयान, सहजयान, सम्प्रदायों ने अपने पूर्व सम्प्रदायों के अनुकूल साधनाओं को अपने सम्प्रदायों में शामिल करते रहे। जिसमें मंत्र, मण्डल, जप, मूर्ति स्थापना, आदि बुद्ध के साथ जोड़कर साधनाओं का क्रम विकसित होता रहा। परंतु भारतीय तंत्र साधनाओं व बौद्ध तांत्रिक साधनाओं के मूल ग्रंथों, साधनाओं, दार्शनिकता, भारतीय पुरातात्त्विक उत्खन्नों एवं विभिन्न विद्वानों के मतों से यह स्पष्ट होता है की भारतीय आगमिक तांत्रिक साधनाओं से बौद्ध तंत्र प्रभावित रहा है। क्योंकि बौद्ध धर्म के मूल शास्त्रों में तंत्र साधनाओं के प्रमाण प्राप्त नही होते। परंतु कालांतर में जो तांत्रिक बौद्ध संस्कृत साहित्य, अपभ्रंश साहित्य, चर्यापद, दोहा आदि ग्रंथों में देखें जा सकते है। भारतीय आगमिक परम्परा से प्रभावित कालांतर के बौद्ध परम्पराओं कि अगर समीक्षा की जाए तो ये मूल बौद्ध सिद्धांतों से इतर व भारतीय आगमिक सिद्धांतों, साधनाओं व दर्शनो से प्रभावित प्रतीत होते है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अर्जुन चौबे अनुवादित काणे पी.वी. रचित, धर्मशास्त्र का इतिहास, पंचम भाग, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ, पंचम संस्करण, 2014. पृ. 10–11.

2. मिश्र सत्येन्द्र कुमार, रूद्रशिव की वैदिक अवधारणा पाशुपत–सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक एवं आचार्य, इन्टरनेशनल जनरल ऑफ हिंदी रिसर्च, (पुष्पांजलि), भाग–4, जुलाई 2018.पेज न. 13–16.
3. पाण्डेय राजकुमारी, भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2008, पृ.263.
4. आगम और तंत्रशास्त्र, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, 1984, भूमिका
5. बागची प्रबोध चंद, संपादित, कौलज्ञाननिर्णय, मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, कलकत्ता,1934, भूमिका पृ.13.
6. अर्जुन चौबे अनुवादित काणे पी.वी. रचित, धर्मशास्त्र का इतिहास, पंचम भाग, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ, पंचम संस्करण, 2014.पृ.6.
7. वही, पृ.7.
8. वही, पृ.7.
9. उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2009, पृ.39.
10. अर्जुन चौबे अनुवादित काणे पी.वी. रचित, धर्मशास्त्र का इतिहास, पंचम भाग, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ, पंचम संस्करण, 2014. पृ. 2–8.
11. उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, बौद्ध अपभ्रंश साहित्य, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001,पृ.14–15.
12. दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017,पृ.169–178.
13. गुप्त शशिभूषण दास, एन इन्ट्रोडक्शन टू तांत्रिक बुद्धिज्म, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, 1950, पृ.161–169.
14. उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, बौद्ध अपभ्रंश साहित्य, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2001,पृ. 275–278.
15. पातंजलयोगसूत्र 3/45. गीताप्रेस, गोरखपुर
16. अवेद्यनाथ एवं अन्य संपादित, योगवाणी पत्रिका (मत्स्येन्द्र विशेषांक), अंक 1–3, जनवरी–मार्च,1992, पृ 49.
17. बागची प्रबोध चंद, संपादित, कौलज्ञाननिर्णय, मेट्रोपोलेटियन प्रिंटिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, लिमिटेड, कलकत्ता,1934, भूमिका
18. द्विवेदी मुकुन्द,संपादित, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग–6, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, 2013 पृ.44–47.
19. कृष्णपाद रचित, हेवज्रपंजिका–योगरत्नमाला, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी, 2006 पृ.9
20. नेगी ठाकुर सेन, वज्रयानी अनुत्तरयोग, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी, 1999. पृ.240–249.

Drishtikon

# Certificate of Publication

is awarded to

उमाशंकर कौशिक

for the paper titled

## गोरक्षनाथ : नाथ साहित्य के परिप्रेक्ष्य में

Published in ***Drishtikon*** Journal Vol-11, Issue-06 Year 2019 ISSN: 0975-119X

International Refereed and Indexed Journal for Research Publication

With Impact Factor 5.1 UGC Care Listed

*S.N. Sharma*

Editor-in-Chief

editor@hindijournals.org

UGC University Grants Commission

EDUINDEX

Drishtikon *(Bimonthly Hindi Journal)*

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

# गोरक्षनाथ : नाथ साहित्य के परिप्रेक्ष्य में

उमाशंकर कौशिक[1], डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री[2]

1.शोधार्थी, पीएच. डी.(योग)नेट,जे.आर.एफ. 2.सहायक प्राध्यापक (योग)
साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, म.प्र.

## संक्षेपिका

गोरक्षनाथ नाथयोगियों में महिमाशाली व्यक्तित्त्व के रूप में बहुप्रसिद्ध है। बृहदोत्तर भारत के सभी भाषाओं में गोरक्षनाथ अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ के साथ कहानियों, कथानकों, साहित्यों में शामिल है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें आदिशंकराचार्य के उपरांत सबसे प्रभावशाली योगी के रूप में सम्बोधित किया है।[1] नाथ साहित्यों में गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ के घनीष्ट एवं प्रमुख शिष्य के रूप में जाने जाते है। गोरक्षनाथ एक योगी, सिद्ध एवं नाथ सम्प्रदाय के संगठनकर्ता रहे है। वे मूलतः शैव माने जाते हैं जो प्राचीन काल से चली आ रही योग साधना के प्रबल अनुयायी माने जाते है। जिन्होंने मध्यकालीन भारत में हठयोग की पुरातन परम्परा, साधना को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया एवं तंत्र में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों का मार्ग दर्शन कर उनके स्वरूप को शुद्धकर अपने नाथ सम्प्रदाय में स्थान दिया। जिनमें कापालिक, वामराग, रामनाथी, सत्यनाथी, नाटेश्वरी, आईपंथ, गंगानाथी आदि बारह पंथ सम्मिलित हैं। इनके जन्म स्थान एवं समय को लेकर आज भी विद्वानों एवं अन्वेषकों में मतवैभिन्नता ही दिखाई देती है। नाथ साहित्यों में गोरक्षनाथ हठयोग विद्या के निष्णात एवं नाथ गुरू के रूप में प्रसिद्ध है। जिन्होंने योगियों के लिए जीवनमुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इनके उपेदश नाथ योगियों के मध्य वर्तमान में ग्रंथ के रूप में उपलब्ध है। जिनमें अवधूतों, योगियों, गृहस्थों आदि को योगमार्ग का अनुशरण करने का उपेदश किया गया है। गोरक्षनाथ कृत हठयोग की विभिन्न ग्रंथों का उल्लेख भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपने अनुसंधान कार्यों के अनुसार प्रस्तु किया है। जिनमें गोरक्षशतकम्, सिद्धसिद्धांतपद्धति, अमरौघप्रबोध, गोरखबानी आदि प्रमुख मानी जाती है। कालांतर में अनेकाशः नाथ साहित्यों की रचानाओं में गोरक्ष के सिद्धांतों एवं दर्शनों को स्पष्टतः अवलोकन किया जा सकता है। इन नाथ साहित्यों में गोरक्षशतकम्, सिद्धसिद्धांतपद्धति, हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, हठरत्नावली, अमरौघप्रबोध, गोरक्षपद्धति, बृहदयोगसोपान, षट्कर्मनिरूपण आदि उल्लेखनीय हैं।

**मुख्य बिन्दु :– गोरक्षनाथ, उनकी रचना एवं नाथ साहित्य**

**प्रस्तावना :–**

भारतवर्ष के उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक गोरक्षनाथ एवं उनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ की योगसिद्धियों एवं चमत्कारों की तरह–तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं। उनके अनुयायी आज भी भारतवर्ष के दूरअंचलों में भी भ्रमण करते हुए पाये जाते हैं। इनके विभिन्न नामों में नाथ साहित्य, सिद्धसिद्धांतपद्धति अमरौघप्रबोध, योगिसंप्रदायाविष्कृति, योगमार्त्तंड, महार्णवतंत्र ग्रंथों में गोरक्षनाथ।[2] स्वात्माराम कृत, हठप्रदीपिका में गोरक्ष[3], नाथ सिद्धों की छिहत्तर नामों को प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ, वर्णरत्नाकर में गोरक्षणाथ[4] राहुल सांकृत्यायन के द्वारा प्रस्तुत चौरासी सिद्धों वाली सस्क्य बिहार की सूची में गोरक्षपा[5] नाम प्राप्त होता है। गोरक्ष नाथ को गोरखनाथ भी कहा गया है।

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

इनके जन्म स्थान को लेकर विभिन्न विद्वानों में मत वैभिन्ता दिख पड़ती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय नामक रचना में गोरक्ष के जन्म स्थली को लेकर विद्वानों के कथनों को विस्तार से उद्धृत किया है।[6] संत ज्ञानेश्वर की रचना योगिसम्प्रदाया विष्कृति के अनुसार इनका जन्म गोदावरी नदी के निकट चंद्रगिरि नामक स्थान माना जाता है। नेपाल दरबार लाइब्रेरी में उपलब्ध एक हस्तलिपि गोरक्षसहस्रनाम के अनुसार दक्षिण के किसी बड़व देश में इनका जन्म स्थान बताया गया है। द्विवेदी जी ने बड़व देश को गोदावरी के निकट अनुमान किया है। ग्रियर्सन ने पश्चिमी हिमालय के साथ–साथ गोरक्षानुयायिओं के द्वारा प्रस्तुत परम्परा को आधार मानते हुए सत्युग, द्वापर, त्रेता एवं कल्युग में क्रमशः पंजाब (पेशावर), गोरखपुर, द्वारिका, काठियावाण में उत्पन्न मानते है। मोहनसिंह ने रावलपिण्डी वर्तमान में पाकिस्तान का क्षेत्र तो रांगेय राघव ने पेशावर के निकट उत्तर–पश्चिमी पंजाब का क्षेत्र का अनुमान किया है। बंगाल में प्रचलित विश्वास के अनुसार इन्हें बंगाल के निवासी कहा गया है। नासिक के योगियों की मान्यता हैं की गोरक्ष, नेपाल से पंजाब आए थे। नेपाल में प्रचलित मान्यता के अनुसार पंजाब से नेपाल कि ओर गये थे। उपरोक्त विद्वानों के मतों से यह तो स्पष्ट जान पड़ता है की गोरक्ष का जीवन एक भ्रमणशील योगी के रूप में व्यतीत हुआ था। उन्होंने वृहदोत्तोर भारत की अनवरत यात्रायें की थी। तभी भारत के विभिन्न अंचलों में आज भी उनके मठों (साधना स्थल) साधना केंन्द्रो को देखा जा सकता है।[7] उपरोक्त कथनों से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है की गोरक्षनाथ ने भारतीय परम्परा में अनुपालनीय सिद्धांतों का अनुशरण कर योगमार्ग में दीक्षित होकर अपने निजीगत सांसारिक परिचय आदि प्रस्तुत करना, स्वीकार्य नहीं रहा।

गोरक्षनाथ के काल पर विचार करने पर विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न–भिन्न जान पड़ते हैं। जिसमें आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य का काल आ जाता है। जिनमें ऐतिहासिक ग्रंथ, प्रचलित मान्यताऐं, हठयौगिक ग्रंथ, समकालीन सिद्ध, साहित्यिक संकेत, पौराणिक कथायें, जनश्रुतियाँ आदि के साथ–साथ नाथ अनुयायिओं के द्वारा गढ़ी गयी कल्पनायें भी शामिल हैं। किन्तु अधिकांश विद्वानों, हजारी प्रसाद द्विवेदी, धर्मवीर भारती, डॉ. जोशी, पं. परशुराम चतुर्वेदी, महाराष्ट्रीय विद्वान जोग महोदय, पीताम्बर दत्त वड़थ्वाल, दिनेशचन्द्र सेन, मूलराज के एक प्रति के आधार पर, डॉ. मोहन सिंह, डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय आदि उपरोक्त विद्वानों के कालनिर्णय की समीक्षा के आधार पर गोरक्ष दसवीं शताब्दी में उपस्थित जान पड़ते है। इस पर विभिन्न विद्वानों के मतों की बाहुलयता हैं।[8]

गोरक्षनाथ ने आदिकाल से चली आ रही योगसाधना को समाज के अनुकूल व्यवस्थित कर स्थापित किया और उनका प्रचार एवं प्रसार किया था। जिसमें शैव सम्प्रदाय के साधनात्मक सिद्धान्त शामिल थे। नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने डॉ. भंडारकर, फर्कुहर, यदुवंशी आदि विद्वानों का संदर्भ पुस्तुत करते हुए, वैदिक देवता रूद्र से लेकर लकुलीश, पाशुपत, माहेश्वर, कौलयोगिनी तंत्र, कापालिक, काश्मीर शैव परम्परा आदि का विस्तृत उल्लेख करते हुए नाथ सम्प्रदाय को इसी से उद्भूत माना है।[9]

मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना विशेषकर तंत्र एवं योग मार्ग के अवरोधों, वामाचार, हिंसा, व्यभिचार आदि को दूर कर अपनी साधना, सिद्धि एवं संगठन शक्ति के बल पर गोरक्ष ने संयमपूर्ण, संतुलित, समाज के अनुकूल, हठयोग साधना को जनमानस में पुनः स्थापित किया। नाथ साहित्यों में गोरक्ष, हठयोग विद्या के विशेषज्ञ एवं महासिद्ध माने गये है। गोरखबनी के सबदी में गोरक्ष ने हठसाधकों, अवधूतों साधुओं, गृहस्थों को संबोधित करते हुए अपने आत्मस्वरूप को न भूलने, स्त्रीप्रसंग से दूर रहने, अनुशासनपूर्ण सात्त्विक जीवन के साथ साधना में लगे रहने, आहार के स्वाद के पीछे नहीं पड़ने, आवश्यकतानुसार भोजन ग्रहण करने, आश्रम न बनाने भ्रमणशील रहते हुए विवेक एवं वैराग्यपूर्ण जीवन के साथ आत्मिक उन्नती आदि के निर्देश दिए है। नाथ साहित्यों में गोरक्षनाथ के नाम एवं उनके प्रति सम्मान की बाहुल्यता है। हठप्रदीपिका में गोरक्ष

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

को मत्स्येन्द्रनाथ के साथ हठविद्या के जानकार बताते हुए स्वात्माराम ने उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्हीं के प्रसाद से हठविद्या से राजयोग की प्राप्ति का समर्थन किया है।[10] उनके द्वारा उपदिष्ट, गोरक्ष आसन प्रमुख चार आसनों में शामिल है। नाथ योग अथवा हठयोग साधना में नादानुसंधान समाधि के अनुभवकर्ता एवं सामान्य जनों के लिए इस गूढ़ विद्या के उपदेशकर्ता के रूप में गोरक्ष का नाम लिया गया है। वे ही श्री नाथ गुरू के रूप में अनिर्वचनीय आनंद को जानने वाले है।[11] घेरण्ड संहिता के द्वितीय उपदेश में बत्तीस आसनों में गोरक्ष आसन का वर्णन है। जिसके अभ्यास से योगियों को सिद्धि की प्राप्ति होती है।[12] हठरत्नावली में श्रीनिवास ने गोरक्षासन का उल्लेख करते हुए, योग में सिद्धि के लिए गोरक्षवचन के रूप में, दुष्टों की संगति, स्त्री का संग, अग्नि का सेवन, लंबी यात्रा, प्रातःकाल का स्नान, अधिक भोजन, अधिक श्रम को त्याग देने की बात कही है। अमरौघप्रबोध, गोरक्ष के द्वारा कथित उपदेश है। जिसमें आत्मा का प्रत्यक्षीकरण का रहस्य छिपा हुआ है।[13] गोरक्षपद्धति में गुरू को नमस्कार कर गोरक्ष ने उत्तम योगज्ञान का उपदेश किया है, जो योगियों के लिए परमानंद प्रदायक ज्ञान है। गूढ़ रहस्यों को भी गोरक्ष ने योगियों के लिए प्रकाशित कर दिया जिसमें शरीर के ब्रह्मतेज युक्त ध्यान से मुक्ति प्राप्ति के लिए उपदेश किया गया है।[14] बृहदयोगसोपान में महासिद्ध गोरक्ष का उल्लेख किया गया है।[15]

उपरोक्त हठयौगिक ग्रंथों में गोरक्ष को अतिविशिष्ट सम्मान के साथ स्मरण किया गया है। जिससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि गोरक्षनाथ हठविद्या के अग्रगण्य, संयमी, ब्रह्मचर्य के पक्के, संगठनकर्ता एवं जीवनमुक्त पुरूष थे। जिन्होंने अपने जीवन में उपरोक्त सिद्धांतों को व्यवहार में अपनाकर अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ को भी प्रभावित किया था।

विभिन्न सम्प्रदायों एवं सिद्धों की सूचियों में गोरक्षनाथ :– 1.मध्यकालीन भारत के हठ के महासिद्धों की सूची हठप्रदीपिका 2.वर्णरत्नाकर से प्राप्त नाथ सिद्धों की सूची 3.तिब्बत से प्राप्त सहजयानी सिद्धों की सूची में, 4.तंत्र गंथों में महार्णवतंत्र, 5.सुधाकर चन्द्रिका, 6.महाराष्ट्र संत ज्ञानेश्वर के ज्ञानेश्वरचरित में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, गाहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ के उपरांत ज्ञाननाथ (संत ज्ञानेश्वर) का नाम आता है।[16] 7.योगीसम्प्रदायविष्कृति, 8.गोरक्षसिद्धांत संग्रह आदि में देखे जा सकते हैं।[17]

गोरक्ष कृत साहित्य, नाथ साहित्यों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है की गोरक्ष ने अपने योगमार्ग के अनुयायिओं को आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, मुद्रा, कुण्डलिनी, नादनुसंधान, आहार की शुद्धता, व्यवहार की पवित्रता, संयम, कर्त्तव्य बोध आदि का उपदेश दिया था जिसे उनके पंथ के योगियों के द्वारा उन उपदेशों को संग्रहीत किया गया। गोरक्ष की रचनाओं पर अनुसंधान करने वाले विभिन्न विद्वानों एवं अनवेषकों ने इनके विभिन्न ग्रंथों की सूचियाँ प्रस्तुत की हैं।

हिन्दी साहित्य में आदिकालीन इतिहास के अंतर्गत नाथ योगियों (सिद्धों) के प्रभावों, साधनाओं एवं उनके रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता हैं। जिनके प्रथमतः उल्लेखकर्ता मिश्रबंधुओं को माना जाता है।[18] जिन्होंने गोरक्षनाथ की माने जाने वाली नौ रचनाओं का उल्लेख किया है। उन रचनाओं में 1.गोरखशतक, 2.चतुरशीत्यासन, 3.ज्ञानामृत, 4.योगचिंतामणि, 5.योगमहिमा, 6.योगमार्त्तंड, 7.योगसिद्धांतपद्धति, 8.विवेकमार्तड, 9.सिद्धसिद्धांतपद्धति सम्मिलित हैं।[19]

*जार्ज वेस्टन ब्रिग्स* (जी. डब्ल्यू ब्रिग्स) प्रसिद्ध विद्वानों में से एक है, जिन्होंने 1940 के पूर्व भारत का भ्रमण कर नाथ योगियों के शैव योगियों के अंतःसंबंधों, साधनाओं एवं उनकी रचनाओं पर प्रकाश ड़ाला। इन्होंने ने अपनी रचना *'गोरखनाथ एण्ड कन्फटा योगीज'* में नाथ साहित्यों की सूची प्रस्तुत की हैं जिनमें नाथ सिद्धों के सैतालीस ग्रंथों का नामोल्लेख है। इनमें क्रमांक चालीस, गोरक्षशतक को उपरोक्त नाथ साहित्यों में

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

गोरक्षकृत कहा गया है।[20] इस रचना को अतिमहत्वपूर्ण मानते हुए ज्ञानशतक, ज्ञानप्रकाश शतक, गोरखसंहिता, गोरक्षशास्त्र, योगशास्त्र आदि गोरक्षशतक की ही प्रतिलियाँ अथवा गोरक्षशतक का ही नामान्तर माना है।

डॉ.कल्याणी मल्लिक ने गोरक्षकृत सिद्धसिद्धांत पद्धति के तीन हस्तलिपियों का संकलन किया था जिसमें तंजौर से प्राप्त प्रति में इसे गोरक्षकृत कहा गया है। प्रथमतः अंग्रेजी भाषा में *सिद्धसिद्धांतपद्धति एण्ड अदर्स वर्क ऑफ नाथ योगीज* के रूप में प्रकाशित किया है। इनके अनुसार *सिद्धसिद्धांतपद्धति, अमरौघप्रबोध, योगमार्तंड, चतुरशीत्यासन, योगमहिमा, ज्ञानामृत, योगसिद्धांतपद्धति, गोरक्षसहस्रनाम, गोरक्षकल्प, गोरक्षपिष्टिका गोरक्षसिद्धांत संग्रह* गोरक्ष कृत हैं।[21] गोरक्षकृत *सिद्धसिद्धांत पद्धति* की, हिंदी में संपादन एवं टीका का कार्य प्रथमतः डॉ. द्वारिकादास शास्त्री के द्वारा किया गया। जिसकी हस्तलिपियाँ मूल संस्कृत में हरिद्वार, जयपुर, जोधपुर, पुना, तन्जाउर आदि के प्रसिद्ध ग्रंथालयों से प्राप्त की गयी थी।[22]

डॉ.पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी साहित्य जगत् में नाथ योगियों की रचनाओं पर कार्य करने वाले बड़े विद्वानों में से एक माने जाते है। जिन्होंने हिन्दी में नाथ योगियों के रचनाओं पर वैज्ञानिक रीति से अनुसन्धान कर गोरखनाथ की कही जाने वाली चालीस छोटी–बड़ी रचनाओं का संकलन कर गोरखबानी का संपादन किया।[23] जिसमें भारत के विभिन्न ग्रन्थालयों व संग्रहालयों से प्राप्त उन रचनाओं की आठ हस्तलिपियों की विस्तृत चर्चा, अपने ग्रंथ गोरखबानी की भूमिका में प्रस्तुत किया है। इस संपादित ग्रंथ की सभी रचनाओं में 'सबदी' की श्रेष्ठता व्यक्त की गयी है। बड़थ्वाल ने उपरोक्त ग्रन्थ की चालीस रचनाओं में से आरंभ के चौदह रचनाओं को गोरक्षनाथ कृत माना है। क्योंकि इनमें गोरक्षनाथ का नाम विशेष रूप से प्राप्त होता हैं जो नाथ अनुयायियों, योगियों एवं अवधूतों के लिए अपने हठयौगिक अनुभवों एवं साधकों के लिए साधना मार्ग में आने वाले अवरोधों के प्रति सचेत करते हुए उपदेश कर रहे है। गोरखबानी की सभी प्रतिलिपियों में उपरोक्त आरम्भ की चौदह रचनाऐं विशेष रूप से प्राप्त होती हैं।[24]

राम लाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मंदिर से प्रकाशित होने वाली गोरक्षनाथ कृत विभिन्न ग्रंथों का संपादन लेखक ने किया है। जैसे गोरक्षशतक, गोरखवाणी, योगवाणी पत्रिका आदि। डॉ. बड़थ्वाल के द्वारा गोरखबानी के संपादन के दौरान अज्ञात रही, ज्ञानचौतीसा नामक हस्तलिपि को शामिल कर पूर्व के सभी चालीस रचनाओं के साथ ज्ञानचौतीसा को सम्मिलित कर संपादन एवं टीका के साथ गोरखवाणी के रूप में गोरखनाथ मन्दिर प्रकाशन, गोरखपुर से किया गया।[25]

गोपीनाथ कविराज, तन्त्र एवं योग के सर्वमान्य, प्रसिद्ध विद्वान एवं साधक माने जाते है। जिन्होंने नाथ योगियों के साधनाओं, परम्पराओं, देहसिद्धि एवं उनका अन्य सम्प्रदायों के साथ समानता एवं प्रभाव आदि पर महत्वपूर्ण लेखन कार्य किया है। इनके द्वारा प्रसिद्ध गोरक्षसिद्धांत संग्रह व सिद्धसिद्धांत संग्रह का संपादन किया गया।[26]

हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य के प्रख्यात विद्वानों में प्रसिद्ध रहे हैं। जिन्होंने नाथ सिद्धों (योगियों) की परम्परा, साधना, सम्प्रदाय, साहित्यों एवं इनके विभिन्न सम्प्रदायों में हुए प्रभावों आदि की विशेष जानकारी रखते थे। लेखक के द्वारा नाथ सिद्धों (योगियों) पर *'नाथ सम्प्रदाय'* और *'नाथसिद्धों की बानियाँ'* नामक दो प्रसिद्ध किताबें लिखी गयी। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ सम्प्रदाय में गोरखनाथ एवं अन्य नाथ योगियों के विभिन्न रचनाओं की सूची दी हैं। जिसमें नाथ साहित्यों की संख्या अट्ठाइस हैं।[27] द्विवेदी जी के अनुसार उपरोक्त सभी रचनाऐं गोरखनाथ की नहीं जान पड़ती। उपरोक्त अट्ठाईस ग्रंथों में से उन्होंने *अमनस्क, अमरौघशासनम, गोरक्षपद्धति, गोरक्षसंहिता, सिद्धसिद्धांत पद्धति* को गोरक्षकृत माना है।

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

हिंदी जगत के विद्वान, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने दर्शन एवं साधनात्मक विचार धारा के अनुसार *सिद्धसिद्धांतपद्धति, गोरक्षसंहिता, अमरौघशासनम् एवं महार्थमंजरी* को गोरक्षनाथ की महत्वपूर्ण रचना मानते हैं।[28]

गोरक्षनाथ की माने जाने वाली गोरक्षशतक पर वैज्ञानिक रीति से महत्वपूर्ण कार्य श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, कैवल्यधाम के द्वारा किया गया जिसमें इस ग्रंथ के पैतीस हस्तलिपियों का विभिन्न स्थानों से संकलन कर उनके विषय वस्तुओं की समीक्षा कर गोरक्षशतकम् का संपादन किया गया। जिससे यह ज्ञात होता है की गोरक्षशतक के सौ श्लोकों को ही आधार लेकर उनका दो सौ श्लोकों में विस्तार किया गया वहीं गोरक्ष पद्धति के रूप में प्रसिद्ध हुई।

अंततः उपरोक्त विद्वानों के कथनों की समीक्षा से यह अनुमान पुष्ट होता है कि गोरक्षशतकम्, सिद्धसिद्धांतपद्धति और गोरखबानी, अमरोघप्रबोध आदि गोरक्षनाथ के द्वारा उपदिष्ट अथवा लिखित अतिमहत्पूर्ण रचना है। नाथ योगियों के द्वारा भी इन्हीं उपरोक्त ग्रंथों पर अधिक भाष्य व टीकायें लिखने का क्रम चल पड़ा होगा। यहीं कारण है की इन ग्रंथों की हस्तलिपियों की बहुलता हैं।

**सारांश** :– गोरक्षनाथ मध्यकालीन भारत में प्रचलित विभिन्न उपासनों, मान्यताओं एवं उन पद्धतियों में आये विकारों को दूर कर उन सम्प्रदायों को परमतत्व के साथ एकाकार का जो सूत्र प्रस्तुत किया था वह हठयोग से राजयोग की प्राप्ति का सूत्र था। जो इस मानव देह को परमतत्व के अनुभव के लिए सबसे बड़ा माध्यम मानता है। इसी जीवन में जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त किाया जा सकता है। हठयोग की उपरोक्त साधनाओं एवं दर्शनों को नाथसिद्धों ने अपनाकर विभिन्न मतों एवं मतांतरों के मध्य अलख निरंजन का अनुभव किया एवं तंत्र एवं हठयोग की साधनाओं का पुनः प्रतिष्ठित करने में महती भूमिका निभायी। भले ही उस महान योगी का जन्मस्थान व काल का निर्धारण न किया जा सका हो किन्तु मध्यकाल से लेकर वर्तमान समय में भी गोरक्षनाथ के अतिविशिष्ट अनुभवजन्य हठयौगिक साधनात्मक उपदेश उनके प्रसिद्ध ग्रंथों एवं कालांतर के नाथ साहित्यों में जीवंत है जो योगियों, साधुओं, संन्यासियों एवं गृहस्थों के लिए अनुकरणीय है।

## संदर्भ सूची

[1] द्विवेदी मुकुंद, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली क्र. 6, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 2013,पृ. 108.
[2] उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ : नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2009, पृ. 89.
[3] हठप्रदीपिका 1/5.
[4] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, भारतीय साहित्य के निर्माता गोरखनाथ, सहित्य अकादेमी पंचम संस्करण, 2014, पृ. 26.
[5] उपरिवत
[6] द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2010, पृ. 95–96.
[7] द्विवेदी मुकुंद, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली क्र. 6, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 2013,पृ. 108.
[8] राय, विनयप्रकाश, नाथ साहित्य : परंपरा और प्रदेय, सारस्वत प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 50.
[9] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2009, पृ. 66–67.
[10] हठप्रदीपिका, 1/4,5.
[11] उपरिवत, 4/65, 81.
[12] घेरण्ड संहिता, 2/4, 25.
[13] अमरौघप्रबोध, 2, 5.
[14] गोरक्षपद्धति, 2/77, 98.

Copyright©authors

ISSN 0975-119X
Vol-11-Issue-6
November-December-2019

[15] बृहदयोगसोपान,1 / 52 / 3.
[16] शास्त्री द्वारिकादास, (संपादक एवं अनुवादक), सिद्धसिद्धांतपद्धति, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुमुद्रित, 2014, पृ.40.

[17] उपरिवत,पृ. 40–44.
[18] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2009, पृ.103.
[19] उपरिवत
[20] *डब्लू. जी. ब्रिग्स,* गोरखनाथ एण्ड द कन्फटा योगीज, वाई.एम.सी.ए. पब्लिसिंग हाऊस कलकत्ता,1938.पृ. 251–257.

[21]उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2009, पृ.104–105.
[22] शास्त्री द्वारिकादास, (संपादक एवं अनुवादक), सिद्धसिद्धांतपद्धति, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुमुद्रित, 2014, पृ. 03.

[23] बड़थ्वाल,पीताम्बरदत्त,सम्पादित,*गोरखबानी*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, षष्ठ संस्करण, 2004,पृ.14–15.
[24] उपरिवत, पृ.16–19.
[25] श्रीवास्तव राम लाल, संपादक एवं टीकाकार, गोरखबाणी, महायोगी गुरू गोरक्षनाथ शोध संस्थान, श्री गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर (उ.प्र.), तृतीय संस्करण, वि.सं. 2071.
[26] उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2009. पृ. 44
[27] द्विवेदी हजारी प्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1910, पृ. 98–99.
[28] उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2009, पृ. 47.

Copyright©authors

Nibandha Mala Journal

# Certificate of Publication

is awarded to

उमाषंकर कौषिक

for the paper titled

## हठयोग साधना का आधारभूत ग्रंथ गोरक्षषतक विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षाः एक अध्ययन

Published in ***Nibandha Mala*** Journal Vol-11, Issue-10 October- 2019 ISSN: 2277-2359

International Refereed and Indexed Journal for Research Publication

With Impact Factor 5.1 UGC Care Listed



*S.N. Sharma*

Editor-in-Chief

editor@hindijournals.org

UGC
University Grants Commission

EDUINDEX

ISSN 2277-2359
Vol-11-Issue-10
October- 2019

# हठयोग साधना का आधारभूत ग्रंथ गोरक्षशतक विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षाः एक अध्ययन

**उमाशंकर कौशिक[1], कु.नीलू विश्वकर्मा[2], डॉ.उपेन्द्र बाबू खत्री[3].**

**1**.नेट–जे.आर.एफ.,शोधार्थी(पीएच.डी योग ), योग एवं आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,बारला, रायसेन, म.प्र.

**2**.शोधार्थी(पीएच.डी आयुर्वेद), योग एवं आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,बारला, रायसेन, म.प्र.

**3**.सहायक प्राध्यापक, योग (योग एवं आयुर्वेद विभाग), साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,बारला, रायसेन, म.प्र. नोकअअ/हउंपसण्बवउ

## सारांश

हठयोग साधना एक महत्वपूर्ण यौगिक साधना है। जिसमें हठ शब्द, दो शब्दों से मिलकर बना है। वह हैं– ह + ठ अर्थात हठ। नाथ योगियों ने हठ का अर्थ शरीर में स्थित शक्ति की दो विपरीत धाराओं से लिया है, जो सामान्य अवस्था में एक दूसरे के विपरीत कार्य कर साधकों की मुक्ति में बाधक होते हैं। इन्हीं शक्ति की दो धाराओं को विभिन्न यौगिक अभ्यासों आसन, प्राणायाम, यौगिक आहार, मुद्रा, बंध, धारणा, ध्यान, समाधि आदि से सुप्त आंतरिक शक्ति (कुण्डलिनी) को जागृत करना ही हठयोग साधना का परम लक्ष्य है। गोरक्षशतक हठयोग साधना का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। जिसके रचनाकार प्रसिद्ध नाथ योगी गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) को माना जाता है। जिसमें सौ श्लोकों में गोरक्षनाथ के छः योगांगों आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि की चर्चा है। उपरोक्त ग्रंथ गोरक्षशतक पर विभिन्न विद्वानों में जी. डब्ल्यू ब्रिग्स, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, रामलाल श्रीवास्तव आदि विद्वानों ने गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोकों को गोरक्षशतक माना है। जबकि वैज्ञानिक रीति से कार्य कर पैतीस हस्तलिपियों के साथ कैवल्यधाम, श्रीमनमाधव योगमंदिर समिति, लोनावला, पुणे ने गोरक्षशतक का प्रकाशन किया है। जिनका आधार सौ श्लोकों में गोरक्षशतक के छः योगांगों का समावेश प्राप्त होता है वे हस्तलिपियाँ हैं 'इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन व अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ की जिससे यह ज्ञात होता है कि गोरक्षपद्धति गोरक्षशतक का ही विस्तार रूप है। जो कालांतर में इन सौ श्लोकों में विस्तार के कारण दो सौ श्लोकों का एक ग्रंथ बन गया जिसमें गोरक्ष शतक के उपरोक्त विषय बिखरे हुए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गोरक्षशतक गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोक नही है वरन गोरक्षशतक का विस्तार रूप गोरक्षपद्धति है।

**कूट शब्द– हठयोग साधना, गोरक्षशतक, गोरक्षपद्धति, विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा**

**प्रस्तावना–**

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-11-Issue-10
October- 2019

प्रथमतः गोरक्ष अर्थात गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) महिमाशाली नाथयोगी व मत्स्येन्द्रनाथ के प्रसिद्ध शिष्य। द्वितीय, शतक शब्द एक विशेषण है जो सौ श्लोकों का संग्रह हैं।[1] गोरक्षशतक एक महत्वपूर्ण हठयौगिक ग्रंथ है। जिसके रचनाकार नाथ योगी गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) माने जाते हैं। इस ग्रंथ में हठयोग की साधनाओं की चर्चा है। हठयौगिक साधनाओं के अंतर्गत आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, चक्र ध्यान, समाधि आदि के माध्यम से नाथ योगी, जीवनमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करने की विद्याओं की चर्चा करते हैं। हठयौगिक अभ्यासों के माध्यम से शक्ति की दो विपरीत धाराओं को संयुक्त कर सुप्त शक्ति (कुण्डलिनी) को जागृत किया जाता है। गोरक्षशतक नाथयोगियों की साधनाओं( हठयोग) का आधारभूत ग्रंथ है। इस ग्रंथ का प्रभाव इतना है कि बाद के विभिन्न हठयौगिक ग्रंथों में व इनके विषय वस्तुओं को लेकर कालांतर में विभिन्न हठयौगिक ग्रंथ लिखे गए थे। जिससे इनके मूल श्लोकों में विस्तार होता चला गया। जिससे गोरक्षशतक के मूल सौ श्लोक बिखरने लगे थे। इस पर कार्य करना आवश्यक था। ताकि उपरोक्त ग्रंथ के विषय वस्तुओं व मूल विषयों को जाना जा सके। विभिन्न विद्वानों ने अपनी रचनाओं में गोरक्षशतक की चर्चा की है, जिसमें इस ग्रंथ के योगांगों की चर्चा प्राप्त होती है। नीचे विभिन्न विद्वानों के मतों के उपरान्त इस ग्रंथ पर हुए वैज्ञानिक रीति से अनुसंधान को प्रस्तुत किया गया है। जिससे गोरक्षशतक के मूल ग्रंथ की हमें जानकारी हो सके। विभिन्न विद्वानों के मत निम्नवत् हैं–गोरक्षशतक के मूल ग्रंथ पर चर्चा करते हुए,

**जार्ज डब्लू ब्रिग्स** ने अपने भारत यात्रा के दौरान प्राप्त होने वाले नाथ साहित्यों में सैंतालीस साहित्यों को सूचीबद्ध किया है। परंतु स्वयं ब्रिग्स के अनुसार उनमें से बहुत सारे ग्रंथों की नामवैभिन्न्ता के कारण पुनरावृत्ति कि ओर भी संकेत किया था। इसी क्रम में ब्रिग्स ने अपने ग्रंथ में, गोरक्षशतक को गोरक्षपद्धति का ही भाग स्वीकार किया है। उनके अनुसार गोरक्षपद्धति दो सौ श्लोकों का ग्रंथ है, जिनके प्रथम के सौ श्लोकों को गोरक्षशतक अथवा गोरक्षशास्त्र एवं दूसरे सौ श्लोकों को योगशास्त्र कहा गया है। ब्रिग्स के अनुसार गोरक्षपद्धति के कुछ पेजों पर इसे गोरक्षसंहिता व कुछ जगहों पर शिवयोग शास्त्र भी कहा गया है। ब्रिग्स के द्वारा लिखित ग्रंथ **'गोरखनाथ एण्ड द कन्फटा योगी'** में गोरक्षशतक छत्तीसवें स्थान पर है।[2] आगे के ग्रंथों की सूची में सैंतीस व अड़तीस में क्रमशः ज्ञानशतक व ज्ञानप्रकाश को गोरक्षशतक का ही नामांतर माना गया है। साथ ही गोरक्षशतक की टीकाओं में गोरक्षशतक टीका, गोरक्षशतक टिप्पणी, गोरक्षकल्प, गोरक्षपद्धति, योगसिद्धांत पद्धति व सिद्धांत पद्धति को भी सम्मिलित माना है। ब्रिग्स, गोरक्षशतक को नाथ सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण ग्रंथ मानते हैं। इस मान्यता के पीछे उनके द्वारा खोजे गये गोरक्षशतक की तीन हस्तलिपियाँ जो भण्डारकर ओरियन्टल इस्टीटयूट, पुने, संस्कृत कॉलेज बनारस व हरिद्वार बाजार मुम्बई से प्राप्त हस्तलिपियाँ सम्मिलित थीं।[3] ब्रिग्स के अनुसार मुम्बई बाजार से गोरक्षपद्धति नामक किताब खरीदा जिनमें प्रथम के सौ श्लोकों को गोरक्षशतक व दूसरे सौ श्लोकों को योगशास्त्र कहा गया था। ब्रिग्स के अनुसार गोरक्षपद्धति के दूसरे सौ श्लोकों को योगशास्त्र कहा गया है जिसमें प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि और मुक्ति विषयों की चर्चा की गयी है।[4] .ब्रिग्स गोरक्षशतक को तंत्र व योग सिद्धांतों का मिला हुआ रूप मानते हैं।

**गोरखनाथ मंदिर गोरखपुर**– 1981 में गोरखनाथ मंदिर से प्रकाशित, गोरक्षशतक जिसका संपादन व टीका रामलाल श्रीवास्तव ने किया है, जो ब्रिग्स के किए गये कार्यों को आधार मानते हैं।[5] और गोरक्षशतक को गोरक्षपद्धति का भाग स्वीकार करते हैं। इस पुस्तक में गोरक्षशतक के एक सौ एक श्लोकों पर टीकाएँ लिखी गयीं हैं। जिसमें सोलह आधारों, व्योम पंचक, त्रिलक्ष्य आदि को भी शामिल कर दिया गया है। जबकि इसी ग्रंथ में श्लोक संख्या सात में गोरक्षशतक के छः योगांग बताए गए हैं। परंतु इस ग्रंथ में छः योगांगों का पूर्ण विवरण भी प्राप्त नहीं होता। इस ग्रंथ में केवल आसनों, नाड़ियों, प्राणायामों, मुद्राओं व बंधों की चर्चा की गयी है। जबकि प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि की कोई चर्चा नहीं है, जो कि गोरक्षशतक के योगांगों में शामिल है।

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-11-Issue-10
October- 2019

**हिंदी साहित्य** के ज्यादातर विद्वानों के मतानुसार गोरक्षशतक, नाथ सिद्धों की साधनाओं का आधार ग्रंथ माना जाता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के अंतर्गत नाथसिद्धों व उनकी रचनाओं की जानकारी हमें प्राप्त होती हैं। हिंदी साहित्य के विद्वानों ने नाथसिद्धों की रचनाओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश ड़ाला हैं। हिंदी साहित्य में गोरक्षशतक की चर्चा हिंदी के विद्वान, हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित ग्रंथ 'नाथ सम्प्रदाय' से प्राप्त होता है। जिसमें गोरक्षनाथ की रचनाओं के अंतर्गत अट्ठाईस नाथ साहित्यों की चर्चा की गयी हैं, इसके अंतर्गत गोरक्षशतक की भी चर्चा प्राप्त होती है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोरक्षशतक को गोरक्ष पद्धति का ही एक भाग माना है। डॉ. द्विवेदी के अनुसार गोरक्षपद्धति दो सौ श्लोकों का ग्रंथ है, जिनमें से प्रथम के सौ श्लोकों को गोरक्षशतक व दूसरे सौ श्लोकों को योगशास्त्र बताया गया हैं। डॉ. द्विवेदी ने जी डब्लू ब्रिग्स का संदर्भ देते हुए कहा है कि गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोक जो गोरक्षशतक है उसका ब्रिग्स के द्वारा रोमन अक्षरों में छापे जाने व अंग्रेजी में अनुवाद किये जाने का उल्लेख किया है।[6] उपरोक्त कथनों के साथ ही डॉ. द्विवेदी ने डॉ. प्रबोधचंद बागची के कौलवालि निर्णय की भूमिका का संदर्भ देते हुए कहा है कि डॉ. बागची ने कौलावलि निर्णय की भूमिका में जिन विषयों की चर्चा की है, वे विषय, जी. डब्लू ब्रिग्स द्वारा प्रस्तुत किये गये गोरक्षशतक की विषय वस्तुओं से मिलती है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोरक्षशतक के अन्य नामों में ज्ञानशतक व ज्ञानप्रकाश को भी स्वीकार करते हैं।[7]

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने 'गोरक्षनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में' नामक ग्रंथ में नाथ साहित्यों के अंतर्गत विभिन्न विद्वानों के अनुसार बताए गये नाथ साहित्यों की चर्चा की है। डॉ. उपाध्याय ने गोरक्षपद्धति के दो सौ श्लोकों के विस्तार में गोरक्षसंहिता व हठप्रदीपिका के श्लोक संदर्भों को देखकर यह अनुमान लगाया है कि गोरक्षशतक गोरक्षनाथ की रचना नहीं है। इस पर यह तर्क है कि हठप्रदीपिका का काल (ब्रिग्स का संदर्भ देते हुए) चौदहवीं शताब्दी मानते हैं। जबकि गोरक्षनाथ का काल हठप्रदीपिका कृत स्वात्माराम से पूर्व मानते हुए उपरोक्त कथन की पुष्टि करते हैं। वही आगे गोरक्षसंहिता को गोरक्षशतक के श्लोकों में ही अंतर्भूत मानते हैं।[8] डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने गोरक्षसंहिता के विषय वस्तुओं की चर्चा की है। इसके अंर्तगत उन्होंने बताया है कि गोरक्षसंहिता के चौथे श्लोक में गोरक्षशतक की बात कही गयी है। गोरक्षसंहिता की चर्चा करते हुए उसकी विषय वस्तु का उल्लेख भी किया गया है। जिसकी विषय वस्तु गोरक्षशतक के समान ही है। जिसमें आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि विषयों का उल्लेख प्राप्त होता हैं।[9] उपरोक्त कथनों के उपरान्त डॉ. उपाध्याय यह स्वीकार करते हैं कि गोरक्षशतक को नाथ सम्प्रदाय में, बाद के सिद्धों व अनुयायिओं ने विशेष माना है। क्योंकि इस ग्रंथ की भाष्य, टीका, व्याख्याएँ कालांतर में भी प्राप्त होती रही है। परंतु डॉ. उपाध्याय गोरक्षशतक के मूल छः विषयों के साथ मूल ग्रंथ का उल्लेख नहीं कर पाए। डॉ. उपाध्याय के उपरोक्त ग्रंथ में गोरक्षसंहिता के विषयों के अंर्तगत कुछ मुद्राओं के नामोंल्लेखों से यह प्रतीत होता है कि गोरक्षसंहिता का आधार, गोरक्षशतक ही रहा होगा। साथ ही बाद के हठयौगिक ग्रंथों से भी अन्य मुद्राओं व षोड्शआधारों को भी गोरक्षसंहिता में स्थान दिया गया होगा। डॉ. मोहन सिंह के अनुसार गोरक्षशतक व गोरक्षसंहिता दोनों ग्रंथ, एक साथ गोरक्षपद्धति के नाम से प्रकाशित बतायी गयी है।[10] जो कि बाद के प्रमाणों से यह सही, नही जान पड़ती।

गोरक्षशतक पर **कैवल्यधाम लोनावला के संस्थापक** स्वामी कुवल्यानंद व उनके सहयोगियों ने पहले ही यह अनुमान लगा लिया था कि गोरक्षशतक सौ श्लोकों का एक ग्रंथ है। इस पर उनका आधार था, गोरक्षशतक (लोनावला प्रकाशन) के चतुर्थ श्लोक में प्राप्त योग के षड़ंग जिसमें आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि विषय सम्मिलित हैं। इस अनुसंधान के दौरान **'इन्डिया ऑफिस लायब्रेरी' लंदन** से प्राप्त गोरक्ष शतक की एक हस्तलिपि में उपरोक्त छः योगांग प्राप्त हुए, जिसके सौ श्लोकों में दो श्लोकों की कमी थी और इसी हस्तलिपि

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-11-Issue-10
October- 2019

के आधार पर कैवल्यधाम, लोनावला से गोरक्षशतक, अनठानवें श्लोकों के साथ पहली बार अंग्रेजी संस्करण में प्रकाशित हुआ था। परंतु अनुसंधान जारी रहा और इसी दौरान **'अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्'**, **लखनऊ** से एक और हस्तलिपि प्राप्त हुई जिसमें एक सौ एक श्लोक थे जो गोरक्षशतक के छः विषयों को पूरा करते थे। 'इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन' से प्राप्त हस्तलेख में जहाँ दो श्लोकों की कमी थी उन कमियों को 'अखिल भारतीय संस्कृत परिषद, लखनऊ' से प्राप्त हस्तलिपि में से श्लोक संख्या तेरासी जिसमें लम्पिका ध्यान की चर्चा थी व श्लोक संख्या सनतानवें जिसमें समाधि की चर्चा थी, अतः इन दानों श्लोकों को इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में सम्मिलित किया गया जो इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन के मूल हस्तलिपि में नहीं थे।[11] इस प्रकार सौ श्लोकों के साथ गोरक्षशतक का प्रकाशन कैवल्यधाम, लोनावला के द्वारा किया गया। गोरक्षशतक के इन अनुसंधान कार्यों के दौरान कैवल्यधाम को गोरक्षशतक की विषय वस्तु व उनकी हस्तलिपियों के बारे में जी. डब्लू. ब्रिग्स (गोरखनाथ एण्ड द कन्फटा योगी ग्रंथ के लेखक)

हिंदी साहित्य के विद्वान, हजारी प्रसाद द्विवेदी व मोहन सिंह आदि के ग्रंथों को देखकर व प्राप्त हस्तलिपियों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि उपरोक्त विद्वानों ने गोरक्षशतक को गोरक्षपद्धति का प्रथम सौ श्लोकों का संग्रह मान लिया था। जबकि गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोक गोरक्षशतक के छः योगांगों को पूरा नहीं करते थे। ज्यादातर विद्वानों ने गोरक्षशतक पर ब्रिग्स के मत का ही अनुशरण किया है। जो वर्तमान प्राप्त प्रमाणों से अनुचित जान पड़ता है।[12] की गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोक ही गोरक्षशतक है। कैवल्यधाम के द्वारा गोरक्षशतक की पैंतीस हस्तलिपियों की समान विषय वस्तु के साथ, मूलग्रंथ को खोज निकाला गया।

इस प्रकार पैंतीस हस्तलिपियों के आधार पर सौ श्लोकों वाली गोरक्षशतक की संकल्पना छःयोगांगों की विषय वस्तु के साथ पूरा माना गया। गोरक्षशतक का अंग्रेजी संस्करण के उपरान्त हिंदी संस्करण कैवल्यधाम, लोनावला द्वारा प्रकाशित किया गया।[13] **गोरक्षशतक की हस्तलिपियाँ व काल का निर्धारण**– गोरक्षशतक की मूल ग्रंथ के सम्पादन करने वाले कैवल्यधाम लोनावला के द्वारा इस ग्रंथ के **उनचालीस** हस्तलिपियों का संग्रहण किया गया। इस ग्रंथ की **बंगला लिपि** में लिखी हुई छः हस्तलिपियाँ भी प्राप्त हुई थीं। साथ ही इनमें **उड़िया लिपि** व **भोजपत्र** में लिखीं हुई हस्तलिपियाँ भी सम्मिलित हैं। जिनमें से **पंतीस** हस्तलिपियों की विषय वस्तु समान थीं। अन्य हस्तलिपियों को चयनित पैंतीस हस्तलिपियों की ही प्रतिलिपि बतायी गयीं हैं। उपरोक्त हस्तलिपियाँ लंदन, लखनऊ, पूना, कलकत्ता, वाराणसी, बड़ौदा, अड्यार, बीकानेर, तंजौर, मद्रास, मण्डलेश्वर के हस्तलेख पुस्तकालयों से प्राप्त बताए गये हैं।[14] गोरक्षशतक की प्राप्त सभी हस्तलिपियों में उनके मूल विषय अर्थात आधार श्लोक निम्न है–

**आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।**

**ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वंदति षट्।।**[15]

उपरोक्त श्लोक गोरक्षशतक के मूल विषय को व्यक्त करता है। **गोरक्षशतक के छः योगांगों के अंतर्गत**– **1.आसनों में** – पद्मासन, सिद्धासन, नाड़ियों में दस प्रमुख नाड़ियों की चर्चा है। **2.प्राणायाम**– पाँच वायुओं व उनके उपवायुओं की चर्चा है, नाड़ी शोधन प्राणायाम की चर्चा है। प्राणायाम को तीन मात्राओं में अधम, मध्यम व उत्तम प्रकार बताए गये हैं। इसी के अंर्तगत ही चक्रों में सात चक्रों की चर्चा है। मुद्राओं में महामुद्रा, खेचरी, नभोमुद्रा, उड्डियान, जालंधर और मूलबंध, विपरीत करणी की चर्चा प्राप्त होती हैं। **3.प्रत्याहार**– विपरीतकरणी से सूर्य स्थान नाभि को ऊपर व सोममण्डल स्थान तालु को नीचे करने की बात कही है जो प्रत्याहार के नाम से अभिहित किया गया है। **4.धारणा**– पंच तत्वों पर धारणा, शरीर के निश्चित स्थानों, तत्व का आकार, बीज मंत्र, उनके रंग, धारणा का समय, उनके देवता व धारणा के परिणामों की चर्चा की गयी हैं। **5.ध्यान**– सगुण व निर्गुण ध्यान के दो प्रकारों

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-11-Issue-10
October- 2019

की चर्चा है। जिसके अंतर्गत शरीरस्थ चक्रों व विशेष अंगों को मिलाकर अष्ट ध्यानों की चर्चा है। **6.समाधि**– मन का विषयों से शून्य हो जाने व अभेद ज्ञान हो जाने को ही समाधि कहा गया है।

उपरोक्त हस्तलिपियों में से **सोलह** हस्तलिपियों में गोरक्षशतक का काल निर्धारित है। परंतु अन्य हस्तलिपियों में काल की चर्चा प्राप्त नहीं होती। इन सोलह हस्तलिपियों में सबसे पुरानी हस्तलिपि वाराणसी (**सरस्वती भवन, गवर्नमेंट संस्कृत लायब्रेरी**) से प्राप्त बतायी गयी है, जिसमें 1690 ई. का उल्लेख है व इनमें से अधुनातन हस्तलिपि, **रॉयल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता** की प्राप्त होती है। जिनका काल 1943–44 ई. बताया गया है।[16] विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा करने पर नाथ **योगी गोरक्षनाथ का काल, दसवीं शताब्दी** ठहरता है। **गोरक्षशतक व गोरक्षपद्धति की हस्तलिपि** – गोरक्षशतक का ही विस्तार रूप गोरक्षपद्धति है। गोरक्षशतक की हस्तलिपियों की खोज के दौरान पूना से प्राप्त हस्तलिपि संख्या **एक** का ही विस्तार रूप **रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता** से प्राप्त, **चार** हस्तलिपियों को बताया गया है। अर्थात पूना एवं कलकत्ता से प्राप्त हस्तलिपियाँ मिलकर एक ग्रंथ बनता है। जो कि इस पर लक्ष्मीनारायण द्वारा बालप्रबोधिनी संस्कृत टीका भी प्राप्त होती है। यही ग्रंथ लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुई है। जो कि गोरक्षपद्धति से पूरी मिलती हुई बतायी गयी है। इस प्रकार गोरक्षशतक के मूल सौ श्लोकों में विस्तार होते–होते दो सौ श्लोक का ग्रंथ बन गया जिसे गोरक्षपद्धति के नाम से जाना जाने लगा। इसी गोरक्षपद्धति के दो सौ श्लोकों के बीच गोरक्षशतक के सौ मूल श्लोक बिखरे हुए हैं। जो योग के छः अंगों को पूरा करते हैं।[17] उपरोक्त गोरक्षपद्धति के दो सौ, संस्कृत श्लोकों पर, महिधर शर्मा की हिंदी टीका भी प्राप्त होती है।[18]

**उपसंहार**–

गोरक्षनाथ कृत गोरक्षशतक, सौ श्लोकों का एक महत्वपूर्ण हठयौगिक ग्रंथ है। जिसमें छः योगांगों– आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का विस्तार प्राप्त होता है। उपरोक्त ग्रंथ के मूल हस्तलिपियों पर कार्य करते हुए कैवल्यधाम, लोनावला ने पैंतीस हस्तलिपियों को आधार मानकर महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसके पूर्व गोरक्षशतक पर विभिन्न विद्वानों, जानकारों जिनमें जी.डब्लू. ब्रिग्स, हिंदी साहित्य के विद्वान– हजारी प्रसाद द्विवेदी, मोहन सिंह, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, रामलाल श्रीवास्तव आदि का कथन था कि गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोक ही गोरक्षशतक है, यह असत्य साबित होता है। क्योंकि गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोक गोरक्षशतक के छः योगांगों को पूरा नहीं करते। साथ ही कैवल्यधाम के अनुसंधान कार्यों के दौरान प्राप्त हस्तलिपियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोरक्षपद्धति गोरक्षशतक का ही विस्तार है। उनके आधार ग्रंथ मुख्य रूप से पूना से प्राप्त सौ श्लोकों वाली एक गोरक्षशतक की हस्तलिपि है। जिसके अंत में **गोरक्षशतकम् सम्पूर्णम्** लिखा है। लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से शकसंवत् 1855. (1933 ई.) में प्रकाशित गोरक्षपद्धति का प्रथम सौ श्लोक पूना वाले गोरक्षशतक से पूर्णतः मेल रखते हैं। यही गोरक्षपद्धति की हस्तलिपि ही ब्रिग्स के कथन का आधार थी। परंतु स्वयं ब्रिग्स ने गोरक्षशतक के चतुर्थ श्लोक में वर्णित विषय वस्तु के अनुसार गोरक्षशतक को नहीं देखा जो कि गोरक्षशतक की विषय वस्तु गोरक्षपद्धति के दो सौ श्लोकों में बिखरी हुई थी। हिंदी साहित्य के विद्वान डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपने ग्रंथ नाथसम्प्रदाय में ब्रिग्स के कथन का अनुशरण किया और गोरक्ष पद्धति के सौ श्लोकों को ही गोरक्षशतक कह दिया। रामलाल श्रीवास्तव ने गोरक्षशतक का संपादन व हिंदी में टीका लिखी है जो गोरखनाथ मंदिर गोरखपुर, उत्तरप्रदेश से प्रकाशित है। उन्होंने भी ब्रिग्स का अनुशरण करते हुए, गोरक्षपद्धति के प्रथम सौ श्लोकों गोरक्षशतक कहा है, जो कि सत्य नहीं है। नागेन्द्रनाथ उपाध्याय भी इस पर सही व्यक्तव्य नहीं दे पाए। वैज्ञानिक रीति से कार्य करने वाले कैवल्यधाम, लोनावला ने गोरक्षशतक की तीन दर्जन से भी अधिक हस्तलिपियों से गोरक्षशतक की मूल विषय वस्तु (छःयोगांगों) से संबंधित श्लोकों को एकत्रित किया जो कि सौ श्लोकों में पूर्ण होते हैं। यही सौ श्लोक गोरक्षपद्धति के

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-11-Issue-10
October- 2019

दो सौ श्लोकों में भी बिखरे हुए हैं। अर्थात गोरक्षशतक के सौ श्लोकों का विस्तार होते–होते गोरक्षपद्धति के रूप में आ गया। साथ ही कालांतर में गोरक्षशतक की प्राप्ति के बाद हस्तलेखों में तीन सौ श्लोकों का भी पता चलता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इनमें श्लोकों की तादात बढ़ती चली जा रही थी, व मूल श्लोकों का विस्तार हो रहा था। जिससे इनके मूल श्लोकों के खोने का भय बना हुआ था। परंतु कैवल्यधाम, लोनावला ने गोरक्षनाथ की हठयोग साधना का इस, महत्वपूर्ण नाथ साहित्य, गोरक्षशतक के मूल ग्रंथ वैज्ञानिक रीति से प्रकाशित कर संरक्षित किया।

## संदर्भ सूची

1.कृष्णकान्त दीक्षित, उपाध्याय सूर्यनारायण, संकलनकर्ता, अमर वृहत् शिक्षार्थी हिंदी–हिंदी शब्दकोश, कमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.1154.
2.ब्रिग्स, जार्ज वेस्टन, गोरखनाथ एण्ड द कन्फटा योगिज, वाय, एम,सी,ए, पब्लिसिंग हाऊस कलकत्ता, 1938, पृ.254.
3.वहीं
4.वहीं, पृ.251–257
5.श्रीवास्तव रामलाल, संपादक एवं टीकाकार, गोरक्षशतक, गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर, 1981, पृ.23–24.
6.द्विवेदी, हजारी प्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2010, पृ.95–96.
7.वहीं, पृ.97–100.
8.उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2009, पृ.46–47.
9.वहीं,पृ.114–116.
10.दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग, गोरक्षशतकम् (हिंदी रूपांतरण), कैवल्यधाम, श्रीमनमाधव योग मंदिर समिति, लोनावला, पुणे, प्रथम आवृत्ति, 2013, पृ.19.
11.वहीं, पृ.09–10.
12.दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग, गोरक्षशतकम् (हिंदी रूपांतरण), कैवल्यधाम श्रीमनमाधव योग मंदिर समिति, लोनावला, पुणे, 2013, भूमिका, पृ.21.
13.वहीं, पृ.07.
14.दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग, गोरक्षशतकम्,(हिंदी रूपांतरण) कैवल्यधाम श्रीमनमाधव योग मंदिर समिति, लोनावला, पुणे, प्रथम आवृत्ति, 2013,पृ.20.
15.गोरक्षशत, श्लोक सं.04, कैवल्यधाम, लोनावला, पुणे, 2013.
16.दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग, गोरक्षशतकम् (हिंदी रूपांतरण),कैवल्यधाम,श्रीमनमाधव योग मंदिर समिति, लोनावला, पुणे, प्रथम आवृत्ति, 2013, पृ.15–18.
17.वहीं, पृ.20–23
18.शर्मा महिधर, भाषानुवादक (हिंदी), गोरक्षपद्धति, वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण–मुंबई, 1867.

Copyright©authors




# महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ

## दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ.प्र.)

राष्ट्रीय संगोष्ठी

**नाथपंथ विश्वकोश निर्माण : योजना एवं क्रियान्वयन के विविध आयाम**

14-15 दिसम्बर, 2019

# प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./डॉ./श्री/सुश्री .....उमाशंकर कौशिक.....

..... कालेज/विश्वविद्यालय .....साँची.....

.....

ने विषय ....गोरक्षकृत नाथ साहित्य : एक साहित्यिक सर्वेक्षण

पर व्याख्यान/शोध पत्र प्रस्तुत किया।

हम इनके उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं।

डॉ. साजिद हुसैन अंसारी
सचिव

डॉ. संजय कुमार राम
संयोजक

प्रो. रविशंकर सिंह
अध्यक्ष/विशेष कार्याधिकारी
महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ

# DHARMA-DHAMMA 2018

**FOCUS : SHAKTATANTRA**

International Conference on

**Historical, Sociological, Philosophical and Spiritual Significance of Shaktatantra with Special Reference to Srividya Tradition**

**17-19 December, 2018**

# Certificate of Appreciation

This is to certify that

Prof./Dr./Mr./Mrs./Ms. Umashankar has presented his/her paper on बंगाल के कौलतांत्रिक मत्स्येन्द्रनाथ in International Conference on Historical, Sociological, Philosophical and Spiritual Significance of Shaktatantra with Special Reference to Srividya Tradition organized by Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Barla, Madhya Pradesh, India from 17-19 December, 2018.

| Aditi Kumar Tripathi | Acharya Prof. Yajneshwar S. Shastri | Dr. Vishav Bandhu | Dr. Devendra Singh |
|---|---|---|---|
| **(Registrar)** | **(Vice-Chancellor)** | **(Joint Secretary)** | **(Local Secretary)** |

# अभिनन्दनप्रमाणीकरणम्

भारतदेशीयस्य मध्यप्रदेशस्थस्य साँचीबौद्ध-भारतीयज्ञानाध्ययनविश्वविद्यालयस्य तत्त्वावधाने 17.12.2018 दिनाङ्कतः 19.12.2018 दिनाङ्कपर्यन्तं समायोजिते 'शाक्ततन्त्रीयम् ऐतिहासिकसामाजिकदार्शनिकाध्यात्मिकमाहात्म्यम्' इति विषयाधारिते अन्तर्राष्ट्रियविद्वत्समवाये प्रो./डॉ./श्रीः/सुश्रीः Umashankar नामधेयः/ नामधेया बंगाल के कौलतांत्रिक मत्स्येन्द्रनाथ विषयमधिकृत्य शोधपत्रम् उपस्थापयत् तदर्थम् अभिनन्द्यते।

| अदितिकुमारत्रिपाठी | आचार्यः प्रो. यज्ञेश्वर एस. शास्त्री | डॉ. विश्वबन्धुः | डॉ. देवेन्द्रसिंहः |
|---|---|---|---|
| **( कुलसचिवः )** | **( कुलपतिः )** | **( संयुक्तसचिवः )** | **( स्थानीयसचिवः )** |

# NATIONAL SEMINAR
## on
# "CONCEPT OF YOGA IN ANCIENT INDIAN CULTURE"

India Council of Social Science Research

**30th Nov. & 1st Dec. 2018**

Organized By :

**Department of Yoga &**
**Department of Ancient Indian History Culture and Archaeology**
**INDIRA GANDHI NATIONAL TRIBAL UNIVERSITY , AMARKANTAK (M.P.)**

# CERTIFICATE

This is to certify that Dr. / Mr./ Mrs. / Ms. उमाशंकर कौशिक

has participated / presented a paper titled "हठयोग साधना का मूलभूत ग्रंथ कौलज्ञाननिर्णय : एक परिचय" in the

Two Days National Seminar (Sponsored by IGNTU & ICSSR, New Delhi) on "CONCEPT OF YOGA IN ANCIENT INDIAN CULTURE" held on 30th Nov. & 1st Dec. 2018.

| (Dr. Mohan Lal Chadhar) | (Dr. Janardhana B. ) | (Prof. N.S.H.N. Moorthy ) | (Prof. Alok Shrotriya ) |
|---|---|---|---|
| Organising Secretary | Convenor | Dean, Yoga | Director |

# Central Council for Research in Yoga & Naturopathy

**(Ministry of AYUSH, Government of India)**

61-65, Institutional Area, Opposite 'D' Block, Janakpuri, New Delhi -110058

## Certificate of Participation

Shri / Smt. / Ms. / Dr. उमाशंकर कौशिक

from सांची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय has participated

as a delegate in the **'National Seminar on Emerging Trends of Research in Yoga & Naturopathy'** organized by Central Council for Research in Yoga & Naturopathy, New Delhi from 16th to 18th September, 2016. He / she presented a paper entitled योग में शोध के नवीन आयाम : "ऋतुचर्या योगाभ्यास और मिताहार के विशेष संदर्भ में"

**New Delhi**
**18th Sep., 2016**

Rajiv Rastogi

**(Dr. Rajiv Rastogi)**
Organising Secretary

Ishwara

**(Dr. Ishwara N. Acharya)**
Director

ISSN No- 2456-7078
Impact Factor- 4.520

# Certificate of Publication

# Research maGma

This is to certified that

उमाशंकर कौशिक, लोकेश चौधरी, डॉ.उपेन्द्र बाबु खत्री, डॉ.अखिलेश सिंह

has published article entitled

"नाथयोगिय साहित्य का विवेचन : कतिपय विद्वानों/संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में"

In **Research maGma**, Volume-I, Issue-IX, Nov-2017.

Editor-in-Chief

4th International Dharma-Dhamma Conference on

धर्म and POLITY

॥धर्मो रक्षति रक्षितः॥

19th - 21st October, 2016

# Certificate of Participation

This is to certify that

Dr./Mr./Mrs./Miss उमाशंकर कौशिक

participated in the 4th International Dharma-Dhamma Conference titled "Dharma & Polity" held from 19th to 21st October, 2016 as paper presenter and presented a paper titled "शासन में धर्म का महत्व"

Sanchi University of Buddhist-Indic Studies wishes the very best for his/her future endeavors.

S.R.Bhatt
Conference Convenor

Rajesh Gupta, IPS
Convenor